राजनीतिक अर्थशास्त्र

संक्षिप्त पाठ्य-क्रम

लेखक

एल. लियोन्तियेव



पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा॰) लिमिटेड

नई दिल्ली

सितम्बर १९७४ (PH45)

अनुवादक

गुरु प्रसाद

मूल्य

साधारण संस्करण : ८ रुपये

सजिल्द संस्करण : १२ रुपये

तरुण सेन गुप्ता द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित.

अनुक्रम

अध्याय १

राजनीतिक अर्थशास्त्र क्या है ?

किसी भी विज्ञान का अध्ययन आरम्भ करने से पहले, हमें यह जान लेना चाहिए कि वह किसी चीज का अध्ययन करता है तथा उसकी विषय-वस्तु क्या है। उदाहरण के लिए, खगोल-विज्ञान ग्रहो और नक्षत्रो की गति का अध्ययन करता है, भूशास्त्र—भूमि की बनावट का अध्ययन करता है; जीव-शास्त्र—जीवित तत्वो के विकास का अध्ययन करता है। राजनीतिक अर्थशास्त्र किस विषय का अध्ययन करता है ?

राजनीतिक अर्थशास्त्र मानव समाज के विकास की विभिन्न मजिलो मे जीवन-निर्वाह के भौतिक साधनो के उत्पादन और विनिमय के नियमो को सचालित करने वाला विज्ञान है। यह उत्पादन के सामाजिक ढाचे का अध्ययन करता है।

प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञान

विभिन्न प्रकार के विज्ञान मनुष्यो को अपने चारो ओर के ससार को, जो उनकी अपनी इच्छा और चेतना से निरपेक्ष कायम है, समझने मे सहायक होते हैं। मनुष्य स्वय ससार का एक अग है। इस प्रकार ससार मे प्रकृति तथा सामाजिक जीवन, दोनो ही, शामिल हैं।

हर कदम पर मनुष्यो को पता चलता है कि प्रत्येक अमली काम को पूरा करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है और यह ज्ञान उन्हे विज्ञान से प्राप्त होता है। एक धातुशास्त्री को इस्पात या कच्चा लोहा भट्ठी मे गलाने के लिए उसकी रासायनिक तथा तकनीकी प्रक्रियाओ को जानना जरूरी है। एक मशीन बनाने वाले को मशीन सम्बधी ज्ञान और उसके नियम अवश्य जानने चाहिए। एक माली जानता है कि उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसे वनस्पतिशास्त्र के नियमो को लागू करने मे निपुणता हासिल हो।

यही बात सामाजिक जीवन मे भी लागू होती है। इसमे भी सफलता तभी प्राप्त की जा सकती है जब सामाजिक विकास के नियमो का ठीक-ठीक अध्ययन किया जाय और उनको पूरी निपुणता से लागू किया जाय। ऐसा न करने पर असफलता ही हाथ लगेगी।

हर विज्ञान प्राकृतिक व सामाजिक व्यापार (फेनोमेना) के एक निश्चित क्षेत्र का अध्ययन करता है। उस व्यापार का यह क्षेत्र ही किसी विज्ञान की विषय-वस्तु होता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है। सामाजिक विज्ञान मानव समाज के विभिन्न पहलुओ का अध्ययन करते हैं। वे सामाजिक जीवन के निश्चित क्षेत्रो के विकास को सचालित करने वाले नियमो पर प्रकाश डालते हैं।

क्या सामाजिक जीवन के बारे मे वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना सम्भव है?

कुछ ऐसे लोग हैं जो इस प्रश्न का उत्तर "नही" कह कर देते हैं। उनका कहना है कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया प्राकृतिक विकास से बुनियादी तौर पर अलग होती है। प्रकृति के क्षेत्र मे हम अपरिवर्तनीय नियमों का पता लगाने मे सफल हो जाते हैं—समान परिस्थितिया सदा समान परिणामो को जन्म देती हैं। लेकिन, उनका कहना है, यह बात सामाजिक जीवन पर लागू नही होती, जहा हर चीज आकस्मिक, स्वत.स्फूर्त एव अनिश्चित होती है। सामाजिक विकास मनुष्यो के असख्य क्रिया-कलापो पर, अवर्णनीय व्यक्तिगत क्रिया-कलापो के गड्डमड्ड मिश्रण पर, निर्भर करता है। असाधारण व्यक्ति—महान विचारक, शासक, जनरल, आदि—अपनी इच्छानुसार इतिहास का निर्माण करते हैं।

क्या यह विचार सही है? नही, यह बिलकुल गलत है।

व्यक्ति इतिहास का निर्माण अवश्य करते हैं, और ऊपरी तौर पर ऐसा प्रतीत हो सकता है कि सामाजिक विकास अचानक घटने वाली घटनाओ का एक समूह है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम सभी मनुष्यो के—असाधारण व्यक्तियो सहित—क्रिया-कलापो को सचालित करने वाले असली कारणो का पता नही लगा सकते। सामाजिक विकास के वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि गड्डमड्ड दीखने वाली घटनाओ के पीछे भी कुछ निश्चित नियम होते हैं तथा सामाजिक जीवन का भी उतनी ही सफलता से अध्ययन किया जा सकता है, जितनी सफलता से प्राकृतिक जीवन का।

तो फिर, कुछ लोग इस बात से क्यो इन्कार करते हैं कि सामाजिक जीवन के बारे मे वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है?

इसका कारण ढूढ़ना तनिक भी कठिन नही है। हमारे इस युग मे सच्चा सामाजिक विज्ञान हम सबको इस नतीजे पर पहुचाता है कि पूजीवाद का विनाश निश्चित है और कम्युनिज्म की विजय अवश्यम्भावी है। कोई ताज्जुब नही कि पूजीवादी देशों के शासक वर्ग असली सामाजिक विज्ञान को स्वीकार नही करते। वे सिर्फ उसी "विज्ञान" को मान्यता देते हैं, जो उनकी हुकूमत को

सही बताये और उनके हितो की रक्षा करे। उनका 'विज्ञान" घोषणा करता है कि पूजीवादी व्यवस्था अजर-अमर है। उस विज्ञान का यह भी दावा है कि सामाजिक विकास के ऐसे कोई नियम नही होते जो समाज की गति को, उसके सबसे नीचे से लेकर सबसे ऊपर के रूप तक को, चालित करते हैं।

इसके विपरीत, मजदूर वर्ग को इस बात मे बडी दिलचस्पी है कि सामाजिक विकास के नियमो को एक असली फलते फूलते सामाजिक विज्ञान के रूप मे, उद्घाटित करे। मार्क्सवाद-लेनिनवाद ऐसा ही विज्ञान है। कारण यह कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने ही सबसे पहले सामाजिक जीवन के अध्ययन को ठोस वैज्ञानिक आधार पर रखा।

मार्क्सवादी शिक्षा का उदय कोई अचानक घटना नही थी। इसके विपरीत, इसका उदय मजदूर वर्ग के सघर्ष की विकासमान आवश्यकताओ से हुआ तथा इसमे सभी देशो के मजदूर वर्ग आन्दोलन के बहुमूल्य अनुभव का समावेश इस तरह किया गया कि भूसी से आटे को अलग कर लिया गया। मानव चिन्तन के इतिहास में पहली बार वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धात ने सामाजिक विकास को निर्धारित करने वाले नियमो को उजागर किया। इन नियमो की जानकारी ने मजदूर वर्ग को उत्पीडन आर दासता के खिलाफ सघर्ष के लिए तथा आजादी एव मनुष्यो लायक जीवन प्राप्त करने के सघर्ष के लिए अजेय शक्ति प्रदान की।

मार्क्सवाद लेनिनवाद इस मान्यता के आधार पर चलता है कि प्रकृति की तरह मानव समाज भी निश्चित नियमो के अनुसार विकसित होता है। ये नियम वस्तुनिष्ठ होते हैं। इसका अर्थ यह है कि ये मनुष्यो की इच्छा और चेतना पर निर्भर नही करते। इसके अतिरिक्त, ये स्वय बडी हद तक समाज के सदस्यो की चेतना, इच्छा एव कार्य कलापो को निश्चित करते हैं।

हमे सामाजिक नियमो की समस्त देशो मे कानून अधिकारियो द्वारा पारित नियमो से तुलना करके भ्रम का शिकार नही बनना चाहिए। सामाजिक विकास के नियम बिलकुल दूसरी तरह के होते हैं। ये सामाजिक सम्बधो की सम्पूर्ण व्यवस्था द्वारा और, सर्व प्रमुख एव सर्व प्रथम, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित होते हैं। अत किसी पूजीवादी देश मे, उसमे स्थापित सवैधानिक राजतत्र के बावजूद—चाहे वह सम्राटशाही हो या प्रजातत्र—पूजीवाद के आर्थिक नियम ही सक्रिय रहते हैं। ये नियम ही उस देश विशेष मे उद्योग तथा कृषि के विकास, विभिन्न वर्गों के बीच सम्बधो एव वर्ग सघर्ष के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। वे सामाजिक विकास के समूचे दौर को सचालित करते हैं।

सामाजिक जीवन के बहुत से पहलू होते हैं। मार्क्सवाद की खोज है कि आर्थिक सम्बध सामाजिक सम्बधो की समष्टि मे विशेष भूमिका अदा करते हैं। ये सम्बध बुनियादी और प्राथमिक होते हैं क्योकि इन्ही के द्वारा अन्य सब सम्बध निर्धारित होते हैं।

भौतिक उत्पादन—
सामाजिक जीवन का आधार

सामाजिक जीवन की आर्थिक परिस्थितिया बुनियादी तौर पर भौतिक उत्पादन द्वारा निर्धारित होती हैं।

मनुष्य खाना, कपडा, मकान तथा जीविका के अन्य भौतिक साधनो के बिना जिंदा नही रह सकता। इन सब का सृजन मानव श्रम द्वारा होता है।

मनुष्य के जीवन-यापन के भौतिक साधनो को पैदा करने की दिशा में की जाने वाली श्रम कार्रवाइयो को उत्पादन कहा जाता है। प्रकृति मे पायी जाने वाली वस्तुओ पर मनुष्य अपनी श्रमशक्ति लगाते हैं और उन वस्तुओ को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार ढालते है। उदाहरण के लिए, मकान बनाने के लिए लोग पहले लकड़ी काटते हैं, ईंट, सीमेंट, लोहा, कन्करीट और दूसरे इमारती सामानो को बनाते हैं। इसी प्रकार पोशाक तैयार करने के लिए वे कपास की खेती करते हैं, रुई का धागा बनाते हैं, उसे बुनते है और फिर सीते हैं।

भौतिक उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो मे लगे श्रम के साथ-साथ, सामाजिक उपयोगिता की गतिविधि के दूसरे क्षेत्रो मे काम करने वाले लोगो का श्रम भी सामाजिक जीवन मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह शिक्षको, डॉक्टरो, वैज्ञानिको, कलाकारो, प्रशासन तथा नियम-कानून व्यवस्था के कामो मे लगे लोगो का श्रम होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्रान्ति ने वैज्ञानिको एव शोध सस्थानो के क्रिया-कलापो को बहुत ही महत्वपूर्ण बना दिया है। यह बात केवल डिजाइन आफिसो, वनस्पति प्रयोगशालाओ तथा प्रयोगात्मक विज्ञानो मे लगे विशेष सस्थानो पर ही लागू नही होती, बल्कि उन शोध केन्द्रो पर भी लागू होती है जो मूलभूत वैज्ञानिक समस्याओ पर अनुसधान कार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक गणित के बिना मानव निर्मित भू-उपग्रहो तथा अन्तरिक्ष-यानों का आरम्भ ही नही हो सकता था, न स्वचालित मशीन-यत्रो या स्वचालित नियत्रण व्यवस्था आदि की ही कल्पना की जा सकती थी।

उत्पादन करने के लिए आवश्यक है कि: (१) मानव श्रम, (२) वे वस्तुए जिन पर श्रम किया जाना है, और (३) श्रम के उपकरण उपलब्ध हो।

श्रम

उत्पीडन और शोषण के एक के बाद एक युग ने लोगो को श्रम को एक लानत, "आदम को दी हुई लानत", के रूप मे देखने को मजबूर किया है।

लेकिन इसके विपरीत, श्रम दरअसल मनुष्य के जीवित रहने की मुख्य शर्त है। आम तौर से प्रकृति मनुष्य के जीवन-यापन के साधन—खाना, कपड़ा, मकान, आदि—तैयार रूप मे मुहैया नही करती। मनुष्यों को प्रकृति मे पायी जाने वाली वस्तुओं को बदलने और उन्हे अपनी जीविका के भौतिक साधनों का रूप देने के लिए अपना श्रम लगाना पडता है।

प्रकृति में पायी जाने वाली वस्तुओं को इन्सानी जरूरतों के अनुरूप ढालने की दिशा मे मनुष्य जो कार्रवाई करते हैं, उसे ही श्रम कहा जाता है।

मनुष्य अपने श्रम द्वारा ही प्रकृति की जीवनदायिनी तथा कभी समाप्त न होने वाली सम्पदा पर अपना अधिकार कायम करता है। असख्य पीढ़ियों के श्रम की बदौलत मनुष्य ने प्रकृति की शक्तियों पर काबू प्राप्त किया है और उन्हें अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करने में सफल हुआ है।

मनुष्य श्रम के द्वारा ही अपनी क्षमताओ को विकसित करता है। और, केवल उत्पादक कार्रवाई द्वारा ही मनुष्यों के ज्ञान और उनके हुनर में वृद्धि होती है तथा विज्ञान एवं सस्कृति का विकास होता है। लोक-कला और लोक-काव्य ने, तथा महान कलाकारो की कृतियो ने श्रम की उस रचनात्मक शक्ति की प्रशसा करते हुए अमर चित्र अकित किये हैं, जो मनुष्य को एक तुच्छ रेंगने वाले प्राणी से बदल कर प्रकृति का शासक बना देती है।

एगेल्स ने श्रम की शानदार विशेषता बयान करते हुए कहा था : "हर प्रकार के मानव अस्तित्व की यह प्राथमिक बुनियादी शर्त है। यह शर्त इस हद तक सही है कि एक माने मे हम कह सकते हैं कि श्रम ने ही मनुष्य को जन्म दिया है।"[1]

१९२५ मे, अमरीका के नगर डेटन मे, स्कोप्स नामक एक नौजवान शिक्षक पर मुकदमा इसलिए चलाया गया कि उसने अपने छात्रों को यह बताया था कि मनुष्य वनमानुषों का ही एक बदला हुआ रूप है। अभियोग-पत्र में कहा गया था : "यदि मनुष्य वनमानुषो का बदला हुआ रूप है तो इस चित्र में ईश्वर को कैसे फिट किया जा सकेगा ?" स्कोप्स पर धर्म के खिलाफ अपराध का इल्जाम लगाया गया था।

तो भी, उस नौजवान शिक्षक ने उस वास्तविकता को सिर्फ दोहराया था, जिसे विज्ञान ने अकाट्य रूप से सिद्ध कर दिया है। मनुष्य को पशु जगत से निकल कर वर्तमान अवस्था तक पहुंचने की प्रक्रिया मे लाखों वर्षों का समय

१. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड २, मास्को संस्करण १९६२, पृष्ठ ८०.

लगा है। इस लम्बी प्रक्रिया मे श्रम ने निर्णायक भूमिका अदा की। श्रम ने ही धीरे-धीरे हमारे आदि पूर्वजो के शरीर के हिस्सो, विशेष रूप से हाथो, को पूर्णता प्रदान की है। यह श्रम का ही करिश्मा था कि स्पष्ट बोलचाल का उदय हुआ और मानव मस्तिष्क का विकास हुआ।

मार्क्सवाद ने ही, अर्थात् मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी विश्व दृष्टिकोण ने ही, सामाजिक जीवन मे श्रम के असली महत्व तथा भौतिक उत्पादन के सही स्थान को सबसे पहले उद्घाटित किया। इस खोज ने मानवीय चिन्तन के विकास मे एक नये अध्याय का श्रीगणेश किया। इसने वैज्ञानिक समाजवाद की नीव डाली। श्रम एक दिन ससार का राजा बनेगा, यह अकाट्य निष्कर्ष इस प्रस्थापना से निकलता है कि श्रम ही मनुष्य की महानता का निर्माता है।

हम अक्सर चीटियो, मधुमक्खियो, मकडो और ऊदबिलाओ के "काम" के बारे मे पढते हैं। कभी-कभी चीटियो और ऊदबिलावो के "काम" की तुलना आदमी के काम से की जाती है। किन्तु पशुओ की अन्त.स्फूर्त कार्रवाइयो तथा मनुष्यो द्वारा किये जाने वाले श्रम मे कोई समानता नही है।

मानव श्रम के दो विशिष्ट लक्षण होते हैं। पहला लक्षण यह है कि मानव श्रम एक ऐसी कार्रवाई है जो किसी पूर्व-निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाती है। दूसरा लक्षण यह है कि यह लाजमी तौर पर श्रम के उपकरणों के उत्पादन से जुडी होती है।

एक पशु तो केवल प्रकृति से अपना सामजस्य बैठाने और उससे प्राप्त वस्तुओ का इस्तेमाल करने तक ही समर्थ हो पाता है। मनुष्य श्रम के उपकरणो को इस्तेमाल करके प्रकृति को अपने उद्देश्यो की पूर्ति का साधन बनाता है। श्रम की बदौलत ही मनुष्य प्रकृति पर शासन करने लगता है। "मनुष्य और दूसरे पशुओ के बीच यही अन्तिम तथा अति-आवश्यक विभेद है," एगेल्स ने लिखा है, "और यह विभेद श्रम ने पैदा किया है।"[1]

मनुष्य काम करते समय अपने शरीर के कुछ अगो—हाथों, पैरो, टागो, मस्तिष्क—को हरकत मे लाते हैं। श्रम की प्रक्रिया मे मनुष्य अपनी मासपेशियो की शक्ति, स्नायुओ की शक्ति तथा मानसिक शक्ति को खर्च करते हैं। दूसरे शब्दो मे इसे यू भी कहा जा सकता है कि वे अपनी श्रमशक्ति को खर्च करते हैं। मनुष्य के काम करने की क्षमता का नाम ही श्रमशक्ति है। श्रमशक्ति जब अमल मे उतरती है, तो सजीव मानव श्रम बन जाती है।

१. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड २, मास्को सस्करण १९६२, पृष्ठ ८६.

इतिहास के क्रम मे मनुष्य की श्रम करने की क्षमता विकसित होती तथा उसकी दक्षता मे लगातार सुधार होता है।

श्रम की वस्तुएं और श्रम के उपकरण

जिन चीजो पर मनुष्य काम करते हैं, अर्थात हर वह चीज जिस पर मनुष्य अपने श्रम का इस्तेमाल करता है, श्रम की वस्तुए कही जाती हैं। ये वस्तुए प्रकृति मे पायी जाने वाली चीजें हो सकती हैं और ऐसी चीजें भी हो सकती हैं जिन पर पहले से ही कुछ श्रम लगाया जा चुका हो। इस दूसरी श्रेणी की श्रम की वस्तुओ को कच्चा माल कहा जाता है। अतएव, हर प्रकार का कच्चा माल श्रम की वस्तु होता है परन्तु श्रम की सभी वस्तुए कच्चा माल नही होती।

श्रम की सार्वभौम वस्तु अपने सभी तत्वो समेत धरती (भूमि और जल) है। एक पुराने अर्थशास्त्री ने कहा था : श्रम सभी प्रकार की सम्पदा का पिता है, भूमि—उसकी माता है। प्रकृति श्रम की सभी वस्तुओ को उपलब्ध करती है तथा मनुष्यों को उनको केवल अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप ढालना होता है। उदाहरण के लिए, समुद्र से पकडी गयी मछलिया तथा धरती के नीचे की परतो से निकाली गयी कच्ची धातुए इसी श्रेणी मे आती हैं।

कच्ची धातु का प्राप्त होना खनिको के श्रम का परिणाम होता है। लेकिन लोहे तथा इस्पात के कारखाने मे यही कच्ची धातु श्रम की वस्तु या कच्चा माल होती है। कारखानो द्वारा तैयार इस्पात श्रम की एक वस्तु होती है, परन्तु मशीन निर्माता के लिए वही एक कच्चे माल का रूप ले लेती है। श्रम की एक ही वस्तु विधायन की कई-कई मजिलो से गुजर सकती है।

श्रम के उपकरण वे चीजें हैं जिनको मनुष्य श्रम की वस्तुओ पर इस्तेमाल करता है। ये वे चीजें हैं जिनको मनुष्य श्रम के दौरान अपने तथा जिस वस्तु पर वह काम कर रहा है, उसके बीच रखता है। श्रम के उपकरण मनुष्य के कार्यकलाप को श्रम की वस्तुओ पर स्थानातरित करते हैं ताकि इन वस्तुओ को परिवर्तित किया जा सके।

श्रम के उपकरण भौतिक उत्पादन के विकास मे विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये उत्पादन के ऐसे साधन होते हैं जो एक माने मे मनुष्य के प्राकृतिक अगो—हाथो, पैरो, मस्तिष्क—का विस्तारित रूप होते हैं। श्रम के उपकरणो का उत्पादन मानवीय श्रम का एक विशिष्ट लक्षण है। इसी सदर्भ मे किसी लेखक ने कहा था कि मनुष्य एक ऐसा पशु है जो उपकरणो को पदा करता है। इतिहास के क्रम मे श्रम के उपकरणो मे बडा विकास हुआ है। आदिमकालीन मनुष्य के पत्थर और लकडी के उपकरणो का स्थान आधुनिक पेचीदा मशीनो और यंत्रीकरण, बिजली से चलने वाले स्वचालित गणक-यन्त्रों

तथा उत्पादन, विज्ञान और प्रबन्ध मे प्रयोग होने वाली नियत्रण-व्यवस्था (कट्रोल सिस्टम) ने ले लिया है।

श्रम के उपकरणो के अलावा श्रम के साधनो मे वे सब चीजें भी शामिल हैं जो श्रम की वस्तुओ को सचित रखने के काम मे आती हैं, जैसे पीप, नल या हर प्रकार के जलाशय, आदि। अन्तत., व्यापक अर्थ मे, श्रम की पूरी प्रक्रिया मे आवश्यक समस्त भौतिक वस्तुओ को श्रम का साधन कहा जाता है। इनमे सर्वप्रथम—अपनी तमाम सम्पदा समेत—भूमि है, साथ ही उत्पादन से सम्बधित इमारतें, नहरें, सडकें, आदि भी इसमे शामिल हैं।

उत्पादन के साधन

श्रम की वस्तुए और श्रम के उपकरण मिल कर उत्पादन के साधन बनते हैं। कोई एक ही वस्तु श्रम की एक प्रक्रिया मे तो उत्पादित वस्तु का स्थान ग्रहण करती है तथा दूसरी प्रक्रिया मे श्रम का उपकरण बन जाती है। कोई वस्तु श्रम की पैदावार है या कच्चा माल है या श्रम का उपकरण है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि श्रम की प्रक्रिया मे उसकी भूमिका क्या है।

उदाहरण के लिए, करघा इजीनियरिंग कारखाने मे काम करने वाले मजदूरों के श्रम की पैदावार है, लेकिन कपडा मिल के मजदूरो के लिए यह श्रम का उपकरण है। पशुधन पशु पालने व उनकी नस्ल का विकास करने वालो के श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु है, परन्तु डिब्बे मे गोश्त भरने के कारखाने के लिए श्रम की वस्तु या कच्चा माल है, तथा किसान के लिए जुताई के काम में आने वाला श्रम का उपकरण है।

जैसे जैसे समाज का विकास होता है, मानव श्रम द्वारा निर्मित उत्पादन के साधनों का महत्व बढता जाता है। उत्पादन के इन साधनो मे पिछले दिनो का श्रम सन्निहित होता है। वे वस्तुओ के रूप मे श्रम की एक अवस्था होते हैं। राजनीतिक अर्थशास्त्र में इस प्रकार के श्रम को सन्निहित श्रम कहा जाता है।

परन्तु उत्पादन के कोई भी साधन उस समय तक निर्जीव पदार्थों का ढेर मात्र बने रहते हैं जब तक कि उन पर मनुष्य अपना श्रम नही लगाते। इसलिए किसी भी उत्पादन प्रक्रिया के लिए एक आवश्यक शर्त यह होती है कि उत्पादन के साधनो का श्रमशक्ति के साथ समागम कराया जाय, अर्थात सन्निहित श्रम और सजीव श्रम के बीच सम्बध स्थापित किया जाय।

उत्पादक शक्तियां और उत्पादन के सम्बंध

उत्पादन के साधनो और श्रमशक्ति की परस्पर-क्रिया (इन्टरएक्शन) से ही समाज मे उत्पादक शक्तियो का उदय होता है। स्वाभाविक है कि समाज की सबसे निर्णायक उत्पादक शक्ति स्वय मनुष्य होता है, उसकी सजीव श्रमशक्ति होती है। यही प्रगति की चालक-शक्ति का काम करती है, क्योंकि यह उत्पादन के साधनों में जीवन डालती है।

समाज के विकास के साथ ही उत्पादक शक्तियो में भी वृद्धि और विकास होता है। श्रम के उपकरण अधिकाधिक निर्दोष बनते जाते हैं। ज्यो-ज्यो विज्ञान और टेक्नालॉजी मे प्रगति होती है, वैसे ही [illegible] उत्पादन मे नये-नये पदार्थों का इस्तेमाल होने लगता है। इसके साथ ही, मनुष्यो की दक्षता मे सुधार होता है और उनका उत्पादन-अनुभव व्यापक होता जाता है। उत्पादन-शक्तियो के विकास का स्तर, प्रकृति पर मनुष्य के अधिकार को मापने का यत्र है। जैसे-जैसे समय बीतता है, मनुष्य प्रकृति की नयी नयी शक्तियो पर काबू पाता जाता है। आदिमकाल मे, आग की खोज प्रकृति पर मनुष्य की सबसे बडी विजय थी। हमारे युग मे मनुष्य अणु के अन्दर तक पहुच गया है और अन्तरिक्ष पर अधिकार प्राप्त कर रहा है।

मनुष्य कभी अकेला नही रहा है। मनुष्यो ने हमेशा से ही समूहो का, समाजो का, निर्माण किया है। बोली और समझी जाने वाली भाषा का उदय सामाजिक जीवन और सामाजिक कार्यकलाप के बिना नही हो सकता था। प्राचीन युग के महान दार्शनिक अरस्तू का कहना था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। फलत उत्पादन का स्वरूप सामाजिक है। मनुष्यो के उत्पादन सम्बधी कार्यकलाप उन्हे दूसरे अनगिनत मनुष्यो से जोडते हैं। समाज के ऐतिहासिक विकास की सभी मजिलो मे उत्पादन का स्वरूप हमेशा ही सामाजिक रहता है : उत्पादन हमेशा मनुष्यो के कमोबेश बडे समाजो द्वारा, समूहो द्वारा, सयुक्त रूप से किया जाता है।

मार्क्स ने लिखा है : "उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य केवल प्रकृति पर ही नही, बल्कि एक-दूसरे पर भी कार्य करते हैं। वे एक ढग से एक दूसरे से सहयोग करके तथा अपनी पारस्परिक कार्रवाइयो का विनिमय करके ही उत्पादन करते हैं। उत्पादन करने के लिए वे एक-दूसरे से निश्चित सम्बध या रिश्ते कायम करते हैं तथा इन सम्बधो व रिश्तो के दायरे के अन्दर ही प्रकृति पर उनका कार्य, उत्पादन का कार्य, होता है।"[१]

उत्पादन की प्रक्रिया मे मनुष्यो के बीच जो आपसी सम्बध पैदा होते हैं उनको उत्पादन के सम्बध या उत्पादन सम्बध कहा जाता है।

उत्पादन की सामाजिक व्यवस्था

अलग-अलग समयो और अलग-अलग देशो में उत्पादन में बहुत भिन्नता होती है। यह कथन केवल इसी माने मे सही नही है कि आज से १०० वर्ष पहले अन्तरिक्ष-यानो, इलेक्ट्रॉनिक मशीनो, मानव-निर्मित रासायनिक धागो, स्वचालित यन्त्रो, टेलीविजनो,

१. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड १, मास्को सस्करण १९६२, ८९.

हवाई जहाजो, मोटर कारो, बिजलीघरो तथा बहुत-सी अन्य आधुनिक चीजो के बारे मे सोचा भी नही जा सकता था जिनके बिना आज के जीवन की कल्पना तक नही की जा सकती। यह इस माने मे भी सही है कि आज सोवियत सघ, अमरीका एव पश्चिमी तथा मध्य योरपीय अत्यन्त विकसित औद्योगिक देशो के साथ ही भारत, इन्डोनेशिया और अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमरीका के आर्थिक रूप से पिछडे कुछ अन्य देश भी मौजूद हैं।

उत्पादन का सामाजिक पहलू भी सभी स्थानो पर एक जैसा नही है। उत्पादन की प्रक्रिया मे मनुष्यो के सामाजिक सम्बध अभिन्न रूप से उत्पादन के साधनो से उनके सम्बधो से जुडे होते हैं। सजीव श्रमशक्ति से उत्पादन के साधनो का सम्बध, सामाजिक विकास की अलग-अलग मजिलो मे अलग-अलग ढग से आगे बढता है। पूजीवादी समाज मे मजदूर वर्ग को उत्पादन के साधनो से वचित रखा जाता है, उन पर पूजीपति वर्ग का अधिकार होता है। इसके विपरीत, समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधन तमाम मेहनतकशो की समान सम्पत्ति होते हैं। उत्पादन की सामाजिक व्यवस्था का चरित्र निश्चित करने मे सबसे निर्णायक बात यह होती है कि उत्पादन के साधनो पर किसका अधिकार है और कौन उन्हे नियन्त्रित करता है।

सजीव श्रम को उत्पादन के साधनो के साथ जिस तौर पर समायोजित किया जाता है, उससे समाज की वर्गीय बनावट निर्धारित होती है। वर्ग मनुष्यो के वे बडे-बडे समूह होते हैं, जो सामाजिक उत्पादन मे अपनी स्थिति के मामले मे तथा उत्पादन के साधनो के साथ अपने सम्बध के मामले मे एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इस तरह, पूजीवादी समाज मे, जहा उत्पादन के साधन पूजीपति वर्ग के अधिकार मे होते हैं, मजदूर वर्ग के श्रम की लूट की जाती है। समाजवादी समाज मे, जहा उत्पादन के साधनो पर पूरे समाज का अधिकार होता है, दूसरो के श्रम की लूट नही की जाती और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नही होता।

हर समाज मे उत्पादन के सम्बध एक निश्चित व्यवस्था को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिए, पूजीवाद के अन्तर्गत पूजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के बीच जो आपसी सम्बध होते हैं, वे ही उस आधार का निर्माण करते हैं जिस पर अन्य सभी उत्पादन के सम्बध—भूस्वामी तथा किसान के बीच, पूजीपति वर्ग के विभिन्न समूहो के बीच, बडे पैमाने एव छोटे पैमाने के उत्पादन के बीच सम्बध, आदि—कायम होते हैं। उत्पादन के सम्बधो के समुच्चय से समाज की आर्थिक व्यवस्था (या आर्थिक ढाचे) का निर्माण होता है।

उत्पादन की पद्धति उत्पादन का, समय और स्थान से परे अस्तित्व नही होता। जब हम उत्पादन की बात करते हैं, तो हमेशा सामाजिक विकास की किसी निश्चित मजिल का जिक्र करते हैं। हर मजिल में निश्चित उत्पादक शक्तिया तथा उत्पादन के निश्चित सम्बध पाये जाते है। इस तरह, मिसाल के लिए, मध्य युग मे योरप के देशो मे सामन्ती सम्बधो का आधिपत्य था और उत्पादक शक्तियो का विकास बहुत कम हुआ था। उत्पादन के सम्बधो को जब उत्पादन की शक्तियो के साथ उनके सम्पर्क और एकता की दृष्टि से देखा जाता है, तो उसे उत्पादन की पद्धति कहते हैं।

इतिहास से हमे पाच मुख्य उत्पादन पद्धतियो की जानकारी मिलती है। उनको सामाजिक-आर्थिक विकास की पाच मुख्य मजिलें भी कहा जा सकता है। ये हैं: आदिमकालीन समाज, दासप्रथा, सामन्तवाद, पूजीवाद और समाजवाद, जो कि कम्युनिज्म का पहला चरण है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण प्राचीन रोम मे जब उत्पीडित तथा शोषित जनता अपने शोषको के खिलाफ उठ खडी हुई थी, तो शासक वर्ग के एक पक्षधर ने एक दन्तकथा गढी। समाज, उसने कहा, मानव शरीर के समान है। शरीर के सभी अगो पर नियत्रण रखने के लिए मस्तिष्क होता है, काम करने के लिए हाथ होते है और खाना पचाने के लिए पेट होता है। इस तरह, उसने कहा, समाज मे एक ओर कुछ ऐसे लोग होने चाहिए जो हर प्रकार का काम करें तथा दूसरी ओर कुछ ऐसे होने चाहिए जिनके आधीन सभी लोग रहें और जो दूसरो के श्रम के फलो का उपभोग करें।

बहरहाल, मानव समाज का इतिहास दरअसल यह बताता है कि लम्बे युगो तक समाज की बनावट ऐसी थी जिसमें न तो वर्गों के बीच बटवारा था, न किसी प्रकार का वर्गीय शोषण या उत्पीडन ही पाया जाता था। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अर्थ यह है कि कुछ लोग दूसरो की कमाई पर जिन्दा रहे: शोषक वर्ग, प्रत्यक्ष उत्पादको द्वारा उत्पादित मालो का एक भाग छीन-झपट लेता है। श्रम द्वारा उत्पादित माल का यह वह भाग होता है, जो मजदूरो को जीवित रखने के लिए आवश्यक कम से कम जरूरतो से फाजिल —तथाकथित अधिशेष उत्पादन—होता है जो शोषको की बिना कमायी आमदनी होता है।

दासप्रथा, सामन्तवाद तथा पूजीवाद मेहनतकश जनता की आर्थिक गुलामी की एक के बाद एक तीन मजिलें रही हैं। इन तीनो ही मजिलो मे उत्पादन की पद्धति मे समानता यह रही है कि उत्पादन और जीवन यापन के साधन, किसी न किसी रूप मे, शासक वर्ग की सम्पत्ति रहे हैं, जो मेहनतकश जनता को अपने फायदे के लिए काम करने को मजबूर करते रहे। इन उत्पादन

पद्धतियो में भिन्नता रही है—उत्पादन के साधनो के मालिको तथा हर प्रकार की सम्पदा की रचना करने वाले आम मेहनतकशो के बीच सम्बंधों के मामले मे। इन तीनो व्यवस्थाओ मे से हर एक मे शोषक वर्ग एव शोषित वर्ग के बीच के सम्बध ही उत्पादन के मुख्य सम्बध रहे हैं। दासप्रथा के युग मे यह सम्बध मालिको और गुलामो के बीच का सम्बध था, सामन्ती व्यवस्था मे यह सामन्ती भूस्वामियो और भूमि से बधे अर्धदासो के बीच का सम्बध था, पूजीवाद के अन्तर्गत यह पूजीपतियो और मजदूरी पर काम करने वाले मजदूरो के बीच का सम्बध है।

परन्तु शोषण की व्यवस्था अनश्वर नही है। इतिहास के पूरे क्रम से यही सिद्ध होता है कि पूजीवाद शोषण पर आधारित अन्तिम समाज व्यवस्था है। समाजवादी क्रान्ति उसे अवश्यम्भावी रूप से नेस्तनाबूद करके दम लेगी। यह क्रान्ति पूजीपति वर्ग की सत्ता को उलट देती है और मजदूर वर्ग की सत्ता की स्थापना करती है, जो तमाम श्रमिक जनो को साथ लेकर एक नये, समाजवादी समाज की रचना करता है।

समाजवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे शोषण का हमेशा के लिए खात्मा कर दिया गया है। समाजवादी समाज मे परस्पर विरोधी हितो की पूर्ति के लिए सघर्ष करने वाले शोषक तथा शोषित वर्गों का अस्तित्व नही होता। समाजवादी समाज मे मजदूरो और किसानो के मैत्रीपूर्ण वर्ग होते हैं जिनके जीवन्त हित समान होते हैं और जिनके साथ अवाम के, समाजवादी, बुद्धिजीवी अभिन्न रूप से जुडे होते हैं। समाजवादी समाज मे उत्पादन का मुख्य सम्बध शोषण से मुक्त मेहनतकशो के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता का सम्बध होता है।

इतिहास के क्रम मे मनुष्यो ने प्रकृति पर अपना काबू बहुत ज्यादा बढा लिया है। परन्तु जिन देशो मे मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की व्यवस्था अब भी कायम है, वहा मेहनतकश जनता वर्तमान सामाजिक सम्बधो से बहुत उत्पीडित है। ये सम्बध पूजीवादी देशो की विशाल जनसख्या को, प्रकृति पर मनुष्य द्वारा प्राप्त विजय के फायदो का उपभोग करने से, वचित रखते हैं। सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे स्थिति इससे बहुत भिन्न है। इन देशो मे प्रगति के सारे फल आम जनता की सम्पत्ति बन चुके हैं तथा प्रकृति पर मनुष्य की प्रत्येक विजय का मेहनतकश जनता को लाभ होता है।

आर्थिक नियम

राजनीतिक अर्थशास्त्र का काम है सामाजिक विकास के आर्थिक नियमो को उद्घाटित करना।

प्राकृतिक या सामाजिक जीवन के किसी क्षेत्र का अध्ययन करने वाले प्रत्येक विज्ञान का उद्देश्य होता है उक्त क्षेत्र में सक्रिय नियमों का पता लगा कर उनको

जाहिर करना। वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या करने पर "नियम" शब्द से तात्पर्य प्राकृतिक घटनाओ के आन्तरिक सम्बध, उनके सार, का होता है। हम चाहें या न चाहें, प्राकृतिक घटनाओ मे यह आन्तरिक सम्बध मौजूदा रहता है। दूसरे शब्दो मे, प्राकृतिक और सामाजिक नियमो का स्वरूप वस्तुनिष्ठ होता है, वे मनुष्यो की इच्छा और चेतना पर निर्भर नही करते। परन्तु, मनुष्य इन नियमों का पता लगा सकते हैं और इन्हें अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।

प्रकृति के नियमों का ज्ञान मनुष्य को प्रकृति की अधशक्तियो को काबू मे लाने और उन्हें अपने हित मे इस्तेमाल करने का एक शक्तिशाली अस्त्र प्रदान करता है। आसमान से विजली गिरने के रूप मे विद्युतशक्ति एक अलग हैसियत रखती है। परन्तु, उसे जब मनुष्य रोशनी पैदा करने आदि के लिए इस्तेमाल करता है, तो उसकी हैसियत बदल जाती है। सामाजिक जीवन मे क्रियाशील नियमो का ज्ञान मनुष्यो को उनके व्यावहारिक कार्य के लिए आधार मुहैया करता है।

पूजीवाद के आर्थिक नियमो को उद्घाटित करके राजनीतिक अर्थशास्त्र उक्त समाज के अस्तित्व की परिस्थितियों और उसके विकास की रुझानो को प्रकट करता है। इस प्रकार राजनीतिक अर्थशास्त्र पूजीवादी समाज मे वर्ग सघर्ष के सही आधार को उद्घाटित करता है, उस समाज मे वर्गीय अन्त-विरोधो के अवश्यम्भावी रूप से तेज होने को सिद्ध करता है तथा मजदूर वर्ग को समाजवाद की ओर आगे बढने का रास्ता दिखाता है।

पूजीवादी देशो के मजदूर वर्ग को राजनीतिक अर्थशास्त्र सिखाता है कि पूजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने और समाजवाद की स्थापना के लिए होने वाले निर्मम वर्ग सघर्ष से ही शोपित जनता को मुक्ति प्राप्त होती है। इसके साथ ही, राजनीतिक अर्थशास्त्र सर्वहारा वर्ग और उसके आर्थिक व राजनीतिक सगठनो को, जो तात्कालिक मागो को पूरा कराने के लिए एव मेहनतकश जनता के साधारण अधिकारो व उसके जीवन स्तर पर इजारेदार पूजीपति वर्ग द्वारा किये जाने वाले प्रहारो के खिलाफ सघर्ष कर रहे होते हैं, वर्ग सघर्ष का अर्थ, उसका महत्व और उसके तौर-तरीके समझाता है।

पूजीवादी समाज के आर्थिक विकास को सचालित करने वाले नियम वैज्ञा-निक तौर पर सिद्ध करते हैं कि पूजीवाद का विनाश तथा कम्युनिज्म की विजय ऐतिहासिक रूप से अवश्यम्भावी हैं।

एक मार्क्सवादी जब यह दावा करता है कि पूजीवाद के स्थान पर समाज-वाद की स्थापना ऐतिहासिक रूप से अवश्यम्भावी है तथा समाजवादी व्यवस्था पूजीवादी व्यवस्था से अकाट्य रूप से श्रेष्ठ है, तो यह वह अधविश्वास

या मनोगत भावनाओ के आधार पर नही करता, बल्कि सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमो के ठीक-ठीक वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर करता है। यही वह चीज है जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद को—मानव समाज के जीवन और विकास के एकमात्र सच्चे विज्ञान को—पूजीवादी विज्ञान की तुलना मे कही अधिक श्रेष्ठता प्रदान करती है, क्योकि पूजीवादी विज्ञान सामाजिक प्रक्रियाओ की गहराई मे पैठने, उनकी प्रकृति को जाहिर करने तथा सामाजिक विकास की प्रवृत्तियो को निर्धारित करने मे असमर्थ होता है।

समाजवाद के आर्थिक नियमो के स्वरूप और विषय-वस्तु का पता लगा कर राजनीतिक अर्थशास्त्र साबित करता है कि पूंजीवाद के साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे समाजवाद की विजय ऐतिहासिक रूप से अवश्यम्भावी है। समाजवाद पूजीवाद के दुर्गुणो से मुक्त है। समाजवादी समाज मे मुट्ठी भर शोषको को अधिकाधिक धनी बनाने के लिए उत्पादन नही किया जाता, बल्कि सामाजिक आवश्यकताओ को पूरा करने और आम जनता की खुशहाली के लिए उत्पादन किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था एक निश्चित योजना के अनुसार विकसित होती है; सकट, गलाकाटू प्रतियोगिता, बेरोजगारी जैसी पूजीवादी लानतो के लिए उसमे कोई स्थान नही। समाजवाद की सभी श्रेष्ठताओ का पूर्ण रूप से इस्तेमाल करने के लिए अर्थव्यवस्था का सचालन निपुणता एव विवेकपूर्ण ढग से किया जाना चाहिए तथा कम से कम लागत पर अधिक से अधिक हासिल किया जाना चाहिए। इसका ज्ञान भी हमे राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा दूसरे आर्थिक विज्ञानो से प्राप्त होता है।

समाजवाद की रचना मजबूत वैज्ञानिक बुनियाद पर की जाती है। यह सभी व्यावहारिक क्षेत्रो मे विज्ञान के उपयोग के लिए विशाल सम्भावनाए प्रस्तुत करता है। समाजवाद का राजनीतिक अर्थशास्त्र समाजवादी उत्पादन पद्धति के आर्थिक नियमो को उद्घाटित करता है। समाज इन नियमो को जान लेता है और आर्थिक विकास सम्बधी व्यावहारिक कार्य-कलाप मे इन नियमो से मार्ग-दर्शन हासिल करता है।

समाजवादी समाज अपनी अर्थव्यवस्था को सचेतन रूप से, योजनाबद्ध तरीके से, समस्त जनता के हितो को ध्यान मे रख कर, विकसित करता है। उसका उद्देश्य होता है कम्युनिज्म की ओर प्रगति को आगे बढाना। कम्युनिस्ट समाज समूची सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के सतुलित सगठन की सर्वोच्च अवस्था का मूर्तरूप है। कम्युनिज्म मे ही जनता की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भौतिक सम्पदा तथा श्रम ससाधनो का सर्वाधिक कारगर तथा विवेक-सगत इस्तेमाल सुनिश्चित होता है।

आर्थिक विज्ञान, समाजवादी समाज के ससाधनो के सर्वोत्तम इस्तेमाल के

तौर-तरीकों का विस्तार करता है। वह एक ऐसे कुतुबनुमा का काम करता है जो अलग-अलग औद्योगिक सस्थानो, जिलो, तथा समूचे देश मे उत्पादन कार्य-कलाप का कारगर और किफायती रास्ता दिखाता है। यह विज्ञान हमे सिखाता है कि कैसे खर्चों और प्राप्तियों का ताल-मेल बैठाया जाय तथा किस तरह कम खर्च पर अधिक उत्पादन किया जाय।

आर्थिक विज्ञान लाखो-करोडो लोगो के अनुभवो से सामान्य नतीजे निकालता है, उन्नत उपलब्धियो का लाभ उठाने की शिक्षा देता है, हर सस्थान, हर जिले और समूचे देश मे मौजूद मगर अदृश्य रिजर्व भण्डारो का ज्ञान कराता है। इसी करण, आर्थिक विज्ञान समाजवादी समाज के लिए अत्यधिक मूल्यवान बन गया है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र—एक ऐतिहासिक विज्ञान

मार्क्स और एगेल्स ने समाजिक विज्ञान के क्षेत्र मे जो क्रान्ति सम्पन्न की है, उसकी तुलना उचित ही जीवविज्ञान के क्षेत्र मे डार्विन की उपलब्धियों से की जाती है।

डार्विन की खोजो से पहले जीवधारी दुनिया को अपरिवर्तनशील और जड रूप मे देखा जाता था। डार्विन ने सिद्ध किया कि जीवधारी प्रकृति मे लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। जीवधारी दुनिया हमेशा और लगातार गतिशील रहती है।

सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र मे बिलकुल इसी प्रकार की क्रान्ति मार्क्सवाद ने की है। मार्क्सवाद ने समाज के अचल होने या स्थिर अवस्था मे कायम रहने के पुराने विचार को समाप्त कर दिया है। मार्क्सवाद ने दिखाया कि समाज विकसित होता है और यह विकास कुछ निश्चित नियमो के अनुसार होता है। इन नियमों के अनुसार, समाज के कुछ रूपों का स्थान कुछ दूसरे रूप लेते रहते हैं। मानव इतिहास, भौतिक उत्पादन के विकास पर, उत्पादन पद्धतियो मे परिवर्तनो पर, आधारित है।

उत्पादक शक्तियो का विकास और इससे उत्पन्न आर्थिक समाज व्यवस्था इतिहास के पूरे क्रम को निर्धारित करती है। सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था ही वह आधार होती है जिस पर राजसत्ता के अगो, न्यायिक विचारो, विज्ञान एव कलाओ का विकास होता है। राजनीतिक अर्थशास्त्र सामाजिक विकास की विभिन्न मजिलो मे भौतिक सम्पदा के उत्पादन एव वितरण के नियमो को उद्घाटित करके हमे ऐतिहासिक विकास की सम्पूर्ण पेचीदा प्रक्रिया को समझने की कुंजी प्रदान करता है।

उत्पादक शक्तियो मे वृद्धि से मनुष्य का प्रकृति पर अधिकार बढ जाता है तथा उसी के साथ उत्पादन के सम्बध, उत्पादन की सामाजिक व्यवस्था, भी

बदल जाते हैं। प्राचीन काल मे एक प्रकार के उत्पादन सम्बध पाये जाते थे, परन्तु मध्य युग मे ये सम्बध बदल कर दूसरे हो गये। उत्पादक शक्तियो का विकास पुराने उत्पादन सम्बधो को चलन से हटा देता है और उनके स्थान पर नये उत्पादन सम्बध कायम हो जाते हैं।

क्या इसका अर्थ यह है कि उत्पादक शक्तियो के विकसित हो जाने से ही वर्तमान उत्पादन सम्बधो का स्थान दूसरे उत्पादन सम्बध ले लेंगे? नही, इसका यह अर्थ कदापि नही है। उत्पादक शक्तियो के विकास से तो इस प्रकार के परिवर्तन और स्थानान्तरण की परिस्थितिया पैदा होती हैं, परन्तु पुरानी सामाजिक व्यवस्था स्वेच्छा से अपना स्थान छोडने से इन्कार करती है।

इतिहास के समूचे दौर मे सामाजिक विकास निम्नलिखित रूप मे हुआ है। उत्पादन शक्तियो के विकास की एक निश्चित अवस्था से उत्पन्न उत्पादन सम्बध एक अवधि तक उत्पादक शक्तियो के आगे विकास मे सहायता करते रहते हैं। लेकिन एक खास मजिल पर वे उत्पादक शक्तियो के आगे विकास मे बाधक बनने लगते हैं। उस समय यह ऐतिहासिक आवश्यकता पैदा हो जाती है कि उत्पादन के पुराने सम्बधो को हटा कर उनके स्थान पर उत्पादन के नये सम्बध स्थापित किये जायें। परस्पर विरोधी वर्गों मे बटे समाज मे यह परिवर्तन क्रान्ति के द्वारा होता है। अपनी सत्ता और सम्पदा को कायम रखने पर तुला शासक वर्ग क्रान्ति का विरोध करता है। क्रान्ति करने वाले उत्पीडित वर्ग के लोग होते हैं। यह क्रान्ति सामाजिक जीवन के पुराने रूपो को ध्वस्त करके उत्पादक शक्तियो के और अधिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

इतिहास मे बहुत सी क्रान्तिया हुई हैं। परन्तु, पिछले जमाने की सभी क्रान्तियो ने शोषण के एक रूप के स्थान पर शोषण के दूसरे रूप को स्थापित किया था। एक ही अपवाद है समाजवादी क्रान्ति—जो हर प्रकार के शोषण का अन्त कर देती है। इसी कारण, समाजवादी समाज मे परस्पर विरोधी वर्ग नही होते। उत्पादन के समाजवादी सम्बधो ने उत्पादक शक्तियो के विकास के लिए अभूतपूर्व सम्भावनाओ के द्वारा खोल दिये हैं। जैसे-जैसे उत्पादक शक्तियो मे वृद्धि होती है, वैसे ही वैसे उत्पादन के समाजवादी सम्बधो मे सुधार होता जाता है और वे धीरे-धीरे कम्युनिस्ट उत्पादन के सम्बधो का रूप धारण करने लगते हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र समाज के अस्तित्व तथा प्रगति के सबसे महत्वपूर्ण पहलू—उसके आर्थिक जीवन—का अध्ययन करता है। समाजिक उत्पादन को सचालित करने वाले नियमों को उद्घाटित करके वह सामाजिक उत्पादन की सम्पूर्ण पेचीदा प्रक्रिया को समझने की कुजी प्रदान करता है। मार्क्सवादी सिद्धान्त के बुनियादी लक्षणो को स्पष्ट करते हुए लेनिन ने बताया था कि

उसकी आर्थिक शिक्षा से उस सिद्धान्त की अत्यन्त गहन, सर्वांगीण एवं सविस्तार पुष्टि होती है। लेनिन ने इस शिक्षा को, मार्क्सवाद की इस प्रधान अन्तर्वस्तु को, वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त का नाम दिया था।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रति वर्गीय तथा पार्टी दृष्टिकोण

राजनीतिक अर्थशास्त्र वर्ग संघर्ष की ज्वलंत समस्याओं के बारे में विचार करता है। यह पूंजीवादी समाज के मुख्य वर्गों के जीवन्त हितों का अध्ययन करता है। इससे भी बड़ी बात यह कि इस समाज के अस्तित्व तक के बारे में यह सवाल पेश करता है और उनका जवाब देता है।

इसी कारण, राजनीतिक अर्थशास्त्र वर्ग संघर्ष में तटस्थ नहीं रह सकता। इसके विपरीत, यह एक वर्गीय विज्ञान, एक पार्टी विज्ञान, है। तटस्थ या पार्टी हितों से ऊपर राजनीतिक अर्थशास्त्र की सारी चर्चा उन अर्थशास्त्रियों का एक छलावा मात्र है जो मरणासन्न वर्गों के हितों की रक्षा करते हुए अपने चेहरे को बेनकाब नहीं करना चाहते।

शोषक वर्ग सभी उपलब्ध साधनों का इस्तेमाल करके अपने भौतिक हितों और अपने शासन की हिफ़ाजत करते हैं। पूंजीपति वर्ग के चाकरों का राजनीतिक अर्थशास्त्र में दोहरा लक्ष्य रहता है: एक ओर, पूंजीवाद को सजाना और संवारना तथा दूसरी ओर, समाजवाद को काला चित्रित करके उसे बदनाम करना क्योंकि समाजवाद पूंजीवाद की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील व्यवस्था है।

पूंजीवादी विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में पूंजीपति वर्ग ने सड़े-गले सामंती अवशेषों के खिलाफ संघर्ष किया था। उस समय, सामाजिक संघर्ष के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग का उदय नहीं हुआ था और पूंजीपति वर्ग अब भी उन्नति की ओर अग्रसर वर्ग था। उसके वैज्ञानिकों ने सामाजिक विज्ञान को आगे बढ़ाया था। लेकिन, उस समय भी उनकी वर्गीय सीमाओं ने सामाजिक विकास के सच्चे नियमों को खोज निकालने से उन्हें रोक दिया था। वे पूंजीवादी व्यवस्था को समाज की शाश्वत तथा प्राकृतिक अवस्था मान बैठे।

पूंजीपति वर्ग के हाथों में जब सत्ता आ गयी और ऐतिहासिक मंच पर मजदूर वर्ग का उदय हुआ, तो पूंजीवादी वैज्ञानिक पूंजीपतियों के चाकर मात्र बन कर रह गये। पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने एक गैर-वैज्ञानिक रुख अपना लिया और पूंजीवादी व्यवस्था का ढिंढोरची बन गया।

एकमात्र सचमुच वैज्ञानिक राजनीतिक अर्थशास्त्र मजदूर वर्ग का राजनीतिक अर्थशास्त्र है जिसकी रचना मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन जैसे उसके महान शिक्षकों ने की है और जिसे संसार की सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियां समृद्ध कर रही हैं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र दिखाता है कि पूजीवाद के नियम और सम्बध शाश्वत तथा अपरिवर्तनीय नही हैं और वे सभी समाजो पर लागू नही होते । उनका उदय सामाजिक विकास की एक निश्चित अवस्था मे होता है । समाज के और आगे विकास के साथ ही, उनका गायब होना और उनके स्थान पर नये तथा बेहतर आर्थिक सम्बधो का उदय होना अवश्यम्भावी है ।

सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमो का पता लगाने के बाद, मार्क्स-वाद-लेनिनवाद ने दिखाया है कि पूजीवाद मे निहित अन्तर्विरोधो का क्रान्तिकारी विस्फोट के विन्दु तक पहुचना आवश्यक है तथा समाज का कम्युनिज्म मे सक्रमण एक सुनिश्चित बात है । विश्व पूजीवाद तथा मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी सघर्ष के विकास ने पूजीवाद तथा उसकी चरम अवस्था—साम्राज्यवाद—के प्रति मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण को सही प्रमाणित कर दिया है ।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र सच्चाई से नही डरता; सर्वहारा सर्वाधिक प्रगतिशील सामाजिक वर्ग है और वह भविष्य की ओर पूरे विश्वास के साथ देखता है । सर्वहारा वर्ग के वर्ग-हित प्रगतिशील विकास के हितो से मेल खाते हैं । मजदूर वर्ग का राजनीतिक अर्थशास्त्र पतनोन्मुख पूजीवादी व्यवस्था की प्रशस्ति गाने वाले तथा समाजवाद को बदनाम करने वाले पूजीवादी मिथ्या-विज्ञान के खिलाफ समझौताहीन सघर्ष चलाता है ।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी अर्थशास्त्र मजदूर वर्ग एव समस्त प्रगतिशील सामाजिक शक्तियो को वैज्ञानिक पूर्वज्ञान का बहुमुल्य उपहार प्रदान करता है, जो कि सफल व्यावहारिक कार्यकलाप के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह ऐतिहासिक विकास की आम धारा के साथ, अमली कर्तव्यो से निकट सम्पर्क मे, विकसित होता है । समाजवादी देशो मे समाजवादी व कम्युनिस्ट निर्माण कार्यों के अमल से, पूजीवादी देशो मे मजदूर वर्ग के महत्वपूर्ण हितो तथा समाजवाद के लिए क्रान्तिकारी सघर्ष के अमल से, मार्क्सवादी-लेनिनवादी अर्थशास्त्र निरतर समृद्ध होता रहता है ।

दोहराने के प्रश्न

१. सामाजिक जीवन मे भौतिक उत्पादन और श्रम की भूमिका क्या है ?
२. 'उत्पादन शक्तियो' तथा 'उत्पादन के सम्बधो' का अर्थ क्या है ?
३. आप आर्थिक नियमो की प्रकृति के बारे मे क्या जानते हैं ?
४. राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ हैं ?

अध्याय २

पूंजीवाद-पूर्व की उत्पादन-पद्धतियां

१. आदिम समाज

मानव समाज का उदय

आदिम युग बहुत लम्बा रहा है। वह लाखो वर्षों तक कायम रहा और केवल छः या सात हजार वर्ष पहले ही समाप्त हुआ। आदिम युग के लोगों की अपनी कोई लिपिबद्ध भाषा नही थी। फलतः, उन्होंने अपना कोई लिखित इतिहास नही छोडा। उनके जीवन और उनके सामाजिक सम्बधो के बारे में वैज्ञानिक जानकारी मुख्यतः पुरातात्विक तथा जाति-विज्ञान सम्बधी अनुसन्धानों से ही प्राप्त होती है।

समूचे सूर्यमंडल के समान, हमारा गृह भी अरबों वर्षों से कायम है। करोडों साल गुजरने के बाद ही इस पर जीवन के लक्षण दिखायी दिये थे। लेकिन इसके बाद भी, पशु ससार से निकल कर वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने मे मनुष्य को बहुत ज्यादा समय लगा।

मनुष्य के अति प्राचीन पूर्वज गिरोहों मे रहते थे; आदिम कालीन मनुष्य भी गिरोहो मे रहते थे। समूहो मे ही वे भोजन के लिए भूमि की तलाश करते, सयुक्त रूप से वे औजारो का निर्माण करते और संयुक्त रूप से ही उनका इस्तेमाल भी करते थे। पशुओ के गिरोह और मानव समाज को, उसके उदय के समय से ही, अलग चरित्र देने वाली चीज थी—श्रम, श्रम के औजारों का उत्पादन। वनमानुषो का गिरोह सभी उपलब्ध फलो को खा जाता था और फिर भूख की चपेट उसे किसी दूसरे स्थान पर भगा ले जाती थी। उनका सहज ज्ञान उन्हें प्रकृति के साथ निष्क्रिय ढग से तालमेल बैठाने को मजबूर करता था; इससे ज्यादा वे कुछ नही कर पाते थे। इसके विपरीत, मानव समाज अपने श्रम का प्रकृति पर प्रयोग करता रहा है।

समाज और प्रकृति के बीच कोई बहुत बडी गहरी खाई नही है, जैसा कि शोषक वर्गों की ओर से दावा किया जाता है। इन वर्गों का काम किसी "सृष्टा" के बिना चल ही नही पाता। मानव समाज का उदय एक बहुत बडी क्रान्तिकारी छलाग थी। प्रकृति मे इस प्रकार की अनेकानेक छलागें भरी

पड़ी हैं हालांकि क्रान्ति के विरोधियों द्वारा इस तथ्य से गैर-वैज्ञानिक आधार पर इन्कार किया जाता है ।

जीविका के साधनों को उपलब्ध करने के तरीके

आदिम कालीन मनुष्य प्रकृति के सामने कमजोर और असहाय था । हर कदम पर उसे खतरे का सामना करना पडता था । भूमि पर भीमकाय जन्तु आबाद थे । लोग गिरोहो मे रहते थे जो सभवत कुछ दर्जन व्यक्तियो से अधिक के नही होते थे, मनुष्यों की बडी सख्या सबको जीवित रखने के लिए पर्याप्त भोजन जुटाने मे समर्थ नही हो सकती थी । व कन्द-मूल और फलो पर गुजारा करते थे ।

मनुष्य द्वारा सर्वप्रथम प्रयोग मे लाये जाने वाले उपकरण थे पत्थर और लकडी । एक प्रकार से वे उनके शारीरिक अगो के ही बनावटी विस्तार थे घूसे के लिए—पत्थर, बढे हुए हाथो के लिए—लकडिया । इन मामूली उपकरणो की सहायता से मनुष्यो को अधिक भोजन उपलब्ध होने लगा । साधारण शिकार करना सम्भव हो गया ।

लोग छोटे छोटे जानवरो का ही शिकार करते थे, जब भयकर जन्तुओ का आक्रमण होता तो वे भाग खडे होते थे । वे समूहो मे शिकार करते थे । शिकार किये गये जानवरो का मास वे साथ-साथ खाते थे । भोजन का अभाव बना रहता था । कोई भडार नही था ।

आदिम कालीन मनुष्य लगातार आधे पेट भूखे रहते थे । वे खोहो और मामूली झोपडियो मे रहते थे, जो मुश्किल स ही उन्हे सर्दी और खराब मौसम से बचा पाती । शिकार किये गये जानवरो की खाल से वे अपने शरीरो को ढकते थे ।

समय गुजरने के साथ उन्होने ऐसे औजारो को बनाना सीख लिया, जो साधारण लकडियो और पत्थरो से ज्यादा कारगर थे । उन्होंने पत्थर, हड्डी और सीग के डडो, भालो, चाकुओ, मछली पकडने की बसियो और बरछो का इस्तेमाल करना सीख लिया । इन हथियारो से उन्हें बडे जानवरो का शिकार करने तथा मछलिया पकडने मे मदद मिलती थी ।

आग की खोज ने आदिम कालीन मनुष्यो के जीवन मे एक नये युग का सूत्रपात किया । उन्होने पहले आग का प्रयोग करना सीखा और उसके हजारो वर्ष बाद आग पैदा करना भी सीख लिया । उन्होंने देखा कि आसमान से गिरने वाली बिजली की आग पेडो को जला देती है । जलते हुए जगलो तथा ज्वालामुखियो से निकलने वाली आग को भी उन्होंने देखा था । कही पर भी आग को पा जाने पर वे उसे बनाये रखने के लिए जी तोड प्रयास करते थे, क्योकि वह उन्हे खतरनाक जगली जानवरो से बचाती थी तथा खाना तैयार करने म बडी सहायता करती थी । बाद मे, जब मेहनत के उनके औजारो मे

पर्याप्त सुधार हो गया, तो उन्होंने देखा कि चकमक पत्थर या सूखी लकडियो के रगडने से भी आग पैदा की जा सकती है।

आग की खोज से मनुष्य ने प्रकृति की एक शक्ति पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस खोज ने ही मनुष्य को पशु ससार से हमेशा के लिए अलग कर दिया।

टेढे-मेढे और टूटे-फूटे पत्थरो को सुगढ औजारो के रूप मे बदलने मे काफी से ज्यादा समय लगा। पत्थर, लकडी, हड्डी और सीग बहुत लम्बे अरसे तक मनुष्य के मुख्य औजार रहे। बहुत वर्षों बाद लोगो ने धातुओं के औजार बनाना सीखा—सबसे पहले प्रकृति से प्राप्त होने वाली धातुओ, जैसे ताबे, फिर कासे और सबसे बाद मे लोहे के औजार। लिखित इतिहास से पहले का सारा काल-खण्ड तीन युगो मे विभाजित है। इन्हे पत्थर युग, कास्य युग तथा लौह युग के नाम से पुकारा जाता है। इन मे से हर युग सैकडो वर्षों तक चला है। पत्थर युग तो दसियो हजार वर्ष तक कायम रहा।

साधारण सहयोग, सामूहिक-श्रम और सामूहिक सम्पत्ति

आदिम समाज मे उत्पादन सम्बधो का बुनियादी स्वरूप साधारण सहयोग था: मनुष्य मिलजुल कर काम करते थे और समान रूप से श्रम करते थे। साथ-साथ रह कर ही वे शिकार के दौरान ऐसे कामो को कर लेते थे, जो किसी अकेले आदमी के सामर्थ्य की चीज नही थे।

निजी सम्पत्ति नही थी। आदिम काल के मानव समूह के पास जो कुछ भी था—समान सम्पत्ति था। उस समय तक उत्पादक शक्तियो का जितना विकास हुआ था, उसका तकाजा था कि समान रूप से श्रम किया जाय तथा सम्पत्ति पर भी सब का समान अधिकार हो। खाना सब के बीच बराबर-बराबर बाटा जाता था। मनुष्य की सब से आवश्यक जरूरतो की पूर्ति तक के लिए भी उस समय का उत्पादन पर्याप्त नही था। यदि किसी मनुष्य को उसके हिस्से से अधिक दिया जाता, तो निश्चय ही किसी दूसरे को भूखा रहना पडता। उस समय मानव श्रम से कोई अधिशेष उत्पादन नही हो पाता था, अर्थात महत्वपूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति से अधिक के लिए उत्पादन नही होता था। इसलिए, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो ही नही पाती थी कि कुछ लोग दूसरे तमाम लोगो की कमाई पर जिन्दा रहे। शोषण करना असम्भव था, अर्थात दूसरे लोगो की कमाई के फलो को बाकायदा लूटा नही जा सकता था।

श्रम का विभाजन, खेती और पशुपालन का उदय

श्रम के उपकरणो के विकास से धीरे-धीरे श्रम के सगठन मे भी परिवर्तन आया। सबसे पहले प्राकृतिक श्रम विभाजन—लैंगिक और आयु सम्बधी कारणो पर आधारित विभाजन—के प्रारम्भिक रूप प्रकट हुए। हथियारो

की अपूर्णता के कारण शिकार उस जमाने मे अकेले नही हो सकता था। शिकार के सामूहिक रूप, जैसे हाका देकर या ढोल पीट कर शिकार करना, आदि बडे पैमाने पर जारी थे। परन्तु अब मनुष्यो ने बडे जानवरो का शिकार करना शुरू कर दिया था। औरतो को घरो पर—बच्चो की और घर की देखभाल करने तथा खाना तैयार करने के लिए—छोड दिया जाता था। समूह जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता, तो उस पूरे समूह का सामान औरते लेकर चलती। पुरुषो के हाथ खाली रहते थे ताकि वे रास्ते मे शिकार खेल सके।

तीर-कमान के आविष्कार से शिकार अधिक फलदायी हो गया। साथ ही, अब शिकार और मछली पकडने के कार्य अधिक पेचीदा व्यवसाय होते जा रहे थे। भोजन उपलब्ध करने के इन पेचीदा तरीको से औरतो को पूर्ण रूप से अलग रखा गया था। औरतो और मर्दों के बीच श्रम का बटवारा स्पष्ट हो गया था।

जीवन-यापन के साधनो को जुटाने के तरीको मे और अधिक सुधार खेती तथा पशुपालन के प्रारम्भिक रूपो से जुडा हुआ था।

मनुष्यो ने शायद जब यह देखा होगा कि धरती मे गिरा हुआ अनाज का दाना जड पकड लेता है और उगने लगता है, तभी से सभवत: उन्हे खेती करने का प्रोत्साहन मिला होगा। काफी लम्बे अर्से तक मनुष्य जमीन को केवल एक लकडी से जोतते रहे, फिर झुकी नोक वाली लकडी—लकडी की कुदाली ("हो")—से जोतने लगे। शायद इसी प्रकार पशुपालन की भी शुरूआत हुई। शुरू मे उन्होंने पशुओ के बच्चो को पालना शुरू किया, क्योकि माताओ का शिकार हो जाने के बाद पशुओ के ये बच्चे शिकारी लोगो के साथ उनके घरो तक चले आते थे।

कबीलों की समाज व्यवस्था

समय बीतने के साथ, आदिम युगीन गिरोहो से कबीलो का विकास हुआ। कबीला उन लोगो का समूह होता था, जो खून के रिश्तो से बधे होते थे। शुरू शुरू मे समूह केवल कुछ दर्जन व्यक्तियों का होता था। समूह से बाहर के हर व्यक्ति को अजनबी माना जाता था। कबीले मे लोगो की सख्या बढ़ने लगी और बाद मे सैकडो तक पहुच गयी। आरम्भ मे कबीलाई समुदायो मे औरतो की भूमिका प्रधान थी। पारस्परिक सम्बध मातृ-वश द्वारा निर्धारित होते थे। यह तथाकथित मातृसत्तात्मक समाज था।

कबीलाई व्यवस्था के आरम्भिक काल मे औरतो की स्थिति का प्रधान होना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। उस समय भोजन जमा करने एव शिकार करने के साथ ही प्रारम्भिक खेती और पशुपालन की शुरुआत हो चुकी थी। ये दोनों व्यवसाय अभी जीवन-यापन के बुनियादी साधन नही बने थे तथा

इनको चलाने के तरीके भी आदिम कालीन थे। इन व्यवसायो को अधिकाशतः औरतें चलाती थी, क्योकि वे ही घर पर रहती थी।

उत्पादन की शक्तियो का और विकास होने पर मातृसत्तात्मक समाज का स्थान पितृसत्तात्मक समाज ने ले लिया। अब प्रधान भूमिका पुरुषो की हो गयी। परस्पर सम्बधो की स्थापना अब पितृ-वश के अनुसार होने लगी। इस परिवर्तन मे निर्णायक भूमिका घुमक्कड पशुपालन के विकास ने अदा की। इससे प्राप्त होने वाले अधिकाधिक लाभ के फलस्वरूप आदिम कालीन खेती पीछे सरक गयी। परन्तु पशुपालन का काम, शिकार के ही समान, मर्दों का काम था। विकसित खेती भी मर्दों का काम बनती जा रही थी।

"स्वर्ण युग" की कथा

शोषण की व्यवस्था के अन्तर्गत आम जनता को जो कष्ट भोगने पडे, उसी का नतीजा था कि आदिम युग के बारे मे अनेक प्रशसा सूचक गाथाए प्रचलित हो गयी। अनेक देशो की जनता की कला मे तथाकथित "स्वर्ण युग" की गाथाओ का उल्लेख मिलता है। इन गाथाओ को एक पीढी, दूसरी पीढ़ी को सौंपती गयी। धर्म ने स्वर्गलोक की कल्पना भी कर डाली और मनुष्यो को बताया कि उनके आदि पूर्वजो के पापपूर्ण आचरण के कारण ही स्वर्ग से उन्हे निकाला गया था।

किन्तु वास्तविकता यह है कि आदिम काल मे मनुष्यो का जीवन बडी कठिनाइयों से भरा था। प्रकृति का मानव पर असीम शासन था। प्रकृति ही मनुष्य के जीवन और भाग्य पर हावी थी। यदि आदिम काल के मनुष्य के जीवन को "स्वर्ण युग" के नाम से पुकारा जाता है, तो इस बात का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि शोषण की व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य को कितनी कठिनाइयो, विपदाओ और सकटों से गुजरना पड रहा है।

आदिम साम्यवाद

मजदूर वर्ग के महान शिक्षक मार्क्स, एगेल्स और लेनिन ने आदिम युग की सामाजिक व्यवस्था को "आदिम साम्यवाद" का नाम दिया है। उन्होने पूजीपति वर्ग के दलालो के इस मनगढत झूठ को, ऐतिहासिक सबूत दे-देकर, धज्जिया उडा दी कि निजी सम्पत्ति की व्यवस्था तो अनन्त काल से चली आ रही है। इतिहास बताता है कि लाखो वर्षो तक मनुष्य ऐसे युग मे रहे हैं, जब किसी भी प्रकार की निजी सम्पत्ति का नाम-निशान तक नही था। आदिम समाज मे निजी सम्पत्ति के अनअस्तित्व के कारण, समान सम्पत्ति और सामूहिक श्रम की ही प्रधानता के कारण आदिम समाज को आदिम साम्यवाद कहना सम्भव हो सका।

इसके साथ ही, वैज्ञानिक समाजवाद के इन सस्थापकों ने आदिम साम्यवाद की ऐतिहासिक सीमाओ पर भी जोर दिया है। लेनिन ने लिखा है कि मानव

समाज के सुदूर अतीत मे कभी स्वर्ण युग जैसी कोई चीज नही रही और मनुष्य को प्रकृति के खिलाफ सघर्ष मे भयकर कठिनाइयो का बोझा ढोना पडता था।

आदिम युग मे समान श्रम, समान सम्पत्ति तथा समान बटवारे के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जा सकती थी। उत्पादक शक्तियो के विकास के साथ मनुष्य ने धीरे-धीरे अपने आप को प्रकृति के असीमित आधिपत्य से मुक्त किया। इसी के साथ, सामूहिक समाज मे परस्पर सहयोग पर आधारित उत्पादन के सम्बध धीरे धीरे बिगडने लगे। मनुष्यो को अनेक युगो तक वर्गीय समाज व्यवस्थाओ के शिकजे मे जकडे रहना पडा।

श्रम का सामाजिक बटवारा, वस्तु-विनिमय, निजी सम्पत्ति तथा वर्गों का उदय

हमने पहले देखा है कि श्रम का प्रारम्भिक विभाजन एक ही समुदाय के लोगो की प्राकृतिक भिन्नताओ—लैगिक और आयु सम्बधी भिन्नताओ—के आधार पर था। परन्तु बाद मे विभिन्न समुदायो के बीच विशेषज्ञता का उदय हुआ। इसके बाद एक ही समुदाय के भीतर कुछ अलग-अलग व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रो मे विशेषज्ञता हासिल करने लगे। श्रम के इस सामाजिक बटवारे की तुलना प्राकृतिक बटवारे स करके भ्रम पैदा करने का प्रयास नही करना चाहिए।

अच्छे चरागाहो के पास रहने वाले कबीला ने पशुपालन का का अपनाया। उन्होने अनाज उगाने और शिकार खेलने का काम तो छोड दिया लेकिन पशुपालन म काफी सफलता अर्जित की तथा गोश्त, ऊन और दूध अधिक मात्रा मे पैदा करने लगे।

पशुपालन और खेती का अलगाव पहला बडा सामाजिक श्रम विभाजन था। इससे वस्तुओ की अदला बदली (वस्तु विनियम), व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा वर्गों के उदय को बढावा मिला। इसी से पितृसत्तात्मक समाज का विघटन भी आरम्भ हो गया और वर्गीय समाज की नीव पडी।

दूसरा बडा सामाजिक श्रम विभाजन, खेती और व्यापार के बीच अलगाव था। इसस वस्तुओ के विनिमय का आधार और ज्यादा विस्तृत हो गया। दस्तकारो द्वारा निर्मित वस्तुओ को पूरे तौर पर, या लगभग पूरे तौर पर, विनिमय के लिए इस्तेमाल किया गया। इस प्रकार विनिमय के लिए उत्पादन की शुरूआत हुई।

शुरू के दिनो मे, विनिमय का काम कबीले के सरदार—बडे बुजुर्ग, मुखिया लोग—करते थे। विनिमय का विकास और विस्तार होने पर वे सार्वजनिक सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति मानने लगे। विनिमय की सबसे प्रमुख वस्तु पशु थे, इसलिए वे ही सबसे पहले निजी सम्पत्ति बने। समुदाय के सदस्यो के बीच सम्पत्ति के मामले मे असमानता का श्रीगणेश हो गया।

उत्पादक शक्तियो का विकास होने तथा उनकी वृद्धि होने पर पशुपालन मे तथा कृषि मे लगाये जाने वाले श्रम से अधिक फल प्राप्त होने लगे। विशेष श्रम एव विशेष उत्पादन, अर्थात मजदूर की जीविका के लिए जरूरी न्यूनतम आवश्यकताओ से बचे अधिक उत्पादन एव श्रम को प्राप्त करने की सम्भावना पैदा हो गयी।

पहले कैदियो को मार डाला जाता था या माफ कर दिया जाता था—इसके अलावा उनके साथ और कुछ किया भी नही जा सकता था। अब कैदियो को दास बना लिया जाने लगा। लोगो के अमीर और गरीब मे विभाजन के साथ अब मालिक और दास मे विभाजन भी सामने आ गया। दास-श्रम ने लोगो के बीच असमानता की खाई बहुत चौडी कर दी। इसके बाद अमीरो और रईसो ने केवल कैदियो को ही नही, बल्कि खुद अपने समुदाय के गरीब और ऋणी लोगो को भी दास बनाना शुरू कर दिया।

इस तरह, निजी सम्पत्ति के विकास से लाजमी तौर पर वर्गों का उदय हुआ। आदम समाज व्यवस्था का स्थान वर्गीय समाज व्यवस्था ने ले लिया। इसके बाद से मानव समाज का समूचा इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है।

२. दास युगीन व्यवस्था

दासप्रथा शोषण का सबसे पहला तथा अत्यन्त स्पष्ट रूप है। शोषक समाजो के बाद के दो स्वरूप—सामन्तवाद और पूजीवाद—मार्क्स के शब्दो मे, दासप्रथा का ही हलका रूप हैं।

पितृसत्तात्मक दासता से दास युगीन उत्पादन पद्धति

शुरू-शुरू मे दासता का स्वरूप पितृसत्तात्मक था। दासो की सख्या कम होती थी और उनके मालिक भी उनके साथ काम करते थे। उस समय दास बुनियादी तौर पर घर के कामकाज मे सहायक या घरेलू नौकरो की तरह होते थे।

मालिक को अपने दासो पर असीमित अधिकार होता था। परन्तु दासो को काम मे लगाये रखने के क्षेत्र सीमित थे। दासो को बडे-बडे पितृसत्तात्मक परिवारो के सदस्यो की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति के काम मे लगाया जाता था।

और अधिक विकास होने पर मूलगामी परिवर्तन आया। लोहा गलाने के अनुसन्धान से उत्पादन मे क्रान्ति आ गयी। लोहे की कुल्हाडी और लोहे की कुदाली की सहायता से जमीन के बडे-बडे खण्डो पर खेती करना सम्भव हो गया। छोटे-छोटे किसान इन बडे भूखण्डो पर खेती का प्रबन्ध नही कर सकते थे, मगर दासो के मालिक दासो के श्रम के बल पर ऐसा कर सकते थे।

पशुपालन के विकास मे भी लगभग इसी प्रकार का मोड आया। अमीर परिवारो के पशुओ की सख्या मे तेजी से वृद्धि होने लगी और उनकी देखभाल के लिए अधिक लोगो की आवश्यकता पडने लगी। यह समस्या भी दासो के श्रम से हल की गयी।

श्रम का सामाजिक विभाजन बढने और विनिमय का विकास होने से विभिन्न कुलो और कबीलो के लोग नजदीक आने लगे और सघो की स्थापना होने लगी। इससे कबीलों की सस्थाए बदल गयी। सरदार और युद्ध नायक अब राजा और जागीरदार बन गये। पहले उनको अधिकार कबीले या कबीलो के सघ द्वारा चुने जाने के कारण प्राप्त थे। अब वे अपनी सत्ता का इस्तेमाल रईसो के हितो की रक्षा करने और अपने ही समुदाय के तबाहहाल लोगो तथा दासो का दमन करने के लिए करने लगे। फौजी टुकडिया, अदालतें, दण्ड-व्यवस्थाए भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करने लगी। इस प्रकार राजसत्ता का उदय हुआ, जो शापित जनता को कुचलने के लिए शासक वर्ग के हाथो मे अस्त्र थी।

दासों का शोषण दासप्रथा के पूर्ण विकास के युग मे दासो का श्रम सामाजिक अस्तित्व का आधार था। दासो की सख्या अत्यधिक बढ गयी थी। उनका शोषण भयकर रूप से बढ गया था। शोषण के तरीके भी अनेकानेक हो गये थे।

बडे-बडे सस्थान कायम हुए जिनमे सैंकडो, तथा कभी कभी तो हजारो, दासो से काम लिया जाने लगा। बहुत से दासो से घरेलू नौकरो का काम भी लिया जाता था। दासो को अपने मालिको के इशारे पर नाचना पडता था।

दासो की टुकडियो को सुबह तडके से लेकर देर रात तक, कोडो की मार के नीचे, काम करना पडता था। वे मिट्टी की झोपडियो मे रहते थे ये झोपडिया इन्सानो के रहने का स्थान नही, बल्कि जानवरो के बाडो जैसे लगती थी। दासो को आधे पेट ही भोजन मिलता था। यह भोजन भी ऐसा होता था जो इन्सान तो क्या, जानवरो के खाने लायक भी न होता। दासो को अक्सर लोहे की जजीरो से बाध कर काम पर ले जाया जाता था ताकि वे भाग न जायें। उनको लोहे से दाग दिया जाता था ताकि अगर वे भागें, तो आसानी से पकड लिये जायें। बहुतो के गले मे लोहे का पट्टा डाल दिया जाता था जिस पर उनके मालिक का नाम खुदा रहता था। यह पट्टा उनके गले से कभी नही उतरता था।

दासो का श्रम खुले रूप मे जबरिया इस्तेमाल किया जाने वाला श्रम था। केवल उत्पादन के साधन ही नही, मजदूर भी शोषक वर्ग की निजी सम्पत्ति थे। दासो को पशुओ की तरह खरीदा और बेचा जाता था। दासो का मालिक

चाहे तो दासो की हत्या भी कर सकता था। दासो के साथ पशुओ से भी बदतर सलूक किया जाता था। उनकी कीमत कभी-कभी पशुओ से भी सस्ती होती थी। रोम मे बीमार या बूढे दासो को, जिन्हे कोई भी खरीदना नही चाहता था, किसी दूर के द्वीप मे ले जाया जाता था और वहा उन्हे उनके भाग्य पर छोड दिया जाता था।

दासो के श्रम से उत्पन्न हर वस्तु पर दास मालिक का अधिकार होता था। वह दासों को उत्पादन के लिए आवश्यक सामान और औजार मुहैया करता था और अपनी इच्छानुसार उनके बीच काम तथा जीविका के साधनो का बटवारा करता था।

विनिमय के विकास के साथ ही आवश्यकताए भी बढने लगी। दास-मालिको ने दासो के शोषण को बढा दिया। वे अपने दासो के अधिशेष श्रम को ही नहीं, बल्कि आवश्यक श्रम के बडे भाग को भी हडप जाते। दासो से वे अधिक श्रम कराने तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ का बडा भाग खुद हडप लेने का प्रयास करने लगे।

शिल्पकला-विज्ञान मे ठहराव

दासप्रथा के युग मे उत्पादन की प्रविधिया बाबा आदम के जमाने की थी तथा उनमे कोई सुधार नही हुआ था। शताब्दियो तक श्रम के उपकरण दस्तकारो द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले साधारण औजारो से आगे न बढे।

दस्तकार दास प्रायः बडे हुनरमन्द होते थे, मगर उनके पास श्रम के उपकरण आदिम कालीन ही थे। उन दिनो बोझ ढोने के दो ही साधन थे—मनुष्य और पशु। दस्तकारी के मोटे-मोटे औजारो के अलावा, यत्रीकरण के साज-सामान के नाम पर केवल शारीरिक शक्ति को बढाने वाले उत्तोलनदण्ड, गरारी या दातेदार पहिये, आदि ही थे।

अनाज आम तौर से हाथो से पीसा जाता था। पानी से चलने वाली पहली चक्की रोम मे ईसा से पूर्व पहली शताब्दी मे आयी थी। लेकिन तब भी वह बहुत ज्यादा प्रचलित नही हुई थी • पहले की ही तरह अनाज पीसने वाले पत्थरो को घुमाने के लिए दासो या पशुओ को इस्तेमाल किया जाता रहा। पुराने जमाने मे लोग यद्यपि भाप की करामात को समझते थे, पर वे उसका इस्तेमाल करना नही जानते थे। उस समय के एक लेखक ने भाप के इजन के सिद्धान्त का बयान किया है, परन्तु यह बयान एक आश्चर्य के रूप मे, एक "अद्‌भुत अचरज" पैदा करने वाली चीज के रूप मे, है।

दास-श्रम एकदम अन उत्पादनकारी था। दास को अपने श्रम के फलो के बारे मे कोई दिलचस्पी नही होती थी। उसे मालूम था कि वह चाहे जितनी मेहनत करे, परन्तु उसकी स्थिति मे न तो कोई परिवर्तन आने वाला था और

न उसका उत्पीडन ही घटने वाला था। दास-मालिको को श्रम की उत्पादकता बढाने मे कोई दिलचस्पी नही थी : उनके पास मुफ्त काम करने वालो की बहुत बडी पल्टन मौजूद थी।

जड वस्तु से अधिक नही समझा जाने वाला और पशुओ जैसे व्यवहार का शिकार दास—अपने विरोध या गुस्से का प्रदर्शन करता था श्रम के औजारों को तोडफोड कर। यही कारण है कि अत्यधिक साधारण और अन-उत्पादनकारी उपकरणो का इस्तेमाल किया जाता था। दास-श्रम को बडे ही अन-उत्पादनकारी कामो मे इस्तेमाल किया जाता था। शासक वर्ग ऐश व आराम मे मस्त रहते थे। बर्बादी और फजूल-खर्ची का बोलबाला था।

विनिमय का विकास और मुद्रा का उदय

दासप्रथा के अन्तर्गत चीजो का उत्पादन बुनियादी तौर पर विनिमय के लिए नही किया जाता था, बल्कि दास मालिको, उनके दलालो और परिवार वालो के सीधे अपने उपभोग के लिए किया जाता था। परन्तु, धीरे-धीरे विनिमय ने एक बडी भूमिका अदा करनी शुरू कर दी।

राजनीतिक अर्थशास्त्र मे जिन चीजो का उत्पादन प्रत्यक्ष उपभोग के लिए न होकर विनिमय या विक्रय के लिए होता है, उन्हे माल कहा जाता है। विनिमय या बिक्री के लिए किये जाने वाला उत्पादन माल-उत्पादन कहलाता है। जिस अर्थव्यवस्था मे उत्पादन विनिमय के लिए न होकर केवल उपभोग के लिए होता है, उसे प्राकृतिक अर्थव्यवस्था कहते हैं। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओ का इस्तेमाल उसी परिवार मे होता है, जिसमे वे पैदा की जाती हैं।

शुरू शुरू मे विनिमय बिलकुल आकस्मिक चीज थी। आम तौर पर इसका रूप एक चीज से दूसरी चीज को बदलने (वस्तु विनिमय) का था। उदाहरण के लिए, पशुपालक समुदाय एक भेड के बदले दो बोरे अनाज पा जाता था। परन्तु, धीरे-धीरे यह विनिमय बढता गया और इसने नियमित रूप धारण कर लिया।

ऐसे ही समय मे एक ऐसी विशेष वस्तु की आवश्यकता महसूस हुई, जो सभी वस्तुओ के विनिमय के माध्यम का काम कर सके। स्वत स्फूर्त ढग स तमाम वस्तुओ मे से एक वस्तु को दूसरो की अपेक्षा वरीयता प्राप्त हो गयी। उसे खुशी खुशी दूसरी तमाम वस्तुओ के बदले मे स्वीकार किया जाने लगा। वह तमाम दूसरी चीजो का मूल्य मापने का पैमाना बन गयी। मुद्रा ही यह सार्वभौम वस्तु है। मुद्रा के उदय से व्यापारिक कडियो तथा माल-उत्पादन के क्षेत्र का बहुत विकास हुआ।

व्यापार और महाजनी

दस्तकारी के विकास और विनिमय मे वृद्धि से नगरो की स्थापना शुरू हुई। पहले नगर बहुत छोटे छोटे होते थे तथा गावो से बहुत कम भिन्न थे। लेकिन धीरे-धीरे उत्पादन का कार्य और व्यापार, नगरो मे केंद्रित होने लगे। नगरो मे रहने वाले लोगो का रहन-सहन व कार्यकलाप देहाती क्षेत्रो के लोगो के रहन-सहन व कार्यकलाप से अधिकाधिक भिन्न होने लगा।

इस प्रकार, नगरो और ग्रामीण अचलो का अलगाव शुरू हुआ।

विनिमय का जब बहुत ज्यादा विकास और विस्तार नही हुआ था, तब उत्पादक लोग—किसान, पशुपालक, दस्तकार—अपने माल का विनिमय खुद करते थे। परन्तु धीरे-धीरे विनिमय किये जाने वाले माल की मात्रा बहुत बढ गयी। इसी के साथ विनिमय के क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओ का भी विस्तार हुआ। व्यापारियो का उदय हुआ, जो उत्पादको से माल खरीद लेते थे, उसे हाटो और मडियो मे ले जाते थे जो कभी-कभी उत्पादन के स्थान से बहुत दूर होती थी, और वहा उपभोक्ताओ के हाथ बेच देते थे।

इस प्रकार व्यापारिक पूजी की शुरूआत हुई।

उत्पादन तथा विनिमय म वृद्धि से सम्पत्ति के मामले मे असमानता बहुत ज्यादा बढ गयी। अमीरो के पास अब न सिर्फ बडी सख्या मे दास थे, बल्कि मुद्रा की बडी रकमो पर भी उनका अधिकार था। गरीबो को मजबूर होकर अधिकाधिक सख्या म उनके पास कर्ज लेने दौडना पडता था। महाजनी से चन्द लोग तो बहुत ज्यादा अमीर हो गये, परन्तु बहुत बडी सख्या मे लोगो को गुलामी और तबाही का सामना करना पडा।

इस प्रकार महाजनी पूजी का उदय हुआ।

व्यापारिक तथा महाजनी पूजी की हरकतो ने प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की बुनियादो को हिला दिया। विनिमय के विस्तार से दास मालिको की हवस और भी बढ गयी। लेकिन दास युगीन समाज ने एक मजदूर (उत्पादक) को भी पदार्थ बना दिया। ऐसी परिस्थितियो मे व्यापारिक और महाजनी पूजी उत्पादन पर काबू नही पा सकी और मजदूरी पर आधारित श्रम की ओर नही बढ सकी। वे मार्क्स के स्पष्ट शब्दो मे, दासप्रथा पर आधारित उत्पादन पद्धति से चिपकी रही और उसका खून चूस चूस कर उसे सफेद करती गयीं।

दासप्रथा के अन्तर्विरोध

प्रधानता प्राप्त कर लेने के बाद भी दासप्रथा टेक्नालॉजी के समुचित विकास की गारन्टी नही कर सकी। इसके साथ ही, इस प्रथा ने समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति—मानव श्रमशक्ति—को बडी निर्दयता से नष्ट किया।

दासो से काम लेने वाले बडे-बडे सस्थानो मे आदिम समाज की अपेक्षा सयुक्त श्रम की मात्रा कही अधिक पायी जाती थी। साधारण सहयोग अभूतपूर्व पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता था, तथापि दासप्रथा के अन्तर्गत उत्पादन पद्धति, सामूहिक श्रम की सोयी हुई शक्तियो को नही जगा सकी। इसका कारण यह था कि इसने सामूहिको (कलेक्टिव्स) की रचना नही की, बल्कि मजदूर को एक साधारण उपकरण या वस्तु मे परिवर्तित कर दिया।

दास युगीन व्यवस्था ने श्रम के प्रति गहरी घृणा को ही पनपाया। पहले जब मालिको और दासो के बीच पितृसत्तात्मक सम्बध थे, तो खेतो और घरो मे वे दोनो साथ-साथ काम करते थे। लेकिन जब दास युगीन उत्पादन पद्धति ने अपना आधिपत्य जमाना शुरू किया, तो परिस्थिति बुनियादी तौर पर बदल गयी। दासो के मालिक उत्पादन-नियन्त्रण के काम से अधिकाधिक हटने लगे। इस काम को वे दासो के बीच से ही भर्ती किये गये प्रवधको के सिपुर्द करने लगे। शारीरिक श्रम करना दासो का काम माना जाने लगा और उसे स्वतत्र मनुष्यो की शान तथा प्रतिष्ठा के खिलाफ समझा गया। उत्पादक श्रम के प्रति घृणा की भावना सामाजिक विकास की राह मे बहुत बडी रुकावट बन कर खडी हो गयी।

दास युगीन उत्पादन पद्धति के विकास से छोटे उत्पादक बर्बाद होने लगे। उनके घर और गृहस्थी चौपट हो चले क्योकि दासप्रथा पर आधारित बडे पैमाने के उत्पादन का मुकाबला करने मे वे असमर्थ थे। पहली शताब्दी के आरम्भ मे पूरा इटली गिनी-चुनी सख्या वाली बडी-बडी जागीरो (लैटीफुन्डियो) मे विभाजित था। भेडपालन के व्यवसाय ने खेतीबारी को लगभग समाप्त कर दिया था। खेत चरागाहो मे बदल गये थे। स्वतत्र किसानो का श्रम, दास-श्रम मे परिवर्तित हो गया था।

तबाह और बर्बाद छोटे छोटे उत्पादक उत्पादन की प्रक्रिया से धकेल बाहर किये गये थे और उनके वापस लौटने की कोई उम्मीद नही थी। वे रोटी और मनोरजन की माग करने वाले काहिल लोगो का झुड बन कर रह गये। दास युगीन राजसत्ता उनको दास-श्रम से उत्पादित अतिरिक्त उत्पादन मे से कुछ दे देती थी।

प्राचीन रोम मे इन लोगो को सर्वहारा कहा जाता था। रोम के वे सर्वहारा वर्तमान सर्वहारा वर्ग के बिलकुल विपरीत थे: रोम के वे सर्वहारा—समाज की कमाई पर जीवन बिताते थे, पूजीवाद के अन्तर्गत—सर्वहारा वर्ग की कमाई पर समाज जीवन बिताता है।

किसानो की बर्बादी से दास युगीन रोम की सैनिक शक्ति क्षीण हो चली। रोम की फौजो मे भर्ती, दासो से या स्वतत्र हुए दासो से होती थी। पराजयो

ने विजयो का स्थान ले लिया तथा गुलामो की कभी खतम न होने वाली प्राप्ति का सोना ही सूख गया।

दास युगीन व्यवस्था का पतन

आदिम युग की तुलना मे, दास युगीन व्यवस्था मानव समाज के इतिहास मे एक आगे बढा हुआ कदम थी। परन्तु, बाद मे यही व्यवस्था उत्पादन की शक्तियो के और आगे विकास मे रुकावट बन गयी। सामाजिक विकास मे रोडा बन जाने के बाद, दास युगीन उत्पादन पद्धति अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधो के बोझ से चरचरा कर बैठ गयी।

पूर्ण आधिपत्य प्राप्त कर लेने के बाद दासप्रथा जर्जर और निष्प्राण होने लगी। व्यापार अवनति की ओर बढ चला। उपजाऊ भूमि बजर बन गयी। आबादी घटने लगी। पहले के फलते फूलते व्यवसाय चौपट हो गये।

लाभप्रद न रह जाने के कारण दासप्रथा का पतन अवश्यम्भावी था। लेकिन उसका जहर मनुष्यो के दिमागो मे अर्से तक कायम रहा—स्वतत्र नागरिक उत्पादक श्रम से घृणा करते थे। एगेल्स के कथनानुसार, रोम एक अधी गली मे फस गया था: दासप्रथा का कायम रहना आर्थिक दृष्टि से असम्भव हो चुका था, परन्तु स्वतत्र लोगो में श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। पहली सामाजिक व्यवस्था अब सामाजिक उत्पादन का बुनियादी स्वरूप नही बनी रह सकती थी, किन्तु दूसरी व्यवस्था अभी उसका स्थान नही ले सकती थी। एक मूलगामी क्रान्ति द्वारा ही इस पेचीदा और कठिन परिस्थिति से निकला जा सकता था।

दास युगीन व्यवस्था के दौरान उत्पादन का जैसे-जैसे ह्रास हुआ, वैसे ही वैसे उत्पीडको के खिलाफ दासो का सघर्ष तेज होता गया। दास-मालिक रईसो के खिलाफ दासो की बगावतें और तबाहहाल छोटे किसानो के सघर्ष एक-दूसरे से मिल कर एकाकार होने लगे।

दास अपने उत्पीडको से घृणा तो करते थे, मगर उनके सामने कोई स्पष्ट उद्देश्य नही थे। वे पितृसत्तात्मक समाज को वापस लौटाने के सपने देखते थे, यद्यपि वह व्यवस्था एक गुजरे जमाने की दास्तान बन चुकी थी। इसीलिए दासो के विद्रोह शोषण को समाप्त नही कर सके।

दास युगीन व्यवस्था का स्थान सामन्ती व्यवस्था ने ले लिया। दास युगीन व्यवस्था के मुकाबले शोषण के सामन्ती स्वरूपो से सामाजिक उत्पादक शक्तियो के विकास की ज्यादा सभावनाए पैदा हुई।

पूजीवाद के अन्तर्गत दासप्रथा

प्राचीन जगत के पराभव के साथ दास युगीन व्यवस्था भी प्रधान सामाजिक व्यवस्था नही रह गयी। परन्तु इसके बावजूद, दासप्रथा मिट नही गयी।

पूजीवाद के आरम्भ-काल मे वह फिर बडे पैमाने पर प्रकट हुई। १६वी

शताब्दी के अन्त मे अमरीका की विजय के बाद, योरप वालो ने वहा फिर से दासप्रथा चालू कर दी। दास बनाये गये इंडियन लोग कमरतोड मेहनत के बोझ के कारण जल्दी-जल्दी मरने लगे। उनके विद्रोहो को पूरी निर्दयता से कुचला गया। 'पुरमजाक" उपनिवेशवादी कहा करते थे—"मरा हुआ इन्डियन ही अच्छा इन्डियन होता है।"

इसके बाद अफ्रीकी दास अमरीका लाये गय। दासो का व्यापार होने लगा। १७ वी और १८वी शताब्दी म यह व्यापार खूब चमका। तेज व चालाक दुस्साहसवादियो ने अफ्रीका मे दासो की धर-पकड शुरू कर दी।

दास-श्रम द्वारा उत्पादित माल—विशेष रूप से रुई—की मडी का जब अमरीका मे विस्तार हुआ, तो नीग्रो दासो का शोषण अत्यत क्रूर बन गया। इगलैंड तथा योरप के अन्य देशो मे कपडा उद्योग के विकास से रुई की माग बहुत बढ गयी। दास मालिको के रुई के खेतो मे औसतन सात साल काम करने के बाद, पूर्ण रूप से स्वस्थ लोग भी मृत्यु के शिकार बन जाते थे।

१८६१-१८६५ के गृह-युद्ध मे औद्योगिक रूप से विकसित अमरीका के उत्तरी भाग ने दासप्रथा पर आधारित दक्षिणी भाग को पराजित कर दिया। कानूनी तौर पर दासप्रथा को समाप्त कर दिया गया। परन्तु, नीग्रो लोग जनता के सर्वाधिक शोषित-उत्पीडित अग बने रहे।

अमरीका मे दासप्रथा को हालाकि समाप्त कर दिया गया, परन्तु पूजीवादी ससार से वह मिटी नही। बहुत से उपनिवेशो और अर्ध-उपनिवेशो मे दासप्रथा के अवशेष कायम रहे। हमारे इस काल मे उपनिवेशवाद का जब खात्मा कर दिया जायगा, तभी दासप्रथा का हमेशा-हमेशा के लिए अन्त होगा।

३. सामन्ती व्यवस्था

सामन्तवाद का उदय एक ओर रोम की दास युगीन व्यवस्था के पतन तथा दूसरी ओर रोम की लूटपाट मचाने वाले 'वेन्डाला' की कबायली व्यवस्था के विघटन स पश्चिमी योरप म सामन्ती व्यवस्था का उदय हुआ। सामन्तवाद इन्ही दो पूर्वजो की सन्तान था।

रोमन साम्राज्य का पतन १५ वी शताब्दी के अन्त मे हुआ था। जिन कबीलो ने रोम पर विजय प्राप्त की थी, उन्होने उसके क्षेत्र का बडा भाग दबा लिया। शुरू शुरू मे जमीन सभी लोगो की सामूहिक सम्पत्ति थी। परन्तु थोडे ही समय बाद, सरदार लोग जनता की सम्पत्ति को हथियाने लगे। सम्राटशाही सत्ता का उदय हुआ।

राजा अपने चहेतो के बीच जमीन बाट देते। पहले तो यह जमीन उनको केवल उनके जीवन-काल तक के लिए ही दी गयी थी, परन्तु बाद मे वह उनके पुश्तैनी अधिकार मे आ गयी। भूमि के बडे-बडे भाग गिरजाघरो की सम्पत्ति बन गये। ये गिरजे राजशाही की रक्षा का एक मजबूत स्तम्भ बन गये। राजाओ के अग-रक्षको और नौकरो तथा गिरजाघरो और मठाधीशो को बडी-बडी जागीरें दे दी गयी।

जिनको जमीनें दी गयी थी उनके लिए लाजमी था कि वे राजा के लिए सैनिक मुहैया करें। जमीन पर अब भी छोटे छोटे उत्पादक खेती करते थे, जो अपने नये मालिको पर आश्रित थे। ये मालिक लोग अपने आश्रित किसानो पर अनेक प्रकार के लगान लगाते थे।

नये मालिको द्वारा बाटे जाने वाले जमीन के टकडो को खेत (फ्यूड) कहते थे और उनके मालिको को सामन्त कहा जाता था। इस प्रकार, इस व्यवस्था का नाम सामन्तवाद पडा।

रूस मे दासप्रथा का प्रारम्भिक दौर (पितृसत्तात्मक दासप्रथा) आये बिना ही सामन्तवाद का युग आ गया। खेती जब आम जनता का मुख्य पेशा थी, तब जमीन को "किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नही" बल्कि "ईश्वर" की सम्पत्ति माना जाने लगा था। जगलो को खत्म करके किसानो द्वारा जोती जाने वाली जमीन को किसान कम्यूनो की सम्पत्ति घोषित किया गया। परन्तु जल्दी ही, पश्चिमी योरप के राजाओ की तरह यहा भी राजकुमारो ने जमीन पर कब्जा कर लिया। उन्होने बडे-बडे भूखण्डो को अपनी निजी सम्पत्ति बनाया और कृषि योग्य जमीन के बडे भागो को जागीरदारो व मठो के बीच बाट दिया।

११वी शताब्दी से १९वी शताब्दी तक सामन्तवाद करोडो किसानो का शोषण-उत्पीडन करता रहा। मस्कोवी की स्थापना (१४वी-१५वी शताब्दी) के बाद राजकुमारो और जारो ने जमीन को अपने अनुचरो के बीच बाट दिया।

शुरू शुरू मे किसान जमीन के किसी विशेष टुकडे से बधे नही थे। वे एक जमीदार के पास से दूसरे जमीदार के पास जाने के लिए स्वतन्त्र होते थे। लेकिन १६वी शताब्दी के अन्त मे उनसे यह अधिकार छीन लिया गया और उनको जमीन के अलग-अलग टुकडो से बाध कर अर्धदास बना लिया गया।

प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का आधिपत्य

दास युगीन अर्थव्यवस्था की तरह सामन्ती अर्थव्यवस्था भी मुख्यत प्राकृतिक थी। सामन्तवाद के आरम्भिक काल मे प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का विशेष रूप से अविभाजित प्रभुत्व था।

किसान लोग प्रधानतः उपभोग के लिए उत्पादन करते थे। विनिमय मात्र आकस्मिक था।सामन्ती प्रभु भी आम तौर पर व्यापार नहीं करता था।

लिए, उसके परिवार वालो तथा अनुचरो के लिए आवश्यक लगभग सभी चीजें अर्धदास या कमिय पैदा करते थे। जागीरो मे हर प्रकार के दस्तकार—लोहार, चक्की पीसने वाले, रोटी बनाने वाले, बढई, घोडे का साज बनाने वाले, आदि—आवाद होते थे।

सामन्ती व्यवस्था की विशेषता यह है कि उसमे श्रम के प्रमुख रूप—कृषि—तथा पूरक भूमिका अदा करने वाले घरेलू व्यवसायो का सम्मिश्रण रहता था। यह सम्मिश्रण ही प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का आधार था।

प्रविधि की स्थिति खेती के तौर तरीके, विशेषत सामन्ती व्यवस्था के आरम्भ काल मे, बहुत पिछडे हुए थे। ९वी-१०वी शताब्दी मे पश्चिमी योरप मे जमीन को लम्बे जमाने तक परती पडी रहने देने का दस्तूर वडे पैमाने पर प्रचलित था जमीन के किसी भूखण्ड पर कुछ वर्षो तक खेती की जाती और फिर २०-२५ वर्षो तक उसे "फिर से उर्वरता की शक्ति प्राप्त करने के लिए" छोड दिया जाता था। इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषि योग्य भूमि के केवल पाचवे या चौथे भाग पर सामन्ती काल मे खेती होती थी। बाद मे कृषि की "दो खेत" व्यवस्था को चालू किया गया। ११वी शताब्दी मे तीन खेतो के बीच "अदल-बदल कर खेती' की व्यवस्था शुरू हुई। कई शताब्दियों तक खेतो की यही प्रधान व्यवस्था बनी रही।

उस समय खेती के काम मे बहुत पुराने किस्म के उपकरण—फावडे, लकडी के हल, हसिये, कुदाले—ही काम मे लाये जाते थे। बार-बार होने वाले युद्धो के कारण पशुधन की कमी रहती थी। किसानो को अक्सर खुद ही हल खीच कर जोताई करनी पडती थी।

तो भी, दास युगीन व्यवस्था की अपेक्षा सामन्ती काल मे उत्पादक शक्तियो मे काफी उन्नति हुई और वे एक नये स्तर पर पहुच गयी।

धीरे-धीरे परन्तु निश्चयात्मक रूप से अनाज उत्पादन, बिक्री के लिए फलो की बागवानी, मदिरा एव मक्खन तैयार करने के तरीको मे सुधार हो रहा था। लोहा गलाने और उसको प्रयोग मे लाने की पद्धतिया विकसित हो रही थी। लोहे के हलो, हेगो और करघो का प्रचलन बढ रहा था। व्यवसायो के विकास से तथा दस्तकारो के प्रयोग मे आने वाले औजारो मे होने वाले लगातार सुधार से सामन्ती युग की समाप्ति पर पूजीवादी उत्पादको के उदय की परिस्थितिया पैदा हो गयी।

सामन्ती शोषण भूमि पर सामन्ती अधिकार को जनता पर प्रत्यक्ष शासन की व्यवस्था से मिला दिया गया था तथा अधिकाश जनता किसी न किसी रूप मे जमीन से अवश्य बधी थी।

उन दिनो जमीन ही उत्पादन का निर्णायक साधन थी। वह सामन्ती प्रभु की सम्पत्ति होती थी। परन्तु किसी भूस्वामी की शक्ति का अन्दाजा जमीन की लम्बाई-चौडाई की अपेक्षा उस पर आश्रित लोगो की सख्या से लगाया जाता था।

सामन्ती व्यवस्था भूस्वामियो द्वारा किसानो के शोषण पर आधारित थी। वे किसानो के श्रम के अधिशेष उत्पादन को हथिया लेते थे। सामन्ती शोषण के दो मुख्य रूप थे। बेगार (श्रम लगान) तथा नकद या फसल के अश के रूप मे लगान।

बेगार के अन्तर्गत भूस्वामी प्रत्यक्ष रूप मे अपने कमियो के अधिशेष श्रम को लूटता था। लगान की व्यवस्था के अन्तर्गत वह श्रम के उत्पादन को लूटता था।

बेगार व्यवस्था के अन्तर्गत एक किसान सप्ताह के कुछ दिनो मे (उदाहरण के लिए तीन दिन) उत्पादन के अपने साधनो (हल-बैल) की सहायता से अपने खेत पर काम करता था और फिर बाकी दिनो मे (तीन दिन) उसे अपने इन साधनो से अपने भूस्वामी के खेत पर काम करना पडता था।

लगान व्यवस्था के अन्तर्गत किसानो को नियमित रूप से अनाज, पशुओ तथा अन्य कृषि उत्पादन की एक निश्चित रकम भूस्वामियो को देनी पडती थी।

इस प्रकार, लगान नक्द या जिन्स के रूप मे अदा किया जा सकता था। इस लगान को अदा करने के अतिरिक्त अर्धदासो को लगभग हमेशा ही भूस्वामियो के फार्मो पर अनेक सेवाए करनी पडती थी।

भूस्वामी जिस अधिशेष उत्पादन को हडपते थे, उसे भूलगान (तहजमीनी) कहा जाता है। सामन्तवाद के अन्तर्गत शासक वर्ग द्वारा हडपे जाने वाले अधिशेष उत्पादन को सामन्ती-भूलगान कहा जाता था। इस तरह वे उत्पादन को हडपने मे इसलिए सफल होते थे क्योकि भूमि पर उनका सामन्ती आधिपत्य था और साथ ही अर्धदासो पर उनका सीधा शासन भी था।

सामन्ती (पूजीवाद से पूर्व) लगान व्यवस्था अपने विकास के दौरान तीन मजिलो से गुजरी है और इसी क्रम मे उसके तीन रूप थे (१) बेगार (श्रम लगान), (२) उपज के एक अश के रूप मे लगान, तथा (३) नकद लगान।

१८वी शताब्दी के अन्तिम दिनो मे रूस के एक प्रगतिशील लेखक ए रैडिश्चेव ने जारशाही रूस के अर्धदासो के जीवन का बडा ही सजीव चित्र खीचा है। वह एक दिन एक किसान से मिले जो इतवार के दिन खेत जोत रहा था। "क्या सप्ताह के बाकी दिन खेती के काम के लिए काफी नही है?" लेखक ने पूछा। किसान ने जवाब दिया कि सप्ताह मे ६ दिन वह भूस्वामी के खेत जोतता है।

इस प्रकार के निर्मम शोषण ने कमियो को भयकर कगाली का शिकार बना दिया था। रैडिश्चेव ने बिना खिडकियो वाली झोपडी, टूटी-फूटी दीवारो से गुजरने वाली सनसनाती शीत हवा, बिना चिमनी के चूल्हे, पतली दलिया भी न सभाल पाने वाले टूटे-फूटे बरतनो, भूसो से बनी रोटियों, आदि का वर्णन किया है।

सामन्ती दासता

सामन्ती पराधीनता को लेनिन "सामान-दासता" कहते थे। पैदा होने के दिन से मरने के दिन तक किसान अपने मालिक भूस्वामी पर पूर्ण रूप से आश्रित रहता था। यह परनिर्भरता और अधिकारहीनता सामन्तवाद की अन्तिम मजिलो मे विशेष रूप से ज्यादा बढ गयी और भूस्वामियो का उत्पीडन असहनीय हो उठा।

भूस्वामी अपने कमियो (अर्धदासो) को बेच देते थे, जुवे के दाव पर हार जाते थे तथा उन्हे घोडो और कुत्तो से बदल लेते थे। किसी भूस्वामी की सम्पदा का अन्दाजा उसके पास भूमि के क्षेत्र तथा "आत्माओ" (कमियो) की सख्या से लगाया जाता था। सामन्ती अर्धदासता के युग मे रूस मे किसान को अन्य किसी भी सम्पत्ति के समान बन्धक रखा जा सकता था।

१६वी शताब्दी के प्रमुख रूसी लेखक और जनवादी ए. हर्जन ने तीखा व्यग्य करते हुए कमियो को "मनुष्यो के नामकरण वाली सम्पत्ति" कहा था। कमियो पर अत्याचार करने के तरीके खोजने मे भूस्वामियो मे होड लगी रहती थी। साल्तीकोवा नामक महिला के क्रूर व निर्मम अत्याचारो ने विशेष रूप से कुख्याति अर्जित की थी। महारानी कैथरीन द्वितीय के शासन काल मे इस कुख्यात महिला के पास मास्को, कोस्त्रोमा और वोलोग्दा रियासतो को मिला कर ६०० "आत्माए" थी। इसने १३६ लोगों को यातनाए दे-दे कर उनकी हत्या कर डाली थी।

दासो और अर्धदासो की स्थिति मे मुश्किल से ही कोई अन्तर होगा। तो भी, दासो से बिलकुल भिन्न विशेषता अर्धदासो की यह थी (और लेनिन ने इस पर जोर भी दिया है) कि वे अपने समय का कम से कम कुछ भाग अपने खेत पर इस्तेमाल करते थे और किसी हद तक अपने को अपना कह सकते थे। इससे समाज के सामने विकास के ऐसे रास्ते खुल गये थे जिनके बारे में दास-प्रथा के युग में सोचा भी नही जा सकता था।

सामन्ती समाज में आर्थिक विकास की सम्भावनाएं

सामन्ती शोषण के सभी रूपो का नतीजा एक ही था : भूस्वामियो द्वारा दूसरे लोगो के श्रम को या उस श्रम से उत्पादित सामान को हथिया लिया जाता था। परन्तु शोषण के अलग-अलग स्वरूपो से समाज के आर्थिक विकास के लिए अलग-अलग सम्भावनाए पैदा होती थीं।

बेगार की व्यवस्था के अन्तर्गत किसान को भूस्वामी या उसके प्रबन्धक की निगरानी मे अपना अधिशेष श्रम भूस्वामी की जमीन पर लगाना होता था। लगान देने की व्यवस्था मे उसे अपने खेत पर काम करते हुए भी अधिशेष श्रम चुकाना पडता था।

स्वय अपने लिए श्रम और शोषक भूस्वामी के लिए श्रम, ऊपर से देखने पर अब काल और समय मे विभाजित नही किया जा सकता था। ऊपरी तौर पर यही मालूम होता था कि किसान अपनी मर्जी से अपने समय को खर्च कर सकता है। पर वास्तव मे उसे अपने समय का काफी बडा हिस्सा भूस्वामी के लिए खर्च करना पडता था।

बेगारी व्यवस्था के अन्तर्गत किसान जितने समय अपने खेत पर काम करता था, केवल उतने समय तक उसकी दिलचस्पी श्रम उत्पादकता बढाने मे होती थी। लगान की व्यवस्था के अन्तर्गत, अपने पूरे श्रम की उत्पादकता बढाना उसके लिए लाभप्रद था।

नकद मुद्रा के रूप मे लगान देने की व्यवस्था आने पर किसान को जमीदार का लगान नकद अदा करने के लिए अपने अधिशेष श्रम से उत्पादित माल को बाजार मे बेचने को मजबूर होना पडा। इस तरह किसान परिवार का बाजार से नाता जुडा, उसका पुराना प्राकृतिक रूप खत्म होता गया और अब वह अधिकाधिक माल-उत्पादन की ओर बढने लगा।

विनिमय के विकास ने सामन्ती व्यवस्था की बुनियादें खोखली कर दी और पूजीवादी व्यवस्था द्वारा उसका स्थान ले लेने का रास्ता साफ हो गया। इससे किसानो मे बडे किसान और छोटे किसान के आधार पर विभाजन की प्रक्रिया तेज हो गयी। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत यह विभाजन बहुत ही तग सीमाओं के अन्दर होता था। बाजार के लिए उत्पादन मे सक्रमण होने से कुछ किसान अमीर हो गये, परन्तु अधिकाश कगाल बन गये।

मध्य युगीन नगर और हस्तकला

प्राचीन ससार के पतन का अर्थ था नगरो का पतन। बहुत से नगर तो बिलकुल ही नष्ट हो गये और हमेशा के लिए धरती से उनका नाम-निशान मिट गया। कुछ दूसरे नगर बडे-बडे गांव बन कर रह गये।

मध्य युग मे नगर फिर धीरे-धीरे पुनर्जीवित होने लगे। सामन्ती युग की आरम्भिक अवस्थाओ मे नगर और देहात के बीच कोई बडा फर्क नही था। दस्तकारी की उन चीजो का अधिकाश भाग स्वय किसान तैयार कर लेते थे जिनकी जरूरत उनको या उनके भूस्वामी मालिको को होती थी। शहरो के लोग न केवल दस्तकारी और व्यापार करते थे, बल्कि खेती का काम भी करते

थे। चारो ओर खेतो और चरागाहो से घिरा मध्य युगीन नगर एक बडे गाव जैसा दिखायी देता था।

शुरू-शुरू मे नगरो के दस्तकार माल तैयार करने के आदेशो के अनुसार काम करते थे। सामन्ती प्रभु या किसान, दस्तकार को कच्चा माल देते थे और वह तैयार माल उन्हे देता था। आम तौर से दस्तकार को उसकी मजदूरी अनाज के रूप मे दी जाती थी। श्रम के उपकरण बहुत पुराने ढग के थे और वे दस्तकार की सम्पत्ति होते थे। उसका तैयार किया हुआ माल मुश्किल से ही कभी बाजार पहुचता था। उन दिनो छोटे पैमाने पर की जाने वाली खेती की तरह दस्तकारियो मे भी ठहराव आया हुआ था।

मगर दस्तकार लोग धीरे-धीरे वस्तु विनिमय की ओर झुकने लगे। आदेशो के अनुसार माल बनाने के साथ ही, वे बाजार के लिए भी उत्पादन करने लगे। एक अर्थ मे, दस्तकार माल उत्पादन के वाहक बने, जबकि किसान प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के दायरे मे ही जीवन बिताते रहे।

जैसे-जैसे समय बीता, दस्तकारी का काम अधिकाधिक लाभदायक होता गया। नगर मे रहने वालो ने धीरे-धीरे खेती करना छोड दिया। किसान तैयार माल को बाजारो से खरीदने लगे। इस प्रकार दस्तकारी और खेतीबारी के बीच, तथा नगर और देहात के बीच, अन्तिम विभाजन हुआ।

किसान से बिलकुल अलग हैसियत रखने वाला दस्तकार केवल अपने श्रम से उत्पादित वस्तुओ के सहारे जीवित नही रह सकता था। उसे अपनी जीविका के साधन बटोरने तथा अपने धधे के लिए आवश्यक कच्चा माल जुटाने के वास्ते अपने द्वारा उत्पादित सामान का विनिमय करना आवश्यक हो गया। इसलिए, दस्तकारियो का विकास व्यापार के विकास से घनिष्ठ रूप से जुडा था।

आरम्भिक मजिलो मे व्यापार केवल उन वस्तुओ मे होता था जो दस्तकारो और अर्धदासो द्वारा तैयार की जाती थी और उन वस्तुओ मे जो दूर देश से लायी जाती थी। लेकिन व्यापार का विकास होने पर य स्रोत ही पर्याप्त नही रहे। छोटे पैमाने की दस्तकारी का उत्पादन बडी मात्रा मे वस्तुए सुलभ नही कर पाता था। उससे स्थानीय बाजार की आवश्यकताओ को पूरा किया जाना ही सम्भव नही हो पाता था। उत्पादन का विस्तार करने की आवश्यकता बहुत तीव्र हो उठी।

छोटे पैमाने पर किया जाने वाला माल-उत्पादन बढी हुई आवश्यकताओ के अनुरूप उत्पादन के विस्तार की गारन्टी नही कर सकता था। उसकी सम्भावनाए अत्यन्त सीमित थी। बडे पैमाने के उत्पादन मे सक्रमण अब बहुत जरूरी हो गया था।

१४ वी शताब्दी के अन्त मे इटली मे तथा १६ वी शताब्दी के दौरान

अन्य देशो मे उत्पादन के बडे-बडे सस्थानो की शुरूआत हुई। ये पूजीवादी सस्थान थे। इनके मालिक पूजीपति थे और इनमे मजूरी पर मजदूरो से काम लिया जाता था।

इस प्रकार सामन्तवाद के गर्भ मे पूजीवादी सम्बध परिपक्व हो गये थे।

सामन्ती व्यवस्था का पतन

दास युगीन व्यवस्था की अपेक्षा सामन्तवाद, सामाजिक विकास के क्षेत्र मे, एक अगला कदम था। इसमे उत्पादक शक्तियो के विकास का कुछ अवसर मिलता था। लेकिन इसके बावजूद, उनके विकास की सम्भावनाए अत्यन्त सीमित थीं।

देहातो मे मौजूद सामन्ती सम्बध तथा नगरो मे लघु स्तरीय उत्पादन की सीमाए, टेक्नालॉजी की प्रगति मे बाधक थी। दीर्घकालीन सामन्ती युद्धो तथा तबाही भरी महामारियों के परिणामस्वरूप फलते फूलते समृद्ध क्षेत्र रेगिस्तान बन जाते थे। आबादी चौपट हो जाती थी।

सामन्तवाद ने ऐसी शक्तियों को जन्म दिया, जिहोने आगे चल कर, सामन्ती व्यवस्था की सीमाओ को तोड कर आगे बढने का प्रयास शुरू किया। श्रम का सामाजिक विभाजन बढा। विनिमय का विस्तार हुआ। धीरे-धीरे परन्तु निश्चयात्मक ढग से उत्पादन की तकनीक मे, विशेप रूप से शहरी दस्तकारियो मे, सुधार हुआ। विनिमय का चलन प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को कमजोर कर रहा था तथा विनिमय मे होने वाले लगातार विकास से सामन्ती उत्पादन पद्धति की जड़ें हिल उठी थी।

सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत निर्मम शोषण एव उत्पीडन की शिकार जनता ने समझ लिया कि पुराने ढग पर रहना और जीना असम्भव है। इसलिए, उस ढग को बदलने के वास्ते वर्ग सघर्ष आरम्भ हो गया। सामन्ती व्यवस्था के गर्भ मे विकसित हुए पूजीवादी तत्वों के प्रहारों के सामने सामन्तवादी व्यवस्था टिक नही सकी।

अर्धदास (कमिया) व्यवस्था के पूरे दौर मे किसानो ने सामन्ती भूस्वामियो और उनकी व्यवस्था के खिलाफ घनघोर सघर्ष किया। सामन्ती व्यवस्था के अन्तिम दौर मे अर्धदासो का शोषण जब अपनी चरम सीमा पर पहुच गया, तो यह सघर्ष भी विशेप रूप से उग्र हो गया।

किसान युद्धो ने सामन्ती व्यवस्था को जर्जर कर दिया और उसका पतन हुआ। उभरते हुए नये पूजीपति वर्ग ने भूस्वामियो के खिलाफ चलने वाले किसान सघर्षों का इस्तेमाल किया और सामन्तवाद के पतन को निकट ला दिया। पूजीपति वर्ग का उद्देश्य यह था कि सामन्ती शोषण के स्थान पर पूजीवादी शोषण व्यवस्था की स्थापना कर दी जाय। पूजीवादी क्रान्तियो मे विद्रोहियो की सबसे बडी सख्या किसानो की थी। पूजीवादी क्रान्तियो ने

सामन्ती भूस्वामियो की राजसत्ता को उखाड फेंका तथा पूजीवाद के विकास की भव्य सभावनाए निकट ला दी।

पूजीवाद के अन्तर्गत सामन्ती अवशेष

सामन्तवाद से सत्ता छीन लेने के पश्चात शीघ्र ही पूजीपति वर्ग को यह मालूम हो गया कि उसकी सत्ता को तेजी से बढते हुए मजदूर वर्ग से खतरा है। इसीलिए पूजीपति वर्ग ने जल्दी से आगे बढ कर उन्ही लोगो से समझौता किया, जो उसके जानी दुश्मन बने हुए थे।

अधिकाश देशो मे पूजीपति वर्ग ने जमीन की सामन्ती व्यवस्था को ज्यो-का-त्यो कायम रखा। मुट्ठी भर भूस्वामी बडे बडे विशाल भूखण्डो के मालिक बने रहे। भूस्वामियो द्वारा किसानो का शोषण भी जारी रहा, केवल उसका रूप बदल गया।

सामन्ती अवशेषो का शिकजा आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए देशो मे विशेष रूप से मजबूत था। औपनिवेशिक तथा अर्धऔपनिवेशिक देशो मे जनता को सामन्ती और पूजीवादी उत्पीडन, दोनो, के बोझ के नीचे पिसना पडता था। सामन्ती भूस्वामी उपनिवेशवादियो की सहायता करते और बदले मे उपनिवेश-वादी हर तरह से सामन्तो की सहायता करते तथा जनता के क्रोध से उनकी रक्षा करते थे।

जारशाही रूस मे पूजीवादी सम्बधो के साथ ही सामन्ती अर्धदासता के अवशेष मौजूद थे। भूस्वामी तत्व सर्वशक्तिमान थे। भूमिहीनो एव भूमि पाने के इच्छुक किसानो का एक विशाल जनसमुदाय असीम सागर की भाति उफन *रहा था। महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने एक ओर जहा पूजीवादी* व्यवस्था का अन्त किया, वही दूसरी ओर सामन्ती व्यवस्था के समस्त अवशेषो का भी सफाया कर दिया।

दोहराने के प्रश्न

१ वर्गीय समाज की उत्पत्ति कैसे हुई ?
२ शोषण के दास युगीन स्वरूप का मूल तत्व क्या है ?
३. सामन्तवादी उत्पादन पद्धति के विशिष्ट लक्षण क्या हैं ?

पूंजीवादी व्यवस्था

अध्याय ३

पूंजीवादी माल उत्पादन

१. व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधिपत्य के अन्तर्गत माल उत्पादन

माल उत्पादन के उदय की परिस्थितिया

पूंजीवादी समाज मे माल का उत्पादन अधिकाशत: बिक्री के लिए किया जाता है। बिक्री और विनिमय के लिए जिस वस्तु का उत्पादन किया जाता है, उसे माल कहते हैं। जिस अर्थव्यवस्था मे विनिमय के लिए मालो का उत्पादन किया जाता है, उसे माल-अर्थव्यवस्था कहते हैं। जिस अर्थव्यवस्था मे उत्पादन प्रत्यक्ष उपभोग के लिए किया जाता है, उसे प्राकृतिक अर्थव्यवस्था कहते हैं।

माल-अर्थव्यवस्था का उदय उस समय हुआ जब आदिम कालीन व्यवस्था का बिखराव हो रहा था तथा उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व का आरम्भ हो रहा था। यह दास युगीन व्यवस्था तथा सामन्ती व्यवस्था के दौरान भी मौजूद थी। परन्तु उस जमाने मे इसकी भूमिका प्रधान नही थी। अर्धदास अपने श्रम के उत्पादन का अधिकाश भाग भूस्वामी के हवाले कर देते थे और बदले मे उन्हे कुछ भी नही मिलता था। काफी लम्बे समय तक उत्पादन का बहुत थोडा अश ही बाजार मे बेचने के लिए तैयार किया जाता था, अधिकाश भाग उत्पादन करने वाले परिवारो द्वारा ही इस्तेमाल किया जाता था।

सामन्ती व्यवस्था का बिखराव होने लगा तो माल उत्पादन मे काफी विकास हुआ। परन्तु केवल पूंजीवाद के अन्तर्गत ही यह अपनी प्रभुत्वकारी भूमिका मे उजागर हुआ।

पूंजीवादी सस्थान अपना समस्त उत्पादन, बिक्री के लिए करते है। जैसे-जैसे पूंजीवाद का विकास होता है, वैसे वैसे छोटे उत्पादक (किसान) अपने उत्पादन का अधिकाश भाग बाजार मे बेचने लगते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के समस्त साधनो व उपभोग के साधनो का क्रय-विक्रय होता है। इस प्रकार माल उत्पादन सर्वांगीण और सार्वभौम रूप धारण कर लेता है।

माल उत्पादन श्रम के सामाजिक विभाजन पर आधारित होता है। श्रम के सामाजिक विभाजन का अर्थ यह होता है कि समाज के अलग-अलग सदस्य

माल की दोहरी प्रकृति

इस प्रकार पूंजीवाद के अन्तर्गत मालों या, अर्थात विनिमय के उद्देश्य से उत्पादित की जाने वाली चीजों या, उत्पादन प्रधान होता है। किसी माल के गुण-धर्म क्या होते हैं ?

माल होने के लिए, श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु को, किसी इन्सानी जरूरत की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए; इसी में उसकी उपयोगिता निहित होती है। श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु का यह गुण उसे उपयोग मूल्य प्रदान करता है। मास और दूध मनुष्यों के भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, इसलिए श्रम द्वारा उत्पादित इन पदार्थों में उपयोग मूल्य पैदा हो जाता है। कमीज, कोट और जूते मनुष्यों की पोशाक की जरूरतों को पूरा करते हैं, इसलिए इनमें भी उपयोग मूल्य पैदा हो जाता है।

बहुत से ऐसे पदार्थों में भी उपयोग मूल्य रहता है जो मानव श्रम द्वारा उत्पादित नहीं होते, जैसे चश्मों का पानी या जगली फल।

श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुएं प्राकृतिक अर्थव्यवस्था तथा माल अर्थव्यवस्था, दोनों में ही, किसी न किसी निश्चित आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। एक किसान अपने निजी उपभोग के लिए रोटी पैदा करता है जिससे उसकी भोजन की आवश्यकता की पूर्ति होती है, इसलिए उस रोटी में उपभोग मूल्य हो जाता है। किसान जो रोटी बिक्री के लिए तैयार करता है, उसमें भी यही गुण-धर्म होता है। लेकिन किसी कारण अगर रोटी का यह गुण-धर्म खत्म हो जाय (रोटी सड़ जाय और खाने लायक न रहे) तो कोई भी उसे खरीदने को तैयार नही होगा। परन्तु, माल बन जाने के कारण रोटी में एक और महत्वपूर्ण गुण-धर्म पैदा हो जाता है। उसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है।

इस प्रकार माल (१) एक ऐसी चीज होता है जो किसी निश्चित मानव आवश्यकता की पूर्ति करता है, और (२) एक ऐसी चीज होता है जिसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है।

मालों का विनिमय निश्चित अनुपातों में होता है। मिसाल के लिए, एक बोरा आटे का विनिमय एक जोड़ी जूतों से किया जाता है। किसी भी माल का किसी दूसरे माल से एक निश्चित मात्रा सम्बंधी अनुपात में ही विनिमय किया जा सकता है, अर्थात यही उसका विनिमय मूल्य (या केवल मूल्य) होता है। श्रम के किसी भी उत्पादन में यह गुण उस समय पैदा हो जाता है, जब वह माल बन जाता है। इस प्रकार किसी भी माल में दो गुण-धर्म होते हैं : उपयोग मूल्य और मूल्य।

अलग-अलग चीजो का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार का विभाजन माल उत्पादन के आरम्भ से पहले भी पाया जाता था। अनेक आदिम कालीन समुदायो मे भी दस्तकार लोग थे, जैसे लोहार, कुम्हार, चक्की बनाने वाले, आदि, जो समुदाय के लिए हर प्रकार के उपकरणों और घरेलू उपयोग के सामान को तैयार करते थे। बदले मे, समुदाय उनका भरण-पोषण करता था और उन्हे कृषि द्वारा उत्पादित सामान सुलभ करता था।

प्राकृतिक अर्थव्यवस्था मे माल उत्पादन हो, इसके लिए जरूरी था कि श्रम के सामाजिक विभाजन के साथ-साथ उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व भी कायम हो। कोई दस्तकार जब उत्पादन के साधनो का मालिक बन जाता है, तो वह अपने श्रम से उत्पादित माल की बिक्री भी शुरू कर देता है।

अतएव, माल उत्पादन के आरम्भ और उसके विकास के लिए दो शर्तें हैं: (१) श्रम का सामाजिक विभाजन, और (२) उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व।

साधारण तथा पूजीवादी माल उत्पादन

उस समय जब बडे-बडे पूजीवादी सस्थान नही थे, तब उत्पादन का कार्य छोटे-छोटे माल उत्पादक—किसान एव दस्तकार—करते थे। वे स्वय काम मे लगे रहते थे, कोई मजूर नही लगाते थे और उनके पास साधारण तथा कम खर्चीले श्रम के उपकरण होते थे। छोटे-छोटे माल उत्पादको की इस अर्थव्यवस्था को, जिसमे उनके श्रम से उत्पादित सामानो का विनिमय किया जाता है, साधारण माल-उत्पादन कहते है।

साधारण माल उत्पादन और पूजीवादी माल उत्पादन के बीच एक महत्व-पूर्ण बात समान रूप से पायी जाती है: दोनो उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व पर आधारित होते हैं। लेकिन इसके साथ, साधारण माल उत्पादन पूजीवादी माल उत्पादन से काफी भिन्न भी है।

साधारण माल-उत्पादन छोटे-छोटे माल-उत्पादको के व्यक्तिगत श्रम पर आधारित होता है। इसके विपरीत, पूजीवाद मजूरी पर रखे गये मजदूरो के श्रम पर आधारित होता है जिनका उत्पादन के साधनो पर कोई अधिकार नही होता। उनका पूजीपति, उत्पादन के साधनो के बडे-बडे मालिक, शोषण करते हैं।

छोटे माल-उत्पादको को तबाह करके एव उन्हे गुलाम बना कर ही पूजीवाद का विकास होता है। इस प्रक्रिया मे बहुत से छोटे उत्पादक, मजदूर बन जाते हैं। साधारण माल-उत्पादन लाजमी तौर पर पूजीवाद के लिए जमीन तैयार करता है।

माल की दोहरी प्रकृति

इस प्रकार पूंजीवाद के अन्तर्गत मालों का, अर्थात विनिमय के उद्देश्य से उत्पादित की जाने वाली चीजों का, उत्पादन प्रधान होता है। किसी माल के गुण धर्म क्या होते हैं?

माल होने के लिए, श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु को, किसी इन्सानी जरूरत की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए, इसी में उसकी उपयोगिता निहित होती है। श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु का यह गुण उसे उपयोग मूल्य प्रदान करता है। मांस और दूध मनुष्यों के भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, इसलिए श्रम द्वारा उत्पादित इन पदार्थों में उपयोग मूल्य पैदा हो जाता है। कमीज, कोट और जूते मनुष्यों की पोशाक की जरूरतों को पूरा करते हैं, इसलिए इनमें भी उपयोग मूल्य पैदा हो जाता है।

बहुत से ऐसे पदार्थों में भी उपयोग मूल्य रहता है जो मानव श्रम द्वारा उत्पादित नहीं होते, जैसे चश्मों का पानी या जंगली फल।

श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुएं प्राकृतिक अर्थव्यवस्था तथा माल अर्थव्यवस्था, दोनों में ही, किसी न किसी निश्चित आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। एक किसान अपने निजी उपभोग के लिए रोटी पैदा करता है जिससे उसकी भोजन की आवश्यकता की पूर्ति होती है, इसलिए उस रोटी में उपभोग मूल्य हो जाता है। किसान जो रोटी बिक्री के लिए तैयार करता है, उसमें भी यही गुण-धर्म होता है। लेकिन किसी कारण अगर रोटी का यह गुण धर्म खत्म हो जाय (रोटी सड़ जाय और खाने लायक न रहे) तो कोई भी उसे खरीदने को तैयार नहीं होगा। परन्तु, माल बन जाने के कारण रोटी में एक और महत्वपूर्ण गुण-धर्म पैदा हो जाता है। उसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है।

इस प्रकार माल (१) एक ऐसी चीज होता है जो किसी निश्चित मानव आवश्यकता की पूर्ति करता है, और (२) एक ऐसी चीज होता है जिसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है।

मालों का विनिमय निश्चित अनुपातों में होता है। मिसाल के लिए एक बोरा आटे का विनिमय एक जोड़ी जूतों से किया जाता है। किसी भी माल का किसी दूसरे माल से एक निश्चित मात्रा सम्बधी अनुपात में ही विनिमय किया जा सकता है, अर्थात यही उसका विनिमय मूल्य (या केवल मूल्य) होता है। श्रम के किसी भी उत्पादन में यह गुण उस समय पैदा हो जाता है, जब वह माल बन जाता है। इस प्रकार किसी भी माल में दो गुण धर्म होते हैं: उपयोग मूल्य और मूल्य।

श्रम : मूल्य के आधार के रूप में

अलग-अलग उपयोग मूल्यों वाली वस्तुओं के विनिमय के लिए आवश्यक है कि वे समानुपातिक हों। वास्तव मे हम चीजों का विनिमय इसलिए करते हैं कि उनमे अलग-अलग उपयोग मूल्य होते हैं। कोई भी व्यक्ति एक किलोग्राम रोटी के बदले एक किलोग्राम रोटी का विनिमय करना पसन्द नही करेगा। कोई भी व्यक्ति एक जोडा जूते बेचने के बाद प्राप्त हुई मुद्रा से उसी प्रकार का दूसरा जोडा नही खरीदना चाहेगा। अलग-अलग मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं का ही विनिमय किया जाता है।

मात्रा सम्बन्धी जिस अनुपात मे चीजो का विनिमय होना है, वह लगातार बदलता रहता है। कुछ माल सस्ते हो जाते हैं, कुछ दूसरे महंगे। यह उतार-चढाव कितना ही ज्यादा क्यो न हो, फिर भी एक टन तांबा हमेशा ही एक टन लोहे से महंगा होता है और एक टन चांदी से, या विशेष कर सोने से, सस्ता होता है। इसलिए विभिन्न वस्तुओं के बीच विनिमय की मात्राएं तय करने के लिए कोई मजबूत आधार होना चाहिए। यह आधार क्या है ?

मात्रा सम्बन्धी हर तुलना मे यह मान कर चलना पडता है कि जिन वस्तुओ के बीच तुलना की जा रही है, उनके गुण-धर्म मे कुछ समानता अवश्य होगी। कभी-कभी बिलकुल ही भिन्न चीजो की भी तुलना की जाती है। मगर यह तुलना तभी सम्भव हो सकती है, जब उनमे कोई-न-कोई समानता हो। और, यह भी जरूरी है कि इस समान गुण को मापा जा सके। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि एक खास नाप की लोहे की चादर का वजन दो बोरे आटे के बराबर है। यहा लोहे की चादर और आटे के बोरो मे समानता उनके वजन की है। इस समानता के आधार पर ही हम लोहे और आटे जैसी दो भिन्न वस्तुओ की तुलना कर सकते है।

यदि एक कट्टे अनाज का, उदाहरण के लिए, घोडो को १० नालो से विनिमय किया जाता है, तो इसका अर्थ यह होता है कि दोनो मे कोई चीज समान है। उनके बीच क्या चीज समान है ? वह कौन सा समान गुण-धर्म है, जो इन दो भिन्न वस्तुओं को समानुपातिक बना देता है ?

यह गुण-धर्म उनका वजन, उनका आयतन या सख्ती नही है, क्योकि अनाज के एक कट्टे और घोडो की दस नालो के वजन, आयतन तथा दूसरे भौतिक गुण-धर्म अलग-अलग होते हैं। उनकी उपयोगिता भी समान नही है, क्योकि दोनो की ही उपयोगिता बिलकुल अलग-अलग तरह की है। अलग-अलग उपयोग मूल्यो वाले मालो के बीच केवल एक ही गुण-धर्म समान होता है, अर्थात यह कि ये सभी मानव श्रम द्वारा उत्पादित होते है।

इस गुण-धर्म को मापा जा सकता है। श्रम की माप इस प्रकार की जाती है कि किसी माल विशेष के उत्पादन में कितना समय खर्च हुआ है। मालो के उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम की मात्रा से ही निश्चित होता है कि एक माल का दूसरे माल से किस अनुपात मे विनिमय होगा।

इस प्रकार मालो के विनिमय सम्बध उनके उत्पादन पर खर्च श्रम पर आधारित होने हैं।

इस प्रस्थापना की पुष्टि आम तौर से ज्ञात अनेक तथ्यो द्वारा होती है। बहुत से माल पहले बहुत महगे थे, लेकिन अब सस्ते हो गये हैं क्योकि बेहतर टेक्नालॉजी ने उनके उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम की मात्रा को घटा दिया है। उदाहरण के लिए, आज से ५० वर्ष पहले चादी के मुकाबले अल्यूमिनियम दर्जनो गुना महगी थी। अब उसका मूल्य चादी के मूल्य के एक छोटे भाग के बराबर रह गया है। कारण यह है कि विद्युतीय-तकनीक के विकास से अब अल्यूमिनियम को बहुत कम श्रम के खर्च पर उत्पादित किया जा सकता है।

जिस जमाने मे विनिमय अपेक्षाकृत कम ही होता था, उस समय वस्तुओ का विनिमय आकस्मिक सम्बधो के आधार पर हुआ करता था। लेकिन जब सामाजिक उत्पादन का अधिकाश भाग विनिमय के लिए होने लगा, तो स्थिति बिलकुल बदल गयी। मालो के विनिमय के लिए जो सम्बध स्थापित हुए, वे अधिकाधिक इस बात पर निर्भर होने लगे कि मालो के उत्पादन मे कितना श्रम खर्च हुआ था।

पिछली शताब्दी के आरम्भ मे बहुत से योरपीय देशो मे जनता का अधिकाश भाग छोटे-छोटे माल-उत्पादकों का था। ऐसी परिस्थितियो मे, कोई किसान जब अपने अनाज के बदले घोडे की नालें लेता था, तो उसे अच्छी तरह मालूम था कि लोहार को उन नालो को बनाने मे कितना श्रम लगाना पडा है। किसान लोहार को अनाज की जो मात्रा देता था उसके उत्पादन पर लगा श्रम लगभग उतना ही होता था जितना कि घोडे की नालो को तैयार करने मे लोहार का श्रम लगता था।

इसी तरह, गाव का लोहार और नगर का दस्तकार भी खेती की परिस्थितियो से परिचित होते थे। आम तौर पर उनके पास भी अपना खेत, या बाजार मे बेचने लायक फलों का बागीचा, या पालतू जानवर होते थे। इस तरह, मालो के उत्पादन पर खर्च होने वाला श्रम ही विनिमय का एक मात्र सम्भव आधार था।

किसी माल मे सन्निहित श्रम उसका मूल्य होता है। मूल्य के अनुसार विभिन्न मालो का विनिमय, अर्थात उनके उत्पादन पर खर्च हुए श्रम के अनुपात मे उनका विनिमय, माल उत्पादन का एक आर्थिक नियम है।

सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-काल

किसी माल का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उसके उत्पादन पर कितना श्रम लगा है। इसके बावजूद, इसका क्या कारण है कि समान माल, जिनके उत्पादन पर किसी एक उत्पादक को दूसरो की अपेक्षा ज्यादा श्रम खर्च करना पडा था, बाजार मे एक ही मूल्य पर बिकते है ?

सच है कि समान मालो के उत्पादन पर अलग-अलग माल उत्पादक अलग-अलग मात्रा मे श्रम खर्च करते हैं। इसका कारण यह है कि अलग-अलग उत्पादक अलग-अलग परिस्थितियो मे माल उत्पादन करते है। कुछ के पास सिर्फ साधारण उपकरण होते है और वे हाथ से काम करते हैं, जबकि कुछ दूसरे मशीनो का इस्तेमाल करते हैं। कुछ लोगो को ज्यादा उत्पादन अनुभव होता है, कुछ दूसरो को कम।

लेकिन उपभोक्ता को इस बात की परवाह नही होती कि किसी एक माल उत्पादक ने उक्त वस्तु के उत्पादन पर कितना श्रम खर्च किया है। अगर माल की किस्म एक जैसी है, तो उसका दाम भी समान होना चाहिए।

किसी माल का मूल्य इस बात का निर्भर नही करता कि किसी एक माल उत्पादक ने अपने उस माल को तैयार करने पर कितना श्रम खर्च किया है। किसी माल का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि किसी समाज विशेष मे सामान्य परिस्थितियो मे उत्पादन के टेक्नालॉजीकल स्तर तथा श्रम की दक्षता और गहराई के औसत स्तर को देखते हुए किसी माल विशेष के उत्पादन मे कितने श्रम-काल की खपत की आवश्यकता होती है।

किसी माल विशेष के उत्पादन मे जितने औसत श्रम-काल की आवश्यकता होती है, उसे सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-काल कहा जाता है।

किसी माल मे निहित श्रम की दोहरी प्रकृति

जैसा कि हम जान चुके हैं, कोई माल उपयोग मूल्य तथा मूल्य दोनो ही होता है। इसी प्रकार किसी माल मे सन्निहित श्रम की प्रकृति भी दोमुही होती है।

श्रम भी उसी तरह विविधतापूर्ण है जैसे कि उसके द्वारा उत्पादित उपयोग मूल्य विविधतापूर्ण होते हैं। ताला बनाने वाले कारीगर का श्रम जूते बनाने वाले के श्रम से भिन्न होता है। इसी तरह एक खनिज का श्रम, दर्जी के श्रम से भिन्न होता है।

विभिन्न प्रकार के श्रम अपने उद्देश्य, अपनी विधियों, अपने उपकरणो, अपने मकसदो और अपने नतीजो के मामले मे भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। एक खनिक, कोयला काटने वाली गैंती का प्रयोग करता है तथा कोयला प्राप्त

कोई माल अत्यधिक सम्मिश्र श्रम का उत्पादन हो सकता है, परन्तु उसका मूल्य उसे साधारण श्रम द्वारा उत्पादित माल के ही बराबर ले आता है। मार्क्स के कथनानुसार, उत्पादकों की पीठ पीछे चलती सामाजिक प्रक्रिया रोजाना हर प्रकार के सम्मिश्र श्रम को साधारण श्रम मे बदलती जाती है। सम्मिश्र श्रम साधारण श्रम का ही बढा हुआ रूप होता है। एक घंटे के सम्मिश्र श्रम से उत्पादक उतना मूल्य पैदा कर लेता है, जितना मूल्य पैदा करने के लिए साधारण श्रम को कई घंटो की आवश्यकता होती है।

साधारण माल-उत्पादन का अन्तर्विरोध

जब कोई मनुष्य अपने स्वय के उपभोग के लिए कोई चीज बनाता है, तो उत्पादक के रूप मे समाज से उसका कोई सम्बध नही होता। परन्तु जब वह कोई माल तैयार करता है, तो इसे समाज के अन्य सदस्यो की किसी निश्चित आवश्यकता की पूर्ति अवश्य करना चाहिए।

निजी सम्पत्ति पर आधारित समाज मे हर उत्पादक—चाहे वह छोटा दस्तकार हो या बडा पूजीपति—अपनी जिम्मेदारी पर काम करता है। प्रत्येक माल उत्पादक स्वतत्र होता है। उत्पादन उसका निजी व्यवसाय होता है। उसका श्रम निजी श्रम होता है।

परन्तु इसके साथ ही, हर माल उत्पादक बहुत से दूसरे माल उत्पादको पर भी निर्भर करता है। वह जिन्दा रह सके और अपना कारोबार चला सके, इसके लिए आवश्यक है कि वह जिन मालो का उत्पादन करता है उनका विनिमय करे ताकि वह कच्चा माल, उपकरण और अपने व अपने परिवार वालो के लिए उपभोक्ता वस्तुओ को खरीद सके। अलग-अलग माल उत्पादक आपस मे एक-दूसरे से जुडे होते हैं और एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं। परन्तु उनका यह आपसी सम्बध स्वत.स्फूर्त होता है। यह मालो के विनिमय द्वारा पैदा होता है।

किसी उत्पादक का श्रम, अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए समाज द्वारा किये जाने वाले समस्त श्रम का एक निश्चित अश होता है। उक्त माल मे निहित सामाजिक श्रम ही मूल्य बनता है। साधारण माल-उत्पादन का अन्तर्विरोध निजी एव सामाजिक श्रम के बीच अन्तर्विरोध मे निहित होता है। यह अन्तर्विरोध पूजीवाद के अन्तर्गत और अधिक बढ जाता है।

माल जड़पूजा

मालो के विनिमय से मालो को उत्पादित करने वाले लोगो के बीच सम्बधो पर रोशनी पडती है। इस तरह मूल्य, उत्पादन के सामाजिक सम्बधों को—अर्थात माल उत्पादन करने वाले लोगो के बीच सम्बधो को—अभिव्यक्त करता है।

परन्तु, मनुष्यो के बीच स्थापित होने वाले ये सम्बध मालो के बीच पारस्परिक सम्बधो के अनुरूप होते हैं। इसी प्रकार किसी माल मे उसके रग या वजन की तरह ही मूल्य का होना भी उसका प्राकृतिक गुण धर्म मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, यह बात इस प्रकार कही जाती है कि एक डबल रोटी का वजन इतने ग्राम होता है और उसका मूल्य इतने पैसे होता है।

सास्कृतिक विकास की निचली मजिलो में बहुत से लोग सूर्य, आग, विविध पशुआ, आदि, की उपासना—उनमें चमत्कारी शक्ति मानकर—करते थे। इसी को जड-पूजावाद कहते हैं।

पूजीवादी समाज मे इस प्रकार की चमत्कारी शक्ति माल कही जाने वाली वस्तुओ को प्रदान कर दी गयी है। सामाजिक सम्बधो की किसी विशेष व्यवस्था में वस्तुओ में जो गुण धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हे उन मालो का प्राकृतिक गुण धर्म मान लिया जाता है। यह मालो की जड पूजावादिता है, जो कि पूजीवादी उत्पादन की विशेषता है। यह जड-पूजावादिता पूजीवादी सम्बधो के मूल तत्व, उसके सही चरित्र, पर पर्दा डालती है और उनके नकली स्वरूप को लोगो के सामने पेश करती है।

२. पूजीवाद के अन्तर्गत मुद्रा

सोना और उसकी पहेली

सैक्सोनिया के चीनी मिट्टी के बर्तन सारे ससार मे मशहूर हैं। सभी लोग उनके शानदार गुणो से परिचित हैं। लेकिन बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होने, उन बर्तनो के सुन्दर व आकर्षक स्वरूपों को पसन्द करने के बावजूद, इसकी जानकारी हासिल की हो कि इस अद्भुत पदार्थ का आविष्कार करने वाले व्यक्ति को कैसी परिस्थितियो स गुजरना पडा था। उसका नाम था जोहान फ्रेडरिख बेटगर। उसका कार्यकाल १७वी शताब्दी का अन्त तथा १८वी शताब्दी का प्रारम्भ काल था। बेटगर सैक्सोनिया के कुर्फर्स्ट एव पोलैण्ड के सम्राट ऑगस्त द्वितीय के दरबारो मे दवाए तैयार करने का काम करता था। सम्राट के आदेश पर उसे बहुत वर्षों तक मेस्सेन टावर (यातना बुरजी) मे रहना पडा था।

बेटगर ने कौन सा ऐसा अपराध किया था जिसकी सजा उसको इस रूप मे दी गयी। चीनी मिट्टी के बर्तनो का यह आविष्कारक केवल एक दवा बनाने वाला ही नही, बल्कि कीमियागर भी था। ऑगस्त द्वितीय को हमेशा आर्थिक सकट का शिकार रहना पडता था वह एक फजूल-खर्च व्यक्ति था तथा लगातार लडाइया छेडते रहने से उसका सारा खजाना खाली हो गया था। बेटगर ने उसके लिए नकली सोना बनाने का बीडा उठाया। मगर वह अपना

वादा पूरा करने मे सफल न हो सका। इसी अपराध के कारण उसको कई वर्षों तक जेल की यातना भुगतनी पडी।

हजारो वर्षों तक कीमयागरो ने साधारण धातुओ से सोना बनाने के लिए सभी प्रकार के उपाय किये थे। "कीमियागर" हम उस इन्सान को कहते हैं जो सासारिक जिम्मेदारियो से आजाद होकर "दार्शनिक रत्न" की खोज मे अपना सब कुछ निछावर कर देता है। लोगो का ख्याल था कि इस अद्भुत पदार्थ की सहायता से साधारण धातुओ को सोने मे परिवर्तित किया जा सकता है। मध्य युग मे कीमियागरो ने इस रहस्य को सुलझाने के लिए अथक प्रयास किये थे, परन्तु वे सफल न हो सके।

बाद मे, जब मनुष्य ने प्रकृति के बारे मे और ज्यादा ज्ञान अर्जित कर लिया, तो 'दार्शनिक रत्न" जैसे बचकाने विचार को त्याग दिया गया।

सोने से सम्बधित एक अन्य पहेली को हल करने मे भी काफी समय लगा। पहेली यह थी कि जिस समाज मे निजी सम्पत्ति का आधिपत्य पाया जाता है, वहा इस धातु को इतनी चमत्कारिक शक्ति क्यो प्राप्त है? क्रिस्टोफर कोलम्बस ने अमरीका का पता लगाने के बाद वहा से सन् १५०३ मे लिखा था "सोना एक अद्भुत पदार्थ है। जिसके पास सोना होता है, उसके कदमो मे ससार के सब सुख हाजिर रहते हैं। सोने की सहायता से स्वर्ग के बन्द दरवाजो को भी खोला जा सकता है।"

कोलम्बस ने अमरीका का पता लगा लिया, मगर वह सोने की चमत्कारिक शक्ति के रहस्य का पता न लगा सका। उसके पहले और उसके बाद बहुत से दूसरे लोग भी इस पहेली को हल करने का प्रयास करते रहे। इस पीत वर्ण की धातु की असीमित शक्ति का रहस्य क्या है?

इतनी शताब्दियो या लाखो वर्षों से सोने की इस सर्वशक्तिमत्ता का कारण क्या है? अब तक न तो रसायनशास्त्र न किसी अन्य प्राकृतिक विज्ञान से ही इस प्रश्न का जवाब प्राप्त हो सका था। इसकी विवेचना एक दूसरे विज्ञान द्वारा ही की जा सकी। यह विज्ञान मानव समाज से सम्बधित विज्ञान है।

निजी सम्पत्ति के आधिपत्य वाले समाज मे सोने की इस शक्ति का रहस्य उसके द्वारा अदा की जानी वाली भूमिका मे निहित है। पूजीवाद के अन्तर्गत, सोना ही जनता के सर्वशक्तिमान शासक के रूप मे सामने आता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कारखाने, जमीन, मशीनें—सक्षप मे, उत्पादन के लिए आवश्यक हर चीज—बेची और खरीदी जा सकती है। कारखानो के मालिक मजदूरो का शोषण करते हैं। वे बिना कमाई हुई असीमित दौलत पर हाथ मारते हैं और दूसरे लोगो के श्रम की बदौलत ही जिन्दा रहते हैं।

इसी से सोने के लिए कभी न बुझने वाली प्यास की बात समझ में आ

जाती है। सोने की ही सहायता से लोग उन कारखानो और सस्थानो के मालिक बनते हैं जिनमे दूसरे लोगो का श्रम ससार की समस्त सम्पदा को पैदा करता है।

सोने की इस पहेली को आर्थिक-विज्ञान ने हल किया। लेकिन इस रहस्य का पता लगाने मे उसे काफी समय लगा। बहुत जमाने तक अर्थशास्त्री लोग निजी सम्पत्ति के आधिपत्य वाले समाज में सोने की भूमिका को उसके प्राकृतिक गुणो मे से एक मानते रहे। वे इस बात को कल्पना भी नही कर सकते थे कि कोई ऐसी सामाजिक व्यवस्था हो सकती है, जो उस व्यवस्था से भिन्न हो जिसमे वे रहते थे।

इसलिए उन लोगो ने निष्कर्ष निकाला कि सोना अपनी प्रकृति से ही मुद्रा था और इसी तरह मुद्रा अपनी प्रकृति से ही पूजी मानी जाती थी, अर्थात सोना एक ऐसा साधन था जिसकी सहायता से कुछ लोग दूसरे लोगो के श्रम के सहारे जिन्दा रहते थे।

अर्थशास्त्रियो के इस भ्रम को मार्क्सवाद के सस्थापकों ने दूर किया। मार्क्सवाद ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को दिखाया कि पूजीवादी उत्पादन सम्बध हमेशा से ही पदार्थों से सम्बधित रहे हैं, और उन्होने अपने आपको पदार्थों के बीच सम्बधो के रूप मे जाहिर किया है—उन्होने पदार्थ-रूप ग्रहण कर लिया है।

इस प्रकार सोने के रहस्य को हल किया गया। सोना अपनी प्रकृति से ही मुद्रा नही है। वह सामाजिक विकास के क्रम मे मुद्रा का रूप धारण करता है। शुरू की ऐतिहासिक मजिलो मे पशुओं, नमक, फर (ऊन) तथा अन्य वस्तुओ ने मुद्रा की भूमिका अदा की थी। बाद मे भी, जब समस्त ससार मे समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय पताका लहरायेगी तो मुद्रा के रूप में सोने की कोई आवश्यक्ता नही रह जायेगी।

लेनिन का यही तात्पर्य था जब उन्होने लिखा था : "हम जब ससार के पैमाने पर विजयी हो जायेंगे तो, मेरा विचार है, सोने को हम ससार के कुछ सबसे बडे शहरो की सडको पर सार्वजनिक शौचालयो को बनाने के काम मे इस्तेमाल करेंगे। यही सोने का सबसे 'उचित' इस्तेमाल होगा, साथ ही उन पीढियो के लिए यह अत्यन्त शिक्षाप्रद भी होगा जो इस तथ्य को भूली नही हैं कि सोने की ही खातिर १९१४-१८ के तथाकथित 'स्वतन्त्रता के लिए महान युद्ध' मे १ करोड इसानो को मौत के घाट उतारा गया था और ३ करोड लोगो को अपग बनाया गया था...। वे इस बात को जानते हैं कि इसी सोने की खातिर वे लोग एक नया युद्ध छेड कर अन्य दो करोड इन्सानो की जान लेने तथा ६ करोड लोगो को अपग बनाने पर उतारू हैं।

"लेकिन, सोने को इस मकसद के लिए इस्तेमाल करना चाहे जितना 'उचित', उपयोगी या मानवीय क्यों न हो...उस मंजिल तक पहुचने के लिए हमे अगली एक या दो दशाब्दियों तक उसी मुस्तैदी और तन्मयता से काम करते जाना है जैसे कि अब कर रहे हैं। उस समय तक हमे रूसी समाजवादी सोवियत जनतन्त्र के अदर सोने की अधिकाधिक बचत करनी है, उसे महगी से महगी कीमत पर बेचना है, उसकी सहायता से अन्य सामानों की खरीद कम से कम कीमत पर करनी है। जब तुम भेड़ियों के बीच रह रहे हो तो तुम्हें भी उन्ही की भाति गुर्राना चाहिए...।"[1]

मुद्रा का मूल तत्व

जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है, मुद्रा विनिमय के विकास का परिणाम है। माल उत्पादन का प्रभुत्व कायम होने के बहुत पहले ही मुद्रा का उदय हो जाता है। मुद्रा के बिना विकसित माल-उत्पादन की कल्पना तक नही की जा सकती। माल उत्पादन व्यवस्था के अन्तर्गत अलग-अलग उत्पादकों के बीच सामाजिक सम्बधो को सर्वांगीण बनाना केवल मुद्रा के माध्यम से ही सम्भव होता है।

किसी भी माल के मूल्य को किसी अन्य माल से उसकी तुलना, या विनिमय करके ही व्यक्त किया जा सकता है। विकसित माल उत्पादन के अन्तर्गत आम तौर पर चीजो का विनिमय सीधे तौर पर नही होता। सभी मालो को एक निश्चित रकम के रूप मे जाहिर किया जाता है।

प्रत्येक माल का विनिमय मुद्रा के माध्यम से होना चाहिए, अर्थात उसकी बिक्री की जानी चाहिए। यदि किसी वस्तु की बिक्री नही की जा सकती तो इसका अर्थ यह होगा कि उसके उत्पादक का श्रम बर्बाद हो गया। इसका अर्थ यह होगा कि उत्पादन मे अराजकता के फलस्वरूप उसने एक ऐसी वस्तु के उत्पादन मे अपने श्रम एव उत्पादन के साधनो को बर्बाद कर डाला, जिसकी कोई भी सामाजिक माग नही है। यदि उस वस्तु को नीची कीमत पर बेचना पड़ता है, तो इसका अर्थ है कि समाज ने उसके उत्पादक के श्रम-अश को स्वीकार नही किया। इस प्रकार मुद्रा का उदय माल मे निहित अन्तर्विरोधो के विकास और उनकी आगे की वृद्धि मे सहायक होता है।

मुद्रा के उदय से मालों का ससार दो ध्रुवों में विभाजित हो जाता है: एक ध्रुव पर तो समस्त साधारण माल होते हैं, और दूसरे पर, मुद्रा की भूमिका अदा करने वाला विशेष माल। इस वस्तु मे विशेष गुण पैदा हो जाते हैं और यह विशेषाधिकार प्राप्त वस्तु बन जाती है। मुद्रा एक सर्वव्यापी माल है। यह एक सार्वभौम समतुल्य है।

१. व्ला इ लेनिन, ग्रन्थावली, खण्ड ३३, मास्को १९६६, पृष्ठ ११३-१४,

मुद्रा के माध्यम से होने वाला माल-विनिमय वस्तु-विनिमय (अदल-बदल) से बहुत भिन्न होता है। सीधे तौर पर वस्तु-विनिमय के दौरान एक ही समय में जो वस्तु बेची जाती है उसकी खरीद भी होती रहती है। हर सौदा अपनी जगह एक अलग कार्य होता है। उदाहरण के लिए, दो शिकारी आपस में खालों और तीरों की अदला-बदली करते हैं। इस सौदे में सीधे तौर से भाग लेने वाले केवल दो पक्ष ही इस विनिमय से सम्बंधित होते हैं।

लेकिन जब विनिमय मुद्रा के माध्यम से किया जाता है, तो स्थिति बिलकुल ही बदल जाती है। जब एक बुनकर अपना कपडा बेचता है और प्राप्त धन से रोटी खरीदता है, तो वास्तव में वह रोटी के बदले अपने कपडे का विनिमय करता है। लेकिन यह विनिमय मुद्रा के माध्यम से होता है। अपना माल बेचने के लिए बुनकर को एक ऐसे खरीदार की तलाश होती है जिसके पास रकम हो, अर्थात वह एक ऐसा आदमी हो जो इससे पहले ही अपने माल की बिक्री कर चुका हो।

इस प्रकार मुद्रा के माध्यम से विनिमय में यह बात पूर्वनिहित रहती है कि माल उत्पादकों के बीच सर्वांगीण सम्बंध स्थापित हो तथा उनके बीच होने वाले सौदे लगातार एक-दूसरे से गुथते रहते हों। इसी के साथ, मुद्रा की सहायता से विनिमय से किसी समय पर होने वाले क्रय और विक्रय को अलग-अलग किया जा सकता है। उत्पादक अपनी वस्तु को बेच कर प्राप्त धन को कुछ समय तक के लिए अपने पास रख सकता है।

लेकिन उत्पादकों के बीच घनिष्ठ कड़िया मौजूद होने और उनके एक-दूसरे पर निर्भर होने के कारण कुछ मालों का—कुछ दूसरे मालों का क्रय किये बिना—विक्रय करने से कुछ मालों की बिक्री का अतिरेक हो जायगा यानी इन मालों के अति-उत्पादन का संकट पैदा हो जायगा। माल उत्पादन का और अधिक विकास तथा पूंजीवादी उत्पादन में उसका रूपान्तरण संकटों को अपरिहार्य बना देता है।

मुद्रा के काम
मूल्य का मापन

पूंजीवादी समाज में मुद्रा के कई काम होते हैं। मुद्रा (१) मूल्य के मापदण्ड, (२) परिचालन के साधन, (३) संचय के साधन, (४) भुगतान के साधन, तथा (५) सार्वभौम मुद्रा का काम करती है।

हर माल एक निश्चित रकम के बदले बेचा जाता है। यह रकम उस माल के मूल्य को प्रकट करती है। किसी माल की कीमत उसके मूल्य की मौद्रिक अभिव्यक्ति होती है।

किसी माल को बेचने या खरीदने से पहले उसके मूल्य को मुद्रा में मापना, अर्थात उसकी कीमत निश्चित करना, आवश्यक होता है। किसी माल के

विनिमय, अर्थात उसके क्रय या विक्रय, की पूर्व-शर्त यह है कि उसके मूल्य को मुद्रा के रूप मे मापा जाय । इन लेन-देनो मे मुद्रा, मूल्य के मापदड का काम करती है ।

मूल्य का मापदड बनने के लिए आवश्यक है कि मुद्रा का स्वय अपना मूल्य हो । शुरू-शुरू मे मुद्रा-माल की एक निश्चित मात्रा मूल्य के मापदड का काम करती थी । उदाहरण के लिए, ब्रिटेन मे आज भी यह इकाई पौण्ड स्टर्लिग कहलाती है, पहले यह एक पौण्ड चादी के बराबर होती थी ।

मुद्रा की इकाई—पहले वजन की एक मापदड, फिर एक सिक्का—और उसके अश कीमत के मानक का काम करते हैं । जब हम कहते हैं कि एक टन कच्चे लोहे की कीमत एक ग्राम सोने के बराबर है, या एक टन ताबे की कीमत ५ ग्राम सोने के बराबर है (या एक टन लोहे की कीमत ५ डालर तथा एक टन ताबे की कीमत २५ डालर है), तो कीमत के मानक की अभिव्यक्ति सोने के वजन की इकाइयों या मुद्रा की इकाइयो मे होती है ।

परिचालन का साधन

किसी माल के मूल्य का मुद्रा के रूप मे निर्धारण होने के बाद निर्णायक घडी आ जाती है अब उस माल का विक्रय किया जाना चाहिए, अर्थात मुद्रा से उसका विनिमय किया जाना चाहिए । मुद्रा के माध्यम से मालो के विनिमय को मालो का परिचालन कहा जाता है ।

यहा मुद्रा परिचालन के माध्यम के रूप मे काम करती है । मालों का परिचालन मुद्रा के परिचालन से अभिन्न रूप से जुडा होता है । कोई माल जब विक्रेता के हाथो से खरीदार के हाथ मे पहुचता है, तो मुद्रा खरीदार के हाथ से चल कर विक्रेता के हाथ में पहुच जाती है ।

मूल्य के मापदड का काम करने के लिए मुद्रा का नकद रकम के रूप मे सुलभ रहना आवश्यक नही है । हम सोवियत सघ की समस्त सम्पदा का मूल्य, एक भी रूबल पास मे हुए बिना, लगा सकते हैं । उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि इस साल इतने करोड रूबल की कीमत या माल तैयार हुआ है, तो हम एक निश्चित रकम की कल्पना मात्र करते हैं ।

परन्तु जब हम मुद्रा को परिचालन के साधन के रूप मे देखते हैं, तो मामला बिलकुल ही बदल जाता है । इस काम को पूरा करने के लिए मुद्रा को नकद रकम के रूप में सुलभ होना चाहिए । हम दस लाख रुपयो की कल्पना तो कर सकते हैं, पर इस काल्पनिक रकम की सहायता से कुछ खरीद नही सकते । लेकिन हमारे पास जो सिक्का होगा, उससे हम उसी के मूल्य के अनुरूप कोई-न-कोई वस्तु अवश्य खरीद सकेंगे ।

मूल्य का मापदड होने के लिए मुद्रा में स्वय मूल्य होना आवश्यक है ।

इसके उलट, परिचालन के माध्यम का काम पूरा करने के लिए उसमे मूल्य का होना आवश्यक नही।

किसी माल का विक्रेता अपने माल के बदले मुद्रा इसीलिए स्वीकार करता है ताकि उस मुद्रा को वह दूसरी वस्तु के विनिमय के लिए इस्तेमाल कर सके, अर्थात वह किसी दूसरी वस्तु की खरीद कर सके। जब तक मुद्रा परिचालन के साधन का काम करती रहती है, वह लोगो की थैलियो मे ज्यादा अरसे तक नही पडी रहती, उसकी गति वस्तुओं की गति की ठीक विपरीत दिशा में जारी रहती है। लगातार परिचालन मे होने पर वह क्रय-विक्रय के अलग अलग लेन-देनो मे केवल क्षणिक भूमिका अदा करती है। इससे परिचालन के साधन के काम मे सम्पूर्ण मूल्य मुद्रा—सोने—के स्थान पर वैकल्पिक, या उसकी प्रतिनिधि, मुद्राओ का इस्तेमाल सम्भव हो जाता है।

नोट (कागजी मुद्रा, बैंक नोट), चादी और तावे के सिक्के, आदि, सोने के ऐसे ही प्रतिनिधि हैं। इन प्रतिनिधि मुद्राओ (मूल्य के प्रतीको) मे या तो उनका अपना कोई मूल्य होता ही नही, या जिस का ये प्रतिनिधित्व करती हैं उससे बहुत कम मूल्य होता है। जिस प्रकार सूर्य की प्रतिबिम्बित रोशनी से चाद चमकता है, उसी प्रकार प्रतिनिधि मुद्राए भी असली मुद्रा—जो कि सोना है—के मूल्य को प्रतिबिम्बित करती हैं।

मूल्य का मापदड होने के लिए, मुद्रा की मात्रा का सवाल नही उठता। लेकिन परिचालन के साधन का काम पूरा करने के लिए उसका निश्चित मात्रा मे होना आवश्यक है।

एक हजार रूबल कीमत के माल के बिकने के लिए एक हजार रूबलो का होना जरूरी है, किसी ऐसी-वैसी मात्रा से काम नही चलेगा, बल्कि पूरे एक हजार रूबल चाहिए होगे। दूसरी ओर, वे एक हजार रूबल, जो किसी माल विशेष के बदले मे दिये गये हैं, बाद मे एक हजार रूबल की ही कीमत के दूसरे मालो के लिए परिचालन के साधन का काम कर सकते हैं।

बहुत से स्थानो पर मालो का एक साथ क्रय विक्रय होता है। इसलिए किसी समय विशेष पर मुद्रा सम्भरण (सप्लाई) की आवश्यकता, परिचालन मे शामिल सभी मालो की कुल कीमत पर निर्भर होती है। बदले मे, कुल कीमत इस बात पर निर्भर होती है कि सुलभ मालो की मात्रा क्या है और उनमे से प्रत्येक माल की कीमत क्या है। उदाहरण के लिए, एक वर्ष के अन्दर मुद्रा की कितनी सप्लाई की आवश्यकता होगी यह केवल इन्ही दो कारणो पर निर्भर नही होता, बल्कि इस पर भी निर्भर होता है कि मुद्रा के परिचालन की दर क्या है। मुद्रा के परिचालन की दर जितनी तेज होगी, मुद्रा उतनी ही कम मात्रा

मे आवश्यक होगी। इसके विपरीत, उसके परिचालन की रफ्तार यदि धीमी होगी, तो मुद्रा की अधिक मात्रा की आवश्यकता होगी।

सचय का साधन मुद्रा सार्वभौम सम्पदा की प्रतिनिधि है। उसे किसी भी समय किसी भी माल मे परिवर्तित किया जा सकता है। पूजीवाद के अन्तर्गत मालो को मुद्रा मे बदलना कठिन होता है, परन्तु मुद्रा को मालो मे बदलना कठिन नही होता। इसीलिए मुद्रा को सचय और जखीरेबाजी के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

सचय के साधन की भूमिका अदा करने के लिए आवश्यक है कि मुद्रा अपने पूरे अर्थों मे मुद्रा का काम करे। मूल्य के मापदड का काम करने की भाति ही, इस काम मे भी उसका अपना मूल्य होना चाहिए। लेकिन साथ ही, उसे हर समय नकद, अपने असली रूप, मे सुलभ होना चाहिए। इस प्रकार, उसमे परिचालन के साधन के गुण-धर्म भी मौजूद रहने चाहिए।

भुगतान का साधन वस्तुओ का क्रय-विक्रय अक्सर उधार होता है। खरीदार माल को प्राप्त तो कर लेता है, परन्तु विक्रेता को एक निश्चित समय गुजरने के बाद दाम चुकाता है। यहा मुद्रा भुगतान के साधन की भूमिका अदा करती है।

मुद्रा का यह काम विनिमय के विस्तार को प्रकट करता है। अलग-अलग माल उत्पादकों के बीच की कडिया अधिक घनिष्ठ हो जाती हैं तथा उनकी पारस्परिक निर्भरता भी बढ जाती है। खरीदार कर्जदार बन जाता है तथा विक्रेता एक महाजन। भुगतान का समय आने पर कर्जदार के लिए आवश्यक हो जाता है कि उस पर जितना कर्ज बकाया है, उतनी रकम वह कहीं से भी प्राप्त करे। उस समय उसे, कर्ज चुकाने के लिए, हर कीमत पर अपने माल को बेच डालना पडता है।

सार्वभौम मुद्रा अन्तत, मुद्रा सार्वभौम मुद्रा की भूमिका अदा करती है। विभिन्न देशों के बीच होने वाले व्यापार मे सोना किसी दूसरे माल के समान ही एक माल होता है। लेकिन दूसरे मालो स इसमे जो विशेष अन्तर है, वह यह कि यह एक ऐसा माल है जिसे सब स्वीकार कर लेते हैं, कोई भी इसे लेने से इन्कार नही करता। इसलिए, देशो के बीच व्यापार मे सोना मुद्रा का काम करता है।

सोना और कागजी मुद्रा पूजीवादी देशो मे पहले से यह अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता कि मालो के उत्पादन और मडी मे उसके रसे जाने की मात्रा क्या होगी। इसलिए परिचालन के लिए आवश्यक मुद्रा की मात्रा को भी सतुलित ढग से निश्चित नही किया जा सकता। वह मडी म होने वाले स्वत स्फूर्त उतार-चढ़ावो पर निर्भर रहती है।

सोने के सिक्के जब मुद्रा का काम करते हैं, तो सहज ही उनकी सख्या को व्यापार की माग के अनुसार कर लिया जाता है। मान लीजिए कि मालो का उत्पादन घटा दिया गया है, व्यापार कम हो गया है और मुद्रा बहुत ज्यादा है। मालो की कीमते चढने लगती हैं और मुद्रा की एक ही मात्रा के बदले अब पहले से कम वस्तुए खरीदी जा सकती हैं। ऐसी स्थिति मे सोने के सिक्को के मालिको के लिए ज्यादा लाभकारी यह होगा कि वे अपने सिक्को को जेवर बनाने वाले को वेच दें या उमे गाड रखें। सोने के सिक्को का एक भाग गला डाला जायगा या छिपा रखा जायगा, मुद्रा की मात्रा घट जायेगी, और एक बार वह फिर मडी की आवश्यकताओ के अनुरूप कर दी जायेगी।

पूजीवादी देशो मे खरीदारी और भुगतान के लिए सोने के सिक्को के स्थान पर कागजी प्रतीको का इस्तेमाल किया जाता है। इन कागजी-प्रतीको को बैंक जब परिचालन के लिए आवश्यक सीमित मात्राओ मे जारी करते हैं तो उनकी मात्रा स्वत स्फूर्त ढग से माल परिचालन की आवश्यकताओ के अनुरूप व्यवस्थित कर ली जाती है। इस प्रकार की कागजी-मुद्रा को बैंक-नोट कहते हैं।

लेकिन खर्चो को पूरा करने के लिए पूजीवादी देशो मे जब कागजी-प्रतीको को बडी मात्रा मे जारी किया जाता है, तो स्थिति बिलकुल ही दूसरी हो जाती है। उस हालत मे जारी किये गये नोटो की मात्रा परिचालन माघ्यम की आवश्यकता पर निर्भर नही करती। इस प्रकार के कागजी-प्रतीक बैंक-नोटो से अलग होते हैं और इन्हे कागजी-मुद्रा कहा जाता है।

मुद्रा-स्फीति तथा मेहनतकश जनता पर उसका प्रभाव

कागजी-मुद्रा का मूल्य-ह्रास हो सकता है। कागजी-मुद्रा का मूल्य-ह्रास तब होता है, जब यह मुद्रा बहुत बडी मात्रा मे जारी कर दी जाती है या माल का परिचालन घट जाता है।

मान लीजिए कि कागजी-मुद्रा आवश्यकता की अपेक्षा दो गुनी ज्यादा कर दी गयी है। ऐसी स्थिति मे खरीदार एक कागजी रुपये से मालो की आधी मात्रा ही खरीद सकेगा। मुद्रा का उसके पिछले मूल्य से आधा मूल्य-ह्रास हो गया है। मुद्रा के अत्यधिक मात्रा मे जारी कर दिये जाने के परिणाम-स्वरूप जो मूल्य-ह्रास होता है, उसे मुद्रा-स्फीति कहते हैं। पूजीवादी देशो मे मुद्रा-ह्रास से मेहनतकश जनता का जीवन-स्तर नीचे गिर जाता है। कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वालो को लगभग पहले के ही समान, या उससे कुछ अधिक, वेतन मिलता है—जब कि मालों के दाम तेजी से बढते जाते हैं।

शोषक वर्ग और उनके हितों की रक्षक पूजीवादी सरकारें जनता के जीवन-स्तर को घटाने तथा मेहनतकश जनता के शोषण को तेज करने के लिए प्रायः ही बहुत जल्दी मुद्रा-स्फीति की तरफ दौड पड़ती हैं।

३. पूंजीवादी उत्पादन के अन्तर्गत मूल्य का नियम

मूल्य का नियम कैसे कार्य करता है

निजी सम्पत्ति पर आधारित पूंजीवादी समाज में मूल्य का नियम, अन्य आर्थिक नियमों की भांति, अंधी शक्ति की तरह काम करता है। यह नियम प्रतियोगिता के माध्यम से, अर्थात सभी के बीच होने वाले भयकर जान लेवा संघर्ष के माध्यम से, काम करता है।

स्वतंत्र माल उत्पादकों के समाज मे हर ओर उत्पादन की अराजकता का साम्राज्य होता है। शाब्दिक अर्थ मे, अराजकता का तात्पर्य होता है—अलग-अलग माल उत्पादकों द्वारा अनियोजित उत्पादन का बोलबाला।

हम पहले देख चुके हैं कि किसी माल का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उसके उत्पादन पर सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की कितनी मात्रा खर्च हुई है। इसका अर्थ यह कदापि नही है कि हर माल का विनिमय दरअसल उसके पूरे मूल्य के अनुरूप होता है। किसी माल के मूल्य को उसकी कीमत, अर्थात एक निश्चित रकम, के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है। लेकिन मालो की कीमतें बाजार की स्थिति तथा पूर्ति और माग के बदलते हुए सम्बधो के फलस्वरूप लगातार चढा-उतरा करती हैं।

बाजार मे जब माल का उससे ज्यादा आधिक्य हो जाता है जितना कि उपभोक्ता खरीद सकते हैं, तो उसकी कीमत गिर जाती है, इसके उलट, जब किसी माल की पर्याप्त मात्रा नही होती और उसके लिए माग ज्यादा होती है तो उसकी कीमत चढ जाती है। इस कारण किसी माल की कीमत हमेशा ही उसके मूल्य के अनुरूप नही होती। मूल्य एक ऐसा बिन्दु होता है, जिसके इर्द-गिर्द कीमतें चढती-उतरती रहती हैं। मालो की कीमतें उनके मूल्य से कभी अधिक हो जाती हैं और कभी कम। यह उतार-चढाव बहुत ज्यादा भी हो सकता है।

कीमतों के इस उतार-चढाव से अलग-अलग निजी उत्पादको को यह पता चलता रहता है कि जिन वस्तुओ का वे उत्पादन कर रहे हैं, उनकी किसी निश्चित समय पर आवश्यकता है भी या नही। उदाहरण के लिए, अगर जूतों की कीमत उनके मूल्यो से नीचे गिर जाती है तो इसका अर्थ यह होगा कि बाजार मे जितने जूतो की जरूरत है, उससे ज्यादा जूतो का उत्पादन हो गया है। जूतो की कीमत घट जाने पर बहुत से जूता बनाने वाले दूसरे मालो के उत्पादन का काम अपना लेंगे। इससे बाजार मे लाये जाने वाले जूतो की तादाद घट जायगी। लेकिन अगर जूतो की कीमत उनके मूल्य से अधिक हो जाती है, तो, लाभप्रद बाजार स्थिति को देख कर, बहुत सारे नये लोग जूते

बनाने का काम करने लगेंगे और कुछ समय बाद बाजार मे इस माल की सप्लाई बढ जायगी।

हर माल उत्पादक अधे तौर पर, बिना किसी योजना के, काम करता है। उसके माल की बाजार मे जब तक बिक्री ठीक रहती है, उसकी इच्छा इस माल का अधिक से अधिक उत्पादन करने की रहती है। परन्तु जब उसे पता चलता है कि उसके माल की बाजार मे माग नही रही, या उसे कम कीमत पर, बिना मुनाफे, या घाटे की कीमत पर बेचना पडेगा, तो वह अपना उत्पादन घटा देने या उसे बिलकुल ही बन्द करके किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन का काम हाथ मे लेने को मजबूर हो जाता है।

इसलिए निजी सम्पत्ति के अन्तर्गत मालो की कीमतो मे उनके मूल्य से जो भटकाव होता रहता है, उसे मूल्य के नियम के कार्यान्वियन को समझने मे की गयी किसी भूल का परिणाम नही समझा जा सकता। इसके विपरीत, मूल्य के इर्द गिर्द कीमतो का उतरना और चढना ही एक मात्र विधि है जिसमे पूजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य का नियम काम कर सकता है, इस प्रकार, उत्पादन की उन विभिन्न शाखाओ के बीच सामाजिक श्रम का विभाजन असख्य उतार-चढावों के बीच झूलता रहता है, जिनके बिना समाज कायम नही रह सकता।

पूजीवाद के अन्तर्गत माल उत्पादन के सार्वभौम वितरण के परिणाम स्वरूप, उत्पादन अब छोटे-छोटे माल उत्पादको के हाथ मे नही रहता, बल्कि बडे-बडे पूजीपतियो के हाथ मे चला जाता है। पूजीवादी कल-कारखानो मे सैकडो हजार मजदूर कडी मेहनत करके अपना खून पसीना एक करते हैं। वे एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न मालो को भारी मात्राओ मे तैयार करते हैं, जो प्राय ससार के सुदूरतम कोनो मे बेचे जाते हैं। इन परिस्थितियो मे उत्पादन की अराजकता अपने पूरे रूप मे उभर कर सामने आती है। यह पूजीवाद का एक अभिन्न अग है और सकट के जमानो मे इसकी विनाशकारी [illegible] विशेष रूप से प्रकट होती है।

पूजीवाद के उदय और विकास में मूल्य के नियम की भूमिका

उत्पादन के साधनों के [illegible] के अतर्गत मूल्य के [illegible] के [illegible] स्वरूप अनिवार्य [illegible] का उदय होता है।

इस तथ्य से कि मालो का मूल्य उन पर [illegible] मे आवश्यक श्रम-काल द्वारा निर्धारित होता है, [illegible] के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। [illegible] होते। किसी एक उत्पादक को [illegible] सकते हैं, तो कोई दूसरा [illegible] सकता है। [illegible]

बाजार मे उनकी तैयारी पर खर्च हुए सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-काल—मान लें १५ घंटे—द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही बिकते हैं।

वह उत्पादक जो अपने माल के उत्पादन मे, औसत सामाजिक परिस्थितियो मे, आवश्यक श्रम से अधिक श्रम लगाता है, उसे अपने माल के बदले जो रकम मिलती है वह उसके श्रम-काल के एक अश की ही पूरक होती है। इसके विपरीत, वह उत्पादक जो अपने माल को सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-काल की अपेक्षा कम समय मे तैयार कर लेता है, पहले उत्पादक के मुकाबले मे फायदे मे रहता है।

परिणामस्वरूप विनिमय एक उत्पादक के लिए लाभप्रद होता है, दूसरे के लिए अलाभप्रद। प्रत्येक उत्पादक, माल के उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम-काल को घटाने के लिए अच्छे से अच्छे साज-सामान को इस्तेमाल करने का प्रयास करता है। इससे उसके माल की बिक्री के लिए अधिक लाभदायक परिस्थितिया उत्पन्न होने की आशा बढती है। लिहाजा अलग-अलग उत्पादको के बीच माल उत्पादन की अधिक लाभदायक परिस्थितियो और उनके अधिक लाभदायक विनिमय के लिए भयंकर होड़ छिड जाती है। इस सघर्ष के परिणामस्वरूप कुछ उत्पादक तबाह हो जाते हैं, जब कि कुछ दूसरे खूब अमीर बन जाते हैं। बाद की श्रेणी वाले अपने उत्पादन का विस्तार करते हैं, मजूरी पर मजदूर रखते हैं, नयी मशीनरी खरीदते है और पूजीपति बन जाते हैं। छोटे उत्पादको की बडी सख्या कर्जदार हो जाती है, वह अपने को अमीरों पर निर्भर पाती है, उसे बर्बादी के कगार पर पहुंचा कर सर्वहारा की कतारों मे झोक दिया जाता है।

मूल्य के नियम के अनुरूप मालो का विनिमय होने से उत्पादको के बीच स्तरीकरण आ जाता है। नयी प्रविधियो के फलस्वरूप मालो के उत्पादन पर खर्च होने वाला सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-काल घट जाता है। टेक्नालॉजीकल प्रगति से छोटे-छोटे उत्पादक—दस्तकार और कारीगर—जो बड़े-बड़े कारखानो का मुकाबला नही कर सकते, तबाह हो जाते है। उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के अन्तर्गत, माल उत्पादन लाजमी तौर पर पूजीवाद की ओर ले जाता है।

दोहराने के प्रश्न

१. माल उत्पादन का उदय किन परिस्थितियो मे होता है ?
२. माल के मुख्य गुण-धर्म क्या हैं ?
३. माल का मूल्य किस चीज से निर्धारित होता है ?
४. मुद्रा का मूल तत्व क्या है और उसके मुख्य काम क्या हैं ?
५. पूजीवाद के उदय और विकास मे मूल्य का नियम कौन सी भूमिका अदा करता है ?

अध्याय ४

पूंजीवादी शोषण का मूल तत्व

१. पूंजी और मजूरी

मुद्रा-पूंजी की वृद्धि

ब्रिटिश धर्माचार्य और अर्थशास्त्री रिचर्ड प्राइस ने पूंजीवाद के प्रारम्भिक जमाने मे हिसाब लगाया था कि अगर ईसवी सन के पहले वर्ष मे एक पैसे को चक्रवृद्धि ब्याज पर जमा कर दिया गया होता, तो पूंजीवादी युग आरम्भ होने तक बढ कर वह सोने के ऐसे गोले के बराबर हो गया होता जिसका आकार पृथ्वी से कई गुना बडा होता।

यह कल्पना इस माने मे दिलचस्प है कि पूंजीवादी शोषण के विचार का चित्रण यह बडी सफाई से करती है। पूंजीवादी समाज मे बिना कमाई की आमदनी का अधिग्रहण औद्योगिक या व्यापारिक प्रतिष्ठानो के मालिक ही नही करते; पूंजीवाद के अन्तर्गत परजीवियो की एक ऐसी वृद्धिमान सख्या होती है जो बिना उगली हिलाये बडी आमदनिया हस्तगत कर लेते हैं, क्योकि उनके पास भारी मात्रा मे पूंजी होती है, अर्थात मुद्रा की भारी रकम होती है। मुद्रा-पूंजी के मालिक अपनी रकम को कारोबार मे लगाते हैं ताकि उस रकम मे वृद्धि होती रहे। यह रकम बढती कैसे है? मुद्रा कोई ऐसा पौधा नही है जो सूर्य के प्रकाश मे फूलता-फलता रहे। मुद्रा की वृद्धि का सम्बध ऐसी किसी वृद्धि से नही है जैसी हम प्रकृति मे देखते हैं। मुद्रा या रकम मे वृद्धि केवल उसी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत हो सकती है, जिसमे पूंजीपतियो को मजदूरो की मेहनत का, बिना किसी भुगतान के, शोषण करने का अवसर प्राप्त हो।

पूंजीवाद के उदय की परिस्थितियां

पूंजीवाद का उदय किस प्रकार हुआ? पूंजीपति वर्ग और उसके चाकर इस बारे मे निम्न प्रकार की दन्त-कथा का प्रचार करते हैं। उनका कहना है कि प्राचीन काल मे विभिन्न रुझानो वाले लोग पृथ्वी पर रहा करते थे। उनमे से कुछ लोग बडे मेहनती और किफायती होते थे, और कुछ दूसरे काहिल तथा फजूल-खर्च। आम तौर पर पहली श्रेणी के लोगो ने बडे पैमाने पर दौलत जमा कर ली; परन्तु बाद की श्रेणी वाले गरीब व कंगाल बने रहे। इस प्रकार, उनका

कहना है, अमीर व गरीब तथा पूजीपतियों व मजदूरो के बीच विभाजन पैदा हुआ।

इन मनगढन्त कहानियो मे लेश मात्र सचाई नही है। वास्तविकता यह है कि पूजीवाद ने सामन्तवाद को हटाया और उसका स्थान ग्रहण किया; सामन्तवाद की तरह यह व्यवस्था भी एक शोषणवादी व्यवस्था थी। पूजीवाद के विकास का प्रारम्भिक स्रोत छोटे पैमाने पर किया जाने वाला माल-उत्पादन था। इसमे आपसी होड के दौरान कुछ लोग तवाह हो जाते हैं, कुछ दूसरे लोग मालामाल।

पूजीवाद के उदय की दो मुख्य शर्तें होती हैं। पहली शर्त यह है कि चन्द हाथो मे दौलत का भण्डार जमा हो, दूसरी यह कि गरीब और तवाहहाल लोगो की एक बडी फौज तैयार हो जाय, जो निजी तौर पर तो स्वतत्र हो पर जिनके पास न तो उत्पादन के कोई साधन हो न जीविका के, और जो पूजीपतियो की गुलामी करने हेतु स्वय को वेचने के लिए मजबूर हो जायें।

एक वार पूजीवाद का उदय हो जाने पर समाज का—उस व्यवस्था के आर्थिक नियमो के अनुरूप—विरोधी वर्गों मे विभाजन सुनिश्चित हो जाता है : पूजीपतियो के पास दौलत के अम्बार कायम रहते हैं, मजदूर वर्ग, पहले की ही तरह, सभी पदार्थों से वचित रहता है। पूजीवादी मालिको और पूंजी-विहीन सर्वहारा लोगो का एक साथ अस्तित्व पूजीवादी उत्पादन की लाजमी शर्त है। पूजीवाद के उदय के लिए ऐतिहासिक पूर्व-स्थिति तैयार करने की प्रक्रिया को पूजी का प्रारम्भिक सचय कहा जाता है।

पूंजी का प्रारम्भिक संचय

पूजीवाद के उदय से पहले, सामन्ती काल मे उत्पादन छोटे-छोटे किसानो या दस्तकारो द्वारा किया जाता था। कृषि ही मुख्य पेशा थी और जमीन ही उत्पादन का मुख्य साधन थी। किसान लोग जमीन से वधे होते थे और भूस्वामियो द्वारा उनका शोषण किया जाता था। साधारण उपकरण ही—जैसे कुदाल, हसिया, गिने-चुने गाय-बैल—किसानो की सम्पत्ति होते थे।

सामन्तवाद एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमे छोटे-छोटे उत्पादको का शोषण किया जाता था। ये उत्पादक निजी तौर पर पराधीन थे, मगर उत्पादन के साधनो—मुख्यतः जमीन—के मालिक होते थे। ऐसे उत्पादक को मजूरी पर आधारित मजदूर वनाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता यह थी कि उसे निजी पराधीनता से मुक्त किया जाय। पूंजीवादी गुलामी मे झोकने के लिए उसे अर्धदासता के शिकजे से छुडाना जरूरी था।

पूजीवादी व्यवस्था के दलाल, पूंजीवादी विकास के केवल इसी पहलू की बात करते हैं। सामती नियमो को नष्ट करने के लिए वे पूंजीवाद की प्रशसा के गीत गाते हैं और दावा करते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था मे इन्साफ और

आजादी का बोलबाला होता है। लेकिन, वे जानबूझ कर सिक्के के दूसरी ओर देखने से इन्कार कर देते हैं।

कोई उत्पादक मजूरी पर काम करने वाला मजदूर तभी बनता है, जब वह उत्पादन की सभी स्थितियो से "आजाद" कर दिया जाता है, जब वह स्वतत्र रूप से काम करने की सभी सम्भावनाओ से वचित कर दिया जाता है। पूजीवाद इस बात को मान कर चलता है कि उत्पादक को उन सभी उत्पादन साधनों से वचित कर दिया जाय, जो सामन्ती व्यवस्था मे उसे प्राप्त थे।

उत्पादन के साधनो से उत्पादकों का यही अलगाव—किसानो का जमीन से वचित किया जाना—पूजी के प्रारम्भिक सचय की सम्पूर्ण प्रक्रिया का आधार था। सामन्तवाद के विघटन के काल मे एक के बाद दूसरे देश मे सामन्ती नियम-कानूनो को समाप्त किया गया। लेकिन, किसानो को सामन्ती गुलामी से मुक्ति मिलने के साथ ही एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण "मुक्ति" भी मिल गयी। वह यह थी कि किसान अब तक जिस जमीन पर खेती करके अपनी जीविका चलाते थे, उस जमीन से भी उनको "मुक्त" कर दिया गया। किसानो के पास जमीन का केवल एक अश ही छोडा गया—और इसके लिए भी उनको मुआवजा चुकाना पडा था। "फालतू" लोगो को गाव छोडने और पूजीपतियो की दया पर निर्भर, मजदूरो की पल्टन मे शामिल होने के लिए—मजबूर होना पडा था। सक्षेप मे, इसी प्रक्रिया ने उभरते हुए पूजीवाद के लिए स्वतत्र मजदूरो को पैदा किया। अलग-अलग देशों में यह काम अलग-अलग रास्तो से पूरा हुआ, मगर इसकी मुख्य दिशा और मुख्य तत्व सभी जगहो मे समान थे।

हिंसा और लूटपाट के तौर तरीको को इस्तेमाल करके किसानो को भूमिहीन व आवासहीन सर्वहारा बना दिया गया। परिणामस्वरूप बडे-बडे भूखण्ड चन्द लोगो की मुट्ठी मे पहुच गये।

लेकिन, पूजीवादी उत्पादन के उदय के लिए केवल इतना ही काफी नही था। इसके अतिरिक्त, कुछ लोगो के हाथो मे, मुद्रा के रूप मे दौलत के बडे-बडे भण्डारो का इकट्ठा होना भी जरूरी था। इस मुद्रा का विनिमय किसी भी समय किया जा सकता था, इसलिए जरूरी था कि इस मुद्रा को उत्पादन के साधनों के रूप में परिवर्तित किया जाय तथा उत्पादन के लिए परिस्थितिया पैदा करने के वास्ते उसका इस्तेमाल किया जाय।

१५ वीं और १६ वी शताब्दियो की महान भौगोलिक खोजो के काल मे चन्द व्यक्तियो के हाथो मे दौलत के केन्द्रीकरण को बहुत बडा बढावा मिला था। अमरीका की खोज के बाद उस महाद्वीप मे ऐसे लोगो के पहुचने का ताता लग गया, जो मुफ्त की दौलत हासिल करने के बडे इच्छुक थे। अमरीका मे सोने और चादी के भडारो की खोज के बाद तो इनकी सख्या मे एक बाढ-सी

आ गयी। योरपीय देशो ने खुशहाल और समृद्ध देशो पर हमले किये और उनकी लूटपाट की। इन देशो के दुर्भाग्य का एक मात्र कारण यही था कि इनकी भूमि मे बहुमूल्य धातुओं का पता चल गया था।

पूजी के प्रारम्भिक सचय का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत था—औपनिवेशिक व्यापार। डच, ब्रिटिश और फ्रासीसी व कुछ अन्य देशो के लोगो ने तत्कालीन धनी भारत के साथ व्यापार बढाने के लिए ईस्ट इडिया कम्पनियो का निर्माण किया। इन कम्पनियो को उन देशो की सरकारो का पूर्ण सहयोग और समर्थन प्राप्त था। उन्हें औपनिवेशिक सामानो के व्यापार की इजारेदारी सौंप दी गयी थी।

योरप के देशो मे, विशेष रूप से ब्रिटेन मे, पूजी के प्रारम्भिक सचय का एक अत्यन्त लाभदायक स्रोत समुद्र पार के धनी देशो की लूटपाट था। सैकडो वर्षों तक ब्रिटिश—तथा बाद मे फ्रासीसी—पूजीपति वर्ग ने विदेशो को लूट कर एव उपनिवेशो मे खूनी डकैतिया डाल कर बेशुमार दौलत का सचय किया। हर स्थान पर राज्य-अधिकारियो ने, मुट्ठी भर हाथो मे दौलत के भडार जमा होने मे सहायता पहुचायी।

उत्पादन के साधनों पर निजी अधिकार

मई १९१९ मे, मास्को के लाल चौक मे भाषण करते हुए, लेनिन ने कहा था : "हमारे पोते-पोतिया पूजीवादी व्यवस्था के काल के दस्तावेजो और अन्य अवशेषो का अध्ययन बडे विस्मय और आश्चर्य के साथ करेंगे। उनके लिए यह समझना बहुत कठिन होगा कि कैसे यह सम्भव हुआ था कि मूल आवश्यकता की वस्तुओ का सारा व्यापार कुछ निजी व्यक्तियो के हाथो मे केन्द्रित था, कि कारखानो पर अधिकार केवल कुछ लोगो का था, कि कुछ लोग दूसरो का शोषण करते थे और कैसे बिना मेहनत या काम किये हुए कुछ लोग जिन्दा रह सकते थे।"[1]

उपरोक्त शब्दो को कहे हुए आधी शताब्दी गुजर गयी है। सोवियत सघ मे एक ऐसी पीढी तैयार हो गयी है जिसके लिए पूजीवादी व्यवस्था को समझ पाना बहुत कठिन है। यह पीढी पूजीवादी देशो के तौर-तरीको और नैतिक आचार-विचारो को आश्चर्य की दृष्टि से देखती है।

पूजीवाद निजी सम्पत्ति पर आधारित है। लेकिन उसके लिए केवल निजी सम्पत्ति का अस्तित्व ही काफी नही है। मूल महत्व की बात यह है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधन निजी सम्पत्ति होते हैं, अर्थात काम करने के लिए मनुष्य को जिस चीज की भी आवश्यकता होती है—जैसे जमीन, मशीनें, उपकरण, कच्चा माल, आदि—सभी पर निजी अधिकार होता है।

१. व्ला. इ. लेनिन, ग्रन्थावली, खण्ड २९, मास्को सस्करण १९६५, पृष्ठ ३३०.

महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पूजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो के अधिकाश भाग पर चन्द लोगो का—पूजीपतियो और भूस्वामियों का—निजी स्वामित्व होता है। जनसख्या के बहुसख्यक भाग के पास, अर्थात मेहनतकश जनता के पास, उत्पादन के कोई साधन नही होते और उन्हे कारखानो, खानो और जमीन के मालिको के पास मजदूरी करने को मजबूर होना पडता है।

पूजीवादी देशो मे छोटे दस्तकार और किसान भी होते है, जो साधारण उपकरणो की सहायता से अपने छोटे छोटे खेतो को जोतते-बोते है। ये छोटे उत्पादक बडे मालिको का मुकाबला नही कर सकते और इन्हे भी बडे पूजीपतियो तथा भूस्वामियो के हाथो लगभग मजदूरो की भाति ही उत्पीडन बरदाश्त करना पडता है।

पूजीवादी देशो मे उत्पादन के साधनो के बडे मालिक, जिनके पास दौलत के बडे भण्डार होते हैं, सख्या की दृष्टि से निहायत कम होते है, इसके विपरीत, सम्पत्तिहीन लोगो की सख्या जनसख्या का बहुत बडा भाग होती है। चूकि समस्त सामाजिक सम्पदा एव उत्पादन के समस्त साधनो पर चन्द लोगों का निजी अधिकार होता है, इसलिए सम्पत्तिहीन मजदूरो की विशाल सख्या को पूजीपतियो के लिए काम करने को मजबूर होना पडता है।

पूजी क्या है? एक पूजीवादी अर्थशास्त्री ने इस सवाल का जवाब इन शब्दो मे दिया है: "जागल युग का मनुष्य जगली पशुओ का पीछा करते हुए जो पहला पत्थर फेकता है, हाथ की पहुच के बाहर के फल को तोडने लिए वह जो पहली छडी उठाता है, उसमे हम उसे एक माल को पाने के उद्देश्य से दूसरे को हस्तगत करते देखते है और इस तरह हमे पूजी की शुरुआत का पता चलता है।"[1]

पूजी की यह परिभाषा पूजीपति वर्ग के लिए बडी ही उपयुक्त है। इसका उद्देश्य जनता को यह समझाना है कि पूजी का अस्तित्व हमेशा से रहा है और हमेशा ही रहेगा।

अगर श्रम का हर उपकरण पूजी होता है तो, जाहिर है, लोग बिना पूजी के नही रह सकते: क्योकि श्रम के साधन हमेशा से ही जनता के लिए आवश्यक रहे है और भविष्य मे भी आवश्यक रहेंगे। यदि हम इस परिभाषा को स्वीकार कर लें तो हमे उस बन्दर को भी, जो पत्थर की सहायता से नारियल तोडता है, एक पूजीपति मानना पडेगा।

परन्तु, यह युक्ति शुरू से लेकर आखीर तक गलत है। पत्थर और छडी श्रम के उपकरण है, शोषण के साधन नही हैं। साधारण मात्र उत्पादन के

१. कार्ल मार्क्स, पूजी, खण्ड १, मास्को १९६५, पृष्ठ १८४.

दौर मे मालो का मालिक अपनी उन चीजो को, जिनका उसके लिए उपयोग नही है, वेच डालता है ताकि अपने लिए उपयोग मूल्य वाले माल को खरीद सके। इस विनिमय का उद्देश्य स्पष्ट है : यह माल-उत्पादको की आवश्यकताओ को पूरा करने मे सहायक होता है।

एक पूजीपति जब अपनी रकम किसी कारोबार मे लगाता है, तो उसका उद्देश्य कुछ दूसरा ही होता है। उसका उद्देश्य होता है—मुनाफा कमाना। एक पूजीपति के पास मुद्रा की एक निश्चित मात्रा होती है। वह उसे बढाने, अर्थात मुनाफा कमाने, का प्रयास करता है। पूजीवादी उत्पादन के दौरान, कारोबार मे पूजीपति द्वारा लगायी गयी दौलत बढती जाती है।

पूजी कोई पदार्थ नही है बल्कि एक निश्चित सामाजिक सम्बध है। यह उत्पादन के साधनो के मालिको तथा इन साधनो से वंचित—इसीलिए शोषण के लिए झुकने को मजबूर—वर्ग के बीच का सामाजिक सम्बंध है। पदार्थ—जैसे इमारतें, मशीनरी, कच्चा माल, तैयार माल, आदि—पूजी नही हैं। लेकिन एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था इन्हे शोषण के साधनो मे परिवर्तित कर देती है और ये पूजी बन जाते हैं।

उत्पादन के साधन स्वय—अपने आप मे—पूजी नही हैं। वे पूजी—अर्थात मजदूरो से बिना भुगतान के उनका श्रम लूटने का साधन—निश्चित सामाजिक सम्बधो के अन्तर्गत ही बनते हैं। ये निश्चित सामाजिक सम्बध ऐसे हैं कि समाज मे दो परस्पर विरोधी वर्ग—उत्पादन के साधनो के निजी मालिको का वर्ग तथा सम्पत्तिहीन, मजूरी पर काम करने वाले, मजदूर अर्थात सर्वहारा वर्ग—पैदा हो जायें। ये सामाजिक सम्बध शाश्वत नही हैं। इसके विपरीत, ये सम्बध सामाजिक विकास की एक निश्चित मंजिल आने पर गायब हो जाते हैं।

रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति, तथा बाद मे अनेक दूसरे देशो मे समाजवादी क्रान्ति की विजय से यह बात साबित हो चुकी है कि जब पूजीपति वर्ग की सत्ता का तख्ता उलट दिया जाता है और उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व को समाप्त कर दिया जाता है, तो उत्पादन के ये साधन शोषण के साधन नही रह जाते।

माल के रूप में श्रमशक्ति

निजी पूजीवादी स्वामित्व के अन्तर्गत अधिकाश जनता के पास केवल एक ही चीज उनकी अपनी होती है : यह होती है काम करने की उनकी क्षमता तथा योग्यता—अर्थात, उनकी श्रमशक्ति।

हर समाज व्यवस्था मे मनुष्य के पास उसकी श्रमशक्ति होती है। लेकिन पूजीवाद ही ऐसी समाज व्यवस्था है, जिसमे श्रमशक्ति माल, अर्थात क्रय-विक्रय की चीज, बन जाती है। जब कोई पूजीपति भाड़े पर मजदूरो को रखता है,

तो वह एक निश्चित माल को खरीदता है। यह वही माल होता है, जिस पर मजदूरो का अधिकार होता है और जिसे वे बेच सकते हैं। पूजीवाद, माल उत्पादन के विकास की वह उच्चतम मजिल है जिसमे श्रमशक्ति भी माल बन जाती है।

श्रमशक्ति, कुछ निश्चित सामाजिक परिस्थितियो मे ही, माल बनती है। दास युगीन व्यवस्था के अन्तर्गत यह माल का रूप नही ले सकती। उस व्यवस्था के अन्तर्गत दास स्वय ही एक माल होता है, न कि उसकी श्रमशक्ति। दास स्वतत्र नही होता, वह दास-मालिक की सम्पत्ति होता है। चूकि वह स्वय अपना मालिक नही होता, इसलिए वह अपनी श्रमशक्ति को भी नही बेच सकता। यही बात किसान के बारे मे भी कही जा सकती है जो भूस्वामी का अर्धदास, या कमिया, होता है। वह भी स्वतत्र नही होता और भूस्वामी की सम्पत्ति (आशिक) होता है। इसी कारण, वह भी अपनी श्रमशक्ति को नही बेच सकता।

एक स्वतत्र किसान या दस्तकार भी, जो उत्पादन के साधनो का मालिक होता है, अपनी श्रमशक्ति नही बेचता। वह उसे अपने खेत पर या कारखाने मे, इस्तेमाल करता है। परिस्थितिया उस समय बदल जाती हैं, जब किसान को उसकी जमीन से निकाल बाहर किया जाता है और दस्तकार से उसके औजार तथा कच्चा माल छीन कर उसे तबाह कर दिया जाता है। तब जिन्दा रहने के लिए उनके पास अपनी श्रमशक्ति को बेचने के अलावा दूसरा कोई चारा नही रहता।

पूजीवाद की समाप्ति के बाद श्रमशक्ति माल नही बनी रहती। समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधन समाजवादी सम्पत्ति होते हैं। मेहनतकश जनता को यहा अपनी श्रमशक्ति नहीं बेचनी पडती। वह उसे सार्वजनिक सम्पत्ति के सस्थानो मे इस्तेमाल करती है।

श्रमशक्ति नामक माल के विशिष्ट लक्षण

जब कोई मजदूर किसी पूजीवादी सस्थान में काम करने के लिए जाता है, तो वह अपनी श्रमशक्ति को हमेशा के लिए बेच नही डालता, बल्कि एक निश्चित समय—एक दिन, एक सप्ताह, या एक महीने—के लिए ही बेचता है। इसके बदले मे उसे दैनिक, साप्ताहिक, या मासिक वेतन मिलता है।

हर माल की तरह श्रमशक्ति का भी एक निश्चित मूल्य होता है। हम जानते हैं कि किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन के लिए सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा के आधार पर तय किया जाता है। तो फिर, मजदूर जिस माल—अर्थात अपनी श्रमशक्ति—को बेचता है, उसका मूल्य क्या है?

कोई आदमी काम तभी कर सकता है जब वह अपने जीवन को कायम

रखे : खाये पिये, पहने ओढे, सिर के ऊपर साया पाये, अर्थात अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओ को पूरा करे। मजदूर की श्रमशक्ति को उपयोग लायक हालत मे रखने के लिए उसकी जीवनोपयोगी आवश्यकताओ का पूरा किया जाना जरूरी है।

लेकिन मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाली सभी चीजें—रोटी, मास, कपडे, मकान, आदि—पूजीवाद के अन्तर्गत माल है। उनके उत्पादन पर एक निश्चित मात्रा मे श्रम खर्च हुआ है, जो इन मालो के मूल्य मे मूर्तिमान है।

अतएव, माल के रूप मे श्रमशक्ति का मूल्य उन वस्तुओ के मूल्य के बराबर है जिनकी जरूरत मजदूर को अपनी कार्य क्षमता को बहाल रखने के लिए पडती है। दूसरे शब्दो मे, श्रमशक्ति का मूल्य इस शक्ति के मालिक के जीवन को बरकरार रखने के लिए आवश्यक जीविका के साधनो का मूल्य है।

पूजी को श्रमशक्ति के लगातार आगमन की आवश्यकता होती है। इसलिए मजदूरो को केवल उसके ही नही, बल्कि उसके परिवार के भी भरण-पोषण का अवसर दिया जाना चाहिए। पूजीपतियो को केवल अप्रशिक्षित मजदूरो की ही नहीं बल्कि प्रशिक्षण प्राप्त ऐसे हुनरमन्द मजदूरो की भी आवश्यकता होती है, जो जटिल मशीनो पर काम कर सकें। इसी कारण श्रमशक्ति के मूल्य मे मजदूर वर्ग की युवा पीढी के प्रशिक्षण पर किये जाने वाले कुछ खर्चे भी शामिल होते हैं।

माल के रूप म श्रमशक्ति की यही स्थिति होती है। माल बन जाने के बाद श्रमशक्ति का उपयोग मूल्य भी हो जाता है। श्रमशक्ति खरीदने वाले पूजीपति के लिए उसका उपयोग मूल्य भला क्या होता है? उसका उपयोग मूल्य होता है क्योकि वह मजदूर से काम लेता है और उस मजदूर के श्रम स ऐसा मूल्य उत्पन्न होता है जो माल के रूप मे श्रमशक्ति के मूल्य से अधिक होता है। माल के रूप मे श्रमशक्ति का यह लक्षण ऐसा है जो पूजीवादी शोषण की प्रक्रिया को समझने की कुजी है।

२. अधिशेष मूल्य का उत्पादन

मजदूर का अधिशेष श्रम—पूजीपति की दौलत का स्रोत

कारोबार हाथ मे लेने पर पूजीपति कारखाना खरीदता है या स्वय उसका निर्माण करता है, अर्थात् कारखाने की बिल्डिंग के निर्माण का भुगतान करता है, सभी आवश्यक उत्पादन के साधनो—मशीनो और उनके उपकरणो, कच्चे तथा दूसरे माल, ईंधन—को जमा करता है। लेकिन ये सभी चीजें उस समय तक निर्जीव और अन-उत्पादनकारी बनी रहती हैं, जब तक सजीव मानव श्रम उनमे नहीं लगाया जाता।

उसके बाद पूंजीपति भाड़े पर मजदूरों की नियुक्ति करता है। ये ही मजदूर लोग मशीनों को चलाते हैं और कच्चे माल को तैयार माल या वस्तुओं के रूप में बदल देते हैं। कारखाने का मालिक इन वस्तुओं को बेचता है और प्राप्त रकम से कच्चा माल खरीदता है, मजदूरों की मजदूरी अदा करता है, आदि।

नये ढंग से तैयार किये गये माल का मूल्य क्या होता है?

इस मूल्य में सबसे पहले और सर्वप्रमुख रूप से उन सभी मालों का मूल्य शामिल होता है, जिनका उपभोग इसके उत्पादन में हुआ है अर्थात कच्चे माल को दुरुस्त किया गया है, ईंधन खर्च हुआ है तथा मशीन घिसी है। मान लीजिए कि इन मालों का मूल्य दो लाख (२००,०००) काम के घंटों के बराबर या मुद्रा के रूप में चार लाख (४००,०००) रुपये है।

नये ढंग से तैयार किये गये माल के मूल्य में उक्त कारखाने में काम करने वाले मजदूरों के श्रम द्वारा निर्मित नया मूल्य भी शामिल होता है। मान लीजिए कि उक्त कारखाने में २०० आदमियों ने १०० दिनों तक रोजाना काम किया। अपने इस काम के दौरान उन्होंने १,६०,००० काम के घंटों के बराबर, या ३,२०,००० रुपयों का मूल्य पैदा किया।

इस प्रकार नये ढंग से तैयार की गयी वस्तु का कुल मूल्य ३,६०,००० काम के घंटों के बराबर या मुद्रा के रूप में ७,२०,००० रुपये हुआ।

इस प्रकार किसी माल के मूल्य में, उसकी तैयारी में उपयोग हुए पदार्थों का मूल्य, मशीनरी एवं उपकरणों की घिसाई का मूल्य, तथा उस माल के उत्पादन पर काम करने वाले मजदूरों द्वारा किये गये श्रम से उत्पन्न मूल्य, शामिल होता है। आइए, इस बात का पता लगाया जाय कि उक्त वस्तु के उत्पादन पर पूंजीपति का कितना खर्च हुआ।

उद्योगपति ने उत्पादन के लिए आवश्यक मशीनों और सामानों के लिए २००,००० काम के घंटों के लिए ४००,००० रुपये अदा किये। २००,००० काम के घंटों के अलावा उस नयी वस्तु के मूल्य में १,६०,००० काम के घंटों के बराबर वह मूल्य भी शामिल है जो पूंजीपति द्वारा भाड़े पर रखे गये मजदूरों ने अपने श्रम से उसमें जोड़ा है। मजदूरों के श्रम ने ३,२०,००० रुपयों के बराबर का नया मूल्य जोड़ा है।

पूंजीपति ने मजदूरों को इस समस्त मूल्य के बराबर मजदूरी अदा की या नहीं? इस सवाल के जवाब से ही पूंजीवादी शोषण के रहस्य का पूरा पता चल जाता है।

पूंजीवाद में श्रम की उत्पादकता का अपेक्षाकृत उच्च स्तर पूर्वनिहित रहता है। इस स्तर पर एक मजदूर अपने दैनिक श्रम से अपनी जीविका चलाने के लिए आवश्यक सामानों से अधिक सामान तैयार करता है। यही

कारण है कि मजदूर के श्रम द्वारा उत्पादित मूल्य और उसकी श्रमशक्ति के मूल्य अलग-अलग परिमाण के होते है । पहले का परिमाण दूसरे से कहीं ज्यादा होता है ।

इन दोनो परिमाणो का अन्तर ही पूंजी द्वारा श्रम के शोषण की एक लाजमी शर्त है, क्योकि श्रमशक्ति के मूल्य और मजदूर के श्रम द्वारा उत्पादित मालो के मूल्य के बीच के अन्तर को पूजीपति पूरा का पूरा हडप लेता है ।

पूजीपति मजदूरो को केवल उनकी श्रमशक्ति का मूल्य ही मजदूरी के रूप मे अदा करता है । मान लीजिए, मजदूर को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जीविका के साधनो के रूप मे ८ रुपये प्रति दिन की आवश्यकता होनी है । ऐसी स्थिति मे कारखानेदार २०० मजदूरो को १०० दिनो की मजदूरी के तौर पर १,६०,००० रुपयो की रकम अदा करता है ।

पूजीपति को उन १०० दिनो मे उसके कारखाने मे उत्पादित माल के लिए ७,२०,००० रुपये प्राप्त होते है । उक्त माल के उत्पादन पर उसका खर्च ४००,००० रु + १,६०,००० रु अर्थात ५,६०,००० रुपये होता है । १,६०,००० रुपयो के इस अन्तर से उसकी पूजी मे वृद्धि हो जाती है ।

हमारे उदाहरण मे हर मजदूर ने रोजाना आठ घटो तक काम किया और १६ रुपयो के नये मूल्य की रचना की । पूजीपति ने ८ घटे के काम के दिन के लिए मजदूर को ८ रुपये दिये, अर्थात उसने उसे केवल उसकी श्रमशक्ति का मूल्य ही अदा किया, दूसरे शब्दो मे, बस उतनी रकम अदा की गयी जो केवल ४ घटो के काम के मूल्य के बराबर थी । इस प्रकार, मजदूर ने ४ घटे तो अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बदले मे काम किया और बाकी ४ घटे पूजीपति के फायदे के लिए मुफ्त मे काम किया ।

इससे साबित होता है कि मजदूर जो श्रम किसी कारखानेदार के कारखाने मे खर्च करता है, उसे दो भागो मे बाटा जा सकता है । काम के दिन के एक भाग मे तो वह अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करता है । इसे आवश्यक श्रम कहते हैं । काम के दिन के दूसरे भाग मे वह जो मूल्य पैदा करता है उसको पूजीपति—मजदूर को बिना कोई मुआवजा दिये हुए—हथिया लेता है । इसको अधिशेष श्रम कहते हैं ।

इससे साबित होता है कि मजदूर का अधिशेष श्रम पूजीपति की दौलत का स्रोत है । वास्तव मे, यह पूजीवादी समाज मे समस्त बिना कमाई आमदनी का स्रोत है । उद्योगपतियो और व्यापारियो के मुनाफे, हिस्सेदारो के लाभाश, बैंकरो और महाजनो के ब्याज, भूस्वामियो का भूमि लगान, आदि, इसी स्रोत से निकलते हैं ।

अधिशेष मूल्य — मजदूर के अधिशेष श्रम से पैदा होने वाला मूल्य अधिशेष मूल्य कहलाता है। अधिशेष मूल्य मजदूरो के श्रम के उस अश से पैदा होता है जिसकी कोई मजदूरी उसे नही मिलती।

पूजीपतियो द्वारा मजदूरो के श्रम से पैदा होने वाले अधिशेष मूल्य का हथियाया जाना ही पूजीवादी शोषण का मूल तत्व है। अधिशेष मूल्य का उत्पादन और उसका पूजीपति द्वारा हथियाया जाना पूजीवादी उत्पादन पद्धति की प्रेरक शक्ति है।

पूजीवाद के पहले भी अधिशेष श्रम का अस्तित्व पाया जाता था। मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर प्रकार के शोषण का आधार, शोषक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग के अधिशेष श्रम का हथियाया जाना ही है।

मगर इसके बावजूद, दासता के तथा अर्धदासता के सामन्ती युग मे, जब प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का दौरदौरा था, अधिशेष श्रम का हथियाया जाना बहुत ही सीमित था। दासो के मालिक और सामन्ती भूस्वामी दासो और अर्धदास कमियो के उतने ही श्रम को हथियाते थे, जितना उन्हे अपनी आवश्यकताओ या सनक को पूरा करने के लिए आवश्यक था।

इसके विपरीत एक पूजीपति मजदूरो के अधिशेष श्रम से उत्पादित माल को नकद रकम के रूप मे बदल देता है। इस रकम को और अधिक अधिशेष मूल्य पैदा करने हेतु अधिशेष पूजी के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इसलिए पूजीवाद के अन्तर्गत अधिशेष मूल्य के लालच की भी कोई सीमा नही होती। पूजीपति मजदूरी के लिए गुलामी करने वाले अपने मजदूरो का शोषण तेज करने के वास्ते किसी भी तरीके को इस्तेमाल करने से बाज नही आते। जैसा कि मार्क्स ने लिखा है: पूजी सही मानो मे भेडियो जैसी लालची प्रवृत्ति का प्रदर्शन करती है।

अपने ग्रन्थ पूंजी मे मार्क्स ने पिछली शताब्दी के मध्य काल के एक ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता के शब्द उद्धृत किये हैं जो पूजी के स्वभाव मे ही निहित मुनाफे के लिए कभी न बुझने वाले लालच का प्रभावशाली ढग से चित्रण करते है। उसने लिखा है:

"कहा जाता है कि पूजी...उथल-पुथल और लडाई-झगडे से दूर भागती है और कायर होती है, जो कि बिलकुल सच बात है, लेकिन यह तो सवाल को बडे अधूरे ढग से पेश करना हुआ। पूजी मुनाफे के अभाव से या बहुत कम मुनाफे से परहेज करती है—जैसे पहले कहा जाता था कि प्रकृति शून्यता से परहेज करती है। पर्याप्त मुनाफा हो तो पूजी बडी साहसी बन जाती है। १० प्रतिशत मुनाफे की गारन्टी पर वह कही भी अपने विनियोग के लिए तैयार हो जायगी, २० प्रतिशत मुनाफा हो तो निश्चय ही उसमे उत्सुकता पैदा हो

जायगी, ५० प्रतिशत पर उसमे ढिठाई पैदा हो जायगी; १०० प्रतिशत मुनाफे पर वह समस्त मानवीय नियमो व कायदे-कानूनो को पैरो के नीचे रौंदने को तैयार हो जायगी, और, मुनाफा ३०० प्रतिशत हो तो वह कोई भी अपराध करने से नही हिचकेगी, कोई भी खतरा मोल लेने से नही झिझकेगी—भले ही उसके स्वामी को फासी तक हो जाय।'[1]

चल और अचल पूजी पूजी के विभिन्न तत्व अधिशेष मूल्य के उत्पादन मे अलग-अलग भूमिका अदा करते हैं। कारखानेदार अपनी पूंजी के एक भाग को उत्पादन के साधनो—कारखाने की इमारतो, मशीनरी, कच्चे माल और इंधन—मे बदल देता है। माल के उत्पादन मे इन सभी चीजो का मूल्य, उसके परिमाण मे किसी परिवर्तन के बिना, तैयार माल के मूल्य मे शामिल होता है। चूकि पूजी के इस भाग के मूल्य का परिमाण नही बदलता, इसलिए इसे अचल पूजी कहते हैं। अचल पूंजी को हम 'अ पू.' से सूचित करेंगे।

कारखानेदार अपनी पूजी के दूसरे भाग को मजदूर रखने, अर्थात श्रम-शक्ति खरीदने, के लिए इस्तेमाल करता है। अपने श्रम के द्वारा मजदूर नये मूल्य की रचना करते हैं। जैसा कि हम देख चुके है, यह मूल्य श्रमशक्ति के मूल्य से अधिक होता है, अर्थात मजदूरो की नियुक्ति पर खर्च किये जाने वाले पूजी के अश के मूल्य का परिमाण, पूजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान, बदल (बढ) जाता है; यही कारण है कि श्रमशक्ति खरीदने के काम आने वाले पूजी के अश को चल पूजी कहते हैं। चल पूजी को हम 'च. पू.' से सूचित करेंगे।

उत्पादन की पूजीवादी पद्धति के विशिष्ट लक्षण पूजीवाद के अन्तर्गत श्रम की प्रक्रिया अपने दो प्रमुख लक्षणो के लिए उल्लेखनीय है। प्रथम, इस प्रक्रिया मे मजदूर को पूजीपति के आदेशो के अनुसार काम करना पडता है। यही पूजीपति यह निश्चय भी करता है कि उत्पादन किस चीज का किया जायेगा, किस सिलसिले से किया जायेगा और किस विधि से किया जायेगा। द्वितीय, पूजीपति केवल मजदूर के श्रम का ही मालिक नही होता, बल्कि उसके उत्पाद का भी मालिक होता है। इससे पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर का श्रम जबरिया श्रम बन जाता है, निहायत अप्रिय बोझ बन जाता है।

पूजीपति के कारखाने मे मालो के उत्पादन के लिए मजदूर जो श्रम खर्च करता है, उसका दोमुखी चरित्र होता है। एक ओर, वह निश्चित उपयोग मूल्य पैदा करता है; दूसरी ओर, अधिशेष मूल्य वाला मूल्य पैदा करता है।

१. कार्ल मार्क्स, पूंजी, खड १, मास्को १९६५, पृष्ठ ७६०.

पूजीपति को अपने कारखाने मे उत्पादित मालो के उपयोग मूल्य मे कोई दिलचस्पी नही होती, उसे तो केवल मूल्य मे दिलचस्पी होती है, क्योकि इसी मूल्य मे मजदूरो के नि शुल्क श्रम द्वारा उत्पादित अधिशेप मूल्य निहित रहता हैं। पूजीपति का उद्देश्य समाज की आवश्यकताओ को पूरा करना नही होता बल्कि अधिशेप मूल्य—यानी मुनाफा—प्राप्त करना होता है।

किसी पूजीवादी कारखाने मे पैदा होने वाले माल के मूल्य के दो भाग होते हैं। प्रथम, उक्त वस्तु के उत्पादन पर कच्चे माल, ईधन, आदि, की एक निश्चित मात्रा खर्च हुई। इन सामानो का मूल्य और मशीनरी की घिसाई, तैयार माल के मूल्य मे शामिल होते है। द्वितीय, इन सबके अलावा माल के उत्पादन पर एक निश्चित मात्रा मे श्रम खर्च हुआ। इस श्रम ने जो मूल्य पैदा किया, वह भी तैयार माल के मूल्य मे शामिल रहता है।

इस तरह, पूजीवादी कारखाने मे काम करने वाले मजदूर के श्रम का दोहरा चरित्र होता है। प्रथम, वह उत्पादन मे उत्पादन के साधनो का मूल्य, अर्थात अचल पूजी का मूल्य भर देता है। द्वितीय, वह एक नये मूल्य की रचना करता है, जो चल पूजी के मूल्य की पूर्ति करता है। इसके अलावा उसमे एक निश्चित अधिशेप—यानी अधिशेप मूल्य—भी होता है।

श्रम अपना पहला काम ठोस श्रम के रूप मे पूरा करता है। इस तरह, उदाहरण के लिए, पटसन और तकुओ का मूल्य, तैयार माल—सूत—मे एक बुनकर के श्रम द्वारा ही डाला जा सकता है, किसी दर्जी या लोहार के श्रम द्वारा नही। श्रम अपना दूसरा काम मूल्य की रचना करने वाले अमूर्त श्रम के रूप मे करता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत श्रम प्रक्रिया के इन दोनो पहलुओ म स्पष्ट अन्तर है। आइए, मान लें कि बुनकर की श्रम उत्पादकता म १०० प्रतिशत की वृद्धि हो गयी और इस प्रकार वह अपने १० घटे के कार्य दिवस के दौरान तैयार किये गये माल मे पहले की अपेक्षा दुगना मूल्य जोडता है। परन्तु जिस कुल नये मूल्य की वह रचना करता है, वह अब तक के १० घटे वाले कार्य-दिवस के अनुरूप होता है।

इस प्रकार ठोस और अमूर्त श्रम का अतर उस समय भी स्पष्ट हो जाता है, जब हम पूजीवादी उत्पादन पद्धति पर चल और अचल पूजी के अन्तर के रूप म विचार करते हैं और इस बात का स्मरण रखते है कि यह अन्तर पूजीवादी शोषण के सार-तत्व को निरावरण करने म सहायता करता है।

पूजीवादी उत्पादन का उद्देश्य अधिशेप मूल्य की रचना करना है। उपयोग मूल्यो की रचना तो केवल उस उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन है, क्योकि उपयोग मूल्य एक माने मे मूल्य का ही वाहक होना है—और इसलिए भी कि

बिना उपयोग मूल्य के मूल्य का अस्तित्व ही नही हो सकता। आगे चल कर इस पुस्तक मे यह दिखाया जायगा कि पूजीवाद का विकास लाजमी तौर पर उद्देश्य—अर्थात अधिशेष मूल्य की रचना—तथा उद्देश्य प्राप्ति के साधनो——अर्थात उपयोग मूल्यो की रचना—के बीच अन्तर्विरोध पैदा करता है।

शोषण की दर

पूजीवादी शोषण कितना गहरा होता है ? इसका हिसाब इस बात से लगाया जा सकता है कि कार्य-दिवस को आवश्यक तथा अधिशेष श्रम-काल मे किस अनुपात मे बाटा गया है। अधिशेष श्रम-काल बढ जाने तथा आवश्यक श्रम-काल घट जाने पर पूजी द्वारा किये जाने वाले श्रम के शोषण की दर मे वृद्धि हो जाती है।

अधिशेष (अनचुकता) श्रम अधिशेष मूल्य मे सन्निहित रहता है जब कि आवश्यक (चुकता) श्रम चल पूजी के अनुरूप होता है। अधिशेष मूल्य का जो अनुपात चल पूजी से होता है, उसे अधिशेष मूल्य की दर कहा जाता है। यह दर पूजीपति द्वारा मजदूर के शोषण की दर की सूचक होती है।

हमारे उदाहरण म अधिशेष मूल्य की दर इस प्रकार है :

$$\frac{\text{१६०,००० रुपये की कीमत का अधिशेष मूल्य}}{\text{१६०,००० रुपयों की कीमत की चल पूजी}} \text{ अर्थात १०० प्रतिशत}$$

अधिशेष मूल्य को 'अ' से सूचित किया जाता है। इस प्रकार अधिशेष मूल्य की दर हुई $\frac{\text{अ मू}}{\text{च पू}}$

१९०८ मे, जारशाही रूस मे, पूजीवादी उद्योगो मे काम करने वाले २,२५४,००० मजदूरो को ५५५,७००,००० रूबल वेतन के रूप मे मिले यानी औसतन एक मजदूर को एक वर्ष मे २४६ रूबल मिले। इसी के साथ १९०८ मे पूजीपतियो को ५६८,७००,००० रूबलो का मुनाफा हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि हर मजदूर ने १९०८ मे मिल-मालिको को २५२ रूबलो का मुनाफा दिया।

लेनिन ने कहा था कि *यह हिसाब दिखाता है कि मजदूर अपने कार्य दिवस के छोटे भाग मे तो अपने फायदे के लिए काम करता था और बडे भाग मे पूजीपति के फायदे के लिए। अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत से भी अधिक थी।*

पूजीवाद के विकास के साथ साथ अधिशेष मूल्य की दर बढती रहती है। पूजीवादी देशो मे आज यह दर २०० से ३०० प्रतिशत तक, और कभी-कभी तो इससे भी ज्यादा, पहुच गयी है।

शोषण की दर बढ़ाने के दो तरीके

अधिकाधिक मुनाफे बटोरने की तलाश मे पूंजीपति—मजदूरो से हड़पने वाले अधिशेष श्रम का भाग हर सम्भव तरीके से बढाने का प्रयास करते हैं। वे अपने इस उद्देश्य को दो तरीको से प्राप्त करते हैं।

प्रथम, वे कार्य-दिवस को लम्बा कर देते हैं। कार्य-दिवस को लम्बा कर देने से हर मजदूर से हड़पे जाने वाले अधिशेष श्रम की मात्रा बढ जाती है। यदि पूंजीपति का बस चले तो वह मजदूरों को प्रति दिन २४ घटे काम करने के लिए मजबूर करे। मगर यह तो बिल्कुल ही असम्भव है : मजदूर को आराम करने, सोने, खाने, आदि, के लिए समय की आवश्यकता होती है। ऐसा न होने पर वह काम कैसे कर पायेगा ? इसके अलावा, मजदूर भी दिन पर दिन पूंजीपतियों द्वारा कार्य-दिवस को लम्बा करने की चालो का अधिकाधिक विरोध कर रहे हैं।

इस कारण, पूंजीपति अपने मुनाफो को बढाने के दृष्टिकोण से दूसरा तरीका अपना रहे है। वे नयी मशीनें लगाते है, समस्त नये अनुसन्धानो एव विकसित तकनीक का इस्तेमाल करते हैं। विकसित तकनीक के इस्तेमाल से मजदूरों को अपनी जीविका के साधन तैयार करने मे पहले की अपेक्षा कम श्रम खर्च करना पडता है। अतः टेक्नालॉजी का विकास होने से मजदूरों की जीविका के साधनो का मूल्य घट जाता है।

इसका अर्थ यह होता है कि मजदूर को उसकी श्रम-शक्ति के बदले मे जो रकम अदा की जाती है, वह उसका मुआवजा पहले की अपेक्षा कम समय मे चुका देता है। इसलिए पूंजीपति कार्य-दिवस को लम्बा किये बिना ही मजदूर के अनचुक्ता श्रम की पहले से अधिक मात्रा हड़प लेता है, अर्थात मजदूर के शोषण की दर बढ जाती है।

अधिक मुनाफो की खोज मे पूंजीपति मजदूरों के श्रम की गतिशीलता को हर प्रकार से बढा देते है। इसका अर्थ होता है कि मजदूर को प्रति घटा, या प्रति दिन, कार्य करने पर पहले की अपेक्षा ज्यादा शक्ति खर्च करनी पड़ती है, उसको पहले से कही ज्यादा तीव्रता के साथ काम करना पडता है। उदाहरण के लिए, यदि मजदूर को पहले एक दिन मे १०० चीजे तैयार करनी होती थी, तो अब उसी वेतन मे और उसी मशीन की सहायता से, १५०, या १८०, या २०० चीजें तैयार करनी होती हैं।

इस प्रकार पूंजीपति अधिशेष मूल्य, अर्थात अपने मुनाफों, को बढ़ा लेते हैं। पूंजीवादी कारखानो मे, श्रम की इस अधिक गतिशीलता से, दुर्घटनाओं तथा औद्योगिक आघातो की सख्या बढ़ जाती है, मजदूरों मे फैलने वाली

बीमारियो का जोर अधिक हो जाता है तथा समय से पूर्व ही उनके काम की क्षमता घट जाती है और बुढापा आ जाता है ।

पूजीवाद और टेक्नालॉजीकल प्रगति मुनाफो की तलाश मे पूजीपतियो ने सामाजिक उत्पादन की पूरी व्यवस्था को नया रूप दे दिया । पहले के शारीरिक श्रम पर आधारित छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन के स्थान पर उन्होने मशीन उत्पादन के आधार पर बडे-बडे उद्योगो की स्थापना की । कुकुरमुत्तो की तरह हर ओर कारखाने ही कारखाने नजर आने लगे और छोटे-छोटे उत्पादक बर्बाद होकर उजडने लगे । मशीनरी के आविष्कार और उसके इस्तेमाल से समस्त ससार मे पूजीवादी उत्पादन पद्धति का विस्तार हो गया ।

पूजीवादी मशीन उद्योग सबसे पहले ब्रिटेन मे पैदा और विकसित हुआ । थोडे ही समय के अन्दर (१८वी शताब्दी की आखिरी तिमाही तथा १९वी शताब्दी के आरम्भ मे) ब्रिटेन मे बहुत-सी मशीनें पैदा हो गयी, जिन्होने देश का पूरा रूप ही बदल डाला और उसको पहचानना कठिन हो गया । ब्रिटेन, जो पहले कृषि प्रधान देश था, एक औद्योगिक शक्ति बन गया । सारे देश मे बडे-बडे औद्योगिक केन्द्रो का उदय हो गया । काफी बडी सख्या मे औद्योगिक सर्वहारा वर्ग मैदान मे सामने आया । जल्दी ही, बडे पैमाने पर मशीन उद्योग एक देश से दूसरे देश मे फैल गया ।

क्या पूजीपति अपने कारखानो मे हमेशा ही नयी मशीनरी लगाने का प्रयास करते है ? नही । वे ऐसा उस समय तक नही करते जब तक उनके मुनाफो मे वृद्धि न हो । एक मशीन पूंजीपति के लिए उस समय तक लाभदायक होती है, जब तक उसके इस्तेमाल पर होने वाला खर्च मशीन हटाने के बाद नियुक्त होने वाले मजदूरो के वेतन से कम हो । इसका अर्थ है कि वेतन जितने ही कम होते हैं, पूजीपतियो को नयी मशीन लगाने मे उतनी ही कम दिलचस्पी होती है ।

पूजीवाद के अन्तर्गत एक ओर जहा उद्योग की किसी शाखा मे आधुनिकतम टेक्नालॉजी का चलन हो जाता है, वही दूसरी ओर कुछ अन्य शाखाओ मे अत्यन्त प्राचीन और पिछडी हुई टेक्नालॉजी भी जारी रहती है । अक्सर पूजीपतियो के लिए यह बात लाभदायक होती है कि मजदूर अपने घरों पर कुछ कामो को पूरा करें । महिलाए और बच्चे अपने घरो पर सारे दिन काम किया करते हैं । उनकी मजदूरी इतनी कम होती है कि पूजीपति को, घरो पर किये गये काम का भुगतान, कारखाने मे नयी मशीन लगाने के खर्च से कम करना पडता है ।

क्रान्ति से पहले रूस मे मजदूरो की एक बडी सख्या कुलियो के रूप में काम

करती थी । ये कुली नदी के किनारे दूर-दूर तक पैदल चलते हुए भारी भारवाहक नावो को किनारे की ओर घसीटा करते थे । इस अत्यन्त थका देने वाले श्रम का वेतन बहुत ही कम था । लेकिन तबाहहाल किसानो के पास कोई दूसरा पेशा भी नही था ।

यह सोचा जा सकता है कि इस मशीन युग मे मानव शक्ति की इस प्रकार की विवेकहीन बर्बादी की कल्पना केवल पिछडे हुए रूस मे ही की जा सकती थी । पर ऐसा है नही । मार्क्स ने पूजी मे बताया है कि १९वी शताब्दी के मध्य मे ब्रिटेन मे ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमे औरतो को नहरो के किनारे नावो को घसीटने के काम मे लगाया गया था । पूजीपतियों के लिए, इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु घोडो या मशीनो के इस्तेमाल स यह ज्यादा लाभदायक था ।

मशीनो का पूंजीवादी इस्तेमाल और मजदूर वर्ग

पूजीपति नयी मशीने केवल इसी उद्देश्य से लगाता है कि कार्य दिवस के [illegible] को छोटा किया जाय जिसमे मजदूर [illegible] काम करता है । इससे कार्य-दिवस के दूसरे अश को, जिसमे वह [illegible] के लिए अधिशेष मूल्य को पैदा करता है, बढाया जा सकेगा ।

पूजीवादी विकास की शुरूआती मजिल मे मजदूर नयी-नयी [illegible] के कट्टर विरोधी थे । मशीनो के आगमन से शारीरिक श्रम [illegible] की विशाल सख्या बेरोजगार होकर अपनी दैनिक रोटी से [illegible] और उसे भुखमरी का शिकार बनना पडता था ।

शुरू मे मजदूरो के स्वत स्फूर्त विरोध की अभिव्यक्ति [illegible] तथा धरती से उनको मिटा डालने की उनकी इच्छा मे [illegible], जहा सबसे पहले मशीनो की शुरुआत हुई थी, १९वी [illegible], "मशीन तोडको" का एक विशाल आन्दोलन उठ खडा [illegible], देशो मे भी, जहा पूजीवादी मशीन-उद्योग के उदय [illegible] बर्बादी और कगाली का शिकार होना पडा था, [illegible] खडे हुए ।

लेकिन, अभावग्रस्त और निराश लोगो के [illegible] मशीन उद्योग के विजयी अभियान मे कोई बाधा [illegible] स्फूर्त एव छिटपुट विरोध प्रदर्शन छोड कर [illegible] का मार्ग अपनाते हैं, तो पूर्ण रूप से ज्ञात [illegible] हैं, बल्कि दुश्मन वह पूजीवादी व्यवस्था [illegible] किया जाता है । मजदूरो के लिए हानि [illegible] होते, बल्कि उनके पूजीवादी इस्तेमाल [illegible] ।

समाजवादी समाज मे, मशीन मनुष्य की वफादार सहायक होती है तथा उसके श्रम को हल्का करने के साधन का काम करती है । समाजवाद के अन्तर्गत मशीनो का इस्तेमाल देश की सम्पदा को बढाता है तथा मेहनतकश जनता के भौतिक एव सास्कृतिक स्तर को ऊचा उठाता है । इसके विपरीत, पूजीवाद के अन्तर्गत मशीन, मजदूर की भयकर प्रतिद्वद्वी बन जाती है और उसको उसकी रोजाना की रोटी से भी वचित कर देती है ।

मशीन का उद्देश्य श्रम के भार को हल्का करना होता है, मगर वह श्रम की तीव्रता को हद से ज्यादा बढा देती है । इसका प्रभाव मजदूर पर बडा ही तबाहकुन पडता है । उसका शरीर थक जाता है, काम करने की क्षमता घट जाती है तथा वह बडी जल्दी एक प्रकार से अपग हो जाता है ।

मशीन प्रकृति की शक्तियो पर अधिकार कायम करने के मनुष्य के सघर्ष मे वफादार सहायक का काम करती है । किन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत शोषको के पास वही मशीन शोषितो के खिलाफ उनके सघर्ष मे भयकर हथियार का काम देती है । मशीन की सहायता से पूजीपति श्रम की स्थितियो को बिगाडते हैं और लगातार बढते हुए शोषण के खिलाफ मजदूरो के विरोध तथा सघर्ष को तोडने का प्रयास करते हैं ।

श्रम की उत्पादकता को बढा कर मशीन सामाजिक सम्पदा को बहुत ज्यादा बढा देती है । परन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत बढती हुई उत्पादकता के सारे फल पूजीपतियो द्वारा हडप लिये जाते हैं । और, ये ही पूजीपति मशीनो का इस्तेमाल मजदूर को कगाल बनाने के लिए करते हैं ।

इस प्रकार, पूजीवाद के अन्तर्गत मशीनो का इस्तेमाल गहरे अन्तर्विरोधो से परिपूर्ण है । पूजीवादी व्यवस्था के रहते इन अन्तर्विरोधो को सुलझाया नही जा सकता ।

क्या कसूर चाकू का है ?

पूजीवादी व्यवस्था के पक्षधर मशीनो का इस्तेमाल पूजीवादी ढग के अलावा और किसी ढग से सोच ही नही सकते । वे मशीनो के पूजीवादी इस्तेमाल मे निहित अन्तर्विरोधो को जाहिर करने वाले हर आदमी को सामाजिक प्रगति का दुश्मन घोषित कर देते हैं । पूजीपति वर्ग के इन दलालो का पर्दाफाश करते हुए मार्क्स ने दिखाया है कि इनके विचार चार्ल्स डिकेन्स के ऑलिवर ट्विस्ट के उस हत्यारे जैसे लगते हैं, जिसने अदालत मे नीचे लिखा बयान दिया था :

"जूरी के सज्जनो । इसमे कोई शक नही कि इस मुसाफिर का गला काट दिया गया है । लेकिन यह कसूर मेरा नही है । कसूर चाकू का है । तो क्या इस अस्थायी असुविधा के लिए चाकू का इस्तेमाल ही बन्द कर दिया जाय ? जरा विचार तो कीजिए, चाकू के बिना कृषि और व्यापार की क्या हालत होगी ?

क्या शरीर रचना विज्ञान के ज्ञान की तरह ही शल्य क्रिया में यह उतना ही उपयोगी नही है, साथ ही क्या दावत की मेज पर यह खुशी खुशी लोगो की मदद नही करता ? अगर आप चाकू को समाप्त कर देंगे, तो हम लोगो को एक बार फिर बर्बरता युग की गहरी खाई मे झोंक देंगे।"[1]

पूंजीपति और उनके हिमायती पूंजीवादी मशीन उद्योग से पैदा होने वाली असख्य मुसीबतो की बात सुन कर उसी हत्यारे की तरह दलील देने लगते हैं : "क्या आप उम्मीद करते है कि इस मामूली और अस्थायी असुविधा के लिए मशीनो का इस्तेमाल बन्द कर दिया जाय ?" किन्तु अपने हितो के लिए लडने वाले वर्ग-चेतन मजदूर प्राविधिक प्रगति के खिलाफ हरगिज नही होते। वे उसके हिमायती होते हैं। व जानते है कि उन्ह मशीनो के खिलाफ नही लडना है। इस किस्म का सघर्ष निरुद्देश्य होने के साथ साथ प्रतिक्रियावादी भी है, क्योकि इतिहास के चक्र को मशीन पर आधारित उत्पादन से शारीरिक उत्पादन की ओर पीछे मोड कर ले जाना असम्भव है। लडाई को पूजीवादी शोषण के खिलाफ निर्देशित किया जाना चाहिए, क्योकि इसी शोषण के फलस्वरूप प्राविधिक प्रगति के सारे फल गैर-मेहनतकश वर्गो को प्राप्त हो जाते हैं तथा समस्त सामाजिक सम्पदा के उत्पादको—मेहनतकशो—को तबाहहाल जिन्दगी का शिकार बनना पडता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत वेतन शोषण पर पर्दा डालते हैं

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, पूंजीवादी कारखाने में उजरती मजदूर का श्रम दो भागो मे बटा होता है चुकता एव अनचुकता श्रम। कारखानेदार मजदूर को जब उसकी मजदूरी का भुगतान करता है, तो मजदूर यह नही देख पाता कि उसको मिलने वाली मजदूरी उसके श्रम के केवल एक अश के प्रतिफल के ही बराबर है और उसके श्रम के दूसरे अश को पूंजीपति ने मुफ्त ही मे हस्तगत कर लिया है। मजदूरी का भुगतान इस रूप मे किया जाता है मानो मजदूर को उसके कुल श्रम का भुगतान किया जा रहा हो।

वास्तव मे पूंजीपति मजदूर को उसके द्वारा उत्पादित समस्त मूल्य का भुगतान नही करता, बल्कि केवल मूल्य के एक अश का भुगतान करता है। क्या मजदूर इस बात का पता लगाने मे सफल होता है कि प्रति दिन अपने मालिक के लिए जो मूल्य वह पैदा करता है, वह कितना बडा है ? कारखाने मे उसके काम के समय का बटवारा इस प्रकार नही किया जाता कि इतने समय मजदूर अपनी मजदूरी को पूरा करने के लिए काम करता है, और बाकी सारे समय अपने मालिक के फायदे के लिए काम करता है।

किसी माल का खरीदार उसका उपयोग तभी कर सकता है जब वह

१ कार्ल मार्क्स, पूंजी, खण्ड १, मास्को १९६५, पृ० ४४२.

उसकी कीमत चुरा दे। किन्तु पूजीपति माल—श्रमशक्ति—को खरीद कर उसकी कीमत का भुगतान उसके इस्तेमाल के बाद करता है।

मजदूरी का हिसाब दो तरीकों से लगाया जाता है। कुछ स्थानों पर मजदूरी का हिसाब काम की अवधि की लम्बाई—घंटों या दिनों—के अनुसार लगाया जाता है इस प्रकार की मजदूरी को समय-मजदूरी कहते हैं। कुछ दूसरे स्थानों पर उत्पादन की मात्रा के अनुसार मजदूरी तै की जाती है, इस प्रकार की मजदूरी को जाबत मजदूरी कहते हैं। लेकिन दोनों ही मामलों में यह गलत धारणा पैदा करने का प्रयास किया जाता है कि मजदूर अपनी श्रम-शक्ति को नहीं बल्कि अपने श्रम को बेचता है और जितनी भी श्रमशक्ति वह खर्च करता है, उस सबका वेतन के रूप में उसे भुगतान कर दिया जाता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत दी जाने वाली मजदूरी श्रम-काल के अधिशेष श्रम और आवश्यक श्रम में विभाजन पर पर्दा डालती है। मजदूरी के स्वरूप से इस बात का पता नहीं चल पाता कि पूजीपति मजदूर को उसके श्रम के केवल एक अंश का भुगतान करता है और उसके अधिशेष श्रम को मुफ्त में हड़प जाता है। पूजीवादी शोषण का स्वरूप मुदा ढका होता है।

इस प्रकार मजदूरी, पूजीपति द्वारा किये जाने वाले मजदूर के शोषण पर पर्दा डालती है और यह दिखाने का प्रयास किया जाता है मानो मजदूर को उसके श्रम का पूरा प्रतिफल मिल रहा हो। मजदूरी की यह प्रथा पूजीवादी समाज के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ये गलत धारणाए मजदूरों के दिमागों पर भी उस समय तक छायी रहती हैं, जब तक वे पूजीपति वर्ग के वैचारिक प्रभाव से मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेते। समाचारपत्र, धार्मिक संस्थाए, गिरजाघर, मन्दिर, पुजारी, विज्ञान, आदि, सभी मेहनतकश जनता के दिमाग में इस भ्रम की जड़े मजबूत बनाने का काम करते हैं।

मजदूरी और सर्वहारा वर्ग की आर्थिक स्थिति

पूजीपति मजदूरी को उसके न्यूनतम स्तर पर ले जाने का प्रयास करते हैं। यह बात सर्वविदित है कि मालों की कीमतों में उतार-चढ़ाव आया करता है। कभी तो वे मूल्य से ऊपर चढ़ जाती हैं, कभी नीचे गिर जाती हैं। परन्तु अन्य सभी मालों से बिल्कुल भिन्न श्रमशक्ति की कीमत, अर्थात मजदूरी, हमेशा उसके अपने मूल्य से नीचे गिरती रहती है।

पूजीपतियों ने मजदूरों की जेब काटने और उनकी असली आमदनी को घटाने के लिए तरह तरह की विधियां अपनायी हैं मगर उन सबका एक ही नतीजा निकला है कि मजदूरों को अपने खाने, कपड़ों और आवास के खर्चों में कटौती करनी पड़ती है।

मजदूरों को पूजीवादी देशों में सबसे ज्यादा शिकार होना पड़ता है—

जीविका के लगातार बढते खर्चों का। मजदूर को अपनी श्रमशक्ति बेचने के बदले मे जो रकम—अर्थात नाममात्र की मजदूरी—मिलती है, वह एक चीज है और उस रकम से वह जो खाना, कपडा या घरेलू आवश्यकता की वस्तुए खरीद पाता है, बिल्कुल दूसरी चीज। मजदूर उस रकम से अपनी जीविका के जितने साधन खरीद पाता है, वे ही उसकी असली मजदूरी होते हैं। जीविका का खर्च जैसे-जैसे बढता है, टैक्स बढते हैं, वैसे ही वैसे असली मजदूरी घटती जाती है और मजदूर वर्ग की स्थिति बिगडती जाती है।

पूजीवादी देशो मे मजदूरो की बहुत सी श्रेणियो को बहुत ही कम मजदूरी मिलती है तथा उत्पादन की कुछ शाखाए ऐसी होती है जिनमे सभी मजदूरो की मजदूरी बहुत कम होती है। यह बात सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख रूप से कृषि क्षेत्र पर लागू होती है। इसके अलावा कुछ दूसरे उद्योग भी है, जैसे कपडा उद्योग, जहा मजदूरी बहुत कम है। महिलाओ को पुरुषो से कम मजदूरी मिलती है। बहुत सी जगहो पर तो महिलाओ की मजदूरी पुरुषो की मजदूरी की आधी ही होती है।

अमरीकी सरकारी आकडो के अनुसार, उस देश मे साढे तीन करोड लोग गरीबी का जीवन बिता रहे हैं। अमरीकी सरकार ने गरीबी को "राष्ट्रीय विपत्ति" घोषित कर दिया है तथा फरेब फैलाने के लिए "गरीबी के खिलाफ युद्ध" का एलान कर दिया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि डीग भरे इस नारे के अन्तर्गत केवल कुछ अधकचरे कदम ही उठाये जा रहे हैं, जो करोडो जनो की तबाही की हालत मे कोई परिवर्तन लाने मे असमर्थ हैं।

रंग-भेद औपनिवेशिक और गुलाम देशो मे योरपीय मजदूरो को समान काम के लिए देशी मजदूरो की अपेक्षा १० से १३ गुना तक ज्यादा मजदूरी मिलती है। जातीय तथा राष्ट्रीय भेदभाव के कारण मजदूरो की बहुत बडी सख्या को हुनरमद श्रेणी से वचित रखा जाता है और उन्हे ही सबसे पहले मजदूरी से अलग भी किया जाता है।

औपनिवेशिक और गुलाम देशो मे अधिकाश जनसख्या को कोयला खनिको, कुलियो, खेत-मजदूरों आदि के रूप मे बहुत कठिन काम निहायत कम मजदूरी पर करना पडता है। उनको शिक्षा से वचित रखा जाता है।

अमरीका मे डेढ करोड अमरीकी नीग्रो लोगो को नागरिक अधिकारो से वचित रखा गया है तथा उनका अमानुषिक शोषण किया जाता है। नीग्रो जनसख्या के विशाल बहुमत को कुलियो, घरेलू नौकरो, बर्तन माजने वालों, धोबियों, आदि, के रूप मे बहुत ही कम मजदूरी के कामो को करने के लिए बाध्य किया जाता है।

अमरीका में बहुत से सस्थान और सगठन ऐसे हैं जो नीग्रो लोगों को काम

देने से ही इन्कार कर देते हैं। नीग्रो लोगो को यदि कभी काम दिया भी जाता है, तो वह सहायक का, या गैर-हुनरमद का, काम होता है।

मजूरी दासता पूजीवादी समाज मे श्रम की मजूरी, असल मे मजूरी-दासता होती है। रोम का दास जजीरो से जकडा होता था तो, मार्क्स के शब्दो में, मजदूरी कमाने वाला मजदूर अपने मालिक के साथ अदृश्य धागो से जकडा हुआ है। जमादार के कोडे का स्थान निहायत कुशलता के साथ कानून की किताब ने ले लिया है। उत्पादन की पूजीवादी पद्धति के कठोर नियमो ने मजदूर को पूजी के रथ से मजबूतों के साथ बाध दिया है।

किन्तु पूजीवादी शोषण पर, उसके विशिष्ट लक्षणो द्वारा उत्पन्न भ्रान्तियो एव शोषण के पहले के रूपो से उसकी भिन्नताओ के कारण, पर्दा पड जाता है। पूजीपति वर्ग मजदूरी पर आधारित श्रम के रूप से उत्पन्न भ्रमो का चालाकी से इस्तेमाल कर रहा है, ताकि मजदूर काम मे अपनी इतनी ज्यादा आर्थिक और आत्मिक शक्ति लगा दे जिसकी कल्पना दासप्रथा या सामन्तवाद मे भी नही की जा सकती थी। पूजीवाद ने "मुनाफे मे साझेदारी", "सामाजिक हिस्सेदारी" और '*जनता का पूजीवाद*" जैसे *अनेक सिद्धान्त गढ़े हैं*, जो एक ओर तो मुखभरी पर पर्दा डालते है और दूसरी ओर उसकी तीव्रता को बढाते हैं।

पूजीवाद के हिमायती इन सिद्धान्तो का इस्तेमाल मेहनतकश जनता को आध्यात्मिक गुलामी मे जकडे रखने के लिए करते है। पुरानी सडी गली व्यवस्था के दावेदार दावा करते हैं कि पूजीवाद का चरित्र बदल गया है और अब "पूजी का जनवादीकरण" हो गया है।

वे मेहनतकश जनता को यह समझाने का प्रयास करते है कि वह पूजीवाद के अन्तर्गत भी अपनी गरीबी को दूर करके जीवन की बेहतर स्थिति हासिल कर सकती है। वे पूजीवाद का चित्र एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के रूप मे पेश करते है जिसमे हर व्यक्ति को "अवसर की समानता" उपलब्ध रहती है। ये सब दावे सौ फी सदी झूठे हैं।

वास्तविकता यह है कि पूजीवाद अधिकाश मेहनतकश जनता को गरीबी, भूख, अभाव और विपत्ति के नरक मे झोक देता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत करोडो मेहनतकशो की आखों के सामने हमेशा भविष्य की अनिश्चितता, अस्तित्व की असुरक्षा, लगातार बिगडने वाली जीवन-स्थिति का भूत मडराया करता है।

पूजीवाद के विकास से मजदूरो की स्थिति बिगडती जाती है और पूजीपति वर्ग की दौलत लगातार बढती जाती है। साल-दर-साल शोषक वर्ग अपने हाथो मे दौलत के विशाल भडार केन्द्रित करते रहते हैं। इसके साथ मजदूर वर्ग तथा समस्त मेहनतकश जनता की दशा लगातार बदतर होती जाती है।

पूजीवादी समाज की रचना और उसका चलन ऐसा होता है कि उसे मजदूर हमेशा ही सम्पत्तिहीन सर्वहारा के रूप मे रहते हैं और उनके पास अपनी श्रमशक्ति बेचने के अलाव दूसरा कोई चारा नही होता। पूजीपति, इसके विपरीत, अधिशेष मूल्य से लगातार बढने वाली पूजी का मालिक बना रहता है।

मजदूरो और मेहनतकश जनता को शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था मे जिस अपमानजनक स्थिति से गुजरना पडता है, उसी से श्रम की ओर समाज का दृष्टिकोण भी निश्चित होता है, श्रम के बारे मे गलत विचारो का उदय होता है। दास-मालिक का विचार था कि श्रम करना स्वतन्त्र व्यक्ति की प्रतिष्ठा के खिलाफ है, वह तो तिरस्कृत दासो के हिस्से मे आया है। सामन्ती भूस्वामियो ने अपने "नीले रक्त" की श्रेष्ठता इसी बात मे देखी कि उन्होंने कुलीन उच्च वर्ग को काम करने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया था और श्रम का सारा बोझ "साधारण" आदमी के कधो पर डाल दिया था। पूजीपति वर्ग कपटपूर्ण ढग से श्रम की प्रशस्ति तो गाता है, परन्तु वह दूसरे लोगो, आम जनता, के श्रम की प्रशसा इसलिए करता है कि वही उसकी अमीरी का स्रोत होता है। वह अपने ऐश-आराम और मौज का निर्माण बिना कमाई आमदनी के आधार पर करता है।

शोषक समाज के समस्त स्वरूपो के अन्तर्गत श्रम को एक दुर्भाग्य, और पुराने वर्गों के दण्ड के रूप मे देखा जाता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण ने श्रम को एक भारी बोझा और अभिशाप बना दिया है।

पूंजीवाद—एक गंदा शब्द

पूजीवाद का शासन अधिकाश देशो मे आज भी कायम है। करोडो लोग उसके शासन के अन्तर्गत अपना जीवन बिता रहे हैं। आधुनिक पूजीवाद ने जनता पर विपत्ति का बोझ लाद दिया है, उस पर तबाही बरपा की है तथा उसे भविष्य की चिन्ता, शोषण और उत्पीडन का शिकार, बना दिया है। जब तक पूजीवाद कायम है, तब तक रक्तरजित युद्धो का खतरा हमेशा बना रहता है। इन युद्धो में काफी बडी सख्या मे नरसहार होता है। जनता ने युगो-युगो के दौरान अपने श्रम से जिन सास्कृतिक तथा भौतिक मूल्यो का अपार भडार सृजित किया है, वह भी इन युद्धो के दौरान नष्ट हो जाता है।

अभी हाल मे एक अमरीकी समाचारपत्र ने 'पूजीवाद" शब्द के स्थान पर दूसरे उपयुक्त शब्द का सुझाव देने वाले व्यक्ति के लिए एक भारी इनाम का एलान किया था। अपने एलान का स्पष्टीकरण करते हुए पत्र ने लिखा था कि "पूजीवाद" शब्द की कोई उपयोगिता अब नही रह गयी, जनता इससे बहुत असन्तुष्ट है, यह शब्द एक गन्दा शब्द बन कर रह गया है।

हा, यह सही है कि सभी देशो के करोडो इन्सानो ने पूजीवादी व्यवस्था पर लानत भेजी है । पू जीपति वर्ग के वफादार चाकरो को भी इस तथ्य को स्वीकार करना पडा है । किन्तु जनता का रोष केवल "पूजीवाद" शब्द पर नही, वल्कि इस शब्द के नाम वाली सामाजिक व्यवस्था पर वढ रहा है ।

शोषण व्यवस्था के आधुनिक पक्षधर "पूजीवाद" शब्द को अनेकानेक अजीब शब्दावलियो से बदलने के प्रयास मे जुटे हैं । वे पू जीवाद को "स्वतन्त्र व्यापार की व्यवस्था', 'निजी पहलकदमी की व्यवस्था", आदि, नामो से सम्बोधित करते हैं । किन्तु वे पूजीवादी व्यवस्था के चाहे जितने ही नाम क्यो न गढें, इससे उसके मूल तत्व की कुरूपता को बदलने मे सहायता नही मिल सकती ।

पूंजीवाद के अन्तर्गत स्वतन्त्रता एव समानता का कपटपूर्ण नारा पू जीपति वर्ग और उसके दलाल पूजीवादी व्यवस्था को स्वतन्त्रता और समानता की व्यवस्था के रूप मे पेश करके उसका ढोल पीटते हैं । किन्तु हर कदम पर तथ्य और घटनाए इस झूठ की वखिया उधेड रही है ।

पूजीवादी देशो के कानूना के अनुसार मजदूर, रस्मी तौर पर, "आजाद" होते है । पू जीपति को मजदूरो को वेचने या खरीदने का अधिकार नही होता । लेकिन, वास्तव मे पूजीपति को अपने उजरती मजदूरा पर असीमित अधिकार प्राप्त होते है वह उन्हे भुखमारी का शिकार बना सकता है । यह तो सही है कि मजदूर अपने काम करने के सस्थान को छोड सकता है, लेकिन ऐसा करते हुए वह केवल इतना कर सकता है कि अपने कन्धे से एक जुआ उतार कर दूसरा—उससे भी भारी जुआ—लाद ले, क्योकि उसे किसी दूसरे पू जीपति के यहा काम करना पडेगा जो पहले मालिक के समान ही उसका शोषण वडी निर्ममता से करेगा ।

इस प्रकार, पू जीवाद के अन्तर्गत पू जीपति को मजदूरो का शोषण करने के लिए पूर्ण एव अवाघ स्वतन्त्रता प्राप्त है तथा मजदूरो को यह "स्वतन्त्रता" है कि वे पू जीपतिया की गुलामी करने के लिए अपने को बेचते रहे ।

इसी तरह पू जीवाद के अन्तर्गत 'समानता" की चर्चा भी विल्कुल झूठी है । पू जीवादी क्रान्तियो ने कानून के सामने सभी नागरिको की समानता का एलान किया था । लेकिन, यह बात बडी आसानी से देखी जा सकती है कि शोषण की परिस्थितियो मे जनता के बीच न तो कोई समानता मौजूद है और न ही हो सकती है । शोषक और शोषित के बीच, अमीर और गरीब के बीच, उत्पीडक और उत्पीडित के बीच, समानता किस बात मे हो सकती है ?

पूजीपति वर्ग और उसके दलाल पू जी को व्यक्तिगत प्रयासो द्वारा कमायी

दौलत के रूप मे पेश करने की भरपूर कोशिश करते हैं। हजारो रूप मे यह मूर्खतापूर्ण किस्सा दोहराया जाता है कि अमुक-अमुक रईसो ने अपना जीवन बिल्कुल ही निर्धनता मे शुरू किया था तथा उन्होने अपनी किफायत, श्रम और व्यापार के प्रति अनुराग के कारण ही इतनी दौलत बटोरने मे सफलता पायी है। वे हर हथकण्डे से मजदूरो को यह यकीन दिलाने का प्रयास करते हैं कि उन्हे भी रईस या पूजीपति बनने का पूरा अवसर प्राप्त है। लेकिन असलियत यह है कि हजारो मजदूरो मे से कही एक तो छोटा दूकानदार बन पाता है और लाखो मजदूरो मे से एक पूजीपति। और, यह भी वह तिकडम चोरी और अपराध करके ही बनता है।

पूजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध

पूजीवाद के अन्तर्विरोध माल मे, माल उत्पादन की परिस्थितियों मे, तथा उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व के प्रभुत्व में निहित होते हैं। साधारण माल उत्पादन के दौर मे ही निजी तथा सामाजिक श्रम के बीच अन्तर्विरोध पैदा होता है। पूजीवाद के अन्तर्गत ये अन्तर्विरोध उत्पादन के सामाजिक चरित्र तथा श्रम के फलो के अधिग्रहण के निजी पूजीवादी स्वरूप के बीच होते है।

आधुनिक मशीन उद्योग के विकास के साथ साथ उत्पादन का स्वरूप अधिकाधिक सामाजिक होता जा रहा है। हर सस्थान मे सैकडो हजारो लोगो को नौकर रखा जाता है। अलग-अलग सस्थानो के बीच सम्बध नजदीक के होते है। इस प्रकार, उत्पादन की प्रक्रिया मे, सैकडो-हजारो ही नही बल्कि करोडो लोग एक दूसरे से जुडे होते हैं। लेकिन सामाजिक उत्पादन की पैदावार सम्पूर्ण समाज के हाथो म न पहुच कर मुट्ठी भर निजी मालिको द्वारा हथिया ली जाती है। पूजी प्रत्येक उद्योग धधे मे सैकडो हजारो मजदूरो के श्रम को अलग से सगठित करती है, किन्तु व्यक्तिगत पूजीपतियो द्वारा किये जाने वाले असम्बद्ध एव अराजकतापूर्ण उत्पादन का ही सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन पर आधिपत्य रहता है।

यही पूजीवाद का बुनियादी अन्तर्विरोध है जो उत्पादन की अराजकता मे, उत्पादन के पीछे घिसटती प्रभावकारी माग मे, पूजीपतियो और मजदूर वर्ग की बीच वर्ग सघर्ष मे प्रकट होता है।

अधिशेष मूल्य के सिद्धान्त का महत्व

पूजीवाद के अन्तर्गत शोषण पर पर्दा पडा रहता है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने ही पूजी द्वारा श्रम के शोषण के मूल तत्व को उजागर किया। पूजीवादी शोषण के रहस्य को मार्क्स द्वारा उद्घोषित अधिशेष मूल्य के सिद्धान्त से जाहिर किया गया है।

अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त पूंजीवादी देशो के मजदूर वर्ग एव समस्त मेहनतकश जनता को अपन उत्पीडन, गरीबी और अभाव के असली कारणो को समझने मे मदद देता है। वह सिखाता है कि मजदूरो और मेहनतकश जनता का उत्पीडन और अभाव कोई अचानक घटना नही होते, न ही ये अलग-अलग पूंजीपतियो के मनमाने शासन से पैदा होते है, बल्कि इनकी उत्पत्ति पूंजीवाद की सम्पूर्ण व्यवस्था से, पूंजीवादी उत्पादन सम्बधो के मूल तत्व से, होती है।

पूंजीवाद के पक्षधर इस तथ्य से इन्कार करने का प्रयास करते हैं कि पूंजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण किया जाता है। वे इस तथ्य को पेश करते हैं कि क्रय-विक्रय के दौरान मजदूर और पूंजीपति रस्मी तौर पर समान रूप से माल-मालिक होते हैं। मार्क्सवाद ने दिखाया है कि यह रस्मी समानता मजूरी की दासता वाली व्यवस्था के लिए पर्दे का काम करती है और असली असमानता की भयकरता को छिपाती है।

श्रमशक्ति का क्रय-विक्रय पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया मे केवल एक शुरूआत भर है। उत्पादन की प्रक्रिया मे ही मजदूर और पूंजीपति के बीच सम्बधो का सही रूप सामने आता है। ये सम्बध शोषक और शोषित के बीच के सम्बध होते हैं। अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच सम्बधो पर प्रकाश डालता है। यह स्पष्ट कर देता है कि किस प्रकार मजदूरो को भाडे पर रख कर, श्रमशक्ति का क्रय-विक्रय करके, मुट्ठी भर मिल-मालिको और भूस्वामियो के हाथो लाखो-करोडो मजदूरो की गुलामी पर पर्दा डाला जाता है।

अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त पूंजीवादी शोषण के मूल तत्व को प्रकट करता है। लेनिन ने अधिशेष मूल्य के सिद्धान्त को मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त की बुनियाद कहा है। यह पूंजीवादी समाज मे होने वाले वर्ग सघर्ष और वर्ग अन्तर्विरोधो के मूल कारणो का निरावरण करता है।

३. पूंजीवाद का विकास और मेहनतकश जनता की स्थिति

पूंजीपतियों की बढ़ती दौलत—पूंजी का सचय

ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है मानो पूंजीपति अपने अधिशेष मूल्य का जो चाहे कर सकता है। वास्तव मे ऐसे पूंजीपति भी होते हैं जो अपने मुनाफों को बहुत ही अविवेकपूर्ण ढग से खर्च करते हैं। किन्तु आम तौर पर कोई भी पूंजीपति हमेशा ही अपने मुनाफे में एक अश को उत्पादन के विस्तार मे लगाता है। यह सही है कि उसे ऐसा करने पर मजबूर करने के लिए कोई लिखित कानून नही है। परन्तु कुछ दूसरी प्रेरक शक्तियां—जैसे आपसी प्रति-

योगिता और मुनाफो की हवस—ऐसी होती हैं, जो उसे ऐसा करने को बाध्य करती है।

पूजी की मुनाफो के लालच की तुष्टि कभी नही होती। कोई उद्योगपति कितना ही अमीर क्यो न हो, उसके मुनाफे कितने ही ज्यादा क्यो न हो, वह और भी अधिक अमीर बनना चाहता है।

पूजीवादी समाज मे अपने की अपने स होड लगी रहती है। हर उद्योगपति अपने प्रतियोगी का गला घोटने, प्रतियोगिता मे उससे आगे निकल जाने, दूसरो के उद्योगों को हथियाने, मडी पर अपने आधिपत्य का रास्ता साफ करने तथा अपनी सम्पदा को दिन-दूनी रात चौगुनी बढाने का भरपूर प्रयास करता है। किसी पूजीपति को यदि अपने पडोसी के खिलाफ इस लडाई म परत होकर समाप्त हो जाना मजूर नही है, तो उसे अपने मुनाफे का एक बडा भाग अपनी पूजी मे शामिल करना होगा—उसे उत्पादन के काम मे लगाना होगा।

अधिशेष मूल्य के एक भाग के पूजी मे शामिल किये जाने को पूजी का सचय कहते हैं। हर वर्ष अधिशेष मूल्य के एक भाग को सचित करके, पूजीपति लगातार बढने वाली पूजी का मालिक बन जाता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि किसी पूजीपति के उद्योग का मूल्य शुरू मे १,०००,००० रुपये था। यदि हर वर्ष वह ५०,००० या १००,००० रुपयो का सचय करे तो १० वर्षों के अन्दर ही वह अपनी पूजी को ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक बढा लेता है और १,५००,००० रुपयो से लेकर २,०००,००० रुपयो तक की पूजी का मालिक बन जाता है।

पूजी एक दूसरे तरीके से भी बढती है। मुनाफो की हवस पर आधारित व्यवस्था मे मजबूत लोग कमजोरो का गला घोट देते हैं, बडा पूजीपति अपने से कमजोर और छोटे पूजीपतियो को निगल जाता है। अपने बर्बाद प्रतियोगियो के कारखानो को नाम मात्र के पैसो मे खरीद कर, या कर्जों की अदायगी के तौर पर उन पर कब्जा करके, बडा पूजीपति अपनी पूजी को बढ़ा लेता है। इस प्रकार पारस्परिक सघर्ष के दौरान भी पूजी बढती है, जिसमे चन्द लोगो की जीत होती है, अधिकाश लोग तबाह व बर्बाद हो जाते हैं, और बहुत सी अलग अलग पूजिया मिल कर एक हो जाती हैं।

बडे पैमाने पर उत्पादन, छोटे पैमाने के उत्पादन से ज्यादा लाभकारी होता है। प्रथम श्रेणी के उत्पादन मे मशीनो का बडे पैमाने पर प्रयोग सम्भव होता है। वह छोटे पैमाने पर किये जाने वाले उत्पादन की अपेक्षा श्रम की उत्पादकता को उच्चतर स्तर तक बढा सकता है। यही कारण है कि बडे पैमाने के उद्योग दस्तकारी को लगातार समाप्त करते जाते हैं। पूजीपतियो मे भी लगातार सघर्ष चलता रहता है। इसका नतीजा यह होता है कि छोटे छोटे

उद्योग-धधे नष्ट होते जाते हैं और अधिक सख्या मे मजदूरो से काम लेने वाले बडे-बडे उद्योगो के मालिक विजयश्री प्राप्त करते हैं। जो उद्योग जितना ही बडा होता है, वह उतना ही ज्यादा अधिशेष मूल्य हथियाता है और इस प्रकार उतनी ही जल्दी उसकी पूजी का सचय होता जाता है।

परिणाम यह होता है कि पूजी की बहुत बडी बडी रकमे गिने-चुने बडे-बडे धन्ना सेठो की पूजी बन जाती हैं। मुट्ठी भर लखपति और करोडपति भारी सम्पदाओ के मालिक बन जाते हैं और वे ही लाखो-करोडो इन्सानो की किस्मत का फैसला करने लगते हैं। मजदूर वर्ग के श्रम से उत्पादित सम्पदा चन्द पूजीपति मिल-मालिको के हाथो मे केन्द्रित हो जाती है और हर दशाब्दी म यह लगातार बढती जाती है। इसके साथ ही जो लोग जीवन की समस्त सुन्दर वस्तुओ की रचना करते हैं, समस्त ससार के लिए भोजन और वस्त्रो का उत्पादन करते हैं, उन्हे अधिकाधिक कठिनाइयो और परेशानियो का सामना करना पडता है।

यदि पूजीपति मजदूरो के अनचुकता श्रम को न हथियाये, तो कुछ ही वर्षों मे उसकी पूजी घुल कर समाप्त हो जायेगी। वह हर वर्ष अपने ऐश व आराम पर भारी रकमे खर्च करता है और कुछ ही दिनो मे वह अपनी पूरी पूजी खा जायेगा। किन्तु असलियत यह है कि उसकी पूजी घटती बिलकुल नही है। वह बढती जाती है।

इस रहस्य का भेद इस तथ्य मे निहित है कि मजदूर वर्ग के अनचुकता श्रम को हथियाया जाता है। पूजी का प्रारम्भिक स्रोत कुछ भी क्यो न रहा हो, कुछ समय बाद वह दूसरे लोगो के अनचुकता श्रम का सचय बन जाती है।

पूजी का सचय और मजदूर वर्ग

पूजी के सचय के मजदूर वर्ग के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। उत्पादन का विस्तार करता हुआ पूजीपति ऐसी मशीनो का प्रयोग शुरू करता है, जिनमे कम स कम मानव श्रम की आवश्यकता होती है। इससे पूजी के दोनो भागो —अचल तथा चल पूजी—के बीच सम्बधो मे परिवर्तन हो जाता है। अचल पूजी, चल पूजी की अपेक्षा तेजी से बढने लगती है।

पूजीपतियो के हिमायतियो का दावा है कि चूकि उत्पादन का विस्तार होता रहता है, इसलिए नयी मशीनो द्वारा बेरोजगार बनाये गये मजदूरो को दूसरी जगह काम मिल सकता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि मशीनो द्वारा बेरोजगार किये गये मजदूरो की सख्या उत्पादन मे विस्तार से अधिक होती है। इसके अलावा, उत्पादन का विकास अनियमित ढग स होता है कुछ उद्योगों का विस्तार होता है तथा उनम नय मजदूर रखे जाते है, जब कि कुछ अन्य उद्योगो का ह्रास होता है और उनम मजदूरो की छटनी की जाती है।

इस प्रकार पूजीवादी उत्पादन का क्रम, उद्योगपति के लिए काम करने वालों की एक आरक्षित सख्या को स्थायी तौर पर सुनिश्चित कर देता है। लेकिन बात इतनी ही नही है। पूजीवाद के अन्तर्गत कभी समाप्त न होने वाले अन्य ऐसे स्रोत हैं जो बेरोजगारो की पल्टन मे वृद्धि करते रहते हैं। ग्रामीण अंचलो से लगातार आने वाले स्वतन्त्र मजदूरो का ताता बधा रहता है। कृषि से लाखो-करोडो लोगो, भूमिहीन खेत मजदूरो तथा बेजमीन किसानो के लिए जीविका के साधनो का प्रबध नही हो पाता। वे अपने छोटे-छोटे खेतो को छोड कर शहरो मे जाकर काम की खोज करने को मजबूर हो जाते है। वे सीधे पूजीवादी कारखानो के सामने जाकर खडे हो जाते है।

इसके अलावा, दस्तकारो, छोटे व्यापारियो तथा छोटी-छोटी वर्कशापो के मालिको की भी बहुत बडी सख्या होती है। वे अपने छोटे-छोटे व्यवसायो से कितनी ही मजबूती से चिपके रहने का प्रयास क्यो न करें, उनकी स्वतन्त्रता हर घडी खतरे मे बनी रहती है। बडे कारखानो से उनकी प्रतियोगिता, जीविका के बढते हुए खर्च, भारी टैक्सो के बोझ, आदि, के परिणामस्वरूप वे तबाह हो जाते है और बेरोजगारो की कतारो मे घिसटते आते है।

पूजी के संचय का सर्वव्यापी नियम

कोई पूजीपति जब कोई नयी साज-सज्जा लगाता है, तो वह अपने कारखाने की मुनाफा कमाने की क्षमता बढाने का प्रयास करता है। टेक्नालॉजी के क्षेत्र मे होने वाले नये-नये अन्वेषण, मजदूरो की जीविका के साधनो का मूल्य घटाते रहते हैं। उत्पादन के लिए अब पहले की अपेक्षा कम श्रम की आवश्यकता पडती है। मजदूर अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर काम पहले से कम घटो मे पूरा कर देता है।

यदि १० घटे के काम के दिन का बटवारा पहले ५ घटे के आवश्यक श्रम और ५ घटे के अधिशेष श्रम मे था, तो अब—टेक्नालॉजी के विकास के साथ—आवश्यक श्रम ४ या ३ घटे ही रह जाता है तथा अधिशेष श्रम की मात्रा बढ कर ६ या ७ घटो तक पहुच जाती है। इसका अर्थ यही निकलता है कि यद्यपि कार्य-अवधि वही बनी रहती है, फिर भी पूजीपति मजदूर के अनचुकता श्रम के पहले से कही अधिक भाग को—अर्थात अधिशेष श्रम को—हथिया लेता है।

इस प्रकार, पूजी का सचय पूजीपतियो द्वारा मजदूरो के शोषण की लगातार बढती हुई दर के साथ ही बढता रहता है। पूजीवाद के अन्तर्गत सामाजिक सम्पदा मे जितनी ही ज्यादा वृद्धि होती है, भुखमरी और गरीबी का शिकार होने के लिए बेरोजगारो की पल्टन मे उतना ही इजाफा होता है। एक ओर समाज की एक धुरी पर जहा सम्पदा का अम्बार लगा होता है, वही दूसरी

धुरी पर—अर्थात समाज की समस्त दौलत का उत्पादन करने वाले वर्ग पर—विपत्ति, सख्त महनत और असुरक्षा का पहाड टूटा करता है।

पूजीवादी सचय का यही है वह नियम जिसे कार्ल मार्क्स ने उद्घाटित किया था।

मजदूर वर्ग की स्थिति मे सापेक्ष और बुनियादी गिरावट

पूजी द्वारा श्रम के शोषण की बढती हुई दर का अर्थ यह होना है कि मजदूर वर्ग जिस दौलत का उत्पादन करता है, उसमे उसका हिस्सा लगातार घटता जाता है।

किसी देश विशेष मे एक निश्चित समय के दौरान, मिसाल के लिए एक वर्ष मे, जितने मूल्यो का उत्पादन होता है उसके योग को उस देश की राष्ट्रीय आय कहा जाता है। पूजीवादी देशो मे राष्ट्रीय आय मे मजदूर वर्ग का हिस्सा योजनाबद्ध तरीके से घटता जाता है। इसके साथ ही पूजीपति वर्ग और उसके दुमछल्लो द्वारा हथियायी गयी राष्ट्रीय आय का हिस्सा लगातार बढता जाता है।

उदाहरण के लिए, द्वितीय विश्व युद्ध के पहले, अमरीका की राष्ट्रीय आय मे मजदूर वर्ग का हिस्सा ५४ प्रतिशत होता था। युद्ध के बाद यह घट कर ४२ प्रतिशत रह गया। इसी दरम्यान ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय मे मजदूर वर्ग का हिस्सा ४५ प्रतिशत से घट कर ४० प्रतिशत रह गया। अमरीका और ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय मे शोषक वर्गों का हिस्सा लगातार बढता जा रहा है। सर्वहारा वर्ग का जितना घाटा होता है, उतना ही पूजीपति वर्ग के लिए फायदा होता है।

इस प्रक्रिया से मजदूर वर्ग की स्थिति मे अपेक्षाकृत गिरावट आती रहती है। इसको अपेक्षाकृत इसलिए कहा जाता है, क्योकि मेहनतकश जनता तथा गैर मेहनतकश जनता की आमदनियो के सम्बध मे—अर्थात मजदूर वर्ग और पूजीपति वर्ग के जीवन स्तरो के सम्बध मे—परिवर्तन होता रहता है। एक ओर मजदूर वर्ग के जीवन स्तर मे हद दर्जे की गिरावट आती जाती है, दूसरी ओर पूजीपति वर्ग के यहा इन्तहाई फजूल-खर्ची और बर्बादी का बोलबाला रहता है।

अतएव, अमरीकी समाचारपत्रो मे रिपोर्टें छपती है कि वहा ऐसे भी अमीर लोग हैं जो एक एक टाई १,५०० डालरो मे खरीदते हैं। कम वेतन पाने वाले अमरीकी मेहनतकशो को यह पूरे वर्ष की आमदनी होती है। अखबारो मे एक ऐसी भी रिपोर्ट देखने को मिली कि एक अमरीकी करोडपति ने अपने मेहमानो का दिल बहलाने के लिए अपने बागीचे के पेडो को सोने के फलो से सजाया था। एक दूसरे पूजीपति के फार्म पर उसके घोडो के सोने के

वास्ते उसके नाम की कसीदाकारी की हुई साफ बुर्राक सफेद चादरें बिछायी गयी थी। अमरीकी समाचारपत्रो मे एक विज्ञापन छपा : नगर के बाहर एक जायदाद बिक्री के लिए है जिसमे २ मील लम्बा निजी समुद्र तट, एक ग्रीष्म थियेटर और चार बागीचे है जिनमे से एक बागीचा तो प्रसिद्ध वार्साइ पार्क की नकल पर बना है।

पूजीवादी व्यवस्था के पक्षधर दावा करते हैं कि पूजीवाद के विकास के साथ-साथ मजदूर वर्ग की स्थिति मे सुधार होता जाता है। वे कहते हैं कि इससे पहले किस युग मे टेक्नालॉजी के क्षेत्र मे इतनी प्रगति हो सकी थी ? क्या कभी पहले भी इतनी रेले , समुद्री लाइनें, लाखो की आबादी वाले शहर और हजारो मजदूरो को काम देने वाले कारखाने दिखायी पडते थे ? क्या मजदूरो ने इससे पहले कभी इतनी पेचीदा और इतना अधिक माल उत्पादन करने वाली मशीनो पर काम किया था ? वे इससे यह नतीजा निकालते हैं कि पूजीवादी व्यवस्था के विकास ने पूरे समाज की भौतिक खुशहाली को बढा दिया है।

किन्तु पूजीपति वर्ग के पक्षधर जब पूजीवाद के अन्तर्गत हुई प्रगति की प्रशस्ति गाते है, तो वे पूरी सचाई को बयान नही करते। वे केवल आशिक सचाई को बयान करते हैं—और आशिक सचाई झूठ से भी बदतर होती है।

इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि पूजीवाद ने अपने पिछले १५० २०० वर्षो के प्रभुत्वकाल मे शक्तिशाली उत्पादक शक्तियो को विकसित किया है। प्रकृति पर काबू पाने के मामले मे समाज ने पिछले समस्त युगो की तुलना मे बहुत ही ज्यादा प्रगति की है।

लेकिन असलियत का यह केवल एक ही पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि प्रकृति की शक्तियो पर मनुष्य की बढी हुई प्रभुता मेहनतकश जनता की असख्य पीढियो की गुलामी, उनके उत्पीडन और उनके निर्मम शोषण की कीमत पर कायम हुई है। पूजीवाद ने एक शक्तिशाली टेक्नालॉजी का निर्माण अवश्य किया है, परन्तु यह सारा निर्माण करोडो इसानो के खून और उनकी हड्डियो पर किया गया है।

पूजीवाद मजदूर वर्ग की स्थिति मे केवल अपेक्षाकृत गिरावट के लिए ही जिम्मेदार नही है। वह उसकी बुनियादी गिरावट—अर्थात उसके रहने और काम करने की स्थितियो मे गिरावट—के लिए भी जिम्मेदार है। इसका अर्थ यह है कि मजदूरो को खराब खाना खाने, खराब कपडे पहनने, गन्दी व टूटी-फूटी झोपडियो मे रहने तथा जीवनोपयोगी वस्तुओ के बिना जिन्दगी गुजारने के लिए मजबूर होना पडता है।

इन तथ्यों के सामने आने पर, पूजीवाद के पक्षधरों को कभी-कभी मजबूर होकर मजदूर वर्ग की स्थिति मे अपेक्षाकृत गिरावट की बात तो स्वीकार करनी

पडती है, परन्तु वे बडे ही गुस्से के साथ स्थिति मे बुनियादी गिरावट की वास्तविकता को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। वे पूछते हैं, क्या यह सही नही है कि २०वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे मजदूरो को वे बहुत सारी सुविधाए उपलब्ध है जिनकी आज से १०० वर्ष या ५० वर्ष पहले तक कल्पना भी नही की जा सकती थी ? यह कहने के बाद ही साइकिलो, मोटर साइकिलो, मोटरकारो, रेडियो, टेलीविजन सेटो, धुलाई मशीनो, रेफ्रीजरेटरो, आदि, हाल मे हुए अन्वेषणो का जिक्र जोड दिया जाता है।

वे इस प्रकार का जिक्र करके पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग की स्थिति के बारे मे भ्रम फैलाना चाहते हैं। वे एक ऐसे तथ्य को समझने से इन्कार कर देते है जिसे हर समझदार आदमी समझ लेता है—यानी यह कि आम लोगो की अवश्यकताए हमेशा स्थिर व एकरूप नही रहती।

टेक्नालॉजी मे सुधार, उत्पादक शक्तियो के विकास तथा सामाजिक सम्पदा मे होने वाली वृद्धि स समाज के सभी सदस्यो की—जिनमे निश्चित ही मेहनतकश जनता के लोग भी शामिल है—नयी-नयी आवश्यकताए भी पैदा होती रहती हैं।

एतिहासिक विकास की गति के साथ-साथ मजदूर वर्ग की आवश्यकताए भी बढती रहती हैं। किन्तु पूजीवादी परिस्थितियो मे मजदूर वर्ग को अपनी सामान्य दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है।

मजदूर वर्ग की स्थिति इसलिए बिगडती जाती है, क्योकि टैक्सो का बोझ उसके कन्धो पर बढता जाता है। बढे हुए किराये तथा अपने वेतन मे होनेवाली नाना प्रकार की कटौतियो से मेहनतकश जनता की असली आमदनी घट जाती है। श्रम अधिकाधिक कठोर एव थकाने वाला होता जाता है और दुर्घटनाओ की सख्या बढ जाती है। अपने प्रबल सघर्ष के द्वारा ही मजदूर वर्ग पूजीपति की इस इच्छा को रोक पाता है कि मजदूरो का जीवन-स्तर न्यूनतम स्तर तक गिरा दिया जाय।

हाल के वर्षो मे पूजीवादी देशो मे, उपभोक्ता कर्ज व्यवस्था का प्रचलन तेजी स बढा है। बहुत स मेहनतकश लोग, विशेष तौर पर ऊचे वेतन वाले लोग, फर्नीचर तथा अन्य उपभोक्ता सामान—कभी-कभी तो मोटर कार, छोटे मकान या फ्लैट तक—कर्ज पर ले लेते हैं।

पूजीपति वर्ग के पक्षधर दावा करते हैं कि इस प्रकार की खरीदारी मजदूर वर्ग की स्थिति मे होने वाले सुधार को इगित करती है। किन्तु, वास्तव मे उपभोक्ता कर्ज की व्यवस्था भी मेहनतकश जनता के अतिरिक्त शोषण का ही दूसरा रूप है। कर्ज पर खरीदने के नाते उन्हें उन चीजो का दाम नकद खरीद की अपेक्षा १५ से २५ प्रतिशत तक अधिक देना पडता है। इसके अतिरिक्त

पूजीपति उनसे कर्ज पर खरीदी गयी चीजो के लिए बहुत ही ऊची दर पर ब्याज (६ से १२ प्रतिशत तक) वसूल करते हैं। और, अन्ततः, यदि खरीदार नियमित किस्त अदा करने मे असमर्थ रहता है—जो बीमारी, बेरोजगारी या अन्य कारणो की बिना पर अक्सर होता ही रहना है—तो कर्ज पर खरीदी गयी चीजें दूकानदार को वापस कर देनी होती हैं और उन पर व्यय की गयी रकम बर्बाद हो जाती है।

बेरोजगारी—मजदूर वर्ग के लिए भारी विपत्ति

पूजीवाद बेरोजगारो की बडी पल्टन के बगैर अपना अस्तित्व कायम नही रख सकता। इस पल्टन के ही परिणामस्वरूप जब कभी उत्पादन के विस्तार की परिस्थितिया पैदा होती हैं, तो पूजीपति के पास काम करने वाले स्वतत्र हाथो की सप्लाई जारी रहती है। पूजीवादी राजनीतिज्ञ इस बात को बडी सफाई से स्वीकार करते हैं कि पूजीवादी व्यवस्था के लिए बेरोजगारी परमावश्यक है। भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमन ने एक पत्रकार से बातचीत करते हुए कहा था कि बेरोजगारो की एक सीमित सख्या (३० से ५० लाख तक) मान्य होती है। उनका कहना था कि यह अच्छी बात है कि कुछ लोग काम की तलाश मे घूमते रहें, यह बात आर्थिक व्यवस्था के लिए बडी हितकर है।

बडे-बडे पूजीवादी चौधरी और उनके चाकर कहा करते है कि एक "स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था" के लिए लाखो-करोडो लोगो का बेरोजगार रहना आवश्यक है। यह समझना आसान है कि पूजीपति लोग बेरोजगारी को इसलिए पसन्द करते है, क्योकि यह मजदूर वर्ग के खिलाफ उनके हाथो मे एक जबर्दस्त हथियार है। हमेशा और हर जगह पूजीपति अपने मजदूरो पर दबाव डालने के लिए—उनके रहन-सहन और काम करने की हालतो को बदतर बनाने और इस तरह अपने मुनाफो को बढाने के लिए—इस बेरोजगारी को इस्तेमाल करते हैं।

बेरोजगारी मजदूर वर्ग के लिए एक भारी विपत्ति है। पूजीवाद के अन्तर्गत बेरोजगारी की लाजमी तौर पर मौजूदगी से भी मजदूरो के लिए असुरक्षा तथा भविष्य के बारे मे लगातार अनिश्चितता बनी रहती है। मजदूर के जीवन का पूजीपति के लिए कोई मूल्य नही है। यदि कोई मजदूर अपना काम छोड कर अलग हो जाता है, तो दूसरे बहुत से लोग उसकी जगह लेने को तैयार रहते हैं। पूजीवादी कारखानो मे बहुत से स्वस्थ लोग जल्दी ही अपाहिज हो जाते हैं, वे समय से पहले बूढ़े हो जाते हैं। काम की तेज रफ्तार, कार्य दिवस की असहनीय लम्बी अवधि एव औद्योगिक दुर्घटनाए ही इसके लिए जिम्मेदार हैं।

आकडो मे उन लोगो को भी शामिल नही किया जाता जिन्हें अस्थायी तौर पर कुछ काम मिल गया हो। मिसाल के लिए, अमरीका मे सप्ताह मे केवल १ घंटे का काम पाने वाले, या वे लोग जिन्हे महीने भर मे कुछ काम दिये जाने का वादा किया गया है—वेरोजगारो की सख्या मे शामिल नही किये जाते। इसलिए, स्पष्टत, पूजीवादी देशो म सरकारी सस्थाओ द्वारा समय-समय पर वेरोजगारी के जो आकडे प्रकाशित किये जाते हैं, वे असली वरोजगारी के केवल एक छोटे अश को ही प्रतिबिम्बित करते हैं।

वडे पैमाने की वेरोजगारी आधुनिक पूजीवादी समाज मे एक सामान्य बात हो गयी है। मुरय पूजीवादी देश अमरीका मे—जानबूझ कर कम दिखाये गये आकडो के अनुसार भी—पिछले कुछ वर्षो मे वेरोजगारो की सख्या ३०-४० लाख से नीचे कभी नही रही। सरकारी आकडो के अनुसार, १९६४ मे, अमरीका मे वेरोजगारो की सख्या ३६ लाख, अर्थात कुल श्रमिको की सख्या का ५ प्रतिशत, थी। लेकिन ट्रेड यूनियन आकडो के अनुसार २५ लाख आशिक रूप से वेरोजगारो को, अर्थात श्रम दिवस के केवल एक ही भाग मे काम पाने वाले लोगो को तथा उन लाखो लोगो को भी वेरोजगारो की सूची मे दर्ज किया जाना चाहिए जिनको केवल यह आशा दिलायी गयी है कि उन्हे कभी न कभी काम दिया जायगा इसलिए वे रोजगार दफ्तरो मे अपना नाम दर्ज कराने भी नही जा सकते। इस प्रकार, केवल ५ प्रतिशत ही नही, बल्कि ९ प्रतिशत मजदूरो को काम से वचित रहना पडता है।

वर्ग अन्तर्विरोधो मे तीव्रता

पूजीवाद के विकास के साथ साथ समाज दो परस्पर विरोधी शिविरो, दो विरोधी वर्गों—सर्वहारा वर्ग तथा पूजीपति वर्ग—मे अधिकाधिक बटता जाता है। समस्त सम्पदा और शक्ति पूजीपति वर्ग के हाथो मे केन्द्रित होती जाती है। उत्पादन के लगभग समस्त साधनो का वह मालिक बन जाता है और इस प्रकार सामाजिक श्रम की सारी उत्पत्ति स्वय हथिया लेता है। पूजीपति वर्ग के हाथो म सत्ता तो अवश्य आ जाती है, परन्तु उसका अस्तित्व मजदूर वर्ग के बिना नही रह सकता। अगर मजदूर पूजीपति के कारखानो मे मशीनें न चलाये, तो वह कभी फल फूल नही सकता। मजदूर वर्ग पूजीपतियो के लिए बेशुमार सम्पदा का उत्पादन करके स्वय गरीब और उत्पीडित रहता है।

मौजूदा समय मे, आर्थिक तौर पर विकसित पूजीवादी देशो मे कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले मजदूरो और कर्मचारियो की सख्या लगभग २० करोड बैठती है। योरपीय पूजीवादी देशो मे कारखानो व दफ्तरो मे काम करने वाले १० करोड, उत्तरी अमरीका मे ७ करोड, जापान मे ढाई करोड, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलेंड मे लगभग ४० लाख मजदूर और कर्मचारी हैं।

पूजीवादी ससार के आर्थिक रूप से कम विकसित देशों मे कारखानो व दफ्तरों मे काम करने वाले मजदूरो व कर्मचारियो की सख्या लगभग १७ करोड है। इनमे से लगभग ९ करोड साढे ९ लाख एशिया मे, लगभग ४ करोड दक्षिणी अमरीका मे तथा लगभग २ करोड अफ्रीका मे हैं।

पूजीवादी समाज मे सर्वहारा वर्ग तथा पूजीपति वर्ग, दो प्रमुख वर्ग होते हैं। इन वर्गों के अलावा कुछ दूसरे वर्ग और मध्यमवर्गीय स्तर के लोग भी लगभग सभी पूजीवादी देशो मे पाये जाते हैं। अधिकाश पूजीवादी देशो मे जनसख्या का बहुत बडा भाग किसान होते हैं। किन्तु पूजीवाद का विकास लाजमी तौर पर पूजीपतियो, जमीदारो तथा धनी किसानो के शोषण के शिकार अधिकाश ग्रामीण मजदूरो की बर्बादी और तबाही का कारण बनता है।

बडे पैमाने पर होने वाले उत्पादन के विस्तार से नगरो और देहातो, दोनो ही स्थानो पर, वर्ग अन्तर्विरोध तेज हो जाते हैं। निम्नपूजीपति वर्ग का अधिकाधिक स्तरीकरण होता जाता है। इनमे से कुछ तो पूजीपति बन जाते हैं और बाकी लाखो लोग मजदूर वर्ग की कतारो मे झोक दिये जाते हैं। बडे पैमाने पर होने वाले पूजीवादी उत्पादन के विकास से समाज मे लाजमी तौर पर ध्रुवीकरण होता है। एक ओर मुट्ठी भर पूजीपति जहा मालामाल होते जाते हैं, वही मेहनतकश जनता के भाग्य म अभाव और विपत्ति का ही बोल-बाला रहता है।

एक लेखक ने एक बार लिखा था कि यदि किसी अमीर आदमी ने एक मुर्गा खाया और एक गरीब आदमी ने कुछ नही खाया, तो 'औसतन दोनो ने ही आधा मुर्गा खाया।" यह व्यग्यात्मक टिप्पणी प्रकट करती है कि पूजीवादी अर्थशास्त्री किस प्रकार नगी पूजीवादी वास्तविकता को सजाने सवारने का प्रयास करते हैं। वे "औसत" हिसाब-किताब के बडे शौकीन होते हैं, जिससे कि असली वास्तविकता पर पर्दा पडा रहता है।

वे मजदूरो की मजदूरी के साथ कारखानो के डायरेक्टरो की मोटी-मोटी तनखाहें भी जोडते हैं। फिर वे "औसत आमदनी" निकालते हैं। यह औसत आमदनी मजदूरो की असली मजदूरी से बहुत ज्यादा हो जाती है। इसी तरह, वे किसान परिवारों की आमदनी का "औसत" भी निकालते हैं और इस तरीके से कुलको के धनी परिवारो व भिखारियो जैसे गरीब किसानो की आय मे बीच की बडी खाईं को छिपा लेते हैं।

पूजीवाद का विकास पूजीपति वर्ग तथा नगर और ग्रामीण अचलों के मजदूर वर्ग के बीच की खाईं को और चौडा करता है। पूंजीवादी व्यवस्था ने आधुनिक साज-सज्जा से लैस बडे पैमाने के उद्योग का निर्माण किया है, यातायात

और सवार के साधनो का विकास किया है तथा धरती के गर्भ मे छिपे खनिज-पदार्थों के भण्डारो का पता लगाया है। पिछले १५०-२०० वर्षों मे मनुष्य ने प्रकृति की शक्तियो पर अपनी सत्ता का बहुत ही ज्यादा विस्तार किया है। किन्तु प्रकृति की शक्तियो पर प्रभुत्व कायम करने मे यह सफलता मनुष्यो द्वारा भारी कीमत चुकाने के बाद ही प्राप्त हुई है। इसके लिए मजदूरो की बहुत-सी पीढियो को अपना खून-पसीना एक करना पडा है। प्रकृति पर मनुष्य की सत्ता मे हुई वृद्धि से मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण मे तेजी आ गयी है।

क्या मार्क्स सही थे ? पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर की अत्यन्त अपमानजनक और गुलामो जैसी स्थिति का मार्क्स ने इन शब्दो मे विशद वर्णन किया है :

"वह जीवित रहने के लिए काम करता है। वह श्रम को अपने जीवन का अग नही मानता, बल्कि अपने जीवन का बलिदान समझता है। श्रम एक ऐसी वस्तु होता है जो वह दूसरे व्यक्ति को देता है। इसीलिए उसके कार्यकलाप की उत्पत्ति उसके कार्यकलाप की विषय-वस्तु नही बन पाती। वह रेशम बुनता है, सोना खोद कर निकालता है, महल तामीर करता है—मगर ये सब चीजें उसके लिए नहीं होती। वह तो अपने लिए केवल उस मजदूरी को पैदा करता है, जो उसे प्राप्त होती है, रेशम, सोना और महल से उसे केवल जीविका के कुछ साधन, जैसे एक सूती बनियाइन, तावे के कुछ सिक्के और गदी खोली का आवास ही प्राप्त होते हैं। और जो मजदूर लगातार १२ घटो तक कपडा बुनता है, धागा बनाता है, बर्मा चलाता है, खराद का काम करता है, इमारतें बनाता है, पत्थर तोडता है, बोझ ढोता है, वह क्या अपने १२ घटो के इस काम को अपने जीवन का एक रूप, या सम्पूर्ण जीवन, मानता है ? इसके विपरीत, उसका जीवन तो तब शुरू होता है, जब उसकी यह क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है—अर्थात खाने की मेज पर, वेश्यालय मे या विस्तर मे ही उसका जीवन शुरू होता है। उसके लिए १२ घटे के काम—बुनाई, कताई या बर्माई—का कोई महत्व नही है। महत्व मजदूरी का है, जो उसे खाने की मेज, वेश्यालय या विस्तर तक पहुचने मे सहायक होती है। अगर रेशम के कीडे को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए कताई का काम करना होता, तो वह भी सम्पूर्ण अर्थों मे मजदूर बन जाता।"[१]

लेकिन पाठक इस कथन पर आपत्ति कर सकते हैं और कह सकते हैं कि मार्क्स ने आज से लगभग १०० वर्षों से भी पहले, १९वी शताब्दी के मध्य मे, उपरोक्त वर्णन किया था। क्या तब से अब तक कुछ भी परिवर्तन नही हुआ है ?

१. मार्क्स एगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड १, मास्को १९६२, पृ. ८२-८३.

इसमे कोई सदेह नही है कि पूजीवादी देशो मे पिछले १०० वर्षो के दौरान बहुत से परिवर्तन हुए हैं। विकसित पूजीवादी देशो के मजदूर वर्ग ने जो जबर्दस्त सघर्ष चलाया है वह बेकार नही गया। पिछले कुछ दशको मे सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे नये जीवन के निर्माण मे जो सफलताए प्राप्त हुई हैं, उनसे पूजीवादी देशो के मजदूरो को नयी प्रेरणा मिली है तथा वे ज्यादा मजबूती के साथ पूजीवादी शोषण का विरोध करने लगे हैं। पूजीपति वर्ग को भी अनेक बार नयी रियायतें देने को मजबूर होना पडा है। पुराने पूजीवादी देशो मे अब १२ घटे का दिन लागू नही है—जैसा कि आज से १०० वर्ष पहले था। अधिकाश पूजीवादी देशो मे अब ८ घटे का दिन चालू है। आर्थिक रूप से कम विकसित देशो मे, विशेष रूप से अभी भी उपनिवेशवाद के अधीन देशो मे, मजदूरो को आज भी १२ घटे या उससे भी अधिक काम करना पडता है।

किन्तु मजदूर वर्ग ने पूजीपति वर्ग से जो भी रियायतें छीन कर हासिल की हैं, उन सबके बावजूद पूजीवाद का सार-तत्व नही बदला है। मार्क्स के समय की तरह आज भी यह व्यवस्था पूजी द्वारा श्रम के शोषण पर आधारित है। श्रम और पूजी के बीच खाई समाप्त नही हुई है, बल्कि बहुत ज्यादा चौडी हो गयी है। पूजीवाद के विकास के साथ पूजीपति वर्ग के छोटे-छोटे हिस्से धनी होते जाते हैं तथा आबादी का विशाल बहुमत सर्वहारा बनता जाता है, अर्थात ऐसे स्वत्वहीन गरीब लोगो मे बदलता जाता है, जो अपनी श्रमशक्ति को बेच कर ही जीवन निर्वाह करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मजदूरो की स्थिति का जो चित्रण मार्क्स ने किया था, वह आज भी उसी तरह सही है जैसे उनके समय मे था। इसके अलावा, आज यह बात पिछली शताब्दी की अपेक्षा मेहनतकश जनता के ज्यादा भागो पर लागू होती है।

दो राष्ट्र मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अर्थ यह है कि समाज के मुट्ठी भर धनी लोग अभागी बहुमत जनता के श्रम पर ही जीवित रहते हैं। यह स्थिति आज भी, हमारे इस युग मे, उन सभी देशो मे पायी जाती है जो पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत हैं।

कुछ वर्ष पहले ब्रिटेन मे एक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी जिसमे यह बात स्वीकार की गयी थी कि आर्थिक तथा सामाजिक, दोनो ही मामलो मे, ब्रिटेन मे "दो राष्ट्र" हैं। आधी जनसख्या की सम्पत्ति तो केवल उनकी व्यक्तिगत चीजें या घरेलू सामान हैं, जबकि दूसरी ओर एक प्रतिशत जनसख्या के हाथो मे देश की व्यक्तिगत सम्पत्ति का लगभग आधा भाग केंद्रित है।

एक अमरीकी पत्रिका मे प्रकाशित लेख मे कहा गया था कि अमरीका

में, किसी भी अन्य पूजीवादी देश की ही तरह, बुनियादी रूप से दो राष्ट्र हैं—एक वह जो काम करता है, मगर जीवन से वचित है, दूसरा वह जो जीवन से भरपूर है, मगर काम बिल्कुल नही करता।

पूजीवाद के अन्तर्गत, रईस लोग दूसरे लोगो के श्रम के सहारे अपाहिजो जैसा जीवन बिताते हैं। किन्तु इसी के साथ लाखो लोगो पर अनिवार्य रूप से बेरोजगारी थोप दी जाती है। पूजीवादी व्यवस्था उनको काम पाने के अवसरो से वचित करके स्थायी बेरोजगारी का शिकार बना देती है। पूजीवादी व्यवस्था का चलन ही कुछ ऐसा है कि कभी कभी अधिकाश स्वस्थ लोग "बेकार" घोषित कर दिये जाते है।

वे बेकार इसलिए नही हो जाते कि समाज मे खाने, कपडे या आवास के स्थानो में इफरात हो गयी है। इसके विपरीत, मेहनतकश लोगो को जीविका के अत्यन्त आवश्यक साधनो की बहुत बडी जरूरत बनी रहती है और बेरोजगार लोग अर्ध-भुखमरी के शिकार रहते हैं। उनको कभी कभी सिर छिपाने को भी स्थान नही मिलता। पूजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नही किया जाता, बल्कि मुनाफा कमाने के लिए किया जाता है। इसलिए कारखानेदार अपने मुनाफो की खातिर उत्पादन घटा देते है। इस प्रकार, वे मजदूरो को काम से वचित कर देते है तथा मशीनो और कारखानो को बेकार खडा कर देते है।

पूजीवादी राजसत्ता

पूजीपति वर्ग ने जनता को पराधीन रखने के लिए हिंसा और धोखेधडी पर आधारित एक भारी यत्र की रचना की है। पूजीवादी राजसत्ता, उसका स्वरूप कुछ भी क्यो न हो—दमन का ही एक अस्त्र होती है। वह पुलिस, गुप्तचरों, फौज, अदालतों और जेलो के सहारे चलती है।

पूजीवादी विचारक पूजीवादी राजसत्ता के वर्ग चरित्र से इन्कार करते हैं। उनका कहना है कि राजसत्ता वर्गों से ऊपर होती है; वह समस्त जनसख्या की सेवा करती है। क्या राजसत्ता नगर निवासियो के लिए सुविधाए और राहत पहुचाने की योजनाए नही बनाती और उन्हे पूरा नही करती ? क्या वह महामारियो के खिलाफ नही लडती ? क्या वह स्कूलो मे लाजमी शिक्षा का प्रबध नही करती ? इसी बुनियाद पर वे नतीजा निकालते हैं कि आधुनिक पूजीवादी राजसत्ता "लोक कल्याणकारी राज्य" होती है।

इस वक्तव्य का वास्तविकता से कोई सम्बध नही है। असल बात यह है कि पूजीवादी राजसत्ता की समस्त कार्रवाइयां पूजीपतियो के हितो की सेवा करती है। अधिकारीगण जब हडताली मजदूरो के खिलाफ फौजो को भेजते हैं तथा मेहनतकश जनता के हितो के लिए सघर्ष करने वालो को जेलखानो

मे बन्द करते हैं तो पूजीवादी राजसत्ता का वर्ग चरित्र स्पष्ट रूप से उजागर हो जाता है। नजदीक से देखने से पता चलता है कि दूसरे मामलो मे भी पूजीवादी राजसत्ता पूजीपतियो के हितो मे काम करती है।

उदाहरण के लिए, लाजमी शिक्षा की ही बात को ले लीजिए। टेक्नालॉजी के वर्तमान स्तर को देखते हुए उद्योगपतियो का काम अशिक्षित मजदूरो से नही चल सकता। इस मामले मे सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि ब्रिटिश उद्योगो के सघ ने सरकार से माग की थी कि १६६० म शिक्षा के समय को बढा दिया जाय, क्योकि नये नवयुवक मजदूरो को गणित और अग्रेजी का उतना ज्ञान नही होता जितने ज्ञान की आवश्यकता आधुनिक टेक्नालॉजी के लिए होती है। यही बात जन-स्वास्थ्य-सेवा के बारे मे प्रदर्शित उनकी चिन्ता के बारे मे लागू होती है अधिकारी जन-स्वास्थ्य के प्रति चिता इसलिए दिखाते हैं कि बडे पैमाने पर महामारियो के फैल जाने मे पूजीवादी अर्थव्यवस्था को, एव पूजीपति वर्ग की हुकूमत को, नुकसान पहुचेगा।

स्वतन्त्रता और समानता के दावो को दोहराते हुए, हमारे इस युग का पूजीपति वर्ग उन तमाम जनवादी अधिकारो को समाप्त कर देता है जिन्हे मजदूर वर्ग ने लम्बे और कठिन सघर्षों के बाद प्राप्त किया है।

सर्वहारा वर्ग का आर्थिक और राजनीतिक सघर्ष

शुरू शुरू मे कारखानेदारो को मजदूरो की ऐसी भीड स निबटना पडा था जो एकता के सूत्र मे बधी नही थी। इसलिए पूजीपतिया के मनमाने शासन की कोई सीमा नही थी। मजदूरो के काम की स्थिति मे गिरावट लाने के कदमो को रोकने का कोई साधन नही था। अगर मजदूर को काम की शर्ते मजूर न हो, तो पूजीपति को उसके बदले मे एवजी का मजदूर आसानी से मिल सकता था। लेकिन मजदूरो ने भी लाजमी तौर पर, यह समझना शुरू किया कि उनके हित समान हैं। वे ट्रेड यूनियनो मे अपने को सगठित करने लगे। थोडे ही दिनो मे कारखानेदारो का अलग-अलग मजदूरो से नही, बल्कि सर्वहारा वर्ग के सगठनो से सामना पडने लगा। इसके बदले मे पूजीपतियो ने अपनी कारखानेदारो की यूनियनें सगठित की। वे सबसे ज्यादा जी-हुजूर मजदूर नेताओ को घूस देते हैं और हडताल-तोडको को भाडे पर रखते हैं। वे सर्वहारा वर्ग के वर्गीय सगठनो के खिलाफ सघर्ष मे पुलिस, फौज, अदालत और जेल का इस्तेमाल करते हैं।

विकसित पूजीवादी देशो मे मजदूर वर्ग पूजीपतियो द्वारा मजदूरो के जीवन-स्तर को गिराने के सभी प्रयासो के खिलाफ सघर्ष को अधिकाधिक तेज कर रहा है। अनेक वर्षों से अपने कठिन सघर्ष के द्वारा उसने पूजीपतियो से कुछ रियायतें हासिल की हैं। लेकिन सर्वहारा वर्ग द्वारा हासिल की गयी काम-

यावियो को हमेशा ही खतरा बना रहता है। अपने लिए किसी भी अनुकूल स्थिति का लाभ उठा कर पूजीपति रियायतो से पीछे हटने की कोशिश करते हैं और मजदूरो को उनकी जीती हुई सुविधाओ से वचित करते हैं।

शोषको के खिलाफ जब पर्याप्त रूप से मजबूत सघर्ष चलाने मे मेहनतकश असमर्थ होते है, तो उन्हे अत्यधिक गरीबी का शिकार बनना पडता है। यह बात खास तौर से औपनिवेशिक और पराधीन देशों में है। पूजीवाद ने इन देशो की जनता पर अकथनीय विपत्तियो का बोझ लादा है।

सर्वहारा वर्ग का आर्थिक सघर्ष अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ट्रेड यूनियनो का नेतृत्व यदि सक्षम हो और वह सही वर्ग स्थितियों के अनुसार काम करे, तो ट्रेड यूनियनें पूजीपतियो के हमले का मुकाबला कामयाबी से कर सकती है। आम मजदूरो के लिए ट्रेड यूनियनें वर्ग सघर्ष की पाठशाला भी होती है।

मार्क्स ने आर्थिक सघर्ष के महत्व को स्वीकार करते हुए हमेशा ही इस बात पर जोर दिया है कि यह सघर्ष पूजीवाद से पैदा होने वाले परिणामो मात्र के खिलाफ होता है, सर्वहारा वर्ग की गरीबी और उसके उत्पीडन के बुनियादी कारण के खिलाफ नही। बुनियादी कारण तो स्वय पूजीवादी व्यवस्था है। सर्वहारा वर्ग पूजीपतियो के बढते हुए शोषण को केवल ट्रेड यूनियन सगठनो के आर्थिक सघर्ष द्वारा नही समाप्त कर सकता। इसे समाप्त करने के लिए उसे कठिन राजनीतिक सघर्ष चलाना पडेगा। पूजीपति वर्ग का तख्ता उलट कर ही मजदूर वर्ग उस वर्गीय शोषण को समाप्त करने मे सफल हो सकता है, जो गरीबी तथा अभाव का स्रोत है।

जब तक पूजीवाद का अस्तित्व कायम रहता है, तब तक मजदूरो को शोषण से मुक्ति नही मिल सकती। इसीलिए सर्वहारा वर्ग पूजीवादी व्यवस्था को उलटने, पूजीवादी दासता को खत्म करने तथा एक नये, समाजवादी समाज की रचना करने के लिए सघर्ष करता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मजदूर वर्ग के पास एक लडाकू राजनीतिक सगठन होना जरूरी है। सामाजिक विकास के नियमो के ज्ञान स लैस, पूजीवादी व्यवस्था की समाप्ति एव उसके स्थान पर एक नयी व्यवस्था—कम्युनिज्म—की स्थापना के सघर्ष मे समस्त मेहनतकश जनता का नेतृत्व करने मे समर्थ, सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी ही ऐसा राजनीतिक सगठन होती है। मजदूर वर्ग के अग्रणी दस्ते के रूप मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी, सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी सघर्ष की अगुवाई करती है पूजीवाद द्वारा उत्पीडित समस्त मेहनतकश जनता को अपने गिर्द गोलबन्द करती है और उनके सघर्ष को महान उद्देश्य की प्राप्ति—कम्युनिज्म की विजय—की ओर निर्देशित करती है।

सर्वहारा वर्ग—पूंजीवाद की कब्र खोदने वाला

ऐतिहासिक विकास का पूरा क्रम सर्वहारा वर्ग को उसकी महान ऐतिहासिक भूमिका के लिए —पूंजीवादी व्यवस्था की कब्र खोदने और नये, समाजवादी समाज के निर्माण की भूमिका अदा करने के लिए—तैयार करता है।

पूंजीवाद मजदूरो को उनके सयुक्त श्रम द्वारा ऐक्यबद्ध करता है। उनका अपना जीवन, पूंजीवादी समाज मे मौजूद परिस्थितिया, मजदूरो को शोषको के खिलाफ सघर्ष मे एकजुट करती हैं। हर कदम पर मजदूरो का यह विश्वास पक्का होता जाता है कि पूंजीवादी समाज मे उनको कमरतोड़ जबरिया श्रम, बेरोजगारी और भुखमरी, अधिकारो के अभाव और गरीबी का शिकार बने रहना पडेगा।

पूंजीवाद जैसे-जैसे विकसित होता है, सर्वहारा वर्ग की कतारो मे वृद्धि होती जाती है। साथ ही तबाहहाल, छोटे-छोटे उत्पादक—किसान और दस्तकार—भी उसकी कतारो मे शामिल होते जाते है। पूंजीवादी दासता के सार तत्व से मजदूर अधिकाधिक परिचित होते जाते है और अपने महत्वपूर्ण-हितो के लिए सघर्ष करने का उनका निश्चय दृढ होता जाता है। मजदूर वर्ग अपने गिर्द समस्त मेहनतकश जनता को गोलबन्द करने वाली, तथा पूंजीवाद का तख्ता उलटने व समाजवादी आधार पर समाज का क्रान्तिकारी पुनर्गठन करने की निर्णायक लडाई मे उसे नेतृत्व प्रदान करने वाली, एक समर्थ शक्ति बन जाता है।

पूंजीवादी समाज मे सर्वहारा वर्ग ही सबसे आगे बढा हुआ वर्ग है। वह उत्पादन के साधनो से वचित रहता है। इस मामले मे उसकी स्थिति किसानो से भिन्न होती है, जो अपने छोटे-छोटे खेतो पर निजी सम्पत्ति के आधार पर काम करते है। सर्वहारा वर्ग को निजी सम्पत्ति को पुख्ता बनाने मे कोई दिलचस्पी नही होती। केवल सर्वहारा वर्ग ही हर प्रकार के शोषण का अन्त करने तथा समाजवाद की स्थापना करने के लिए लगातार और अन्त तक सघर्ष करता है। सर्वहारा वर्ग अपने श्रम से असीमित सम्पदा—कारखानो, रेलो मकानो और सार्वजनिक इमारतो—की रचना करता है। बड़े-बड़े कारखानो मे एक साथ काम करते हुए, तथा सख्त पूंजीवादी श्रम अनुशासन का प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए, सर्वहारा वर्ग नागरिक सस्कृति को आत्मसात करता है।

पूंजीवाद का तख्ता उलटने मे एक मात्र समर्थ शक्ति होने के अलावा, सर्वहारा वर्ग, अपने चरित्र से ही, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से मुक्त एक नये समाज की रचना करने मे भी समर्थ होता है। दशाब्दियो की हड़ताल-कार्रवाइयो, क्रान्तिकारी सघर्षों एवं वर्गीय मुठभेड़ो ने सर्वहारा वर्ग को फौलाद

बना दिया है तथा उसे समस्त श्रमिक जनो के सच्चे नेता के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। शोषित जन-समुदाय के अन्य स्तरो के लोग केवल मजदूर वर्ग के नेतृत्व मे ही स्वय को पूजीवादी जुए से मुक्त कर सकते हैं और मानव के योग्य स्वतन्त्र जीवन के निर्माण के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं।

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र पूजीवादी देशो के मजदूर वर्ग को यह समझने की शिक्षा देता है कि पूजीवादी व्यवस्था का तख्ता उलटने तथा समाजवाद की रचना करने के लिए निर्मम वर्ग-सघर्ष चला कर ही शोषित जनता को मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसके साथ ही, वह पूजीवादी इजारेदारियो द्वारा मेहनतकश जनता के बुनियादी अधिकारो और उसके जीवन-स्तर पर होने वाले हमलो के खिलाफ अपनी फौरी मागो को प्राप्त करने के सर्वहारा वर्ग के वर्ग सघर्ष के अर्थ, महत्व और उसके तरीको पर, तथा राजनीतिक व आर्थिक सगठनो की भूमिका पर भी, प्रकाश डालता है।

सौ वर्ष पूर्व ब्रिटेन के मजूदर वर्ग ने जब श्रम-दिवस को कानूनी तौर पर सीमित करने के सघर्ष मे जीत हासिल की, तो मार्क्स ने इसे पूजीपति वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र द्वारा मजदूर वर्ग के अर्थशास्त्र के सामने खुले आत्म-समर्पण, सम्पत्ति के राजनीतिक अर्थशास्त्र के ऊपर श्रम के राजनीतिक अर्थशास्त्र की विजय, के रूप मे देखा था। उस समय सवाल सिर्फ काम के दिन को १० घटो तक सीमित करने का कानून पास कराने का था। तब से मजदूर वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र ने पूजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अनेकानेक विजयें प्राप्त की हैं। ससार की जनसख्या के एक-तिहाई से अधिक भाग द्वारा आबाद भूक्षेत्र से पूजीपति वर्ग की हुकूमत हमेशा हमेशा के लिए उठ चुकी है और ससार के शेष भाग मे भी, इतिहास के हर नये मोड के साथ ही, पूजीवादी व्यवस्था का दिवालियापन और उसका अवश्यम्भावी विनाश अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते है।

दोहराने के प्रश्न

१. माल श्रमशक्ति के लक्षण क्या है ?
२. अधिशेष मूल्य कहा और कैसे उत्पन्न होता है ?
३. पूजीवाद का प्रमुख अन्तर्विरोध क्या है ?
४. पूंजीवाद के विकास के साथ मेहनतकश जनता की स्थिति मे परिवर्तन कैसे आता है ?
५. मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका क्या है ?

अध्याय ५

शोषकों के विभिन्न समूहों के बीच अधिशेष मूल्य का वितरण

पूजीवादी समाज मे मजदूरो के श्रम द्वारा उत्पादित अधिशेष मूल्य समस्त बिना-कमाई आमदनियो का स्रोत होता है। पूजीवाद के स्वत स्फूर्त आर्थिक नियमो के चलन के परिणामस्वरूप जो भी अधिशेष मूल्य पैदा होता है, उसका बटवारा पूजीवादी व्यवस्था मे जारी निरन्तर सघर्ष और गलाकाट प्रतियोगिता द्वारा शोषको के विभिन्न समूहो मे हो जाता है।

१. औद्योगिक पूजीपतियो का मुनाफा

माल का मूल्य और उसकी उत्पादन लागत

किसी पूजीवादी कारखाने मे तैयार माल के मूल्य मे दो तत्व होते हैं। प्रथम, उसमे उत्पादन के साधनो का मूल्य (मशीनो का आशिक मूल्य, कच्चे माल और ईंधन, आदि, का मूल्य) और द्वितीय, मजदूरो के श्रम द्वारा निर्मित नया मूल्य शामिल रहता है।

पूजीपति माल के उत्पादन पर अपना श्रम खर्च नही करता, वह केवल अपनी पूजी खर्च करता है। उसकी दिलचस्पी मुख्यत इसी के खर्च मे होती है। इसमे भी दो तत्व होते हैं। प्रथम तो इसमे अचल पूजी (जिसमे मशीनो का आशिक मूल्य, कच्चे माल और ईधन, आदि, का मूल्य) और द्वितीय चल पूजी (मजदूरो की मजदूरी) शामिल होते हैं। मालो के पूजीवादी उत्पादन की लागत इन्ही दोनो तत्वो से बनती है।

आइए हम किसी माल के मूल्य की तुलना उसकी उत्पादन लागत से करें। माल के मूल्य का प्रथम अगभूत भाग, उसकी उत्पादन लागत के उसी भाग से मेल खाता है। माल के मूल्य मे जहा तक उसके दूसरे अगभूत भाग की बात है, यह वह मूल्य होता है जिसको मजदूर का श्रम नये तौर पर जोडता है, जबकि उत्पादन लागत मे वह श्रमशक्ति का मूल्य होता है।

किन्तु जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, श्रमशक्ति का मूल्य मजदूरो के श्रम द्वारा सृजित मूल्य से कम होता है। मजदूरो के श्रम द्वारा सृजित मूल्य

में (१) श्रमशक्ति के मूल्य का मुआवजा, तथा (२) अधिशेप मूल्य शामिल होता है।

इस प्रकार माल के उत्पादन मे पूजीपति की लागत, उस माल के मूल्य—या कहिए वास्तविक उत्पादन लागत—से कम होती है। पूजीपति के लिए माल की लागत पूजी व्यय से मापी जाती है; माल की वास्तविक लागत श्रम-व्यय से मापी जाती है।

किसी माल के उत्पादन पर पूंजी-व्यय और श्रम-व्यय के बीच का अन्तर ही अधिशेप मूल्य होता है, यही पूजीवादी उत्पादन लागत और असली उत्पादन लागत के बीच का अन्तर होता है। यह माल के मूल्य का वह भाग होता है जिस पर पूजीपति को कुछ भी खर्च नही करना पड़ा। पूजीपति मजदूरो के शोपण के जरिये माल के मूल्य के इस भाग को बिना किसी भुगतान के हड़प लेता है।

पूजीवादी मुनाफा

पूजीपति जब किसी माल को वेचता है तो वह न केवल उसकी उत्पादन लागत को ही वसूलता है बल्कि अधिशेप मूल्य को भी हथियाता है। दूसरे शब्दो मे, वह न केवल पूजीगत-लागत को ही, बल्कि श्रम-लागत को भी अपनी जेब के हवाले करता है।

इसका अर्थ यह है कि पूजीपति माल को उसके मूल्य से कम कीमत पर भी वेच कर मुनाफा कमा सकता है। यदि माल की बिक्री की कीमत उसकी उत्पादन लागत से ज्यादा लेकिन उसके मूल्य से कम हो, तो भी पूजीपति उस माल मे सन्निहित अधिशेप मूल्य का एक अश हथिया लेता है।

पूजीपति अपने कारखाने मे उत्पादित किसी माल को जब बेचता है, तो उसका अधिशेप मूल्य उसकी उत्पादन लागत से कुछ ऊपर का अधिशेप होता है। यह अधिशेप पूजीपति द्वारा माल की बिक्री से प्राप्त रकम तथा उसकी उत्पादन लागत के बीच का अन्तर होता है। इस अधिशेप का हिसाब कारखाने मे लगायी गयी कुल पूजी के आधार पर लगाया जाता है। पूरी पूजी के सदर्भ मे आका गया अधिशेप मूल्य मुनाफा होता है।

कोई भी व्यक्ति इस गलत धारणा का शिकार बन सकता है कि मुनाफे को समस्त पूजी—चल और अचल—पैदा करती है, तथा पूजी के सभी भाग समान रूप से मुनाफे के स्रोत होते हैं।

हम पहले ही देख चुके हैं कि मजदूरी का रूप शोपण को छिपाये रहता है, यह धोखा भ्रम पैदा करता है कि मजदूर को उसके श्रम का पूरा प्रतिफल मिल जाता है। मुनाफो का रूप तो शोपण के सम्बधो को और भी अधिक छिपाये रहता है और यह भ्रम भी पैदा करता है कि मुनाफे की रचना पूजी से ही होती है, मजदूरो के श्रम से नही।

इस प्रकार पूजीवादी सम्बधो के स्वरूप, उनकी असली अन्तर्वस्तु को छिपा लेते हैं।

मुनाफे की दर

हम ऊपर बता चुके हैं कि अधिशेष मूल्य की दर चल पूजी के साथ मजदूरो से हथियाये गये अधिशेष मूल्य का आनुपातिक प्रतिशत होती है। सम्पूर्ण पूजी के सदर्भ मे सम्पूर्ण अधिशेष मूल्य का समानुपातिक प्रतिशत मुनाफे की दर होनी है।

मिसाल के लिए, ३००,००० रुपयो की पूजी को ले लीजिए। मान लीजिए कि इसमे २८५,००० रुपयो की अचल पूजी और १५,००० रुपयो की चल पूजी है। अब अधिशेष मूल्य को ४५,००० रुपये मान लीजिए। इस स्थिति मे अधिशेष मूल्य की दर होगी $\frac{४५}{१५}$ या ३०० प्रतिशत। मुनाफे की दर होगी $\frac{४५}{३००}$ या १५ प्रतिशत।

चूकि सम्पूर्ण पूजी उसके चल भाग से अधिक है, इसलिए मुनाफे की दर अधिशेष मूल्य की दर से कम है। अधिशेष मूल्य की समान दर पर, चल सम्पत्ति का भाग छोटा और अचल सम्पत्ति का भाग बडा होने पर, मुनाफे की दर कम होनी है। कोई उद्योग पूजीपति के लिए कितना मुनाफा देने वाला है, इसका फैसला अधिशेष मूल्य की दर से नही, बल्कि मुनाफे की दर से होता है।

मुनाफे की दर का समानीकरण

पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे उद्योग की विभिन्न शाखाओ के अन्तर्गत अनेकानेक कारखाने होते हैं। अलग-अलग कारखानो मे अलग-अलग मात्रा मे पूजी लगायी जाती है। लेकिन मात्रा के अलावा, इन कारखानो की पूजी के सागठनिक सयोजन मे भी अन्तर होता है।

पूजी का सागठनिक सयोजन चल पूजी का अचल पूजी के साथ अनुपात (च पू. : अ पू) होता है। जिन कारखानो मे अधिक सख्या मे मजदूर काम करते हैं और जहा इमारतो, मशीनो तथा कच्चे माल आदि पर होने वाला खर्च कम होता है, वहा पूजी का सागठनिक सयोजन नीचा होता है। इसके विपरीत, जिन कारखानो मे स्वचालित और यन्त्रीकृत मशीनो से अधिकाधिक काम होता है, या जहा अत्यधिक खर्चीले कच्चे माल का प्रयोग होता है और श्रमशक्ति की खरीदारी पर अपेक्षाकृत कम रकम खर्च की जाती है, वहा पूजी का सागठनिक सयोजन ऊचा होता है।

पूजीपतियो के बीच प्रतियोगिता, पूजी की समान मात्रा पर मुनाफे का समानीकरण कर देती है।

सरल ढग से समझने के लिए, मान लीजिए कि देश में केवल तीन क्षेत्र है जिनमे समान मात्रा मे पूजी लगी हुई है, किन्तु पूजी का सागठनिक सयोजन अलग-अलग है। हर क्षेत्र मे पूजी की मात्रा १० करोड रुपये है। पहले क्षेत्र मे सम्पूर्ण पूजी मे अचल पूजी ७ करोड और चल पूजी ३ करोड है, दूसरे क्षेत्र मे यह क्रमशः ८ करोड और २ करोड है, जबकि तीसरे क्षेत्र मे यह ९ करोड और १ करोड है। मान लीजिए कि तीनो क्षेत्रो मे अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत है।

इस उदाहरण मे तीनो क्षेत्रो मे से प्रत्येक मे मजदूरो से प्राप्त किया गया अधिशेष मूल्य चल पूजी के बराबर होगा, अर्थात पहले क्षेत्र मे ३ करोड रुपये, दूसरे क्षेत्र मे २ करोड रुपये तथा तीसरे क्षेत्र मे १ करोड़ रुपयों का अधिशेष मूल्य पैदा होगा।

अगर मालो की बिक्री उनके मूल्य पर की जाती है तो पूजीपति को पहले क्षेत्र मे ३ करोड रुपये, दूसरे क्षेत्र मे २ करोड रुपये तथा तीसरे क्षेत्र मे १ करोड रुपये का मुनाफा होगा। लेकिन इन तीनो क्षेत्रो मे, कुल मिला कर देखने पर, पूजी की मात्रा एक समान है। मुनाफो का इस प्रकार का बटवारा पहले क्षेत्र के पूजीपतियो के हित मे है, जबकि तीसरे क्षेत्र के पूजीपतियो के बिल्कुल हित मे नही है। इसलिए तीसरे क्षेत्र की पूजी पहले क्षेत्र मे आ लगेगी। पूजीपतियो के बीच होने वाली प्रतियोगिता, पहले क्षेत्र के पूजीपतियो को अपने मालो की कीमत घटाने को मजबूर करेगी। इसके साथ ही, प्रतियोगिता तीसरे क्षेत्र के पूजीपतियो को अपने मालो की कीमत इस स्तर तक बढा देने मे समर्थ करेगी कि तीनो ही क्षेत्रो का मुनाफा लगभग बराबर हो जाय।

मुनाफे की दर के समानीकरण के क्रम को नीचे दी गयी तालिका से देखा जा सकता है:

क्षेत्र	अचल पूजी	चल पूजी	अधिशेष मूल्य	उत्पादित मालो का मूल्य	मालो की कीमत	मुनाफे की दर, प्रतिशत
१.	७ करोड	३ करोड	३ करोड	१३ करोड	१२ करोड	२०
२.	८ करोड	२ करोड	२ करोड	१२ करोड	१२ करोड	२०
३.	९ करोड	१ करोड	१ करोड	११ करोड	१२ करोड	२०
योग	२४ करोड	६ करोड	६ करोड	३६ करोड	३६ करोड	२०

इस प्रकार, पूजीपतियो के बीच होने वाली प्रतियोगिता मुनाफे के औसत दर के नियम का आधिपत्य स्थापित करती है। पूजीवाद के अन्य समस्त

नियमो की तरह यह नियम भी अनगिनत उतार चढावो के माध्यम से अपना आधिपत्य कायम करता है।

उत्पादन की कीमत

हमारे इस उदाहरण मे, हर क्षेत्र म उत्पादित माल की बिक्री १२ करोड रुपयो म की जाती है। इसी के साथ पहले क्षेत्र म उत्पादित मालो का मूल्य १३ करोड दूसरे क्षेत्र मे १२ करोड और तीसरे क्षेत्र मे ११ करोड है। इस प्रकार मालो की कीमतें उनके मू य से भिन्न है। तीनो प्रकार के माला की कीमत उत्पादन लागत (१००) मे औसत मुनाफे (२०) को जोड कर निश्चित की जाती है। उत्पादन लागत के बराबर कीमत और औसत मुनाफे के योग को उत्पादन की कीमत कहा जाता है।

पूजीवादी समाज म मालो को उनके मूल्य पर नही, बल्कि उत्पादन की कीमतो पर बेचा जाता है। कितु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पूजीवादी परिस्थितियो मे मू य का नियम काम करना बद कर देता है। इसके विपरीत वह पूरे तौर काम करता रहता है।

उत्पादन की कीमत मू य का ही एक बदला हुआ रूप होती है। इसे नीचे लिखे विवरण से देखा जा सकता है।

प्रथम एक ओर कुछ उद्योगपति जहा अपने माला को मूल्य से अधिक कीमत पर बेचते हैं और दूसरे कम कीमत पर वहा पूरे समाज के पैमाने पर उत्पादन की कीमतो का योग मालो के कुल मूल्य के योग के बराबर होता है। इस प्रकार सब पूजीपति मिल कर अपने मालो का कुल मूल्य प्राप्त कर लेते है। द्वितीय पूजीपतिया के सम्पूर्ण वर्ग के मुनाफे सर्वहारा वर्ग के सम्पूर्ण अनचुकता श्रम द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य के बराबर होते हैं। तृतीय माला के मूल मे होने वाली कमी से उत्पादन की उनकी कीमतो मे भी गिरावट आती है इसके उलट मालो के मू य म यदि कोई वृद्धि होती है तो उससे उनके उत्पादन की कीमतें भी बढ जाती हैं।

मुनाफा की दर के समानीकरण का अर्थ यह है कि जिन क्षेत्रो मे पूजी का सागठनिक सयोजन निचले स्तर का होता है वहा के मजदूरो द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य का एक अश उन क्षेत्रो म चला जाता है जिनम पूजी का सागठनिक सयोजन ऊच स्तर का होता है। अतएव, मजदूरो का शोषण केवल व पूजीपति नही करते जो उनसे अपने यहा काम लेते हैं बल्कि पूरा पूजीपति वर्ग उनका शोषण करता है। पूजीवादी व्यवस्था के विनाश के लिए सम्पूर्ण पूजीपति वर्ग के खिलाफ सघर्ष करके ही मजदूर वर्ग शोषण को समाप्त करने में समर्थ होता है।

मुनाफे की नीची दर की ओर झुकाव

पूंजीवाद के विकास के साथ ही पूंजी का सागठनिक सयोजन भी बढता है। हर बार जब कोई उद्योगपति मजदूरो के स्थान पर मशीन लगा कर उत्पादन को सस्ता बनाता है, तो वह अपने मालो की बिक्री भी बढाता है तथा अपने मुनाफो मे भी वृद्धि करता है। कारखानो मे कच्चे माल, मशीनों और साज-सामानो की वृद्धि होती है तथा सन्निहित श्रम की अदायगी के उद्देश्य से लगायी गयी पूजी का भाग भी बढता है, किन्तु जीवित श्रम की अदायगी के लिए पूंजी का भाग पहले भाग की अपेक्षा बहुत धीमी गति से बढता है।

आइए, हम अपने पुराने उदाहरण की ओर लौट चलें। सम्पूर्ण पूजी के योग मे २४ करोड अचल पूजी और ६ करोड चल पूजी है। १०० प्रतिशत अधिशेष मूल्य की दर से अधिशेष मूल्य की रकम ६ करोड होती है, जिसका अर्थ यह है कि हमारे उदाहरण मे मुनाफे की दर २० प्रतिशत है।

आइए मान लें कि १० वर्ष के सचय के बाद पूजी का कुल योग ३ करोड रुपये से बढ कर ५० करोड रुपये हो गया है। उसी के साथ टेक्नालॉजीकल प्रगति के फलस्वरूप पूजी का सागठनिक सयोजन भी बढ गया, और अब इस ५० करोड की पूजी मे ४२ करोड ५० लाख की अचल पूजी और ७ करोड ५० लाख की चल पूजी है।

इस हालत मे, अधिशेष मूल्य की समान दर पर (१०० प्रतिशत) ७ करोड ५० लाख रुपयो का अधिशेष मूल्य पैदा होगा। इसमे मुनाफे की दर होगी $\frac{७.५}{५०}$ = १५ प्रतिशत। दूसरे शब्दो मे, अधिशेष मूल्य की अपरिवर्तित दर पर मुनाफे की मात्रा तो ६ करोड से बढ कर ७ करोड ५० लाख हो जायगी, किन्तु मुनाफे की दर घट कर २० प्रतिशत से १५ प्रतिशत ही रह जायेगी।

इस प्रकार, पूजी के सागठनिक सयोजन मे वृद्धि से मुनाफो की औसत दर मे गिरावट की रुझान पैदा होती है। पूजीवादी उत्पादन पद्धति के अन्य तमाम नियमो की भाति यह रुझान भी अनेक टेढे-मेढे उतार-चढाओ द्वारा अपने को प्रस्थापित करती है।

अनेक कारण ऐसे होते हैं जो मुनाफे की औसत दर में गिरावट के विरुद्ध होते हैं। वे इस रुझान को रोकते हैं, मुनाफे की दर मे आने वाली गिरावट को कम करते है तथा आंशिक रूप से इस रुझान को निष्क्रिय कर देते है। इन अवरोधक कारकों में सर्वप्रथम तो मजदूर वर्ग के शोषण को और गहरा बना देना है। पूजीवाद के विकास के साथ अधिशेष मूल्य की दर भी बढ जाती है। इसके अतिरिक्त, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि होने से हर मशीन और कारखाने के हर साज सामान का मूल्य नीचे गिरता है। मुनाफे की दर मे गिरावट को रोकने वाले ये चन्द कारक है।

मुनाफे की दर मे गिरावट का अर्थ यह कदापि नही होता कि मुनाफे की कुल मात्रा, अर्थात मजदूर वर्ग से छीने जाने वाले कुल अधिशेष मूल्य, मे कमी आ जाती है। मुनाफे की दर मे गिरावट के लिए जो कारक जिम्मेदार होता है—श्रम उत्पादकता मे वृद्धि—वही मुनाफे की कुल मात्रा भी बढ़ा देता है।

मुनाफे की दर मे गिरावट की रुझान पूजीवाद के अन्तर्विरोधो को और भी तेज कर देती है।

पूजीपति इस प्रवृति को मजदूरो के शोषण को तेज करके रोकने का प्रयास करते हैं। इसस सर्वहारा वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच के अन्तर्विरोध और भी तेज हो जाते हैं।

मुनाफे की दर मे गिरावट की रुझान स्वय पूजीपति वर्ग के भीतर सघर्ष को तेज कर देती है। मुनाफे की ऊची दर की तलाश में पूजीपति अपनी पूजी का निर्यात उन दूसरे देशो मे करने लगते हैं जहा मजदूर कम मजदूरी पर उपलब्ध हो और जहा अत्यत विकसित उद्योगो वाले देशो की अपेक्षा पूजी का सागठनिक सयोजन नीचा हो।

कीमतो को ऊचे स्तर पर बनाये रखने के लिए उद्योगपति नाना प्रकार के सगठनो मे सगठित होते हैं। इस प्रकार वे अपने मुनाफो को ऊचा करना चाहते हैं और मुनाफे की दर मे आने वाली गिरावट को रोकना चाहते है।

मुनाफे की दर मे गिरावट की रुझान से जो अन्तर्विरोध पैदा होने है, वे सकट के समय विशेष रूप से उग्र हो उठते हैं।

२. व्यापारिक पूजी और ऋण पूंजी

व्यापारिक पूजी और व्यापारिक मुनाफा

मजदूरो के श्रम द्वारा सृजित अधिशेष मूल्य को प्रथमत औद्योगिक पूजीपति हथियाता है। वह अपने मुनाफो मे व्यापारिक और ऋण पूजी के मालिको को भी शरीक कर लेता है।

ये लोग पूजी के सबसे पुराने प्रतिनिधि रहे है। व्यापारी और सूदखोर दास व्यवस्था तथा सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत भी मौजूद थे। व्यापारिक और महाजनी पूजी ने प्रारम्भिक सचय की प्रक्रिया मे बडी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा पूजीवादी उत्पादन के लिए आधार तैयार किया।

पूजीवादी युग से पहले के काल मे दासो, कमियो या दस्तकारो के श्रम से जो फाजिल उत्पादन होता था, वही व्यापारियो और महाजनो के मुनाफे का स्रोत था। व्यापारी और महाजन या तो सीधे-सीधे छोटे उत्पादको से यह फाजिल उत्पादन प्राप्त कर लेते थे, या दासो व कमियो का शोपण करने के

परिणामस्वरूप उत्पादन का जो भाग दास-स्वामियो तथा सामन्तो को मिलता था, उसका एक हिस्सा हथिया लेते थे।

पूंजीवाद के अन्तर्गत व्यापारी और महाजन छोटे उत्पादको—किसानो और दस्तकारो—का शोषण जारी रखते हैं और उनको तबाह कर देते है। किन्तु, उनके मुनाफो का मुख्य स्रोत उद्योगपतियो द्वारा मजदूरो से हथियाया गया अधिशेष श्रम ही होता है।

किसी पूजीवादी कारखाने द्वारा उत्पादित मालो की बिक्री होती रहनी चाहिए, ताकि उत्पादन को जारी रखने के लिए उत्पादन के नये साधन खरीदे जा सकें और मजदूरो को भाडे पर रखा जा सके। लेकिन व्यापार के लिए भी पूजी की जरूरत होती है। अगर उद्योगपति स्वय ही उपभोक्ता को अपना माल बेचना चाहे तो उसे व्यापार के स्थान को तैयार करने, बिक्री के लिए कर्मचारियो की नियुक्ति करने आदि के लिए, अपनी पूजी का एक भाग खर्च करना पडेगा। इन कामो को व्यापारी वर्ग के सिपुर्द कर वह उसको भी अपने मुनाफे का थोडा हिस्सेदार बना लेता है। वह उसके हाथ वस्तुओं को कारखाने की कीमत पर बेचता है, जो उत्पादन की कीमत से नीची होती है।

इसलिए व्यापारिक मुनाफा अधिशेष मूल्य का वह अश है, जो उद्योगपति व्यापारी को देता है। व्यापारी इस काम मे पूजी की एक निश्चित मात्रा खर्च करता है तथा उसे अपनी इस पूंजी पर उसी के हिसाब से मुनाफा मिलना चाहिए। अगर व्यापारिक मुनाफे औसत दर से कम हो, तो व्यापार करना अलाभदायक होगा।

वस्तु-विनिमय और सट्टेबाजी

पूजीवाद के अन्तर्गत, अनेक कारको के कारण बहुत से मालो की कीमतो मे उतार-चढाव हुआ करता है। इन कारको को पहले से देख पाना बहुत ही कठिन और कभी-कभी तो असम्भव होता है। इस प्रकार, अगर फसल के अच्छे होने की सम्भावनाए होती हैं, तो गर्मी के मौसम से पहले अनाज की कीमतें नीचे गिर जाती है; अगर बाद मे फसल के अच्छे होने की सम्भावनाए बिगडती हैं, तो कीमतें ऊपर चढ जाती हैं।

इससे सट्टा व्यापार की सम्भावनाए खुल जाती हैं। माल-विनिमय के केन्द्र ही इस प्रकार के व्यापार के केंद्र होते हैं। एक प्रकार के मालो (अनाज, रुई, धातुओं, आदि) का बडे पैमाने पर होने वाला व्यापार इन केन्द्रो द्वारा सचालित होता है।

माल-विनिमय केन्द्रो पर लेन-देन एक निश्चित अवधि के लिए किया जाता है: अर्थात बेचने वाला इस बात की जिम्मेदारी लेता है कि वह माल

विशेष की एक निश्चित मात्रा निश्चित अवधि मे खरीदार के पास पहुंचा देगा। इन विनिमय केन्द्रों पर अधिकतर लेन-देन कीमतो मे होने वाले उतार-चढाव की आशा से किया जाता है, अतएव उससे सट्टा-मुनाफा प्राप्त होता है।

ऋण पूजी — पूजीपति को अपने माल की बिक्री से प्राप्त रकम को फौरन ही नही खर्च करना होता। जिस रकम को उसे फौरन खर्च नही करना होता, उसे वह अपने पास बचा कर रख लेता है।

इस प्रकार, हर पूजीपति के पास कुछ मौको पर एक ऐसी फाजिल मुद्रा-पूजी होती है, जिसको उस समय उसे व्यापार मे लगाने की जरूरत नही होती। यह निष्क्रिय पूजी, अर्थात मुनाफा न पैदा करने वाली पूजी, होती है। कुछ दूसरे समयो पर, जब उसे नया साज-सामान खरीदना होता है, उसके पास मुद्रा की कमी हो जाती है। अपने कारोबार को अबाध रूप से जारी रखने के लिए पूजीपति के पास कुछ आरक्षित रकम का होना आवश्यक होता है जिसे वह मुद्रा की कमी के समय—दूसरे मौको पर जो निष्क्रिय रहती है—इस्तेमाल कर सके।

चूकि पूजीपतियो की सख्या काफी होती है, इसलिए अक्सर ऐसा भी होता है कि अस्थायी तौर पर उनमे से कुछ के पास फाजिल रकम पडी रहती है और कुछ दूसरे ऐसे होते हैं जिनके पास अस्थायी तौर पर रकम घट जाती है। प्रतियोगिता पूजीपति को मजबूर करती है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि उसकी पूजी का हर हिस्सा उसे मुनाफा देता रहे। इसलिए पूजीपति अपनी फाजिल रकम को उधार पर देता है।

औद्योगिक पूजीपति को रकम उधार मिलने का भरोसा होता है, इसलिए उसके लिए यह जरूरी नही कि अपने धन के पर्याप्त अश को निष्क्रिय रखे। वह अपने उत्पादन का विस्तार करने के लिए, शोषित मजदूरो की सख्या बढाने के लिए और, फलतः, अधिक अधिशेष मूल्य हासिल करने के लिए, कर्ज की रकम को इस्तेमाल कर सकता है।

उद्योगपति महाजन को अधिशेष मूल्य का एक भाग उस रकम के इनाम के रूप मे देता है, जिसे महाजन ने उसे दिया था। अधिशेष मूल्य के इस भाग को ब्याज कहते हैं। ऋण पूजी वह पूजी है, जिससे ब्याज प्राप्त होता है। महाजनी पूजी ऋण पूजी की पूर्वज है, जो पूजीवादी उत्पादन से पहले, अर्थात दास युगीन एव सामन्ती व्यवस्थाओ मे, पायी जाती थी।

ब्याज और उसकी दर — ऋण पूजी का काम करने वाली पूजी एक माल होती है, और इसलिए उसकी एक कीमत भी होती है। उस पूजी की कीमत उसका ब्याज, अर्थात एक निश्चित आकार की पूजी के एक निश्चित समय तक इस्तेमाल किये जाने के बदले मे अदा की

जाने वाली मुद्रा-राशि है। यदि १०० रुपयो के साल भर के कर्ज के लिए ३ रुपये देने पडे, तो ब्याज की दर (या ब्याज) ३ प्रतिशत कहलाती है।

बैंक अलग अलग सौदो के लिए अलग-अलग ब्याज वसूल करते है। स्वभावत: वे जमा रकम (निष्क्रिय सौदो) के लिए कम ब्याज देते है तथा कर्जों (सक्रिय सौदो) के लिए ज्यादा ब्याज वसूल करते हैं। वे कर्जों पर भी अलग-अलग ब्याज वसूल करते हैं जिसकी दर कर्ज लेने की अवधि तथा दूसरी बातो पर निर्भर करती है। इसी प्रकार, बैंक जमा पूजियो पर अलग अलग ब्याज देते हैं। जमा पूजियो की शर्तों मे अन्तर होने से—मूलत आवश्यकतानुसार और समयबद्ध जमा खातो मे अन्तर होने से—ब्याज की दरें भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

ब्याज की दरो मे अक्सर उतार-चढाव होता रहता है। दूसरे व्यापारिक सौदो की तरह, इस मामले मे भी कीमत मुख्यत माग और पूर्ति के नियम पर निर्भर रहती है।

अगर रकम की पूर्ति, माग से ज्यादा होती है तो ब्याज की दर घट जाती है। इसका उलटा होने पर, दर बढ जाती है। सामान्य परिस्थितियो मे ब्याज की दर औसत मुनाफे की दर द्वारा सीमित होती है। अपवादस्वरूप मामलो मे, उदाहरण के लिए जब पूजीपति दिवालिया होने लगते हैं, ब्याज की दर औसत मुनाफे की दर से ऊपर जा सकती है।

ऋण पूजी द्वारा प्राप्त होने वाला ब्याज अधिशेष मूल्य का ही एक भाग होता है। इस मामले मे अधिशेष मूल्य के स्रोत को निहायत चालाकी और खूबी से ढक रखा जाता है तथा पूजीवादी सम्बधो का ऊपरी कपटपूर्ण रूप अपनी चरम सीमा पर पहुच जाता है।

यह तथ्य कि ऋण पूजी से ब्याज के रूप मे आमदनी होती है, उतना ही स्वाभाविक लगता है जितना कि यह तथ्य कि नाशपाती के पौधे से नाशपातिया प्राप्त होगी। स्वय मुद्रा आमदनी का स्रोत बन जाती है। यह, मार्क्स के अनुसार, पूजी के रहस्यमयीकरण का चरम रूप है।

पूजी के कारोबारियों के रूप मे बैंक

ऋण पूजी का चलन बैंको द्वारा होता है। एक ओर वे समस्त निष्क्रिय पूजी को एकत्रित कर लेते हैं और दूसरी ओर, जरूरतमन्द पूजीपतियों को अस्थायी तौर पर मुद्रा पूजी उपलब्ध करते हैं।

बैंको का उदय पूजीवादी उत्पादन पद्धति से पहले हुआ था। किन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत ही उनका विकास तथा बडे पैमाने पर विस्तार हुआ।

आरम्भ मे, बैंक मुख्यत हिसाब-किताब निबटाने मे मध्यवर्तियो का काम करते थे। उद्योगपति आम तौर पर अपना धन किसी बैंक मे जमा करते हैं। बैंक उनके आदेशो के अनुसार उन्हे यह धन देते रहते है। इसे दृष्टि मे रखते हुए, बैंक हर प्रकार की मुद्रा आमदनियो को जमा करते है और फिर उन्हें पूजीपतियो को उधार देते रहते है। उद्योगपतियो और व्यापारियो का धन बैंको मे जमा होता है, साथ ही मेहनतकश जनता की बचत की रकम भी बैंका मे जमा होती है, जो मुख्यत बचत खातो द्वारा ही बैंको मे पहुचती है। अन्ततोगत्वा, बैंको मे जमा हो रही पूजी का वृद्धिमान भाग पूजीपतियो का होता जाता है, जो अपने धन को खतरे मे डालने तथा व्याप चलाने के झझट से बचने के लिए उस पर ब्याज वसूलना ज्यादा पस करते है।

आम तौर से, किसी समय विशेष पर, अपनी जमा रकम की बैंक से वापस की माग करने वाले बहुत थोडे ही लोग होते है। साधारणत, जितनी रकम निकाली जाती है उससे ज्यादा ही फिर बैंक मे आ जाती है। इसलिए बैंक, अपने पास अपेक्षाकृत कम धन रखते हुए भी, वापसी की माग करने वाले सभी लोगो की माग को पूरा करने मे समर्थ होते हैं। बैंक अपनी अधिकाश जमा रकम को पूजीपतियो को कर्ज के रूप मे दे देता है।

उथल पुथल के अवसरो पर—सकट और युद्ध आदि के दौरान—यह बात बिल्कुल बदल जाती है। बैंको मे रुपया जमा करने वाले अधिकाश लोग अपनी रकमें निकाल लेना चाहते हैं। अगर बैंक पहले से ही इस परिस्थिति के लिए तैयार नही होता, अर्थात दूसरे बैंको व सरकार से रुपया उधार लेकर अपनी तिजोरियो मे नही भर लेता, तो वह दिवालिया हो जाता है और एलान कर देता है कि वह जमा रकमो को वापस करने मे असमर्थ है। किसी बैंक के दिवालिया हो जाने से बहुत से पूजीपति बर्बाद हो जाते हैं, निम्न पूजीपति अपनी बचत रकमो से हाथ धो बैठते हैं, आदि। इस तरह दिवालिया होने सकट और गहरा हो जाता है।

उद्योगपति जो कर्ज लेता है, उस के बदले बैंक को एक निश्चित मुआवजा अदा करता है। अगर वर्ष के आरभ मे बैंक से वह १००० रुपये लेता है, तो वर्ष के अन्त मे उसे १०३० रुपये अदा करने होते हैं—जिसका अर्थ यह है कि बैंक उससे ३ प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज लेता है।

ऐसी हालत मे, मुद्रा के मालिको को (बैंक मे रुपया जमा करने वालो को) बैंक उससे कम—मान लीजिए २ प्रतिशत—ब्याज अदा करता है। इसका अर्थ यह है कि बैंक जो ३० रुपये प्राप्त करता है, उनमे से २० रुपये वह मुद्रा के मालिको को दे देता है। इस प्रकार, बैंक को १० रुपये की आमदनी होती है।

इस लेन-देन से वरबस उस साधारण व्यापार की याद आ जाती है, जिसमे कोई व्यापारी किसी वस्तु को २० रुपयों मे खरीद कर उसे ३० रुपयो मे बेचता है। अन्तर केवल यह है कि बैंक जिस माल का क्रय-विक्रय करता है, वह कोई साधारण माल न होकर, एक विशेष माल होता है। वह माल मुद्रा की एक राशि होती है, जो पूजी मे बदल गयी है और पूजी की तरह इस्तेमाल की जाती है।

इस प्रकार बैंक, पूजी का कारोबार करता है। पूजी एक माल बन गयी है। वह क्रय-विक्रय के सौदो की वस्तु बन गयी है।

ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियां

कुछ उद्योगो, उदाहरण के लिए रेलो, के निर्माण मे बहुत अधिक पूजी की आवश्यकता होती है। ऐसे उद्योगो के निर्माण के लिए भारी पूजी जमा करने हेतु, ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो (मिश्रित पूजी की कम्पनियो) का गठन किया जाता है।

ज्वाइट स्टॉक कम्पनियो का उदय १७वी शताब्दी मे ही हो गया था, किन्तु बडे पैमाने पर इनका चलन १६वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ। आधुनिक पूजीवादी देशो मे बडे-बडे उद्योगो का अधिकाश भाग ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो के अन्तर्गत है।

ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी एक ऐसा उद्योग होती है, जिसकी पूजी पर कई लोगो का स्वामित्व होता है। हर स्वामी के पास एक निश्चित सख्या मे शेयर (हिस्से) होते है। एक शेयर इस बात का प्रमाण होता है कि उसके स्वामी ने उक्त उद्योग में एक निश्चित मात्रा मे, उदाहरण के लिए १००० रुपयों का, धन लगाया है।

औपचारिक रूप से ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी का निर्देशन शेयर-होल्डरो (हिस्सेदारो) की आम बैठक करती है। यह सभा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स (सचालक मण्डल) तथा दूसरे अधिकारियो की नियुक्ति करती है, कम्पनी के कार्यकलाप की रिपोर्ट सुन कर उसकी पुष्टि करती है तथा महत्वपूर्ण मामलो पर फैसले देती है।

किन्तु शेयर-होल्डरो की सभा मे प्रत्येक शेयर का एक मत होता है और इस प्रकार कम्पनी के असली स्वामी बडे शेयर-होल्डर, अर्थात बडी सख्या मे शेयर रखने वाले, होते है।

पूंजी के जनवादीकरण का रहस्य

पूजीवाद के पक्षधर दावा करते हैं कि ज्वाइट स्टॉक कम्पनियो के विस्तार से पूजी का जनवादीकरण होता है। इस सम्बध मे वे छोटे-छोटे शेयरो, अर्थात अपेक्षाकृत छोटी रकम के शेयरो, के जारी किये जाने की बडी प्रशस्ति गाते हैं।

वे लोग कहते हैं कि फैक्टरी का हर मजदूर तथा दफ्तरो मे काम करने वाला हर कर्मचारी इस प्रकार के शेयर खरीद सकता है और इससे मेहनतकश लोगो को उद्योगों के पूर्ण रूप से सह स्वामी बनने मे मदद मिलती है। उनके कथन के अनुसार, इसका अर्थ यह होता है कि पूजी का विकेन्द्रीकरण हो जाता है और वह "जन" पूजी का रूप धारण कर लेती है।

किन्तु, वास्तविकता यह है कि सर्वाधिक अमीर पूंजीवादी देश अमरीका में भी जनसख्या के ६० प्रतिशत भाग के पास उद्योगो के कोई शेयर नही हैं। शेयर होल्डरो मे बडे, मझोले तथा आशिक रूप से छोटे पूजीपति, मोटी-मोटी तनखाहे पाने वाले अधिकारी, दफ्तर-कर्मचारी, स्वतन्त्र पेशो वाले लोग तथा हुनरमद मजदूरो का एक छोटा भाग होता है। प्रति एक हजार मजदूरों में से सिर्फ कुछ दर्जन मजदूर तथा प्रति एक हजार किसानो व खेत मजदूरों में से चन्द लोग ही शेयरो के मालिक होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मेहनतकश लोगो के पास देश के कुल शेयरो का नाम मात्र भाग ही होता है। अकेले अमरीकी अरबपति ड्यू पा के परिवार के पास ही उससे १० गुना अधिक शेयर हैं, जितने कुल अमरीकी मजदूरो के पास।

छोटे शेयर-होल्डरो का कम्पनी मे कोई प्रभाव नही होता। मिसाल के लिए, १० लाख रुपयो के एक बडे शेयर होल्डर के पास, १०० रुपयों की कीमत से एक-एक शेयर वाले ६,६६६ शेयर-होल्डरो से ज्यादा वोट होते हैं।

उद्योगो के ज्वाइन्ट स्टॉक स्वरूप का यह अर्थ कतई नही है कि पूजी का जनवादीकरण हो गया है। इसके विपरीत, यह स्वरूप बडी पूजी के लिए यह सम्भव बनाता है कि वह छोटे और मंझोले पूजीपतियो की सचित पूजी तथा फैक्टरो व दफ्तरो के कर्मचारियो के उच्चस्तरीय लोगो की बचत की रकमो को अपने हित मे इस्तेमाल कर सके। उद्योगो का ज्वाइन्ट स्टॉक स्वरूप पूजी की वृद्धि मे बहुत सहायक होता है तथा उत्पादन का समागम करता है।

लाभांश और कोटेशन

शेयर खरीद लेने से उसका मालिक उद्योग के मुनाफे मे से एक भाग का हकदार हो जाता है। आइए, मान लें कि किसी कम्पनी की कुल शेयर पूजी १,०००,००० रुपये है जो हजार-हजार रुपयो के १०० शेयरो मे विभक्त है। यह भी मान लीजिए कि इस उद्योग मे २५०,००० रुपयों का मुनाफा हुआ। बोर्ड निश्चय करता है कि १००,००० रुपये सुरक्षित निधि के तौर पर छोड दिये जायें और बाकी रकम को शेयर-होल्डरो के बीच बाट दिया जाय। इसका अर्थ होगा कि हर शेयर पर उसके मालिक को १५० रुपये की आमदनी होगी।

शेयर-होल्डरों को इस तरह जो आमदनी होती है, उसे लाभांश (डिवीडेन्ड) कहते हैं। ऊपर के उदाहरण मे डिवीडेन्ड $\frac{१५०}{१०००}$ अर्थात १५ प्रतिशत होगा।

शेयर स्टॉक एक्सचेन्जों पर खरीदे और बेचे जाते है। जिस कीमत पर शेयर बेचा जाता है, उसे कोटेशन (भाव) कहते है।

शेयर खरीदने के बजाय पूजीपति अपनी कुल रकम को बैंक मे जमा कर सकता है। उस सूरत मे उसे अपने १००० रुपये पर ३ प्रतिशत के हिसाब से, अर्थात ३० रुपये, ब्याज प्राप्त होगा। किन्तु रकम का मालिक इतनी कम आमदनी मे सन्तुष्ट नही होता। वह शेयर खरीदना अधिक पसन्द करता है, क्योकि यद्यपि इस तरीके में कुछ खतरा अवश्य रहता है, फिर भी इसमे ज्यादा आमदनी की आशा रहती है।

यदि कोई धनवान व्यक्ति १५ प्रतिशत डिवीडेन्ड अदा करने वाले उद्योग के शेयर खरीदना चाहता है, तो इन शेयरो के मालिक उनको उनकी नामाकित कीमत पर (अर्थात जिस कीमत पर शेयर निश्चित हुआ है) बेचने को तैयार नही होगे।

१००० रुपयो के एक शेयर पर १५० रुपयो का डिवीडेन्ड प्राप्त हुआ। इस शेयर के सम्भावित खरीदार को उसे खरीदने के लिए १००० रुपयो से अधिक देना पडेगा। इसकी उच्चतम सीमा शायद ५००० रुपये हो सकती है, क्योकि इस रकम को बैंक मे जमा करके उसका मालिक ब्याज के रूप मे भी १५० रुपयो की आमदनी कर सकता है।

फर्जी पूजी

जब कोई कारखाना किसी अकेले मालिक का होता है, तो उसकी पूजी—मान लीजिए १० लाख रुपये—फैक्टरी की इमारतो, मशीनरी, कच्चे माल के सुरक्षित स्टॉक, तैयार माल, तथा एक निश्चित मात्रा मे नकद रकम—जो या तो उद्योग की तिजोरी मे बन्द रहती है या बैंक मे मालिक के करेन्ट एकाउन्ट मे जमा रहती है—का रूप ले लेती है।

जब उसी मालिक का उद्योग ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी का रूप ले लेता है, तो क्या परिवर्तन हो जाता है? मान लीजिए कि हजार हजार रुपयो के १००० शेयर जारी किये गये। इस कार्यवाही के परिणामस्वरूप उस उद्योग की पूजी पहले से दुगनी हो जाती है।

फैक्टरी की इमारतें, स्टोर और मशीनरी तो जैसे के तैसे रहते है। वे मौजूदा १० लाख रुपयो की पूजी का हिस्सा होते है। अब इसके अलावा १० लाख रुपयो की रकम सिक्योरिटियो के रूप मे और बढ जाती है। ये सिक्योरिटिया विभिन्न मालिको मे शेयरो के रूप मे बट जाती हैं।

इस प्रकार शेयरो के जारी होने मे गिनती दोहरी हो जाती है। वही पूजी पहले तो पूरे उद्योग के रूप मे, उसकी मशीनरी, कच्चे माल के स्टॉक आदि के रूप मे होती है, फिर वह सिक्योरिटियो का रूप धारण कर लेती है।

वास्तविकता यह है कि शेयर जारी करने से शुरूआती पूजी मे एक पाई की भी वृद्धि नही हुई। लेकिन लगता ऐसा है कि जैसे नयी पूजी शामिल हो गयी हो, यानी पूजी पहले से दो गुनी हो गयी हो।

शेयरो की हैसियत उस उद्योग मे पहले से ही लगी पूजी का एक प्रतिरूप होने के अलावा और कुछ नही होती, किन्तु इसी के साथ शेयरो का उद्योग से स्वतंत्र उनका अपना अस्तित्व होता है: उनका क्रय-विक्रय होता है तथा उनको जमा किया जाता है।

सिक्योरिटियो (जमानतो) के रूप मे मौजूद नयी पूजी को फर्जी पूजी कहा जाता है। शेयरो के अलावा, यह फर्जी पूजी बॉन्डो का रूप भी धारण कर सकती है। ये उद्योग या पूजीवादी राज्य द्वारा जारी किये गये प्रामिजरी नोटो के रूप मे होते है, जिन्हे कर्ज के रूप मे निश्चित शर्तों के साथ जारी किया जाता है।

सकटो और दूसरे किस्म की उथल-पुथल के अवसरो पर इस फर्जी पूजी मे बडी तीव्र गति से गिरावट आती है। फर्जी पूजी मे गिरावट आने से पूरी अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक दूरगामी प्रभाव पडता है, क्योकि यह पूजी हजारो धागो द्वारा—बैंको, वित्तीय व्यवस्था, आदि, द्वारा—वास्तविक उत्पादन और उसके परिचालन से जुडी होती है।

स्टॉक एक्सचेन्ज—सट्टा बाजार

विभिन्न कारणो से शेयरो के कोटेशनो मे लगातार उतार-चढाव आया करता है। पहले से किसी को पता नही होता कि किसी शेयर मे कितना लाभाश प्राप्त होने वाला है। जब हथियारो की दौड तेज हो जाती है, तो युद्ध उद्योगो के शेयरो के कोटेशन ऊचे उठ जाते हैं। अगर किसी लम्बी रेलवे लाइन का निर्माण होना है तो रेल इन्जिनो के निर्माण तथा रेल पटरियो की ढलाई-मिलो के शेयर ऊचे चढ जाते हैं। सट्टा बाजारो मे कारोबार सिक्योरिटियो द्वारा होता है। सट्टा बाजार उस मडी को कहते हैं जहा शेयरो और बॉन्डो का क्रय-विक्रय होता है। यह सिक्योरिटियो मे सट्टेबाजी का केन्द्र होता है।

बडे-बडे पूजीपति और बैंक, सट्टा बाजारो मे फैसलाकुन भूमिका अदा करते हैं। सट्टेबाजी के परिणामस्वरूप जब कोटेशनो मे उभार आता है, तो वे ही बैंक मुनाफा बटोरते हैं और जब कभी कोटेशन बडे पैमाने पर नीचे गिर जाते हैं तो छोटे-छोटे शेयर होल्डर और मामूली सट्टेबाज सामूहिक रूप मे तबाह हो जाते हैं।

पूंजी के स्वामित्व का पूंजी विनियोग से अलगाव

पूजीवादी उत्पादन के शुरू मे पूजीपति—उद्योग का मालिक और मैनेजर, दोनो ही, होता था। इजारा व्यवस्था मे, और विशेष रूप से ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो की आमद मे, परिस्थिति बिल्कुल ही बदल गयी।

ऋण पूजी की विशेषता है कि यह अपने स्वामी द्वारा उत्पादन के काम मे इस्तेमाल नही की जाती। इस प्रकार, पूजी का स्वामित्व पूजी विनियोग से अलग हो जाता है।

पूजीपति ऐसा मालिक बन जाता है, जिसका उत्पादन से कोई सम्बध नही होता। उत्पादन का काम भाडे पर नियुक्त पूजी के नौकर—प्रबन्धक और डायरेक्टर—सम्पन्न करते हैं। पूजीवाद के विकास के साथ अधिकाधिक लोग पूजी पर भारी मुनाफो के मालिक होते जाते हैं। ये ऐसे मुनाफे होते है जिनको कमाने मे वे अपनी उगली तक नही हिलाते।

पूजी के स्वामित्व का पूजी विनियोग से अलगाव विशेष रूप से इस बात को प्रदर्शित करता है कि उत्पादन के लिए सम्पत्ति का पूजीवादी स्वामित्व आवश्यक नही है, और यह स्वामित्व दूसरो की कमाई पर आश्रित रहने जैसा होता है।

३. पूंजीवाद के अन्तर्गत भूमि का लगान

जमीन की निजी मिल्कियत और पूजीवादी लगान

लगभग सभी पूजीवादी देशो में सामन्तवाद के अवशेष बाकी हैं। इनमे सबसे महत्वपूर्ण अवशेष है—जमीन का निजी स्वामित्व।

कृषि उत्पादन के लिए बुनियादी शर्त जमीन का होना है। पूजीवाद के अन्तर्गत, जमीन का बहुत बडा भाग बडे-बडे भूस्वामियो के हाथ मे रहता है। भूस्वामी समाज से टैक्स वसूल करने के लिए सम्पत्ति पर अपने स्वामित्व के अधिकार का इस्तेमाल करता है। यह टैक्स भूमि का पूजीवादी लगान कहा जाता है।

भूमि का पूंजीवादी लगान, पूजीवाद-पूर्व की व्यवस्था के लगान से बिल्कुल भिन्न किस्म का है। सामन्तवाद के अन्तर्गत भूस्वामी वर्ग, अधिशेष सामाजिक उत्पादन के समस्त भाग को लगान के रूप मे हथिया लेता था। पूजीवाद के अन्तर्गत भूस्वामी अधिशेष सामाजिक उत्पादन के केवल एक भाग को, अधिशेष मूल्य के केवल एक भाग को, हथियाता है।

लगान का सिद्धान्त निम्नलिखित प्रस्थापनाओ पर आधारित है। भूस्वामी अपनी भूमि ठेके पर देता है। ठेकेदार एक पूजीपति होता है, जो अपने फार्म को भाड़े पर नियुक्त मजदूरो की सहायता से चलाता है। इन मजदूरो के अनचुकता श्रम से अधिशेष मूल्य पैदा होता है।

यह अधिशेष मूल्य सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख रूप से पूजीवादी ठेकेदार के पास जाता है। वह इसका एक भाग—अपनी पूजी पर मुनाफा—अपने पास

रख लेता है। दूसरे भाग को—अधिशेष मुनाफे के एक अंश को—वह भूमि के लगान के रूप मे भूस्वामी को देने को बाध्य होता है।

भूस्वामी प्राय ही अपनी भूमि को ठेके पर नही देता, बल्कि भाडे पर मजदूर रख कर स्वय अपना फार्म चलाता है। ऐसी स्थिति म लगान और मुनाफा एक ही व्यक्ति के पास जाता है। इसके अतिरिक्त, किसानो से वसूल किया जाने वाला लगान भी बहुत बडी भूमिका अदा करता है। लेकिन इन पेचीदा सम्बधो को समझने के लिए हम सर्वप्रथम भूमि के पूजीवादी लगान के सार-तत्व को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

सापेक्ष लगान तथा बुनियादी लगान मे हमे फर्क करना चाहिए। आइए, पहले सापेक्ष लगान की चर्चा करें।

सापेक्ष लगान भूमि के अलग अलग टुकडो मे, उनके उपजाऊपन की दृष्टि से, भिन्नता होती है। समान श्रम लगाने पर, अधिक उपजाऊ भूखण्ड पर किसी अन्य भूखण्ड की अपेक्षा अधिक उत्पादन होगा।

किसी भुखण्ड की नगरो, नदियो, समुद्र या रेलवे स्टेशनो से दूरी भी बहुत महत्वपूर्ण होती है। जिस भूस्वामी का फार्म अधिक सुविधाजनक स्थान पर होता है, वह अपने उत्पाद के यातायात के खर्चों मे काफी बचत कर लेता है।

आइए, भिन्न भिन्न उर्वरता वाले तीन अलग-अलग खेतो की तुलना करें। इनमे से प्रत्येक खेत का ठेकेदार मजदूरो के वेतन, बीज की खरीदारी तथा पशुओ की देखभाल पर—मान लीजिए साल मे १०,००० रुपये—खर्च करता है। आइए हम मान लें कि औसत मुनाफा २० प्रतिशत है।

उर्वरता भिन्न भिन्न होने के कारण पहले खत पर गेहू की पैदावार १०० क्विटल दूसरे पर १२० क्विटल तथा तीसरे पर १५० क्विटल होगी। तीनो ही खेतो पर उत्पादन की कीमत (उत्पादन की लागत और औसत मुनाफा) समान अर्थात १ २०० रुपये, है। इस प्रकार, पहले खेत के गेहू का दाम १२० रुपये क्विटल, दूसरे का १०० रुपये क्विटल और तीसरे का ८० रुपये क्विटल होगा।

कितु मडी मे खेतो के उपजाऊपन की भिन्नता पर कोई ध्यान नही दिया जाता। प्रति क्विटल अनाज की कीमत एक जैसी ही रहती है, फिर उसे पैदा किसी भी जगह क्यो न किया गया हो। सामान्यत मडी को तीनो ही खेतो मे उपजे अनाज की आवश्यकता होती है। तो, मडी मे प्रति क्विटल भाव क्या होगा ?

अगर भाव ८० रुपये प्रति क्विटल होता है, तो पहले और दूसरे खेत के ठेकेदार मुनाफा कमाना तो दूर रहा, अपनी लागत पूजी को कायम रखने तक मे समर्थ नही होंगे। ऐसी स्थिति मे वे अपनी पूजी को उद्योग या अन्य आर्थिक कारोबारो म, स्थानान्तरित कर देंगे।

अगर कीमत १०० रु. क्विंटल हो तो पहले खेत का ठेकेदार अपना खर्च तो निकाल लेगा, परन्तु उसको औसत मुनाफा नही मिलेगा और इस प्रकार वह अपनी पूंजी को दोबारा उद्योग मे लगा देगा।

अतएव मंडी मे प्रति क्विंटल कीमत १२० रुपये, अर्थात सबसे कम उपजाऊ खेत की उत्पादन कीमत के बराबर होनी चाहिए। और, चूकि समाज को तीनो ही खेतो की उपज की आवश्यकता होती है, इसलिए ठीक यही कीमत मंडी मे स्थापित हो जाती है।

खेत किस स्थान पर है इसका अन्तर खेतो के उपजाऊपन मे अन्तर से कम महत्वपूर्ण नही है। मंडी से दूर स्थित खेत के किसान को एक क्विंटल अनाज पैदा करने और उसे मंडी तक पहुचाने मे मंडी के नजदीक वाले खेत के किसान की तुलना मे अधिक खर्च करना पडता है।

उद्योग मे उत्पादन की कीमत, औसत उत्पादन परिस्थितियो द्वारा निर्धारित होती है। यदि कोई उद्योग पुराने तौर-तरीकों पर चलता है, तो माल की प्रति इकाई पर श्रम का खर्च अधिक होता है, किन्तु तैयार माल को बेचने पर उसे तकनीकी विकास के औसत स्तर द्वारा निर्धारित कीमत ही प्राप्त होती है।

कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओ की उत्पादन-कीमत दूसरे तरीको से निश्चित होती है। यह सर्वाधिक खराब खेतो मे मौजूद उत्पादन स्थितियो द्वारा निश्चित होती है। भूमि का क्षेत्रफल सीमित होता है। इस कारण मनमाने तौर पर समान रूप से अच्छे खेतो को अपनी इच्छित संख्या मे स्थापित कर सकना असम्भव होता है। यह स्थिति उद्योगो से बिल्कुल भिन्न है, जहा किसी भी उद्योग मे, किसी भी संख्या मे, अच्छी से अच्छी मशीनें लगायी जा सकती है। जमीन के किसी अच्छे खेत पर पूजी के खर्च से प्राप्त होने वाला अधिशेष मुनाफा या पूजी का अधिक उत्पादनकारी इस्तेमाल सापेक्ष लगान का आधार होता है।

किन्तु आइए अपने उदाहरण पर वापस लौट चलें। मान लीजिए कि मंडी मे गेहूं की कीमत १२० रुपये प्रति क्विंटल है।

पहले (अर्थात सर्वाधिक खराब) खेत के किसान को अपने १०० क्विंटलों के उत्पादन पर १२,००० रुपये प्राप्त होगे। यह रकम उसकी उत्पादन लागत (१०,००० रुपये) और औसत मुनाफे (२००० रुपये) के योग के बराबर होगी।

दूसरे खेत के किसान को अपने १२० क्विंटल के उत्पादन पर १४,४०० रुपये प्राप्त होगे। उसे अपना उत्पादन लागत और औसत मुनाफे मे २,४०० रुपये अधिक प्राप्त होगे।

तीसरे खेत के किसान को अपने १५० क्विंटल के उत्पादन पर १८,००० रुपये प्राप्त होंगे, अर्थात उत्पादन लागत और औसत मुनाफे से ६,००० रुपये अधिक मिलेंगे।

स्वभावत दूसरे और तीसरे खेत के किसान इस फाजिल रकम को हड़पने म बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। किन्तु पूजीपतियो के बीच प्रतियोगिता चलती रहती है। अनेक पूजीपति इस बात के लिए तैयार रहते हैं कि औसत मुनाफे से अधिक प्राप्त होने वाली रकम को भूस्वामी को लगान के रूप मे वापस लौटा दें, और औसत मुनाफे को अपने पास बनाये रखें। इसलिए भूस्वामी लोग औसत मुनाफे से अधिक रकम को सापेक्ष लगान के रूप मे वसूल करते हैं। अच्छी भूमि पर पूजी लगाने से जो अधिशेष प्राप्त होता है उसे सापेक्ष लगान कहते हैं।

जमीन पर स्वामित्व की व्यवस्था कोई भी क्यो न हो, जमीन के अच्छे खेतो से औसत मुनाफे से अधिक रकम अवश्य ही प्राप्त होती है। किन्तु भूमि पर निजी स्वामित्व होने के कारण भूस्वामी इस अधिशेष को सापेक्ष लगान के रूप मे हथिया लेते है।

सामान्य रूप से समस्त अधिशेष मूल्य के ही समान अधिशेष मुनाफा भी केवल श्रम द्वारा ही पैदा होता है। अधिक उपजाऊ खेतो पर श्रम—कम उपजाऊ खेतो की अपेक्षा—अधिक उत्पादक होता है। उपजाऊपन का अन्तर ही श्रम की उत्पादकता के अन्तर के लिए जिम्मेदार होता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत यह गलत धारणा पैदा होती है कि लगान श्रम से नही, बल्कि जमीन से पैदा होता है क्योकि उसे भूस्वामी हथिया लेता है। किन्तु वास्तव मे लगान का एकमात्र स्रोत अधिशेष श्रम या अधिशेष मूल्य ही होता है।

बुनियादी लगान

सापेक्ष लगान के अलावा भूस्वामी को बुनियादी लगान भी प्राप्त होता है।

आइए उसी उदाहरण को याद करें। पहले खेत पर, अर्थात सबसे खराब खेत पर, कोई अधिशेष मुनाफा नही मिलता। हमने माना था कि उस खेत के किसान ने अपना गेहू उस कीमत पर बेचा था, जो उसकी लागत पूजी और औसत मुनाफे, अर्थात उत्पादन की कीमत, के बराबर था।

लेकिन, खेत का मालिक किसान को बिना किसी मुआवजे के जमीन का मुफ्त इस्तेमाल नही करने देगा। अतएव, सबसे खराब खेत के किसान को अपने गेहूँ को बेच कर औसत मुनाफे से कुछ ऊपर (अधिशेष) रकम प्राप्त होनी चाहिए ताकि वह जमीन पर पूजी लगाने का अधिकार प्राप्त करने के लिए उसे भूस्वामी को दे सके। इसका अर्थ यह हुआ कि कृषि द्वारा उत्पादित

वस्तुओ की मडी मे कीमत, सबसे खराब खेत की उत्पादन कीमत से कुछ ऊपर होनी चाहिए।

इसलिए, कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुएं उत्पादन कीमत से कुछ अधिक भाव पर बिकती है। इस प्रकार प्राप्त अधिशेष, भूस्वामी के पास चला जाता है। यह जमीन का बुनियादी लगान होता है।

सापेक्ष लगान से बिल्कुल भिन्न, जमीन का बुनियादी लगान भूमि के निजी स्वामित्व का परिणाम है। भूमि पर निजी स्वामित्व के बिना बुनियादी लगान का अस्तित्व ही नही हो सकता।

सापेक्ष लगान, मडी मे एकहरी कीमत का परिणाम होता है। लेकिन बुनियादी लगान के सम्बध मे स्थिति भिन्न है : यह स्वय, कृषि वस्तुओ की मडी मे ऊची कीमतो के लिए जिम्मेदार होता है। सापेक्ष लगान की तरह, बुनियादी लगान भी अधिशेष मूल्य का भाग होता है।

परजीवी भूस्वामियों को अदा किया जाने वाला टैक्स

जमीन का लगान एक प्रकार का टैक्स होता है, जिसे पूजीवाद के अन्तर्गत समाज को बाध्य होकर भूस्वामियो को चुकाना पडता है। पूजीवाद के विकास के साथ-साथ यह टैक्स भी बढता जाता है। लेकिन इसके बावजूद भूस्वामी, पूजीवादी उत्पादन के लिए एक बिल्कुल अनावश्यक प्राणी होता है। उसकी आमदनी पूर्णत. दूसरो की कमाई पर निर्भर होती है।

सापेक्ष लगान के फलस्वरूप, समाज को भूमि के प्राकृतिक उपजाऊपन के समस्त फायदे प्राप्त नही हो पाते। ये सब फायदे भूस्वामियो के हाथ मे पहुच जाते हैं। बुनियादी लगान के कारण कृषिजन्य सभी वस्तुओ—मजदूरो के लिए खाद्य सामग्री तथा उद्योग के लिए कच्चे माल—की कीमतें अधिक चढ जाती हैं। अगर बुनियादी लगान न रहे तो ये सब वस्तुए उत्पादन की कीमत पर बिकेंगी। अतएव, बुनियादी लगान के ही कारण ये वस्तुए उत्पादन कीमतो से अधिक कीमतो पर बिकती है।

किसानो के शोषण के जरिये लगान

अक्सर भूस्वामियो से भूमि का ठेका पूजीपति नही, बल्कि छोटे-छोटे कृषक लेते हैं। वे अपने श्रम से ही खेती करते है; भाडे पर मजदूर नही रखते। तब लगान कहा से पैदा होता है, क्योंकि यहा अधिशेष मूल्य पैदा करने वाले मजदूर नही होते?

यहां जमीन के लगान का स्रोत भूस्वामी द्वारा किसानो का शोषण है। किसान अपने श्रम के उत्पादो का एक भाग भूस्वामी को देता है। मार्क्स ने

लिखा है कि पूजीवाद के अन्तर्गत किसानो के शोषण और फैक्टरी मे काम करने वाले सर्वहारा वर्ग के शोषण के बीच अन्तर केवल रूप का है।

भूस्वामी को दिया जाने वाला भाग अक्सर ही इतना अधिक होता है कि किसान को कमरतोड मेहनत करने के बाद भी आधे पेट ही गुजर करना पडता है। यह बात उन जगहो पर विशेष रूप से देखी जाती है जहा सामन्ती युग के आज भी काफी अवशेष मौजूद हैं और जहा भूस्वामी द्वारा पूजीवादी लगान के साथ पूजीवाद-पूर्व का लगान भी वसूल किया जाता है।

उदाहरण के लिए, जारशाही रूस मे ठीक यही स्थिति थी। भूस्वामी भूमि के भूखे किसानो का खून चूस-चूस कर उन्हे नि सत्व कर देते थे। भूस्वामी नकद लगान तो वसूल करता ही था, साथ ही हर प्रकार के श्रम लगान, बेगार और चीजो के रूप मे नजरानो की माग भी करता था।

जमीन की कीमत

निजी सम्पत्ति होने के कारण भूमि का क्रय विक्रय किया जा सकता है । अगर हम भूमि पर किये गये विविध किस्म के निर्माणो और सुधारो आदि (इमारतो, जल-प्रदाय, सिंचाई साधनो, आदि) को छोड दें, तो भूमि का अपना कोई मूल्य न तो होता है और न हो सकता है क्योकि वह मानव श्रम की उपज नही है। लेकिन भूमि का कोई मूल्य न होने पर भी पूजीवाद के अन्तर्गत उसकी हमेशा कीमत अवश्य होती है।

यह कीमत, मुद्रा के रूप मे मूल्य की अभिव्यक्ति नही होती। यह एक भिन्न चीज की अभिव्यक्ति होती है। भूमि की कीमत इसलिए हो गयी है, क्योकि भूस्वामियो न उसे अपनी निजी सम्पत्ति बना लिया है।

भूमि की कीमत उससे सालाना होने वाली आमदनी पर निर्भर करती है। भूमि के टुकडे की कीमत मुद्रा की उस मात्रा के बराबर होती है, जिसे बैंक मे अगर मौजूदा ब्याज की दर पर जमा कर दिया जाय तो उससे भूखड के लगान के बराबर ब्याज प्राप्त हो जाय। इस हिसाब-किताब को पूजीकरण कहा जाता है। भूमि की कीमत पूजीकृत लगान के अलावा और कुछ नही है। इसी कारण भूमि के उस टुकडे की कीमत ज्यादा हो जाती है, जिसका लगान ज्यादा है और ब्याज की दर कम है। भूमि खरीदते हुए, खरीदार वास्तव मे भूस्वामी को कई वर्षों का लगान पेशगी जमा कर देता है।

"ह्रासमान प्रतिफल नियम" के बारे मे मिथ्या धारणा

पूजीवाद के पक्षधर यह समझाने की कोशिश करते हैं कि भूस्वामियो को अदा किये जाने वाले लगान के परिणामस्वरूप जीवन के खर्चों मे जो वृद्धि होती है वह "प्राकृतिक नियमो" के अनुकूल है। उनका दावा है कि कृषि "ह्रासमान प्रतिफल नियम" से प्रभावित होती है।

उनका कहना है कि यह नियम एक प्राकृतिक नियम है और किसी भी तरह सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर नही है। वे यह भी कहते हैं कि भूमि पर बाद मे जितना भी श्रम लगाया जाता है, उसका फल पहले की अपेक्षा घटता जाता है।

इस "ह्रासमान प्रतिफल नियम" की खोज इस उद्देश्य से की गयी है कि पूजीवाद को पाक-साफ रूप में पेश किया जा सके और मेहनतकश जनता की गरीबी के लिए जिम्मेदार होने से उसे बरी किया जा सके। पूजीवाद के पक्ष-धर कहते हैं कि पूंजीवाद साधारण जनता की गरीबी और अभाव के लिए जिम्मेदार नही है। उनका कहना है कि गरीबी और अभाव का कारण यह है कि जनसख्या मे वृद्धि कृषि उत्पादन की अपेक्षा ज्यादा तेज गति से हो रही है। इसी आधार पर, पूजीपति वर्ग के सबसे निर्लज्ज दलाल उन युद्धो और महामारियो तक की वकालत करते हैं जिनमे जनसख्या की भारी बर्बादी होती है।

"ह्रासमान प्रतिफल नियम" एक मनगढन्त खोज के अलावा और कुछ नही है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विचारणीय तत्व को, अर्थात उत्पादन के टेक्नालॉजीकल स्तर तथा उत्पादक शक्तियो की स्थिति को, बिल्कुल ही नजरअन्दाज कर देता है। इस कुख्यात नियम के पक्षधर इस गलत धारणा के आधार पर बात करते हैं कि कृषि उत्पादन मे टेक्नालॉजी नियमतः यथास्थिति पर कायम रहती है और इसमे परिवर्तन अपवाद स्वरूप ही होते हैं। लेकिन असलियत तो यह है कि साधारणतः कृषि मे अधिशेष श्रम लगाये जाने का सम्बध टेक्नालॉजी की प्रगति, कृषि उत्पादन के बेहतर और नये तौर-तरीको की शुरूआत से होता है।

लेनिन ने "ह्रासमान प्रतिफल नियम" के पक्षधरो की तुलना उन लोगो से की थी, जो कहा करते थे कि रेलें नियमतः स्टेशनो पर खडी रहती हैं, और केवल अपवादस्वरूप ही चलती हैं।

पूंजीवादी देशों में भूमि का बंटवारा

पूजीवादी देशो मे छोटे किसानो की विशाल सख्या के पास मुट्ठी भर भूस्वामियो के मुकाबले कम भूमि होती है। क्रान्ति से पहले के रूस में भूमि का अधिकाश भाग बडे-बडे भूस्वामियो, जार के परिवार वालो, धार्मिक मठो और कुलको (धनी किसानो) के हाथ मे था। वहा लगभग ३० हजार बडे-बडे भूस्वामी थे, जिन मे से हरेक के पास ५०० देसियातिन (एक रूसी माप) से अधिक जमीन थी। उनके पास लगभग ७०,०००,००० देसियातिन जमीन थी।

एक करोड से अधिक अत्यन्त गरीब किसानो के खेतो मे भी ७०,०००,००० देसियातिन जमीन थी। बड़े-बडे फार्मों के पास औसतन २,३०० देसियातिन

भूमि थी, जबकि एक किसान परिवार के पास केवल ७ देसियातिन भूमि ही थी। इस प्रकार, एक बडे फार्म का क्षेत्रफल लगभग ३३० छोटे किसानों के खेतो के बराबर था।

रूस मे भूमि पाने के इच्छुक तथा भूमिहीन किसानो का एक सैलाब-सा था। महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने ही भूमि को निकम्मे भूस्वामियो से मुक्त करके उसे श्रमजीवी किसानो को उपलब्ध कराया।

आधुनिक पूजीवादी देशो मे भूमि मुख्यत बडे भूस्वामियो के हाथो मे केन्द्रित है। इससे किसानो का उत्पीडन होता है और उनकी कगाली बढती जाती है।

कृषि उत्पादन का भूमि के स्वामित्व से अलगाव

पूजीवाद के विकास के साथ ही कृषि उत्पादन का भूमि के स्वामित्व से अधिकाधिक अलगाव होता जाता है। भूमि का मालिक उस पर खेती नही करता, बल्कि भूमि का लगान वसूल करता है।

मार्क्स ने लिखा है कि पूजीवाद भूमि के स्वामित्व को बेहूदेपन की हद तक पहुचा देता है। यह एकदम स्पष्ट है कि भूमि पर निजी स्वामित्व के बिना भी कृषि उत्पादन जारी रह सकता है।

कृषि उत्पादन का भूमि के स्वामित्व से अलगाव दो रूपो मे होता है।

प्रथम, ठेको के रूप मे खेती किसान करता है, और भूमि पर स्वामित्व भूस्वामी का होता है। जमीन के ठेके पर दिये जाने का प्रचलन हर पूजीवादी देश मे पाया जाता है। मेहनतकश किसानो को अत्यन्त कष्टदायी शर्तों पर भूस्वामी से ठेके पर भूमि लेनी होती है।

द्वितीय, बन्धको के रूप मे। बन्धक ऋण ऐसा कर्ज होता है जो किसी वास्तविक सम्पत्ति को बन्धक रखने पर प्राप्त होता है। जब किसी भूस्वामी को आवश्यक अदायगियो (जैसे टैक्सो को चुकता करने के लिए) धन की आवश्यकता होती है, तो वह कर्ज लेने के लिए बैंक को प्रार्थना-पत्र देता है। कभी-कभी एक छोटा किसान किसी नये खेत को खरीदने के लिए कर्ज के लिए प्रार्थना-पत्र देता है। बैंक खेत को ऋण की सिक्योरिटी के रूप मे बन्धक रख कर कर्ज की स्वीकृति देता है।

अगर ऋण की अदायगी निश्चित समय के अन्दर नही हो जाती तो बैंक उस खेत पर अधिकार कर लेता है। बैंक का अधिकार उस खेत पर, आम तौर से, पहले ही हो जाता है, क्योंकि कर्जदार किसान उस खेत से होने वाली आमदनी बैंक को कर्ज के ब्याज के रूप मे दे देता है। इसका अर्थ यह है कि भूमि का लगान भूमि के मालिक किसान को नही, बल्कि बैंक को प्राप्त होना है। बधको के द्वारा विशाल किसान जनसख्या का निर्मम शोषण होता है।

शोषण के खिलाफ संघर्ष में मजदूर वर्ग और मेहनतकश किसानों के हितों की एकरूपता

पूजीवाद न केवल मजदूर वर्ग को बल्कि किसानो के अधिकाश भाग को भी घोर अनिश्चितता और असुरक्षा के भवर मे धकेल देता है। भूस्वामियो और पूजीपतियो द्वारा किसानो का निर्मम शोषण किया जाता है। पूजीवाद के विकास के साथ ही किसानो मे स्तरीकरण भी होता है। ग्रामीण अचलो मे मुट्ठी भर उच्च पदस्थ लोग—कुलक—मेहनतकश किसानो का निर्मम शोषण करके धनी बन जाते हैं। परिणामस्वरूप बहुत बडी सख्या मे किसान तबाह हो जाते हैं और अपने छोटे-छोटे खेतो को बेच कर वे खेत-मजदूर बन जाते है, या नगरो मे काम की तलाश मे घूमने लगते हैं। मझोले किसानो का बहुत बडा भाग अनिश्चितता और अस्थिरता की अवस्था मे जीवन व्यतीत करता है।

उद्योग-धधो के समान, कृषि क्षेत्र मे भी बडे पैमाने पर किये जाने वाला उत्पादन, छोटे उत्पादन से बहुत ज्यादा लाभदायक होता है। बडे पैमाने पर किये जाने वाले उत्पादन मे मशीनरी और तकनीकी सुधारो का इस्तेमाल किया जा सकता है, जबकि छोटे पैमाने के उत्पादन मे उनका इस्तेमाल नही हो सकता। बहुत से पूजीवादी देशो मे भूमि के बहुत बडे भाग पर भूस्वामियो का अधिकार होता है जो किसानो का खून चूसते हैं। टैक्सो मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि तथा कृषि उत्पादनो की कीमतो मे हर गिरावट से छोटे किसान परिवारो का जीवन खतरे मे पड जाता है। किसान कर्जदार हो जाते हैं और बैंको व महाजनो द्वारा उनका शोषण बढ जाता है। यद्यपि वे अपना खून-पसीना एक करते हैं और अपनी दिखावटी आर्थिक स्वतत्रता को कायम रखने के लिए भरसक प्रयास करते हैं, फिर भी अधिकाश छोटे किसान परिवार बर्बाद हो जाते हैं। वे या तो नगरो के औद्योगिक कारखानो या बडे फार्मों पर मजदूरी करने को विवश हो जाते हैं। खेत मजदूरो को अपने श्रम के बदले बहुत ही कम मजदूरी मिलती है और उनके काम के घटे मनमाने तौर पर मालिको अर्थात बडे खेतिहर पूजीपतियो या कुलको द्वारा निश्चित किये जाते हैं।

इस प्रकार पूजीवाद के अन्तर्गत मेहनतकश किसानो का अधिकाश भाग निर्मम शोषण का शिकार रहता है। इसी आधार पर शोषको—पूजीपतियो और भूस्वामियों—के खिलाफ सघर्ष मे मजदूर वर्ग और किसानों के हितो मे एकरूपता पैदा होती है। इस सघर्ष का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ मे होता है, क्योंकि यही वर्ग सबसे अधिक प्रगतिशील सामाजिक वर्ग होता है।

नगर और देहात के बीच बढ़ता विग्रह

पूजीवाद के उदय के बहुत पहले दस्तकारियो का खेती से अलगाव हो गया था। श्रम के सामाजिक विभाजन की दिशा मे यह बहुत बडा कदम था। किन्तु पूजीवाद-

पूर्व के समाजो मे कृषि उत्पादन अधिकाशत प्राकृतिक तौर पर होता था। दस्तकारी का तकनीकी स्तर भी कृषि से ज्यादा ऊचा नही था। सम्पूर्ण उत्पादन मे कृषि का स्थान प्रधान था।

पूजीवाद के उदय और विकास के साथ परिस्थिति मे बुनियादी परिवर्तन आया। आरम्भ मे जूते, कपडे तथा किसान परिवारो के लिए आवश्यक हर प्रकार की घरेलू वस्तुओं का निर्माण स्वय किसानो, या किसान शिल्पकारों, द्वारा किया जाता था। पूजीवाद म कपडा-उद्योग तथा जूता-उद्योग का उदय होता है तथा कारखानो मे बनने वाला सामान घरेलू सामानो का स्थान ले लेता है, क्योंकि वह सस्ता और बहतर होता है। माल-उत्पादन की प्रधानता हो जाती है। मशीन उद्योग मे सक्रमण से कृषि और उद्योग का पूर्ण अलगाव हो जाता है।

पूजीवाद उद्योग के नये-नये क्षेत्रो को कृषि से अलग करता जाता है तथा उद्योग व कृषि के बीच का अन्तर, नगर और देहात के बीच का अन्तर, ज्यादा गहरा हो जाता है। पूजीवादी नगर बरहमी से देहातो का शोषण करते हैं।

तकनीकी क्षेत्र म प्रगति, उत्पादन के नये तौर-तरीके, नये सुधार व नयी मशीनरी, उद्योगो म प्रयुक्त होने लगती है। कुछ दिनो पहले तक अत्यन्त विकसित पूजीवादी देशो मे भी कृषि पिछड़े हुए उपकरणों और शारीरिक श्रम पर आधारित थी। दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही विकसित देशो की कृषि मे मशीनो और विकसित कृषि तकनीक का बडे पैमाने पर इस्तेमाल शुरू हुआ। शारीरिक श्रम से आधुनिक मशीन उत्पादन के इस सक्रमण के साथ लाखो-करोडो किसान परिवारो की तबाही आ जाती है और उन्हे बडे पैमाने के पूजीवादी उद्योग निगलते चले जाते हैं। किन्तु आर्थिक रूप से अविकसित देशो म कृषि उत्पादन आज भी अत्यन्त निम्न तकनीकी स्तर पर किया जाता है।

भूमि पर लगान के परिणामस्वरूप बहुत बडी मात्रा मे धन बडे बडे भूस्वामियो के पास सिमट जाता है। देहातो मे भारी मात्रा मे जो अधिशेष मूल्य पैदा होता है, उसे बडे भूस्वामी हडप जाते हैं। वे इस धन को माले मुफ्त दिले बेरहम की तरह खर्च करते है।

जब कोई किसान जमीन को खरीद लेता है तब भी उसकी स्थिति मे कोई सुधार नही आता। भूमि खरीदने म उसे भारी रकम खर्च करनी पडती है और फिर मशीनरी तथा दूसरे उपकरण खरीदने के लिए उसके पास बहुत कम धन बचता है। किसानो की बर्बादी के लिए जिम्मेदार मुख्य कारणो मे यह भी एक है।

पूजीवाद प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की सीमित सीमाओ को तोड देता है, किन्तु साथ ही ग्रामीण जनसख्या के विशाल भाग को अधिक निर्मम शोषण की भट्ठी म झोक देता है।

नगर और देहात के बीच विग्रह पूजीवादी व्यवस्था के अत्यन्त गहरे अन्तर्विरोधो मे से एक है।

दोहराने के प्रश्न

१. अधिशेष मूल्य का बटवारा शोषको के बीच कैसे होता है ?
२. व्यापारिक मुनाफो, कर्जों पर ब्याज तथा भू-लगान का स्रोत क्या है ?
३. भूमि पर निजी स्वामित्व की भूमिका के बारे मे आपको क्या कहना है ?
४. शोषको के विभिन्न समूहो के हित कहा पर एक दूसरे से मिलते हैं और कहा टकराते हैं ?

●

अध्याय ६

पूंजीवादी पुनरुत्पादन और आर्थिक संकट

१. साधारण और विस्तारित पूंजीवादी पुनरुत्पादन

उत्पादन और पुनरुत्पादन

किसी भी देश मे मालो का उत्पादन लगातार जारी रहता है। विभिन्न प्रकार के माल उत्पादित किये जाते हैं, उनका इस्तेमाल होता है और फिर उनका पुनरुत्पादन होता है। समाज मे जैसे मालो का इस्तेमाल नही रुक सकता, इसी प्रकार उनका उत्पादन भी नही रुकता। इस लगातार नवीनीकरण, उत्पादन की इस बार-बार की प्रक्रिया को पुनरुत्पादन कहते हैं। किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज के कायम रहने की आवश्यक शर्त यही पुनरुत्पादन है। यदि समाज मे वर्ष-प्रति-वर्ष उत्पादन समान मात्रा मे किया जाता है, तो उसे साधारण पुनरुत्पादन कहते हैं।

पूजीवाद के उदय से पूर्व उत्पादक शक्तियो का विकास धीमी गति से होता था। सामाजिक उत्पादन की मात्रा मे वर्ष-प्रति-वर्ष तथा दशाब्दी-प्रति-दशाब्दी बहुत ही कम परिवर्तन होता था। सभी अर्थों मे पुनरुत्पादन साधारण ही था।

पूजीवाद के संक्रमण के साथ ही सामाजिक उत्पादन की पुरानी और ठहराव की स्थिति बदल गयी और उत्पादक शक्तियो का विकास तेजी से होने लगा। सामाजिक व्यवस्था के रूप मे पूंजीवाद की विशेषता साधारण नही बल्कि विस्तृत पुनरुत्पादन है, अर्थात उत्पादित मालो की मात्रा प्रति वर्ष बढती जाती है।

कोई भी समाज न केवल मालो को बडी संख्या मे पुनरुत्पादित करता है, बल्कि उत्पादन के सामाजिक सम्बधो का भी पुनरुत्पादन होता रहता है। यदि उत्पादन का रूप पूजीवादी होता है, तो पुनरुत्पादन का रूप भी वही होता है। इसका अर्थ यह होता है कि उत्पादन के पूंजीवादी सम्बध, विशेष रूप से पूंजीपतियों और मजदूरो के बीच के सम्बध, साल-दर-साल पुनरुत्पादित होते रहते हैं।

सामाजिक उत्पादन और राष्ट्रीय आय

किसी देश का सामाजिक उत्पादन, किसी निश्चित अवधि के अन्दर, मान लीजिए एक वर्ष मे, उस देश मे होने वाला कुल उत्पादन होता है।

सामाजिक उत्पादन के दो भाग होते हैं। एक भाग साल भर मे इस्तेमाल हो गये उत्पादन के साधनो—कच्चे माल, ईंधन, मशीनरी, आदि—की पूर्ति करता है। इन खर्चों की पूर्ति होना आवश्यक है, ताकि उत्पादन का लगातार नवीनीकरण होता रहे, अर्थात पुनरुत्पादन सम्भव हो सके। सामाजिक उत्पादन का दूसरा भाग साल भर मे उत्पादित नया मूल्य होता है। यही देश की राष्ट्रीय आय कहलाता है।

पूजीवादी देशो मे यह आय नाम मात्र को राष्ट्रीय होती है। इसका अधिकाश भाग पूजीपतियो द्वारा हडप लिया जाता है। जो कुछ बचता है, वह मजदूरो के पास वेतन के रूप मे पहुचता है। राष्ट्रीय आय का जो अश पूजीपतियो के हाथ मे आता है, उसका पहला खर्च तो उनके व्यक्तिगत उपभोग, उनकी विभिन्न इच्छाओ की पूर्ति, नौकरो के रख रखाव, आदि, पर होता है और दूसरे नम्बर पर पूजी को बढाने व उत्पादन का विस्तार करने की दृष्टि से सचय करने पर होता है।

राष्ट्रीय आय के एक बडे भाग को पूजीवादी राजसत्ता स्वय हथिया लेती है। राज्य के बजट की आमदनी को मुख्यत शोषितो के खिलाफ हिंसा के अस्त्र के रूप मे इस्तेमाल किये जाने वाले शासकीय ढाचे के रख-रखाव, हथियारो की दौड तथा वित्तीय कठिनाइयो के शिकार पूजीवादी उद्योगो की सहायता, आदि, के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

उत्पादन के विस्तार के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय के एक भाग को नये उद्योगो का निर्माण करने के लिए, मौजूदा फैक्टरियो की उत्पादन क्षमता को बढाने के लिए, तथा नये मजदूरो को भाडे पर रखने के लिए इस्तेमाल किया जाय। पूजीवादी समाज मे उत्पादन से सम्बधित सभी प्रश्नो को निजी मालिकों—पूजीपतियो—द्वारा हल किया जाता है। वे राष्ट्रीय आय के एक भाग को पूजी के सचय मे लगाते हैं। इस प्रकार, समाज का सबसे महत्वपूर्ण काम, अर्थात उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि, पूजीपतियो के मनमाने फैसलो पर निर्भर करती है।

पूजीवादी पुनरुत्पादन के अन्तर्विरोध

हर पूजीपति उत्पादन का काम हाथ मे लेने पर उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति को खरीदता है। उत्पादन की प्रक्रिया पूर्ण हो जाने के बाद, उद्योगपति की पूंजी, जिसमे मजदूरो का अधिशेष श्रम शामिल हो जाने से वृद्धि हो जाती है, तैयार माल—अर्थात मालो की एक निश्चित मात्रा—का रूप ले लेती है। पूजीपति को इन मालो को बेचने से एक निश्चित मात्रा मे धन प्राप्त होता है। वह इस धन से फिर उत्पादन के नये साधन खरीदता है तथा मजदूरो को भाडे पर रखता है, इस प्रकार उत्पादन की प्रक्रिया का नवीनीकरण होता है।

अतएव, प्रत्येक पूजी एक चक्कर मे घूमती रहती है। इसे पूजी का परिचालन कहते हैं। पुनरुत्पादन के लिए पूजी का लगातार घूमते रहना, परिचालन मे रहना, जरूरी है।

लेकिन पूजीवादी समाज मे बहुत सारे पूजीपति होते हैं और बहुत सी पूजिया होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि समग्र पूजी परिचालन मे रहे। दूसरे शब्दो मे, इसका अर्थ यह है कि सभी पूजीपति अपनी फैक्टरियो मे तैयार माल को बेचने मे समर्थ हो।

अलग अलग पूजीपतियो के कार्यकलाप, और इस प्रकार विभिन्न प्रकार की पूजियो के परिचालन, एक-दूसरे से नजदीकी तौर पर जुडे होते हैं। अलग-अलग उद्योगो और अलग-अलग पूजियो के बीच इस प्रकार के बहुपक्षीय सम्बधो का प्रभाव मडी पर पडता है, जहा पूजीपति लोग अपने कारखानो मे उत्पादित मालो को वेचते हैं।

पूजी की अलग-अलग रकमें अपने परिचालन मे एक-दूसरे से सम्बधित होती हैं और यह परिचालन सम्पूर्ण सामाजिक पूजी का परिचालन होता है। इस प्रकार एक-दूसरे से सम्बधित और एक-दूसरे पर आधारित पूजी की अलग-अलग रकमो के जोड को सामाजिक पूजी कहते हैं।

सामाजिक पूजी, पूजी की समस्त अलग अलग रकमो का केवल साधारण गणनात्मक जोड ही नही होती। सामाजिक पूजी मे, पूजी की अलग-अलग रकमें एक-दूसरे से सम्बधित होती हैं। एक ओर उनमे से हर एक जहा दूसरी से स्वतत्र होती है, वही दूसरी ओर वे एक-दूसरे पर निर्भर भी रहती हैं। सम्पूर्ण सामाजिक पूजी के पुनरुत्पादन के दौरान जब तैयार माल को वेचा जाता है, तो यह अन्तर्विरोध और ज्यादा उजागर हो जाता है।

पूजीवादी पुनरुत्पादन के दौरान पूजी द्वारा श्रम के शोषण के सम्बधो का लगातार नवीनीकरण ही नही होता, बल्कि ये सम्बध काफी विस्तृत रूप धारण कर लेते हैं। अधिकाधिक मजदूर शोषण के शिकजे मे फसते जाते हैं और शोषण की दर लगातार बढती रहती है। इस प्रकार, पूजीवादी समाज में पूजीवादी पुनरुत्पादन हमेशा ही वर्गीय अन्तर्विरोधो मे आने वाली तीव्रता से जुडा होता है।

प्राप्ति की समस्या

किसी देश के वार्षिक उत्पादन मे बहुत से भिन्न भिन्न माल शामिल होते हैं। भौतिक तत्व के मामले मे इन विभिन्न मालो के समूह को दो मुख्य भागो मे बाटा जा सकता है: (१) उत्पादन के साधन, और (२) उपभोग के साधन।

इसी प्रकार, उत्पादन को भी दो मुख्य भागो मे बाटा जा सकता है: (१) उत्पादन के साधनो का उत्पादन, तथा (२) उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन।

अन्तिम विश्लेषण मे मानव श्रम द्वारा उत्पादित सभी पदार्थ व्यक्तियो और सामाजिक समूहो की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि कुछ पदार्थ सीधे तौर पर (उपभोग की वस्तुओ के रूप मे) इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं और कुछ दूसरे उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे (उत्पादन के साधनो के रूप मे) सहायक होते हैं।

हर पदार्थ का भौतिक स्वरूप पुनरुत्पादन की प्रक्रिया मे उसकी अगली भूमिका को पहले से ही निश्चित कर देता है।

पूजीपति लोग जब उत्पादित वस्तुओ को बेचते हैं, तो उन्हे उनका मूल्य अवश्य प्राप्त होना चाहिए, ताकि वे उत्पादन को जारी रख सकें। हम पहले से ही जानते हैं कि पूजीवादी कारखाने मे उत्पादित होने वाली किसी भी वस्तु के मूल्य मे तीन तत्व (१) अचल पूजी, (२) चल पुजी, और (३) अधिशेष मूल्य शामिल होते हैं।

ये तीनो भाग मिल कर पूजीवादी समाज के समस्त वार्षिक उत्पादन का मूल्य बनते हैं। मूल्य के आधार पर वार्षिक उत्पादन का बटवारा भविष्य मे उसके विभिन्न भागो की भूमिका को निर्धारित करता है।

प्राप्ति की प्रक्रिया के दौरान वार्षिक उत्पादन के हर भाग का विनिमय इस प्रकार किया जाना चाहिए कि भौतिक स्वरूप और मूल्य के रूप मे निर्धारित भविष्य मे अपनी भूमिका को अदा करने मे वह समर्थ हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि सामाजिक उत्पादन के अलग-अलग भागो के बीच, मूल्य और प्राकृतिक रूप दोनो मे ही, एक निश्चित परिमाणात्मक सह-सम्बध स्थापित हो।

साधारण और विस्तारित पुनरुत्पादन के अन्तर्गत प्रगति की शर्तें

सरलता से समझने के लिए आइए मान लें कि एक देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पूजीवादी ढर्रे पर चलायी जा रही है। इस स्थिति मे साधारण पुनरुत्पादन इस प्रकार होगा।

उद्योगो के पहले समूह, अर्थात उत्पादन के साधनो का निर्माण करने वाले उद्योगो द्वारा, वर्ष भर के भीतर उत्पादित कुल वस्तुए दोनो ही समूहो के उद्योगो द्वारा वर्ष के भीतर इस्तेमाल मे आये उत्पादन के साधनो के बराबर होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि वर्ष भर मे २० करोड टन कोयला जलता है तो कोयले का वार्षिक उत्पादन भी २० करोड टन अवश्य होना चाहिए। अगर साल भर मे १ लाख खरादें उत्पादन प्रक्रिया मे घिस कर बेकार हो जाती हैं तो उसी अवधि के दौरान उतनी ही खरादो का उत्पादन हो जाना चाहिए।

आइए, उत्पादन के दूसरे समूह—अर्थात, उपभोग के मालो का निर्माण

करने वाले उद्योगों—की ओर दृष्टि डालें। इस समूह द्वारा उत्पादित समस्त मालो का मूल्य दोनो ही समूहो के उद्योगो मे काम करने वाले सभी मजदूरो और पूजीपतियो की आमदनी के बराबर होना चाहिए। उपभोग के सभी मालो का उपभोग मजदूरो और पूजीपतियो द्वारा किया जाना चाहिए क्योकि हम पहले ही स्वीकार कर चुके है कि देश मे इन दो वर्गो के अलावा कोई और नही है। किन्तु पूजीपति और मजदूर उपभोग तो उतना ही कर सकते हैं जितना कि वे अपनी आमदनी—पूजीपतियो द्वारा हथियाये गये अधिशेष मूल्य तथा मजदूरो की मजदूरी—से खरीद सकते हैं।

इस प्रकार साधारण पुनरुत्पादन के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि पहले समूह की चल पूजी और अधिशेष मूल्य का योग दूसरे समूह की अचल पूजी के बराबर होना चाहिए।

आइए, विस्तारित पुनरुत्पादन के अन्तर्गत प्राप्ति की शर्तों पर नजर डालें।

विस्तारित पुनरुत्पादन के अन्तर्गत सचय का होना आवश्यक है। उत्पादन को बढाने के लिए मौजूदा उद्योगो का विस्तार, या नये उद्योगो की स्थापना होनी चाहिए। दोनो ही हालतो मे इसका अर्थ यह होता है कि नये उत्पादन के साधनो को एक निश्चित मात्रा मे काम मे लगाया जाय। उत्पादन के इन साधनो का निर्माण इससे पूर्व के काल मे हो जाना चाहिए।

इस प्रकार, उत्पादन के साधनो का निर्माण करने वाले प्रथम समूह के उद्योगो द्वारा साल भर मे तैयार माल साधारण पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक रकम से कुछ अधिक का अवश्य होना चाहिए। इसका अर्थ होता है कि पहले समूह की चल पूजी और अधिशेष मूल्य का योग दूसरे समूह की अचल पूजी से अधिक होना चाहिए।

साधारण तथा विस्तारित पूजीवादी पुनरुत्पादन के अन्तर्गत वस्तुओ की प्राप्ति के लिए इस प्रकार की शर्तें आवश्यक होती हैं। पुनरुत्पादन के क्रम को अबाध रूप से जारी रखने के लिए आवश्यक है कि उद्योग की विभिन्न शाखाओ के बीच पेचीदा आदान-प्रदान लगातार जारी रहे।

किन्तु पूजीवादी उत्पादन का क्रम अबाध उतार-चढाओ और भटकाओ द्वारा—अलग-अलग उद्योगो और समूहो के बीच कायम अनुपात के लगातार उल्लघनो द्वारा—स्वत.स्फूर्त ढग से आगे बढता है। पूजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया की पेचीदगी सामान्य व्यतिक्रम मे बाधा पहुचाती है। इसी कारण पूजीवादी पुनरुत्पादन को, लाजमी तौर पर, आर्थिक सकटो (अर्थात निश्चित अवधि के अन्तर से आने वाले सकटो) का सामना करना पडता है और पुनउत्पादन रुक जाता है।

२. पूंजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक संकट

मांग और अधिशेष

ससार के पूजीवादी भाग मे, उसकी आर्थिक जलवायु मे होने वाले परिवर्तन लाखों-करोडों लोगो के जीवन को प्रभावित करते हैं। पूजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक जीवन मे लगातार उतार-चढाव आया करते हैं। ये परिवर्तन मौसम मे होने वाले परिवर्तनो से अधिक तीव्र और अप्रत्याशित होते हैं। बहुत से ऐसे सूचक होते हैं, जो आर्थिक जलवायु —सट्टा बाजार की स्थिति, कीमतो के उतार-चढाव, गोदामो मे मालो के भडार मे होने वाले परिवर्तन, उद्योगो मे दिये जाने वाले आदेशो का क्रम, आदि —के पैमाने समझे जाते हैं। आर्थिक जलवायु की भविष्यवाणी करने वाले बहुत से सस्थान होते हैं। अफसोस की बात है कि ये भविष्यवाणिया अक्सर मौसम की भविष्यवाणियो से भी कम विश्वसनीय होती है। अक्सर ये भविष्यवक्ता उस समय साफ आसमान की भविष्यवाणी करते हैं जब कोई तूफान या आर्थिक सकट आने वाला होता है।

आर्थिक जलवायु के बारे मे भविष्यवाणियां इतनी अविश्वसनीय क्यो होती हैं? गलती अध्ययन और जाच के अपूर्ण तौर तरीको की नही है। अत्यन्त महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जलवायु जनता की मर्जी पर निर्भर नही करती। अगर पूजीपतियो के वस मे हो, तो वे अर्थव्यवस्था मे सकटो को समाप्त कर दें। परन्तु वे ऐसा नहीं कर सकते और यही असली मुसीबत है।

ब्रिटेन के कोयला खान मजदूरो के जीवन का वर्णन करने वाली एक पुस्तक से निम्नलिखित वार्तालाप लिया गया है। एक खान मजदूर का बेटा अपनी मा से पूछता है :

"मा, तुम अगीठी क्यो नही जला रही हो? इतनी ठड पड रही है।"

"क्योंकि हमारे पास कोयला नही है।" मा जवाब देती है। "तुम्हारा बाप बेरोजगार है और हमारे पास कोयला खरीदने के लिए पैसा नही है।"

"वह बेरोजगार क्यो हैं?"

"क्योकि बहुत ज्यादा कोयला निकाला जा चुका है।"

एक खान मजदूर का परिवार ठड से ठिठुर रहा है—इसलिए कि कोयले का उत्पादन "बहुत ज्यादा" हो गया है! सकट के समय किसानो सहित लाखो मेहनतकश इसलिए भूखो मरते हैं क्योकि अनाज का उत्पादन "बहुत ज्यादा" हो गया होता है! देश मे उत्पादन के साधनो की इफरात है, उपभोक्ता माल और मजदूरो की कमी नही है, फिर भी कारखाने बन्द पडे हैं, रेलवे इन्जिन ठप हैं, अनाज सड रहा है, गोदामो मे माल ठसाठस भरा है—उधर मजदूरो के पास रोजगार नही है और उनके परिवार भुखमरी के शिकार हैं! अति-उत्पादन के सकटो के दौरान यही स्थिति पायी जाती है।

एक अमरीकी पत्र ने नीचे लिखे आकडे प्रकाशित किये थे। १६२६-३३ के भयानक सकट के बाद के वर्ष, १६३४ मे, पूजीवादी देशो मे २४,००,००० लोग भूख से तडप-तडप कर मर गये। उसी वर्ष १० लाख गाडियो से अधिक अनाज, २,६७,००० गाडी कॉफी, २,५८,००० टन चीनी, २६,००० टन चावल, २५,००० टन मास और बहुत से अन्य पदार्थ जानबूझ कर नष्ट कर दिये गये।

अति-उत्पादन की महामारी

पूजीवादी व्यवस्था के उदय होने और उसके सुदृढ होने से पहले समाज को अनेक उथल पुथलो और सकटो से गुजरना पडा था। किन्तु उस समय इन सकटो के कारण होते थे—प्राकृतिक और सामाजिक तबाही, बाढ, सूखा, विनाशकारी युद्ध तथा महामारिया, आदि।

इस प्रकार की विपत्तिया कभी-कभी समृद्धिशाली देशो को निर्जीव रेगिस्तानो और मिट्टी के ढेरो मे परिवर्तित कर देती थी। उत्पादन मे भारी गिरावट आ जाती थी। अनेक पीढियो के श्रम के फल नष्ट हो जाते थे तथा जनता को भयकर गरीबी और भुखमरी का शिकार होना पडता था।

लेकिन, केवल पूजीवाद ने ही अति-उत्पादन के सकटो को जन्म दिया है। इस प्रकार, वस्तुओ के "बहुत ज्यादा" उत्पादन के परिणामस्वरूप मेहनतकश जनता को क्रूर विपत्तियो का सामना करना पडता है।

किन्तु, क्या यह सही है कि कोयले, अनाज, कपडे और मकानो का उत्पादन वास्तव मे ज्यादा हो गया है? नही, हरगिज नही। अनाज, कोयले और कपडो की आवश्यकता बहुत ज्यादा है। लेकिन मेहनतकश लोगो को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओ से वचित रहना पडता है, क्योकि उनके पास धन नही है।

इसका अर्थ यह है कि मेहनतकश जनता के अधिकाश भाग की वास्तविक आवश्यकताओ की दृष्टि से मालो का उत्पादन अधिक नही हो गया होता है, बल्कि यह आधिक्य उनकी क्रय शक्ति की तुलना मे होता है। पूजीवाद को मेहनतकश जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति की कतई परवाह नही होती। पूजीपतियो को दिलचस्पी केवल इस बात मे होती है कि वे अपने मालो को ऐसी कीमत पर बेचें कि उन्हे पर्याप्त मुनाफा प्राप्त हो सके। पूजीवादी उद्योगो मे उत्पादित होने वाले मालो की मात्रा तथा जनता की प्रभावी माग के बारे मे विषमता से ही अति-उत्पादन के आर्थिक सकट आते हैं।

१६२६-३३ के सकट के दौरान अमरीका मे कोयले के स्थान पर ईंधन के तौर पर गेहू और मक्के का इस्तेमाल किया गया था। लाखो-करोडो सुअर नष्ट कर दिये गये थे। रुई की फसल का अधिकाश भाग खेतों मे सडने को छोड दिया गया था। ब्राजील मे कॉफी के लाखो बोरे समुद्र मे फेंक दिये गये

थे। डेनमार्क मे जानवरो के झुड के झुड, तथा इटली में हजारों टन फल, नष्ट कर दिये गये थे।

पूंजीवाद के अन्तर्गत सकट अवश्यम्भावी हैं

अति-उत्पादन से उत्पन्न आर्थिक सकटो का कारण हैं : पूजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध—जैसा कि हम ऊपर (अध्याय ४ में) देख चुके हैं। ये अन्तर्विरोध उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा उत्पादन के फलो पर निजी और पूजीवादी अधिकार के बीच के अन्तर्विरोध है।

आधुनिक उद्योग के विकास के साथ उत्पादन का चरित्र सामाजिक हो गया है। एक एक उद्योग मे सैकडो हजारो लोग काम करते है। उद्योगो के बीच गहरे सम्बध होते हैं। इस प्रकार, लाखो-करोडो लोग उत्पादन की प्रक्रिया मे एक-दूसरे से नजदीकी तौर से जुडे होते है, किन्तु इस सामाजिक उत्पादन की उत्पत्ति पूरे समाज के हाथो मे न जाकर, मुट्ठी भर निजी मालिको द्वारा हडप ली जाती है।

पूजी द्वारा श्रम के शोषण के परिणामस्वरूप पूजीवाद का जो बुनियादी अन्तर्विरोध पैदा होता है, उससे उत्पादन मे अराजकता आ जाती है और जनता के उपभोग की मात्रा सीमित हो जाती है।

पूजीवाद एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमे उत्पादन की अराजकता चरम सीमा पर पहुच जाती है। सभी पूजीपति अधिक से अधिक मुनाफा कमाने का प्रयास करते हैं। उनमे से हर एक मुनाफे की अधिक से अधिक मात्रा पर अधिकार करना तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी के हितो पर हमला करना चाहता है और यदि सम्भव हो तो उन्हे समाप्त करने का प्रयास करता है। पशु ससार की भाति, यहा भी जो अधिक बलवान होता है वही टिकने पाता है। हर बात का फैसला वे ही लोग करते हैं, जो दूसरो को गुलाम बना सकते हैं और अपना प्रभुत्व कायम रख सकते हैं। उत्पादन की अराजकता ही पूजीवाद का नियम है।

उत्पादन की दो महत्वपूर्ण स्थितियो—पूजीपतियो के हाथ मे उत्पादन के साधनो के केन्द्रित होने तथा मजदूर वर्ग को अपनी श्रमशक्ति के अतिरिक्त सभी चीजों से वचित होने—के बीच टकराव, पूजीवाद की विशेषता है। यह टकराव अति-उत्पादन के सकटो के दौरान ज्यादा उजागर हो जाता है, जब एक ओर तो उत्पादन के साधनो और उत्पादित पदार्थों की इफरात हो जाती है तथा दूसरी ओर मजदूरो की, एव जीविका के समस्त साधनो से वचित बेरोजगार लोगो की, इफरात हो जाती है।

पूजीवादी उत्पादन की अराजकता और पू जी द्वारा श्रम के शोषण से अति-

उत्पादन के आर्थिक सकट आया करते हैं, जो पू जीवादी देशो को समय-समय पर अवश्यम्भावी रूप से झकझोर देते हैं।

पू जीवादी उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति न होकर मजदूरो के अनचुक्ता श्रम के आधार पर मुनाफे कमाना होता है। किन्तु अन्तिम विश्लेषण मे, पू जीवाद के अन्तर्गत भी उत्पादन, उपभोग से सम्बधित तथा उस पर आधारित होता है। पू जीवादी उत्पादन मे वृद्धि होने से शोषण और अधिक तीव्र हो जाता है। इससे जनता के अधिकाश भाग की प्रभावी माग मे अपेक्षाकृत कमी आ जाती है और मालो की बिक्री घट जाती है।

उत्पादन के विस्तार से उत्पादन के साधनो की बिक्री मे अस्थायी तौर पर कुछ वृद्धि हो जाती है। उत्पादन मे जितना अधिक विस्तार होता है उसी हिसाब से अधिक मशीनो, इमारती सामानो, कच्चे माल और ईंधन की आवश्यकता पडती है। उत्पादन के इन साधनो का इस्तेमाल करने वाले उद्योग अधिकाधिक उपभोक्ता मालो का उत्पादन करते हैं। एक समय ऐसा आता है जब तीव्र गति से उत्पादित उपभोक्ता मालो की बिक्री कठिन हो जाती है क्योकि जनता की बदहाली उपभोग की बढोतरी को रोक देती है, अर्थात उत्पादन उपभोग के विस्तार के बगैर ही बढता रहता है। अतएव, मेहनतकश जनता के सीमित उपभोग की दीवार से टकरा कर बिक्री लाजमी तौर पर घटने लगती है।

पू जीवादी चक्र और उसके चरण

अति उत्पादन के सकटा का उदय बडे पैमाने के पू जीवादी उद्योग के साथ हुआ। पिछले १५० वर्षों के दौरान इन सकटो ने, पू जीवादी ससार को कुछ-कुछ वर्षों के बाद हिला दिया है। ये सकट निश्चित अवधि के बाद बार-बार आया करते हैं। दो सकटो के बीच की अवधि मे पू जीवादी उद्योग एक निश्चित चक्र मे घूमता रहता है।

सकट के अवसर पर उत्पादन अपने चरम बिन्दु पर पहुच जाता है। अति-उत्पादन पहले से ही मौजूद रहता है यद्यपि वह अभी दिखायी नहीं देता। अक्सर, मगर हमेशा नहीं, वित्तीय तबाही फौरी सकट की पहली सूचक होती है। दलाल लोग, बैंकर और सट्टेबाज हडबडा उठते हैं। धन को केन्द्रित करने की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है। महाजन लोग कर्जों की अदायगी की माग करने लगते हैं। बैंको म रुपया जमा करने वाले बैंका की ओर दौड पडते हैं। बहुत बडी सख्या मे छोटे और मझोले उद्योगो का, तथा कुछ बडे उद्योगा का भी, दिवाला निकल जाता है।

सकट बढना रहता है। गोदाम न बिक पाने वाले मालो से भर जाते हैं। बहुत से उद्योग बन्द हो जाते हैं। मजदूर निकाल दिये जाते हैं और बेरोजगारी

बढने लगती है। थोक दाम और कभी-कभी फुटकर दाम भी, नीचे गिरने लगते हैं। लेकिन माग नही बढती। बचे हुए उद्योगो को अपना उत्पादन घटाना और कभी-कभी तो बन्द कर देना पडता है।

ठहराव (या मन्दी) का युग आ जाता है। उद्योग-धन्धो का विकास रुक जाता है।

इस स्थिति से फायदा उठा कर पूजीपति मजदूरो का शोषण तेज कर देते हैं, उनकी मजदूरी कम कर देते हैं और उन्हे ज्यादा काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। इसी के साथ पूजीपति कम माग की स्थिति मे भी अनेक प्रकार के तकनीकी सुधारो को प्रयोग मे लाकर उत्पादन को अधिक सस्ता और लाभदायक बनाने का प्रयास करते है। उद्योगो को फिर से लैस व सुसज्जित किया जाता है तथा अचल पूजी का बडे पैमाने पर नवीनीकरण हो जाता है।

उत्पादन के साधनो की माग बढ जाती है। ठहराव से पुनर्जीवन की ओर परिवर्तन होने लगता है। बहुत से कमजोर उद्योग तबाह हो चुके होते हैं। बचने वाले उद्योग नये सिरे से उत्पादन करते हैं और उन्हे विस्तारित करते है। हर उद्योगपति सकट के दौरान हुए अपने घाटे की पूर्ति का प्रयास करता है। उत्पादन अपने पुराने स्तर पर आ जाता है।

धीरे-धीरे उत्पादन अपने पुराने स्तर को पार कर जाता है और उद्योग मे खुशहाली का युग आ जाता है। उत्पादन प्रभावी माग का लिहाज किये बगैर आगे बढता रहता है। उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा हडपने के निजी पूजीवादी स्वरूप के बीच अन्तर्विरोध के कारण माग सीमित रहती है। कुछ समय बाद, बढे हुए उत्पादन का मडी की सकुचित सीमाओ से टकराव लाजमी हो जाता है। एक नया सकट आता है, और पुराना चक्र फिर शुरू हो जाता है।

आधुनिक युग में आर्थिक संकट

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सकट पूजीवाद के समस्त जीवन काल मे उसके वफादार साथी रहे हैं। आधुनिक युग मे ससार का बटवारा जब दो व्यवस्थाओ—समाजवाद और पूजीवाद—के बीच हो गया, तो पूजीवाद का पुराना स्वामित्व समाप्त हो गया। पूजीवादी पुनरुत्पादन ऐसे समय मे हो रहा है, जब उसके अन्तर्विरोध और कठिनाइया असीमित रूप से बढ गयी है।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति एव रूस मे समाजवादी क्रान्ति की विजय के बाद पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोधो ने सकटो को और जल्दी-जल्दी एव तबाहकारी बना दिया। १९२०-२१ के आर्थिक सकट ने अधिकाश पूजीवादी देशो मे एक तबाही मचा दी। १९२४ मे और १९२७ मे अमरीका को अपने मालो को बेचने मे भारी कठिनाइयो का सामना करना पडा। १९२६ मे

जर्मनी मे आर्थिक परिस्थितिया बडी तेजी से बिगड गयी। दो विश्व युद्धो के बीच के पूरे समय मे ब्रिटिश उद्योग गिरावट का शिकार रहा।

पूजीवादी अर्थव्यवस्था पर चोट करने वाले तमाम सकटो मे सबसे गहरा और तबाहकारी सकट १६२६ मे फूट पडा। सकट ने सभी पूजीवादी देशो को अपनी लपेट मे ले लिया और यह चार वर्षों तक चलता रहा। सकट ने पूजीवादी ससार की समस्त जनता पर गहरी छाप छोडी। पूजीवादी विज्ञान और समाचारपत्रो ने १६२६-३३ के सकट को "महान मन्दी" का नाम दिया। उसकी याद आज भी लाखो-करोडो लोगो के दिमागो मे हडकम्प मचा देती है।

सकट के परिणामस्वरूप समस्त पूजीवादी ससार मे उत्पादन ४४ प्रतिशत तक—कुछ देशो मे तो ५० प्रतिशत तक—घट गया। पूजीवादी देशो में उत्पादन का स्तर २५ से ४० वर्षो तक पीछे चला गया। आगे बढे हुए पूजीवादी देशो मे बेरोजगारो की सख्या ३ से ४ करोड तक हो गयी। मजदूरो की आमदनी तेजी से घट गयी। भारी सख्या मे किसान तबाह हो गये। लाखो परिवारो को भुखमरी और अभाव का सामना करना पडा।

ऐसे समय मे जब हर चीज की कमी थी तो भी चूकि पूजीपति अपनी वस्तुओ को बेच पाने मे असमर्थ थे, इसलिए उन्होने जनता के श्रम से उत्पन्न फलो, अर्थात मालो, को बर्बाद करना शुरू कर दिया। उत्पादन के उपकरणो को भी नष्ट किया गया चिमनिया और भट्टिया उखाड डाली गयी, खानो मे पानी भर दिया गया, फलो के पेड काट डाले गये, फसलो को आग लगा दी गयी, आदि।

दुनिया की मडी मे निर्मम युद्ध छिड गया। दुनिया का व्यापार पहले की अपेक्षा केवल एक-तिहाई रह गया।

पूजीपतियो ने मजदूर वर्ग के शोषण को तेज करके तथा किसानो को और ज्यादा तबाह करके सकट को हल करने की कोशिश की। इसस अति-उत्पादन के अगले सकट की परिस्थितिया और ज्यादा परिपक्व हो गयी, जो १६३७ के उत्तरार्ध मे आरम्भ हुआ। बेरोजगारो की यह सख्या १६३३ मे ३ करोड हो गयी थी और १६३७ मे घट कर १ करोड ४० लाख रह गयी थी। वही १६३८ मे फिर बढ कर १ करोड ८० लाख हो गयी।

इस शताब्दी के चौथे दशक मे बडे पैमाने पर बेरोजगारी फैली, मजदूर वर्ग और बुद्धिजीवियो के रहन सहन के स्तर मे गिरावट आयी और किसान तबाह हो गय।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद योरप और एशिया के बहुत से देशो म समाजवाद की विजय और औपनिवेशिक व्यवस्था के ध्वस से पूजीवाद के आधिपत्य का दायरा और भी सकुचित हो गया। पूजीवादी पुनरुत्पादन की कठिनाइया कई गुना बढ गयी। इसी के साथ, समाजवाद की सफलताओ ने पूजीवादी शासन

म उत्पन्न होने वाले सकटों और बडे पैमाने की बेरोजगारी के खतरे को समाप्त कर दिया। शासक वर्गों के सामने यह खतरा आ खड़ा हुआ कि यदि चौथे दशक के समान सकट उत्पन्न हो जाय तो मजदूर वर्ग व मेहनतकश जनता की कार्रवाई के फलस्वरूप पूजीवाद के सम्पूर्ण विनाश की सम्भावना है। इसी कारण, पूजीवादी राज्य अपनी नीति को पुनरुत्पादन के सकटो को रोकने तथा विशेष रूप स तीव्र व गहरे सकटो को घटाने की दिशा मे निर्देशित करते हैं, ताकि पूजीपति वर्ग को शासक वर्ग के रूप मे कायम रखा जा सके। अतएव, अर्थव्यवस्था का अधिकाधिक सैनिकीकरण किया जाता है और पूजीवादी सरकारो द्वारा इजारेदारो को—जो बडे आर्थिक साधनो पर हावी होते हैं—हर प्रकार की सहायता दी जाती है।

पूजीपति वर्ग के प्रचारक इस झूठ का बडे पैमाने पर प्रचार करते हैं कि हथियारो की दौड से मेहनतकश जनता को काम मिलता है और सकटो का डर नही रहता। घटनाओं और तथ्यो ने उनके इस झूठ का पर्दाफाश कर दिया है। हथियारो की दौड का नेतृत्व अमरीका कर रहा है। लेकिन वही देश है जो आर्थिक मन्दी और सकटो, बडे पैमाने की बेरोजगारी और उद्योगों मे क्षमता स कम उत्पादन का केन्द्र बन गया है। अमरीका मे अति-उत्पादन के सकट अधिकाधिक शीघ्रता से आने लगे हैं। युद्धोत्तर काल मे अमरीकी अर्थ-व्यवस्था को चार सकटो—१९४८ ४९, १९५३-५४, १९५७-५८ और १९६० ६१ के सकटो—का सामना करना पड़ा।

अमरीका म होने वाली उथल पुथल की घटनाओ ने समस्त पूजीवादी ससार को प्रभावित किया। १९५८ के अमरीकी सकट ने पश्चिम योरपीय अर्थव्यवस्था पर बहुत ही दूरगामी प्रभाव डाले। उत्पादन घट गया और अनेक पश्चिम योरपीय देशो म बेरोजगारी का बोलबाला हो गया। सभी पूजीवादी देशों म पुनरुत्पादन की कठिनाइया, थोडी थोडी अवधि के बाद बढती रहती हैं। इससे औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर में तेजी से गिरावट आ जाती है और कभी कभी तो कुल उत्पादन मे भी कमी आ जाती है। विभिन्न उद्योगो मे गतिरोध उत्पन्न हो जाता है और कुछ आर्थिक क्षेत्रो मे इसे काफी लम्बे अर्से तक देखा जा सकता है। कुछ दूसरे क्षेत्रो म उत्पादन काफी घट जाता है और मजदूरो की नौकरिया समाप्त होने लगती है। अन्तर्राष्ट्रीय पूजीवादी मडियो म होने वाले निर्मम सघर्ष से अदायगियो के सतुलन मे बार बार सकट पैदा हो जाता है, जिसका परिणाम उत्पादन की गिरावट मे दिखायी देता है। राज्यों म बजट के घाटे बढ जाते हैं और बहुत से देशो के राष्ट्रीय कर्जों मे वृद्धि हो जाती है।

३. संकट और मेहनतकश जनता की स्थिति

मजदूर वर्ग के लिए संकटों के परिणाम

सकटो से पूजीवाद के गहरे अन्तर्विरोध प्रकाश में आते हैं। सकटो के दौरान लाखों लोगों के श्रम के फल नष्ट हो जाते हैं और अधिकाश जनता अपनी अत्यन्त आवश्यक जरूरतो की पूर्ति मे असमर्थ रहती है। समाज की उत्पादक शक्तिया बर्बाद होती रहती हैं। औद्योगिक साज-सामान बेकार पड़े रहते हैं, मशीनो के पुर्जों मे मोर्चा लग जाता है, फैक्टरी की इमारतें गिरने व टूटने लगती हैं। समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति—मानव श्रम—की सबसे ज्यादा बर्बादी होती है। लाखो-करोडो मजदूर बेरोजगार होकर सडको पर भटकने को मजबूर हो जाते है।

लाखो लोगो को लम्बे अर्से तक बेरोजगार रहने को मजबूर कर दिया जाता है। मजदूर वर्ग के बेहतरीन तत्वो को उद्देश्यहीन जीवन बिताना पडता है। वर्षों की कठिन मेहनत से सीखे हुए हुनर को वे भूलने लगते हैं। एक निश्चित मजिल पर पहुच कर मजदूर फिर काम पाने की सारी आशा खो बैठते हैं। मजदूर वर्ग की अगली पीढी उत्पादन के काम से वचित हो जाती है। उच्च दक्षता प्राप्त लोग, जिन्होने शिक्षा सस्थाओ से दक्षता प्राप्त कर ली होती है, अपने ज्ञान का इस्तेमाल नही कर पाते। बुद्धिजीवी वर्ग मे बेरोजगारी फैल जाती है।

सकटो और बेरोजगारी का इस्तेमाल पूजीपति लोग वेतनो को घटाने और श्रम की स्थितियो को खराब करने के लिए करते हैं। सकटो के दौरान मजदूर वर्ग और उसकी ट्रेड यूनियनो के लिए मेहनतकश जनता के जीवन स्तर को गिराने के उद्देश्य से की गयी पूजीपतियो की कार्रवाइयो के खिलाफ सघर्ष करना कठिन हो जाता है। इसलिए सकटो से न केवल बेरोजगारो पर ही मेहनत के पहाड टूट पडते हैं, बल्कि पूरे मजदूर वर्ग की स्थिति बहुत ज्यादा खराब हो जाती है।

सकटो के दौरान छोटे उत्पादक बर्बाद हो जाते हैं और मजदूर पूजीपतियो पर अधिकाधिक निर्भर होते जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप वर्गीय अन्तर्विरोध और भी तेज हो जाते हैं। सकटो के दौरान बहुत से मजदूर जो पहले पूजीवाद के दुश्मन नही होते थे या सघर्ष मे कोई दिलचस्पी नही लेते थे, पूजीवादी आधिपत्य के खिलाफ सक्रिय सघर्ष मे शामिल हो जाते हैं।

संकट और पूंजीवादी अन्तर्विरोधों की तीव्रता

ये सकट, अर्थव्यवस्था को चौपट कर देते हैं और लाखो-करोडो लोगो की मेहनत का फल मिट्टी मे मिल जाता है। इससे यह बात साफ उजागर हो जाती है कि पूजीवाद उन्ही शक्तियो से नही निपट पाता, जिनको स्वय उसने

पैदा किया है। पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता पूरी तरह उजागर हो जाती है।

लेनिन ने लिखा है, "संकट इस बात को प्रकट करता है कि अगर जमीन, फैक्टरियों, मशीनों, आदि, को मुट्ठी भर निजी स्वामियों ने—जो जनता की गरीबी से लाखों का मुनाफा कमाते हैं—हथिया न लिया होता, तो आधुनिक समाज समस्त मेहनतकश जनता के जीवन स्तर को सुधारने के लिए अनगिनत मालों का उत्पादन कर सकता था।"[1]

पूंजीवादी व्यवस्था के पक्षधर संकटों की असली प्रकृति और कारणों की उपेक्षा करने का प्रयास करते हैं। संकटों के लाजमी होने की वास्तविकता को छिपाने के लिए ये दावा करते हैं कि संकट आकस्मिक कारणों से आ जाते हैं, जिनको, उनके अनुसार, अर्थव्यवस्था की पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत भी दूर किया जा सकता है। वे एलान करते हैं कि संकटों का असली कारण उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच अचानक आनुपातिक गड़बड़ी, या "उपभोग में आने वाली गिरावट", होता है। वे इन्हें दूर करने के लिए हथियारों की दौड़ और युद्ध आदि के इस्तेमाल का सुझाव देते हैं।

वास्तविकता यह है कि उत्पादन में आनुपातिक समन्वय में कमी तथा उपभोग में आने वाली गिरावट, दोनों ही, पूंजीवादी व्यवस्था में अचानक होने वाली घटनाएं नहीं हैं।

ये तो पूंजीवादी व्यवस्था में अवश्यम्भावी होती हैं क्योंकि ये पूंजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध से उत्पन्न होती हैं और पूंजीवादी व्यवस्था के रहते इस अन्तर्विरोध को समाप्त नहीं किया जा सकता। संकटों के बीच की अवधि में पूंजीवादी राजनीतिज्ञ, विद्वान और व्यवसायी जोर-जोर से चीखने लगते हैं कि अब तो समस्त संकटों का अन्त हो गया और पूंजीवाद संकट से मुक्त विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। तथ्यों से आम तौर पर यही प्रकट होता है कि ये प्रस्थापनाएं उसी प्रकार गलत हैं, जैसे पूंजीवाद की बीमारियों का इलाज करने के लिए बताये जाने वाले सारे नुस्खे गलत हैं।

पूंजीवाद के दूसरे पक्षधर हमें यकीन दिलाते हैं कि सामाजिक व्यवस्था के लिए संकट अवश्यम्भावी होते हैं। इस द्वेषपूर्ण झूठ का पर्दाफाश केवल इसी तथ्य से हो गया है कि सोवियत संघ और एशिया व योरप के अन्य समाजवादी देशों में पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के बाद संकटों का आना हमेशा के लिए बन्द हो गया है। समाजवादी उत्पादन का उद्देश्य जनता की भौतिक व सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। समाजवादी समाज में

१. व्ला. इ. लेनिन, ग्रंथावली, खण्ड ५, मास्को १९६१, पृष्ठ ९२.

उत्पादन की सभी शाखाए इसी उद्देश्य को सामने रख कर तेजी से विकसित की जाती हैं। समाजवादी उद्योग, जो उत्पादन के साधनो के सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित होते हैं, अर्थव्यवस्था तथा समस्त मेहनतकश जनता की लगातार बढती हुई जरूरतो को पूरा करने का लक्ष्य सामने रख कर काम करते हैं।

जरूरतें लगातार बढती रहती हैं। इसलिए समाजवादी उत्पादन का भी लगातार विस्तार होते रहना चाहिए, उत्पादन मे सुधार होते रहना चाहिए तथा बेहतर मालो का सस्ती कीमतो पर उत्पादन किया जाना चाहिए, आदि।

अति-उत्पादन के सकट पूजीवाद के लाजमी तथा अभिन्न अग होते हैं। पूजीपति और पूजीवादी राज्य उस समय तक उनको समाप्त नही कर सकते, जब तक उनको पैदा करने वाला कारण मौजूद रहता है। यह कारण पूजीवाद स्वय है। उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा अधिग्रहण के निजी पूजीवादी स्वरूप के बीच अन्तर्विरोध—उसका मुख्य अन्तर्विरोध है।

दोहराने के प्रश्न

१. साधारण और विस्तारित पुनरुत्पादन क्या होता है?
२. पूजीवादी पुनरुत्पादन अन्तर्विरोधी क्यो होता है?
३. पूजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक सकटो का आना अनिवार्य क्यो है?
४. सकट मेहनतकश जनता की स्थिति पर कैसे प्रभाव डालते हैं?

●

सघो की स्थापना हो जाय और उनके बीच ससार का बटवारा हो जाय; पचम, ससार का बडे पू जीवादी राज्यो के बीच पूर्ण रूप से क्षेत्रीय बटवारा हो जाय।

साम्राज्यवाद पू जीवादी विकास की लाजमी उत्पत्ति है। इजारेदारी से पूर्व के पू जीवाद के साम्राज्यवाद मे सक्रमण की तैयारी, पू जीवादी विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया, उसकी उत्पादक शक्तियो, उत्पादन के सम्वधो तथा उसके कभी हल न होने वाले अन्तर्विरोघो द्वारा की गयी थी।

पू जी और उत्पादन का केन्द्रीकरण

टेक्नालॉजी के विकास से छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन की अपेक्षा बडे पैमाने पर उत्पादन के लाभ और भी बढ गये। मुक्त प्रतियोगिता के परिणाम-स्वरूप, आम तौर पर, बडे पैमाने के उद्योग छोटे पैमाने के उद्योगो पर विजयी हुए, छोटे और मझोले उद्योग तबाह हो गये तथा उनको बडे उद्योगो ने अपने साथ समेट लिया। इस प्रकार उत्पादन का केन्द्रीकरण होने लगा। उत्पादन वडे-बडे उद्योगो मे केन्द्रित हो गया। इन उद्योगो मे अधिकाधिक मजदूरो को काम मिलता है। इन्ही उद्योगो मे वडे पैमाने पर कच्चे माल का इस्तेमाल होता है। औद्योगिक उत्पादन का अधिकाश भाग ये उद्योग स्वय पैदा करते हैं।

इस समय पू जीवादी देशो के उद्योगों की कुल सख्या मे वडे वडे उद्योगो की, जिनमे १००० या उससे अधिक मजदूर काम करते हैं सख्या बहुत थोडी—केवल एक या दो प्रतिशत—है। लेकिन ये उद्योग अमरीका के कुल कारखाना और दफ्तर मजदूरो के १/३ भाग, ब्रिटेन मे ३४ ५ प्रतिशत भाग और पश्चिम जर्मनी मे ४१ प्रतिशत भाग को अपने यहा काम मे लगाये हैं। दूसरे पूजीवादी देशो मे भी स्थिति ऐसी ही है।

उत्पादन के केन्द्रीकरण के समानान्तर ही हम मुट्ठी भर हाथो मे बहुत वडी मात्रा मे पूजी का केन्द्रीकरण देखते हैं। ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो का विस्तार, पूजी के केन्द्रीकरण का अत्यन्त शक्तिशाली यत्र होता है। इन कम्पनियों मे पूजी की वे सब वडी-वडी रकमे केन्द्रित हो जाती हैं, जो पहले बहुत-से मालिको मे बिखरी होती थी। इन रकमो से भीमकाय उद्योगो की स्थापना होती है जिनके मालिक मुट्ठी भर बडे-बडे पूजापति होते हैं।

१९वी शताब्दी के अन्त तथा २०वी शताब्दी के आरम्भ तक ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। वर्तमान समय मे अमरीका के औद्योगिक उत्पादन का ९/१० भाग कॉर्पोरेशनो (ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियों का अमरीकी नाम) द्वारा किया जाता है। ऐसी ही स्थिति अन्य पूजीवादी देशों में भी है।

१९६४ मे, ५०० सबसे बडे अमरीकी कॉर्पोरेशनो मे से ५५ ने १००

करोड डालर से अधिक की लागत का उत्पादन किया था। शेष ससार की २०० बडी-बडी कम्पनियो मे से केवल २१ मे इस प्रकार का उत्पादन हुआ।

भीमकाय उद्योगों की प्रभुत्वकारी भूमिका

बडे पूजीवादी देशो मे उत्पादन और पूजी के केन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप चन्द बडे और बहुत बडे उद्योगों का विकास तेजी से होने लगा और इसकी तुलना मे लाखो छोटे-छोटे उद्योगो की भूमिका बिल्कुल ही नगण्य हो गयी।

मौजूदा समय मे, अमरीका की ५०० बडी बडी कम्पनियो का उत्पादन अमरीकी निर्माण उद्योग के कुल उत्पादन का ५० प्रतिशत है तथा इन कम्पनियो का मुनाफा समस्त औद्योगिक कम्पनियो के मुनाफे का ७० प्रतिशत है। ब्रिटेन की १८० कम्पनियो मे कुल मजदूरो का एक तिहाई भाग काम करता है और उनका उत्पादन कुल औद्योगिक उत्पादन का २/५ भाग है।

सभी पूजीवादी देशो में यह केन्द्रीकरण भारी उद्योग की समस्त शाखाओ मे, तथा साम्राज्यवादी युग मे उत्पन्न होने वाले नये उद्योगो मे—जैसे खदान उद्योग, धातु उद्योग, बिजली उद्योग, इजीनियरिंग और रसायन उद्योग मे—बडी तीव्र गति से आगे बढता है। इसके विपरीत अनेक हल्के उद्योग—केन्द्रीकरण की मात्रा के मामले मे—पीछे रह जाते हैं। अभी भी बहुत से छोटे उद्योग—जैसे वस्त्र उद्योग, तम्बाकू, जूता, खिलौना और कुछ अन्य उद्योग—अपेक्षाकृत नीचे तकनीकी स्तर के साथ, किन्तु मुख्यत. श्रम के शोषण के अत्यधिक उच्च स्तर के आधार पर, कायम रहते हैं।

उत्पादन मे बहुत ही ज्यादा केन्द्रीकरण जारशाही रूस मे उद्योग की विशेषता थी। मजदूरो की बहुत बडी सख्या बडे-बडे, भीमकाय, उद्योगो मे केन्द्रित थी। इससे मजदूर वर्ग की कतारो के सगठन और शक्ति को बहुत सहायता मिली।

अतएव पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे साम्राज्यवाद के अन्तर्गत, मुट्ठी भर भीमकाय उद्योग दूसरे छोटे उद्योगो को बहुत पीछे छोड देते हैं।

इजारेदारियो का उदय और विकास

उत्पादन और पूजी का केन्द्रीकरण इजारेदारी सघो के उदय और विकास के लिए जमीन तैयार करता है। अपने विकास की एक निश्चित अवस्था मे यह केन्द्रीकरण स्वय इजारेदारी का रूप ले लेता है।

इजारेदारी क्या है ? इजारेदारिया कई प्रकार की होती हैं।

इजारेदारी—पूजीपतियो के बीच करार, सगठन या सहयोग को कहा जा सकता है। कोई बडा उद्योग स्वय भी एक इजारेदारी हो सकता है। किन्तु, इजारेदारिया चाहे कितनी ही भिन्न क्यो न हो, उन सब का उद्देश्य केवल एक

होता है—उत्पादन और मडी पर अधिकार प्राप्त करना, और इस अधिकार को अत्यधिक ऊचे मुनाफे बटोरने के लिए इस्तेमाल करना।

उद्योग की हर शाखा का उत्पादन जब सैकडो-हजारो छोटे और मझोले उद्योगो मे बटा होता है, तो इजारेदारी को स्थापित करना बहुत कठिन होता है। उत्पादन और पूजी का केन्द्रीकरण हो जाने से स्थिति बिल्कुल ही बदल जाती है। किसी भी शाखा मे केन्द्रीकरण हो जाने से उसमे कुछ दर्जन बडे बडे उद्योग ही रह जाते हैं। उनके बीच मे आपस मे करार हो जाना, सैकडो मझोले या हजारो छोटे-छोटे उद्योगो मे करार होने से ज्यादा आसान होता है।

इसी के साथ, बडे-बडे उद्योग, इन उद्योगो के मालिको को, पारस्परिक समझौतो की ओर ले जाते है। बडे उद्योगो के बीच प्रतियोगिता बहुत तेज होती है और उसके लिए धन की बडी रकम दरकार होती है। हर बड़े उद्योग को इमारतो, औद्योगिक ढाचे, विशाल मशीनो, आदि, पर भारी पूजी खर्च करनी पडती है। जब उद्योग के मुख्य उत्पाद की कीमतें फायदेमन्द न रहें, तो इस पूजी को दूसरे उत्पादो के लिए इस्तेमाल कर पाना लगभग असम्भव होता है। इसी कारण, इन शाखाओ से पूजी को हटा पाना बहुत कठिन होता है।

२०वी शताब्दी के आरम्भ तक, पूजीवादी देशो की अर्थव्यवस्थाओ मे इजारेदारियो ने प्रभुत्वकारी स्थिति ग्रहण कर ली थी। स्वतत्र प्रतियोगिता वाले पूजीवाद का स्थान इजारेदार पूजीवाद—साम्राज्यवाद—ने ले लिया था।

साम्राज्यवाद का सार-तत्व : इजारेदारी प्रभुत्व

लेनिन ने कहा था कि यदि साम्राज्यवाद की अत्यन्त सक्षिप्त परिभाषा करनी हो, तो उसे पूजीवाद की इजारेदारी अवस्था कहा जा सकता है।

इजारेदारी प्रभुत्व साम्राज्यवाद का मुख्य आर्थिक गुण है। साम्राज्यवाद का आर्थिक सार तत्व केवल यह है: उसके अतर्गत, इजारेदारी प्रभुत्व द्वारा, मुक्त प्रतियोगिता का गला घोट दिया जाता है।

समस्त पूजीवादी देशो मे इजारेदारियो का अविभाज्य राज स्थापित है। वे उत्पादन, व्यापार और ऋण के क्षेत्रो मे सर्वशक्तिमान हैं। समुद्री मगरमच्छो की तरह इजारेदारियो ने भी पूजीवादी और राजनीतिक जीवन के हर क्षेत्र को अपने शिकजे मे जकड लिया है।

पिछली कुछ ही शताब्दियो के दौरान, पूजीवादी देशो की अर्थव्यवस्थाओ मे इजारेदारियो का प्रभुत्व, उनका आकार तथा महत्त्व असीमित रूप से बढ गया है। अनेक बुनियादी मालो के उत्पादन का नियत्रण किसी एक इजारेदारी के

हाथ मे देखा जाता है। अन्य मालो के उत्पादन पर "दो बडी", "तीन बडी" या "चार बडी" शक्तियो का अधिकार देखा जाता है।

अमरीका और पश्चिम जर्मनी मे इस्पात का ६० प्रतिशत उत्पादन पाच इजारेदार घरानो के हाथो मे केन्द्रित है। अमरीका में अकेली यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कम्पनी २५ प्रतिशत इस्पात का उत्पादन करती है। ब्रिटेन की नौ फर्में देश के लगभग ७५ प्रतिशत इस्पात का उत्पादन अपने हाथो मे केन्द्रित किये हुए हैं। फ्रास मे लोहे से सम्बधित समस्त धातु उद्योग केवल पाच कम्पनियो के हाथो मे है। अमरीका में अल्यूमिनियम का अधिकांश भाग तीन कम्पनियो द्वारा उत्पादित किया जाता है तथा फ्रास मे समस्त अल्यूमिनियम उत्पादन का २० प्रतिशत केवल एक ही फर्म द्वारा उत्पादित किया जाता है।

अमरीका के मोटर उद्योग पर चार बडी-बडी इजारेदारिया काबिज हैं। उनमे से दो बडी कम्पनियो के—जनरल मोटर्स और फोर्ड मोटर कि०—हाथो मे कुल उत्पादन का ८० प्रतिशत भाग केन्द्रित है। ब्रिटेन मे मोटर उद्योग पर तीन, फ्रास मे चार तथा पश्चिम जर्मनी मे पाच कम्पनियो का पूरा अधिकार है।

१९६४ के अन्त मे १०० सबसे बडी पूजीवादी कम्पनियो के पास १८,३०० करोड डालरो की पूजी जमा हो गयी थी। उनके कारखानो मे ६७ लाख मजदूर काम करते थे। तेल, रसायन, विद्युत-तकनीक, मोटर, इजीनियरिंग तथा सैनिक कारखाने इनमे सबसे बडे हैं। यूनाइटेड स्टेट्स जनरल मोटर्स ट्रस्ट, पूजीवादी ससार की सबसे बडी इजारेदारी है। १९६४ मे इस ट्रस्ट की कुल बिक्री १,७०० करोड डालर की, पूजी १,१०० करोड डालर की तथा मुनाफे १६० करोड डालर के थे। जनरल मोटर्स मे ६,६०,००० आदमी काम करते हैं।

इजारेदारी के मुख्य रूप

इजारेदारी का सबसे साधारण रूप अल्पकालीन कीमन-समझौतो मे प्रकट होता है। समझौते के मातहत सभी पक्षो को समझौने की पूरी अवधि मे बिक्री की कीमतो को एक निश्चित स्तर पर रखना होता है। इस प्रकार के अल्पकालीन समझौते, आम तौर पर, अस्थायी होते हैं। मडी की स्थितियो मे परिवर्तन होने पर ये समझौते टूट जाते हैं।

कीमतो और बिक्री के बारे मे कार्टेल और सिंडीकेट कहे जाने वाले इजारेदारी समझौतो का फैलाव कही ज्यादा है। कार्टेल फ्रासीसी भाषा का शब्द है और सिंडीकेट यूनानी भाषा का। इन दोनो ही शब्दो का अर्थ समझौता, या सघ, होता है।

कार्टेल के सदस्य मडी की कुल बिक्री को आपस मे बांट लेते हैं। उनमे

आपस मे यह करार भी होता है कि मालो की कीमत एक निश्चित स्तर से नीचे नही गिरने दी जायेगी। अक्सर यह भी होता है कि कार्टेल के सदस्यो के बीच बिक्री का एक निश्चित कोटा तय कर लिया जाता है। कोटे का उल्लघन होने पर, उल्लघन करने वाले पक्ष को सामूहिक निधि के लिए जुर्माना अदा करना पडता है। कार्टेल मे शामिल अलग-अलग फर्में उत्पादन और व्यापार के मामले मे स्वतत्र रहती हैं।

सिडीकेट मे शामिल उद्योगो की वाणिज्यीय स्वतत्रता समाप्त हो जाती है। परन्तु वे मालो का स्वतत्र रूप से उत्पादन करते रहते हैं और उनकी क्षेत्रीय स्वायत्तता भी कायम रहती है। वस्तुओ की बिक्री और कभी-कभी कच्चे माल की खरीद का काम भी सिडीकेट कार्यालय के हाथो मे केन्द्रित हो जाता है।

इजारेदारी सघो का उच्चतम रूप ट्रस्ट होते हैं। जब कोई उद्योग किसी ट्रस्ट मे शामिल हो जाता है, तो वह केवल अपनी वाणिज्य सम्बधी स्वतत्रता ही नही छोड देता, बल्कि उत्पादन के कामो पर उसका नियत्रण भी समाप्त हो जाता है। पहले जिन उद्योगो का अपना अलग-अलग स्वतत्र अस्तित्व होता है, वे सब मिल कर अब एक उद्योग बन जाते हैं। समस्त व्यवसाय का प्रबध ट्रस्ट प्रशासन के हाथो मे चला जाता है। उद्योगो के पुराने मालिक, ट्रस्ट के शेयर-होल्डर बन जाते हैं और उनको शेयरो की सख्या के मुताबिक लाभाश प्राप्त होता है। ट्रस्ट कभी-कभी अपने नियत्रण मे सगठित उद्योगो का एक भाग बन्द भी कर देते है और उन्ही फैक्टरियो पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जिनसे अधिक मुनाफे प्राप्त हो।

कन्सर्न—सबसे बडे इजारेदारी सघ होते है। बडे कन्सर्नों के मातहत विभिन्न उद्योगो से सम्बधित दर्जनो, कभी-कभी सैकडो, कारखाने, व्यापारिक फर्में, बैंक, ट्रान्सपोर्ट कम्पनिया, आदि, होती हैं। कन्सर्न पर प्रभुत्व जमाने वाले समूह के हाथो मे असीमित पूजी जमा हो जाती है।

इस प्रकार, पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे अल्पकालीन समझौतो से लेकर भीमकाय सघो तक—जिनमे अलग अलग उद्योगो के बहुत-से कारखाने शामिल होते हैं—इजारेदारी के नाना रूप होते हैं।

इजारेदारिया और प्रतियोगिता

पूजीवाद की इजारेदारी-पूर्व की मजिल मे स्वतत्र प्रतियोगिता का दौरदौरा था। मगर इजारेदारिया इसके ठीक विपरीत होती है। इसी के साथ, इजारेदारियों का प्रभुत्व हो जाने के बाद भी प्रतियोगिता बिल्कुल ही समाप्त नहीं हो जाती। इसके विपरीत, इस प्रतियोगिता का स्वरूप अधिक विनाशकारी तथा हिंसक हो जाता है।

अत्यन्त विकसित पूंजीवादी देशो मे भी इजारेदारियों के साथ-साथ इजारेदारी-पूर्व या पूंजीवाद-पूर्व की अर्थव्यवस्था के सम्बंध भी कायम रहते हैं। कम विकसित देशो मे अर्थव्यवस्था के इन रूपो का भाग और भी अधिक होता है।

पूंजीवादी ससार मे जनसख्या का एक बहुत बडा भाग किसानो का है और छोटी-छोटी वर्कशॉपो मे काम करने वाले दस्तकारो की सख्या भी बहुत काफी है। इजारेदारियो के साथ-साथ स्वतन्त्र व्यवसाय भी कायम हैं, जो इजारेदारी सघो मे शामिल होना लाभकारी नही समझते।

इस प्रकार, समस्त सामाजिक उत्पादन इजारेदारियो के अन्तर्गत नही आ जाता। लेनिन ने साम्राज्यवाद को पुराने पूंजीवाद के बाह्य स्वरूप की सज्ञा दी थी। उन्होंने बताया था कि "शुद्ध" साम्राज्यवाद, जो पूंजीवाद की मुख्य बुनियाद से बिल्कुल अलग-थलग हो, न कही पाया गया है और न कभी पाया ही जायेगा।

इसके बावजूद, इजारेदारियों का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के समस्त उच्च स्थानो पर उनका अधिकार स्थापित हो जाता है।

इन परिस्थितियो मे इजारेदारियो व गैर-इजारेदारी उद्योगो (बाहरी), उद्योग की एक ही शाखा के अन्तर्गत आने वाली इजारेदारियो, विभिन्न अलग-अलग शाखाओ की इजारेदारियो, व अन्ततोगत्वा इजारेदारी सघो के बीच ही घनघोर सघर्ष शुरू हो जाता है। इजारेदारियो द्वारा किये जाने वाले उत्पीडन और मनमानेपन के परिणामस्वरूप आपसी प्रतियोगिता—सभी के खिलाफ सभी लोगो का युद्ध—अत्यन्त निर्मम एव विनाशकारी रूप ले लेती है।

इस प्रतियोगिता का अब वह पुराना रूप—अपेक्षाकृत छोटे तथा बिखरे हुए उद्योगो के बीच प्रतियोगिता—कायम नही रहता। यह प्रतियोगिता चन्द शक्तिशाली लुटेरो के बीच निर्मम सघर्ष का रूप ले लेती है। वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष हिंसा, घूस, धौंस धप्पा, तिकडम, पेचीदा वित्तीय चालबाजी समेत हर प्रकार के साधनो का इस्तेमाल करते हैं।

पूंजीपति वर्ग ने हमेशा से ही "स्वतन्त्र प्रतियोगिता" का नाम लेकर दम्भपूर्ण ढग से दावा किया है कि पहलकदमी और उद्योग के विकास के लिए इसका कायम रहना परमावश्यक है। लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवादी अवस्था मे यह प्रतियोगिता जनता एव सम्पूर्ण जनसख्या की पहलकदमी, पराक्रम और क्षमता को क्रूरता के साथ दबा देती है तथा वित्तीय धोखाधडी एव तानाशाही का रूप धारण कर लेती है। इजारेदारी और प्रतियोगिता के सयोग से गहरे अन्तर्विरोध पैदा हो जाते हैं और वे पूंजीवादी व्यवस्था मे लाजमी तौर पर उत्पन्न होने वाली अराजकता को और अधिक बढावा देते हैं।

'संगठित पूंजीवाद" के बारे में दन्त-कथा

इजारेदारी के पक्षधर दावा करते हैं कि "संगठित पूंजीवाद" द्वारा फैलायी जाने वाली उत्पादन की अराजकता का स्थान इजारेदारी राज ले लेता है। उनका दावा है कि इजारेदारी प्रभुत्व के जमाने में प्रतियोगिता एवं मन्दी का दौर समाप्त हो जाता है और पूंजीवादी व्यवस्था की अन्य खराबियों का भी निराकरण हो जाता है।

लेकिन, 'संगठित पूंजीवाद' का सिद्धान्त हर कदम पर गलत साबित हो रहा है। वास्तविकता यह है कि इजारेदारी राज में प्रतियोगितात्मक संघर्ष अत्यन्त भयानक एवं निर्मम रूप धारण कर लेता है क्योंकि यह संघर्ष ऐसे शक्तिशाली उद्योगों के बीच होता है, जिनके पास बहुत ही भारी मात्रा में पूंजी का भंडार होता है। उत्पादन की अराजकता समाप्त होने के बजाय बढ़ जाती है तथा पूरी अर्थव्यवस्था के सामने बिखराव और तबाही का खतरा पैदा हो जाता है।

२. वित्तीय पूंजी और वित्तीय अल्पतंत्र

बैंकिंग इजारेदारियों की स्थापना

इजारेदारियों की प्रभावी शक्ति को समझने के लिए बैंकों की बदली हुई भूमिका पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

अन्य उद्योगों की भांति, बैंक उद्योग में भी प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप, केन्द्रीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। छोटे बैंक तबाह हो जाते हैं और उनके शक्तिशाली प्रतियोगी उन पर अधिकार जमा लेते हैं। कुछ दूसरे बैंक नाम मात्र के लिए तो स्वतंत्र बने रहते हैं, परन्तु वास्तव में वे भी सबल प्रतियोगियों के प्रभुत्व में चले जाते हैं। बैंकों के पारस्परिक सम्मिलन और पारस्परिक सम्बंधों का दौर शुरू हो जाता है।

बैंकों की संख्या तो घट जाती है, पर उनके कारोबार का आकार और उसकी मात्रा बढ़ जाती है। हर देश में मुट्ठी भर बैंक प्रधान स्थान ग्रहण कर लेते हैं। उनके पास स्वतंत्र मुद्रा-साधनों की भारी रकमें जमा हो जाती हैं।

उद्योगों के समान ही, बैंकों के कारोबार में भी केन्द्रीकरण आ जाने से इजारेदारियों का उदय होता है। बैंकिंग कारोबार की अग्रणी भूमिका चन्द बड़े-बड़े बैंकों के हाथों में पहुंच जाती है। अब, प्रतियोगिता सैकड़ों अलग-अलग बैंकों के बीच न रह कर बैंकिंग पूंजी के बड़े-बड़े संघों के बीच होने लगती है। स्वाभाविक है कि बैंकों के इन संघों के आपस में मिल कर इजारेदारी समझौता करने में दिलचस्पी बढ़ जाती है ताकि सभी बैंकों को मिला कर

एक महासघ की स्थापना की जा सके। बडे-बडे वित्तीय कारोबार—जैसे सरकारी ऋणों का जारी किया जाना, बडी-बडी ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो की स्थापना—अब किसी एक बैंक द्वारा अधिकाधिक नही किये जाते, बल्कि आपसी समझौते से आबद्ध कुछ अग्रणी बैंको द्वारा किये जाते है।

अमरीका मे न्यूयार्क के चार बडे बैंकों के पास १६०० मे कुल जमा पूजी का केवल १/५ भाग था, परन्तु १६५५ मे यह भाग बढ कर ३/५ हो गया। न्यूयार्क की वाल स्ट्रीट, जिस पर बडे-बडे बैंक स्थापित हैं, अमरीका का वित्तीय हृदय बनी हुई है। ब्रिटेन मे पाच बडे बैंको के पास सभी बैंको मे कुल जमा पूजी का ४/५ भाग जमा था। पश्चिम जर्मनी मे तीन बैंको का प्रभुत्व स्थापित है जिनके हाथो मे समस्त देश की बैंकिंग पूजी का ३/५ अश केन्द्रित हो गया है।

बैंक और उद्योग

उद्योग और बैंकिग मे होने वाले केन्द्रीकरण से तथा बडी-बडी औद्योगिक एव बैंकिग इजारेदारियों की स्थापना से उद्योग एव बैंको के परस्पर सम्बन्धो मे बडा परिवर्तन आ गया है।

शुरु-शुरु मे बैंक, भुगतानो के लिए मध्यवर्तियो का काम करते थे। लेकिन जैसे-जैसे पूजीवाद का विकास होता गया, वैसे ही वैसे बैंको की ऋण सम्बधी कार्रवाइयो का विस्तार होता गया और वे पूजी के व्यापारी बन गये। ये बैंक, पजीपतियो के पास धन की कमी होने पर, उन्हे अल्पकालीन कर्जे देने लगे।

पूजीवादी उत्पादन के और विकास से तथा बैंको मे जमा होने वाली पूजी मे वृद्धि से, स्थिति मे बुनियादी परिवर्तन आ गया। बैंको मे जमा होने वाला धन अकूत हो गया और उस समस्त धन को अल्पकालीन कर्जो मे लगाना सम्भव नही रहा।

इसलिए बैंको ने अपने पास जमा साधनो को लगाने के लिए दूसरे क्षेत्रो को तलाश करना आरम्भ किया। उन्होने उद्योगो के साथ नजदीकी सम्बध स्थापित किये और दीर्घकालीन कर्जे देने लगे। स्वाभाविक है कि इससे उद्योग और बैंको के बीच के आपसी सम्बध बदल गये।

बैंको ने विभिन्न कम्पनियो के शेयरो और बॉन्डो पर अपना दखल जमाया और इस प्रकार वे औद्योगिक, व्यापारिक तथा यातायात सम्बधी कारोबारो मे साझेदार बन गये। बदले मे, औद्योगिक इजारेदारियो के इन कारोबारो से सम्बधित बैंको मे शेयर हो गये।

वित्तीय पूंजी और वित्तीय अल्पतत्र

इससे बैंकिंग और औद्योगिक इजारेदारियो के मुखियो के बीच "व्यक्तिगत एकता" स्थापित होती है। बैंको के डायरेक्टर औद्योगिक सस्थानो की प्रशासकीय समितियो के सदस्य होने लगते है। इसी के साथ, औद्योगिक इजारेदारो के प्रतिनिधि, बैंको के बोर्डों मे नियुक्त होने लगते हैं। घूम फिर कर वे ही चन्द

लोग बैंकिंग, उद्योग, व्यापार तथा पूजीवादी अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं की बडी बडी इजारेदार समितियो के मुखिया बन जाते हैं।

बैंकिंग और औद्योगिक पूजी के बीच सहगमन बढता जाता है। बैंकिंग और औद्योगिक इजारेदारियो की सयुक्त पूजी को वित्तीय पूजी का नाम दिया जाता है।

पूजीवाद की इजारेदारी अवस्था—अर्थात साम्राज्यवाद—की एक विशेष पहचान यह है कि उसमे बैंकिंग पूजी तथा औद्योगिक इजारेदारिया एक-दूसरे से मिल जाती है। यही कारण है कि साम्राज्यवाद को वित्तीय पूजी के युग के नाम से पुकारा जाता है।

इजारेदारियो और वित्तीय पूजी के विस्तार के परिणामस्वरूप देश के आर्थिक जीवन की कुजी मुट्ठी भर बडे-बडे बैंकपतियो तथा इजारेदार उद्योग पतियो के हाथो मे पहुच जाती है। किसी भी पूजीवादी देश के भाग्य का निर्णय चन्द बडे बडे पूजीपति मगरमच्छो, सर्वशक्तिशाली वित्तीय अल्पमत द्वारा किया जाने लगता है।

अमरीकी बडे पूजीपति वर्ग के उच्च पद वाले तत्व, जो जनसख्या का केवल एक प्रतिशत भाग हैं १६४६ मे देश की समस्त निजी सम्पत्ति के २१ प्रतिशत भाग के मालिक थे और १६६१ मे उनका हिस्सा बढ कर २८ प्रतिशत हो गया। इन्ही लोगो के पास कुल शेयरो का ७५ प्रतिशत भाग पहुच गया। ब्रिटेन मे जनसख्या का केवल एक प्रतिशत भाग देश की निजी सम्पदा के ३५ प्रतिशत भाग का मालिक है।

पूजी के बेताज के बादशाह

अमरीका एक जनतन्त्र है। इसके बावजूद, अमरीका मे इतने अधिक बादशाह पाये जाते हैं जितने दुनिया की तमाम बादशाहतो मे कुल मिला कर भी नही हैं। वहा तेल और इस्पात के बादशाह हैं, रेलवे मोटर गाडियो, कोयला और अखबारो के शहशाह, बैंको के राजघराने और यहा तक कि सुअर के गोश्त और चुइग गम के बादशाह भी मौजूद हैं।

बादशाहो का दावा है कि वे स्वय ईश्वर द्वारा ही नियुक्त किये गये हैं। लेकिन अमरीका के शाह व शहशाह किसी भी धर्म के ईश्वर स ज्यादा शक्तिशाली शक्ति द्वारा नियुक्त किय गये हैं उनका अभिषेक तो स्वय पूजी ने किया है। वे इतनी शक्ति और सम्पदा के मालिक हैं कि प्राचीन काल या आधुनिक समय का कोई बादशाह उसका सपना भी नही देख सकता।

रॉकफेलर परिवार अमरीका मे और पूरे पूजीवादी जगत मे, सबसे अधिक धनवान है। उस परिवार मे कुल पाच भाई और एक चचा हैं। रॉकफेलर परिवार तेल का बादशाह है। सातवें दशक के आरम्भ मे समस्त पूजीवादी

जगत की रिजर्व पूंजी का एक तिहाई भाग तथा तेल के उत्पादन, सफाई और लदान का एक चौथाई भाग उसके अधिकार मे आ गया था। अमरीका, वेनेजुएला, ईरान, तथा पूर्वी अरब के देशो मे उसके अपने तेल-क्षेत्र हैं। विभिन्न खान निगमो, रेलवे लाइनो, बीमा कम्पनियो तथा बहुत से अन्य प्रतिष्ठानो के वे स्वामी हैं। हाल के वर्षों मे रॉकफेलर घराने ने अपना अधिकार नये विकासशील उद्योगो, जैसे रसायन, बिजली, वायुयान, रॉकेट तथा आणविक उद्योग मे फैला लिया है। रॉकफेलर घराने का अधिकार इतने उद्योगो मे फैला हुआ है, जिनका मूल्य कुल मिला कर ६००० करोड डालर से भी अधिक है।

शक्तिशाली मार्गन घराना रॉकफेलर परिवार का प्रतिद्वन्द्वी है। वह इस्पात का बादशाह है। उसका स्वामित्व बैंको, बीमा कम्पनियो, ट्रान्सपोर्ट, म्यूनिसिपल तथा अन्य कई प्रतिष्ठानो तक फैला हुआ है। हाल के वर्षों मे मार्गन घराना तेल, रसायन और इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों पर भी अपना प्रभाव डालने लगा है। ब्रिटेन, फ्रास और पश्चिम जर्मनी समेत दर्जनो पूंजीवादी देशो मे इस घराने के स्वामित्व मे औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित हैं।

रॉकफेलर और मार्गन अमरीका के सबसे पुराने वित्तीय ग्रुप हैं। दूसरे ६ बडे वित्तीय ग्रुपो के साथ मिल कर वे अमरीका तथा विदेशो मे २१८ अरब डालर मूल्य के बैंको, औद्योगिक, बीमा, रेलवे तथा अन्य प्रतिष्ठानो को नियंत्रित करते हैं। समस्त अमरीकी कॉर्पोरेशनो की कुल सम्पदा का यह २५ प्रतिशत भाग बैठता है।

अन्य समस्त पूंजीवादी देशो मे, महाशक्ति पूंजी द्वारा नियुक्त बादशाहो की मनमानी हुकूमत कायम है। पश्चिम जर्मनी मे जिन बडे बडे उद्योगपतियो ने हिटलर को राजगद्दी पर बैठाया था, वे ही आज भी अविभाज्य रूप से राज कर रहे हैं और हाल के दिनो मे उनकी शक्ति और ज्यादा बढी है।

इस प्रकार, पश्चिम जर्मनी मे ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियों की संख्या—युद्ध-पूर्व की अपेक्षा—५६.५ प्रतिशत घट गयी, मगर उनकी पूंजी की रकम दो गुनी हो गयी। १९६२ मे, उस देश मे २०० बडी कम्पनियो के पास कुल शेयर-पूंजी का ८५ प्रतिशत भाग केन्द्रित था।

पश्चिम जर्मनी की समस्त अर्थव्यवस्था चन्द धनकुबेर सेठो के हाथो म केन्द्रित हो गयी है। क्रुप के भीमकाम कारखाना मे १,१०,००० से ज्यादा लोग काम करते है और उनका सालाना उत्पादन ५०० करोड मार्क से अधिक का है। उनके मालिक अल्फ्रेड क्रुप वान बोहलेन और हलबाख हैं। ५०० तथा ६०० करोड मार्क की सम्पदा के मालिक होने के नाते क्रुप दुनिया के १० सबसे धनी परिवारो मे से हैं। पश्चिम जर्मनी के अन्य पूंजीवादी धन्नासेठो—

थाईसेन और हैनियल के उत्तराधिकारियों, फ्लिक एंड सस, तथा अन्य लोगों—के हाथों में भी असीमित धन जमा हो गया है ।

आज बैंकर कल मंत्री — वित्तीय अल्पतंत्र का पूंजीवादी राज्य मशीन से बहुत नजदीकी सम्बंध होता है । अक्सर बड़े-बड़े बैंकर और उद्योगपति उच्च सरकारी पदों पर भी आसीन हो जाते हैं । लेकिन, यदि वे प्रत्यक्ष रूप से सरकारों में शामिल नहीं होते, तो भी सरकारों के गठन तथा उनकी गतिविधियों के निर्देशन में वे अवश्य निर्णायक प्रभाव डालते हैं ।

वास्तव में, सरकारों की नियुक्ति तथा बरखास्तगी वे ही करते हैं । राजसत्ता का इस्तेमाल करके वे अपने भारी इजारेदारी मुनाफों तथा अपने प्रभुत्व को सुनिश्चित बनाते हैं तथा उच्च पद पर स्थित सरकारी नेताओं के रिटायर होने के बाद बैंकों और अन्य प्रतिष्ठानों में उन्हें मोटी-मोटी तनखाहों वाले पद प्राप्त हो जाते हैं ।

इसी से ऐसी परिस्थिति पैदा होती है जिसका सही वर्णन इस प्रकार है : आज बैंकर—कल मंत्री, और, आज मंत्री—कल बैंकर ।

मुट्ठी भर बड़े पूंजीपति, जिनके हाथों में अरबों-खरबों की सम्पदा जमा हो जाती है, आक्रामक नीतियों, आक्रमणों, हथियारों की दौड़ तथा नये युद्ध की तैयारियों का संचालन करने लगते हैं । इसी वित्तीय अल्पतंत्र का पूंजीवादी समाचारपत्रों विज्ञान और कला पर अधिकार हो जाता है । यह अल्पतंत्र उच्च सिविल अधिकारियों तथा संसद सदस्यों को घूस देता है, और "जनमत" की रचना करता है ताकि अपने हितों की रक्षा कर सके । जनता के दिमाग को विषाक्त करने वाले समूचे तंत्र पर इसका नियंत्रण कायम हो जाता है ।

३. संसार पर प्रभुत्व जमाने के लिए संघर्ष

पूंजी का निर्यात — इजारेदारी-पूर्व के पूंजीवाद में—स्वतंत्र प्रतियोगिता के साथ-साथ—मालों का निर्यात किया जाना उसकी एक अपनी विशेषता थी । साम्राज्यवाद और इजारेदारी के काल में यह निर्यात बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ जाता है । किन्तु साम्राज्यवाद की अपनी विशेषता, पूंजी का निर्यात है ।

इजारेदारी काल में, विकसित पूंजीवादी देशों में पूंजी का बहुत बड़े पैमाने पर संचय होने लगता है । पहले विश्व युद्ध से ठीक पहले, संसार के औद्योगिक उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत भाग तथा सिक्योरिटियों का ४/५ भाग, चार सबसे बड़े पूंजीवादी देशों—अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी—के हाथों में सिमट आया था । इस प्रकार, चन्द धनी देशों के पास पूंजी की बहुत भारी

रकमे जमा हो गयी थी, तथा "अधिशेष पूजी" पर उनकी इजारेदारी कायम हो गयी थी।

पूजी मुख्यत: दो कारणो से "अधिशेष" हो जाती है।

प्रथम, जनता का जीवन स्तर नीचा होने के कारण उत्पादन के विस्तार मे रुकावट पैदा हो जाती है। दूसरे, अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ का विकास और ज्यादा असमान गति से होने लगता है। यदि पूजीवाद अर्थव्यवस्था की पिछडी हुई शाखाओ को तथा जनता के जीवन-स्तर को ऊचा उठा सके, तो कोई भी पूजी "अधिशेष" नही रहेगी। लेकिन ऐसी स्थिति मे, लेनिन के कथनानुसार, पूजीवाद पूजीवाद नही रह जायगा, क्योकि असमान विकास और जनता का नीचा जीवन-स्तर पूजीवादी उत्पादन पद्धति की बुनियादी तथा लाजमी शर्ते एव पूर्व-आवश्यकताए हैं।

"अधिशेष" पूजी का निर्यात, मुख्यत:, पिछडे हुए देशों में किया जाता है। उन देशों मे पूजी कम लगी होती है, जमीन की कीमत अपेक्षाकृत कम होती है, मजदूरी का रेट भी कम होता है और कच्चा माल सस्ते भाव पर मिल जाता है। ऐसे ही स्थानो मे पूजी पर मुनाफे की ऊची दर प्राप्त होती है।

पूजीपति वर्ग के पक्षधर यह साबित करने का प्रयास करते है कि साम्राज्यवादी देशो द्वारा पूजी का निर्यात किया जाना निर्धन और पिछडे हुए देशो के लिए एक वरदान है। उनका कहना है कि धनी देश अपनी पूजी को लगा कर निर्धन देशो को अपने उद्योगो के और रेलवे लाइनो के विकास मे, तथा प्रगति के पथ पर अग्रसर होने मे, सहायता करते है।

परन्तु वास्तविकता यह है कि पूजी के निर्यात द्वारा कुछ देश कुछ अन्य देशो को गुलाम बनाते है। इस तरह साम्राज्यवादी उत्पीडन की व्यवस्था की बुनियाद पडती है। पूजी का आयात करने वाले देश साम्राज्यवादी देशो पर आश्रित हो जाते है। चन्द विकसित पूंजीवादी देशो का वित्तीय अल्पतन्त्र पूजी का निर्यात करके पिछडे हुए देशो को आर्थिक रूप से जकड लेता है।

पूजी का आयात करने को मजबूर देशो को गुलामी की शर्तो से जकड दिया जाता है। निर्यात करने वाले इजारेदार उन पर अपनी शर्तों को थोपते हैं। वे लाभकर शर्तो पर रियायतें हासिल करते है और कच्चे माल के बहुमूल्य स्रोतो तथा बिक्री-मडियो पर अधिकार जमा लेते है।

पूजी का निर्यात मालो के निर्यात के विस्तार का एक साधन होता है। आम तौर पर, कर्ज देने की शर्त यह रखी जाती है कि कर्जदार देश अपने आवश्यक सामानो की खरीदारी महाजन देश से ही करे। साम्राज्यवादी देश हथियारों की खरीद के लिए कर्ज देने को विशेष रूप से आतुर रहते हैं।

सभी साम्राज्यवादी देश पूजी का निर्यात करते हैं। इसका एक सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि साम्राज्यवादी देशो के बीच आन्तरिक प्रतियोगिता मे तेजी आ जाती है, उनके बीच अन्तर्विरोध गहरे हो जाते है और प्रभाव क्षेत्रो के लिए सघर्ष तीव्र हो जाता है।

पूजी के निर्यात के परिणामस्वरूप चन्द सर्वाधिक अमीर पूजीवादी देश, अन्य देशो के साथ अपने आर्थिक सम्बधो के लिहाज से, महाजन बन जाते हैं। कर्जो पर ब्याज तथा कारोबार मे मुनाफो के रूप मे अधिशेष मूल्य का महाजन देशो की तरफ तेजी से बहाव होने लगता है। निर्यात की गयी पूजी से होने वाली आमदनी ही मुख्य पूजीवादी देशो मे इजारेदारियो की अमीरी का भारी स्रोत है।

आधुनिक समय मे पूंजी के निर्यात के विशेष लक्षण

मौजूदा समय मे, जब नवस्वतत्र विकासशील देश औद्योगिक उत्पादन के भीषण परिणामो को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं, विदेशी इजारेदारिया इन देशो मे लगी अपनी पूजी को इन पर अपना आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए इस्तेमाल करती हैं।

"आर्थिक सहायता" के बहाने साम्राज्यवादी देश विकासशील देशो की अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण शाखाओ पर अपना अधिकार कायम कर लेते हैं। साम्राज्यवादी देश पूजी के निर्यात द्वारा नवस्वतंत्र देशो को एक बार फिर औपनिवेशिक गुलामी से जकडने का प्रयास करते हैं तथा उनकी राजनीतिक आजादी का इस्तेमाल विदेशी इजारेदारियो के शासन को ढकने के लिए किया जाता है। यह विदेशी पूजी नवस्वतत्र देशो मे मौजूद प्रतिक्रियावादी शक्तियो को सहायता तथा समर्थन प्रदान करती है और साजिशो तथा तोडफोड की कार्रवाइयो का सगठन करती है, ताकि औपनिवेशिक उत्पीडन को नये ढग से पुनर्स्थापित किया जा सके।

इसी के साथ, आधुनिक परिस्थितियो मे कुछ विकसित पूंजीवादी देशो द्वारा अन्य विकसित पूजीवादी देशो मे भी बडे पैमाने पर पूजी का निर्यात किया गया है। विशेष रूप से अमरीकी इजारेदारो ने कनाडा और पश्चिम योरपीय देशो मे पूजी का बडे पैमाने पर निर्यात बढ़ाया है। अमरीकी इजारेदार ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, फ्रास तथा पश्चिम योरप के अन्य देशो मे अपनी शाखाए स्थापित कर रहे हैं। पश्चिम योरपीय देशो के मजदूरो के वेतन-स्तर अमरीकी मजदूरो के वेतन-स्तरो से कम हैं। इस बात का फायदा उठा कर अमरीकी इजारेदारिया मडियो पर अपना अधिकार जमा लेती हैं और अपने प्रतियोगियो को पीछे धकेल देती हैं। दूसरी ओर, पश्चिम योरप के अनेक देशो की पूजी समुद्र पार के देशो को निर्यात की जाती है जहा उसे ऐसे क्षेत्रो

मे लगाया जाता है जिनमे पश्चिम योरपीय फर्मों को विशेष सुविधाए हासिल रहती हैं। कुछ विकसित पूँजीवादी देशो से अन्य देशो में पूंजी के निर्यात का परिणाम यह होता है कि विभिन्न देशो की इजारेदारियो के बीच सघर्ष तीव्र हो जाता है तथा साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियां

साम्राज्यवादी युग की विशेषता पूंजी का निर्यात है। इसी से अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियो की विश्व-स्तरीय क्रियाशीलता का उदय हुआ है। आगे बढे देशो के आर्थिक जीवन मे अपनी प्रधानता को सुनिश्चित करने के बाद ये इजारेदारिया, सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रूप से, घरेलू मडी पर अपना अविभाज्य आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करती है। लेकिन वे अपनी गतिविधियो को केवल इसी सीमा तक नही बाधे रहती। इन भीमकाय इजारेदारियो का उत्पादन अक्सर घरेलू मडी की आवश्यकताओ से अधिक हो जाता है। बडी-बडी इजारेदारिया कुछ निश्चित मालो के विश्वव्यापी उत्पादन के एक भाग को अपने हाथो मे केन्द्रित कर लेती है। उनके बीच का सघर्ष विशेष रूप से तीव्र और विनाशकारी हो जाता है। जैसे-जैसे बडी इजारेदारियो का विकास होता है, वैसे ही वैसे वे दुनिया की मडी के बाटने के अपने प्रयासो मे कोई कसर बाकी नही रखती। इससे अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारिया स्थापित होने लगती है, दुनिया की मडी के बटवारे के बारे मे अनेक देशो से इजारेदारो के बीच मे समझौते होने लगते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियो का उदय १९वी शताब्दी के ७वें तथा ९वें दशक से शुरू हुआ। २०वी शताब्दी के पहले दशक मे विकसित पूजीवादी देशो मे शक्तिशाली इजारेदार सस्थाओ का उदय हुआ जिन्होने विश्व-मडी पर प्रभाव डालना शुरू किया।

पूजीवाद के पक्षधर यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारिया—जो अत्यन्त तीव्र टकराओ का स्रोत होती हैं—शाति कायम रखने का साधन हैं। उनका दावा है कि अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारी समझौते साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच के अन्तर्विरोधो को शातिपूर्ण ढग से समाप्त करने मे समर्थ हैं। इन दावो मे और चाहे जो कुछ भी क्यो न हो, सच्चाई बिल्कुल नही है।

वास्तविकता यह है कि इजारेदारियो के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते बहुत ही अस्थायी होते हैं। ये समझौते गलाकाटू सघर्ष के लिए जरखेज जमीन का काम करते हैं। दुनिया की मडी का बटवारा अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियो के बीच उनकी शक्ति के अनुसार हो जाता है। उनमे से हर एक अपने भाग को बढाने के लिए निरन्तर सघर्ष मे रत रहती है, ताकि वह अपने इजारेदारी शोषण के क्षेत्र का विस्तार कर सके। अलग-अलग देशो की इजारेदारियो की शक्ति

बदलती रहती है। इन परिवर्तनो से मंडियो के पुनर्वितरण के लिए हिंसात्मक संघर्ष शुरू हो जाता है। विभिन्न इजारेदार समूह संघर्ष करते हैं और उनका समर्थन उनकी सरकारें करती हैं।

दो विश्व युद्धों के बीच के काल मे अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारिया दूर दूर तक फैल गयी। दुनिया की राजनीति मे उनका महत्व बहुत बढ गया। विश्व साम्राज्यवाद की शक्तियो द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के लिए की जाने वाली तैयारियो मे उन्होंने तबाहकारी भूमिका अदा की।

अमरीकी, ब्रिटिश और फ्रासीसी इजारेदारिया उन जर्मन धन्नासेठो से नजदीकी तौर पर जुडी हुई थी, जिन्होंने हिटलर और उसके फासिस्ट गिरोह को राजसत्ता मे बैठाने मे सहायता की थी। इजारेदारो की योजना के अनुसार पश्चिमी देशो ने फासिस्ट हमलावरो को प्रोत्साहन देने की नीति पर अमल किया जिसके परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध छिड गया।

दुनिया के क्षेत्रीय बटवारे तथा पुन बटवारे के लिए संघर्ष

साम्राजवाद के अन्तर्गत बडी-बडी इजारेदारिया आर्थिक दृष्टि से दुनिया का बटवारा आपस मे कर लेती है, जबकि साम्राज्यवादी शक्तिया उसके क्षेत्रीय बटवारे को पूरा करती है।

१९वी शताब्दी के ८वे दशक तक योरपीय देशों के औपनिवेशिक क्षेत्र समुद्र पार इलाको के अपेक्षाकृत बहुत ही कम भाग म फैले हुए थे। १८७६ तक अफ्रीका का केवल १/१० भाग योरपीय देशो का उपनिवेश बन पाया था। उस समय तक एशिया और पॉलीनेशिया का ५० प्रतिशत भाग पूंजीवादी देशो द्वारा नही हथियाया जा सका था। लम्बे चौडे क्षेत्रफल वाले इलाके उस समय तक पूंजीवादी देशो की गुलामी के शिकार नही बने थे।

१९वी शताब्दी के आखिरी दो दशको म दुनिया का मानचित्र बुनियादी तौर पर बदल गया।

सबसे प्राचीन उपनिवेशवादी महाशक्ति ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए दूसरे विकसित पूंजीवादी देशो ने भी भू क्षेत्रो को हथियाना शुरू कर दिया। १८७६ और १९१४ के बीच इन महान शक्तियो ने ढाई करोड वर्ग किलोमीटर भूमि पर अधिकार जमा लिया। यह क्षेत्रफल समस्त योरप के क्षेत्रफल का दो गुना था। असली तौर पर समस्त अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमरीका के बडे भाग मुट्ठी भर साम्राज्यवादी देशो—ब्रिटेन, फ्रास, अमरीका, जर्मनी और जापान तथा कुछ अपेक्षाकृत छोटे लुटेरो—बेल्जियम, नीदरलैंड, पुर्तगाल और स्पेन—के उपनिवेश एव अर्ध उपनिवेश बन गये।

प्रथम विश्व युद्ध के शुरू होते-होते, दुनिया की आबादी के १७० करोड लोगो मे से ६० करोड लोग उपनिवेशों मे, तथा ३५ करोड लोग बडे पूंजी-

वादी देशो मे, आबाद थे। उपनिवेशो का अधिकाश भाग बडे देशो के पास था। प्रथम विश्व युद्ध के पहले औपनिवेशिक दुनिया का ३/४ भाग, तथा गुलाम जनता का पूर्ण बहुमत उनकी गुलामी के जुए के नीचे पहुच चुका था। दुनिया का बटवारा पूरा हो चुका था, कोई भी इलाके खाली नही पडे थे। किसी अन्य औपनिवेशिक लुटेरे से छीन कर ही किसी इलाके पर अधिकार जमाया जा सकता था। इसलिए पहले से बटी हुई दुनिया के फिर बटवारे का सवाल सामने आ गया था।

साम्राज्यवाद की आक्रामक प्रकृति

पहले से ही बटी हुई दुनिया के फिर से बटवारे के लिए सघर्ष—यह पूजीवाद की इजेरादारी अवस्था की एक विशेष पहचान है। दुनिया के पुनर्वितरण के लिए साम्राज्यवादियो द्वारा चलाया जाने वाला सघर्ष अन्ततोगत्वा दुनिया पर अधिकार कायम करने के सघर्ष का रूप ले लेता है। इससे रक्तरजित विनाशकारी युद्धो की शुरूआत होती है। १९१४-१९१८ का प्रथम विश्व युद्ध ऐसे ही पुनर्वितरण के लिए लडा जाने वाला एक युद्ध था।

इजारेदार पूजी अपना विस्तार करने, अर्थात अपने प्रभुत्व का क्षेत्र बढाने, दूसरे देशो के इलाको को हथियाने तथा उनकी जनता को गुलाम बनाने का प्रयास करती है। इजारेदारियो का विस्तार लाजमी तौर पर साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच तीव्र टकरावो का कारण बन जाता है। इन टकरावो मे सशस्त्र युद्धो की सम्भावना निहित रहती है। इसी के साथ, इजारेदारियो की विस्तारवादी आकाक्षाए अविकसित देशो की जनता के लिए घातक खतरा बनी रहती हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियो की आक्रामक शक्तियो ने फासिज्म—वित्तीय पूजी के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी तथा आक्रामक हल्को की खुली आतकवादी तानाशाही—को जन्म दिया। १९२९-३३ के सकट ने जब पूजीवादी व्यवस्था के अस्तित्व को ही खतरे मे डाल दिया था, तब योरप के देशो मे फासिस्ट विद्रोहो की लहर भी चल रही थी। समस्त ससार के साम्राज्यवादियो ने, विशेष रूप से अमरीकी साम्राज्यवादियो ने, जर्मनी और इटली के फासिस्टवाद की सहायता की और उन्हे समाजवाद एव जनतत्र के खिलाफ चल रहे सघर्ष मे अपनी तूफानी टुकडी के रूप मे इस्तेमाल करने का प्रयास किया।

पूजीवादी देशो के भीतरी अतर्विरोध जब चरम बिन्दु पार कर गये, तो साम्राज्यवादी पूजीपति वर्ग वैदेशिक दुस्साहसवाद मे अधिकाधिक भाग लेने लगा और उसने समस्त ससार को द्वितीय विश्व युद्ध मे धकेल दिया, जिसका अत फासिस्ट आक्रमणकारियो का सफाया होने मे हुआ।

फासिस्ट आक्रमणकारियो का सफाया हो जाने के बाद, अमरीका विश्व प्रतिक्रियावाद और साम्राज्यवादी आक्रमणो को छेडने वाला मजबूत केन्द्र बन गया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अमरीकी साम्राज्यवादी अपने पश्चिम योरपीय साझेदारो—विशेष रूप से पश्चिम जर्मनी—के आक्रामक फौजीशाहो के साथ मिल कर दुनिया को गुलामी मे जकडने की भूमिका अदा कर रहे हैं तथा एक के बाद दूसरे देश पर उन्होने फौजी हमले सगठित किये हैं। अमरीकी साम्राज्यवादियो की आक्रामक कार्रवाइया—छठे दशक मे होने वाला कोरियाई युद्ध, वियतनाम का वर्तमान युद्ध, क्यूबा की जनता के खिलाफ की जाने वाली उत्तेजनापूर्ण कार्रवाइया, अरब देशो, अफ्रीका व लैटिन अमरीका के अनेक देशो मे की जाने वाली तोड-फोड की करतूतें—ससार के सामने नये युद्ध का खतरा पैदा कर रही हैं और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को दूषित कर रही हैं।

अमरीकी साम्राज्यवाद ने अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर लिया है और अब वह दुनिया का सबसे बडा शोषक बन गया है। अमरीकी इजारेदार पू जी आज समस्त जनवादी एव प्रगतिशील आन्दोलनो का विरोध करती है। वह समस्त ससार की जर्जर एव जन-विरोधी सरकारो का समर्थन करती है, आक्रमणकारी फौजी गुटो का निर्माण करती है, ढिठाई से अपनी शीत युद्ध की नीत को चलाती है तथा इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को दूषित करती है। आधुनिक पू जीवाद के स्पष्ट अन्तर्विरोध साम्राज्यवाद के मनमानेपन और धृष्टता को और भी बढाते हैं तथा जनता के लिए, शान्ति के उद्देश्य तथा सामाजिक प्रगति के लिए खतरा उत्पन्न कर देते हैं। साम्राज्यवादी अपनी परेशानियो को अधिकाधिक दुस्साहसपूर्ण सैनिक कार्रवाइयो, हर प्रकार के आक्रामक गुटो के सगठन एव प्रत्यक्ष सैनिक हस्तक्षेपो द्वारा हल करने लगते हैं। साम्राज्यवाद की कार्रवाइयो तथा उसकी आक्रामक योजनाओ को परास्त करने मे समस्त शान्तिप्रिय शक्तियो को अपनी सुदृढ लामबदी करनी चाहिए ताकि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बढने से रोका जा सके।

४. साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था

उपनिवेशवाद क्या है ? एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका की जनता के लिए उपनिवेशवाद से ज्यादा घृणित कोई दूसरा शब्द नही है। उपनिवेशवाद शोषण, उत्पीडन और हिंसा की ऐसी व्यवस्था है जिसे साम्राज्यवाद ने उपनिवेशो और पराधीन देशो में स्थापित किया है।

उपनिवेशवाद ने प्राचीन सस्कृति से सम्पन्न अनेक जनगण को आर्थिक

पिछड़ेपन तथा दरिद्रता की स्थिति मे धकेल दिया है। महान भारतीय जनता दो सदियो तक अंग्रेज उपनिवेशवादियो के शासन के नीचे कराहती रही। अर्ध-औपनिवेशिक आधीनता का लम्बा काल महान चीनी जनता के लिए सचमुच एक अभिशाप था। पूर्वी अरब, अफ्रीका, लैटिन अमरीका और दक्षिण पूर्वी एशिया के जनगण को नृशस औपनिवेशिक शोषण का जुवा ढोने को बाध्य होना पडा जिससे बहुत दिनो तक उनका विकास रुका रहा। उपनिवेशवाद ने अक्षय प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न और परिश्रमी आबादी वाले देशो को भी भुखमरी के मुह मे धकेल दिया।

उपनिवेशों पर कब्जा

पू जीवादी देशो ने उपनिवेशो पर अधिकार किन साधनो से स्थापित किया है, इसका वर्णन एक पू जीवादी राजनीतिज्ञ ने सक्षेप मे इस प्रकार किया है· "पहले धर्म-प्रचारक आये, फिर सौदागर और अन्त मे तोपो से लैस युद्धपोतो ने कब्जा कर लिया।"

धर्म-प्रचारक ही, आम तौर पर, कुख्यात पू जीवादी सभ्यता के पहले दूत थे। वे देशी आबादी की "आत्मा को बचाने" के लिए आये थे। इसके तुरन्त बाद सौदागरो के गिरोह ने धावा बोल दिया। छल प्रपच और खुली लूट के जरिये वे शराब या सस्ते प्रसाधनो के बदले उपनिवेशो की विश्वासी जनता से बहुमूल्य पदार्थ—जैसे कीमती धातुए, हाथी दात से बनी चीजें, पशमीना, कपास और कॉफी आदि—ऐंठ लेते थे। कुछ समय बाद फौजें आ गयी और उन्होंने देश को एक नये शासक—पू जी—का गुलाम बना दिया।

नये शासको ने अधिकृत देशो की जनता पर भारी टैक्सो का बोझ लाद दिया। जहाजियो, सैनिको तथा हर प्रकार के महत्वाकाक्षियो ने आतशक (सिफलिस) तथा अन्य रोगो को आधी के वेग से उपनिवेशो मे फैला दिया। शराब ही एकमात्र ऐसा माल था जिसे उपनिवेशो की जनता के बीच दिल खोल कर बाटा गया। रोग और शराबखोरी पूरे जनगण के अध.पतन और तबाही का कारण बन गये। यही है उस "वरदान" का भव्य स्वरूप, जो पू जीवाद उपनिवेशो की जनता के लिए लाया।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक नीति

साम्राज्यवाद से पहले—यहा तक की पू जीवाद से भी पहले—उपनिवेश थे। लेकिन, पू जीवाद की इजारेदारी अवस्था मे उपनिवेशो का महत्व बहुत बढ गया।

प्रथम, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक नीति उपनिवेशो तथा अर्ध-उपनिवेशो की जनता को गुलामी मे जकडने वाले देशो मे इजारेदारियो के आधिपत्य से अभिन्न रूप से जुडी है। इजारेदारी शासन ने उपनिवेशो की भूमिका को बडे पैमाने पर बदल दिया। हर औद्योगिक देश की इजारेदारिया, विदेशी

प्रतियोगियो को घरेलू मडी से दूर रखती है। इन परिस्थितियों के कारण बिक्री-मडियो, कच्चे माल के स्रोतो और पूजी विनियोग के लाभकारी क्षेत्रों की आवश्यकता बढ़ती है। उपनिवेशो तथा पराधीन देशो का शोषण इजारेदारी अधिशेष मुनाफो का बहुत बडा स्रोत है।

द्वितीय, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक नीति पहले से ही विभाजित ससार के पुर्नविभाजन के लिए सघर्ष की नीति है। मुट्ठी भर साम्राज्यवादी देशों के हाथ मे औपनिवेशिक क्षेत्र का आधिपत्य रहता है। उपनिवेशो को प्राप्त करने का सघर्ष चरम विन्दु पर पहुच जाता है।

पहले विश्व युद्ध के आरम्भ होने के समय तक, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के अन्तर्गत, लेनिन की परिभाषा के अनुसार, मुट्ठी भर बडे राष्ट्र ससार की आबादी के लगभग १०० करोड इसानो को लूटते थे। उपनिवेशो के मालिक-देश, उन देशो के पूरे स्वामी बन गये थे जिनकी आबादी गुलाम बनाने वाले देशो की आबादी से कई गुना ज्यादा थी। दूसरे विश्व युद्ध से ठीक पहले ब्रिटेन की आबादी ४ करोड ७० लाख थी, जब कि उसके उपनिवेशो की आबादी ४८ करोड थी, फ्रास की आबादी ४ करोड २० लाख थी, जब कि उसके उपनिवेशो की आबादी ७ करोड थी, हॉलैंड की आबादी ९० लाख थी, जब कि उसके उपनिवेशो की आबादी लगभग ७ करोड थी, बेल्जियम की आबादी ८० लाख थी, जब कि उसके उपनिवेशो की आबादी १ करोड ४० लाख थी।

कुछ ब्रिटिश उपनिवेशो मे ब्रिटेन से ही भाग कर कुछ लोग आबाद हो गये थे। इन लोगो ने देशी आबादी को गुलाम बनाने के लिए क्रूर कृत्यो का सहारा लिया तथा उनके काफी बडे भाग को नेस्तनाबूद कर डाला। बाद मे ये उपनिवेश (कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड) खुद पूजीवादी देशो के रूप मे विकसित हुए, जो कमोवेश पैमाने पर ब्रिटेन और अमरीका पर निर्भर रहने लगे।

बहरहाल, एशिया और प्रशान्त सागर क्षेत्र, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के आम उपनिवेशो के पराधीन जनगण को साम्राज्यवाद ने निर्मम शोषण और क्रूर उत्पीडन की जजीरो से जकड दिया।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था ने पूरे महाद्वीपो के जनगण को आर्थिक व सास्कृतिक पिछडेपन का तथा मानवीय स्तर से भी नीचे का जीवन बिताने को मजबूर किया। उपनिवेशवादियो की लूट के परिणामस्वरूप भुखमरी का बोलबाला हुआ और पूरी की पूरी आबादी तबाह होने लगी। राष्ट्रीय उत्पीडन, नस्ली भेदभाव, जन-अधिकारो का अपहरण, महामारियो, अपराधो मे अभूतपूर्व वृद्धि, "फूट डालो और राज करो" के सिद्धात के आधार पर जनता मे फूट और वैमनस्य का बीजारोपण—ये ही हैं वे "लाभ" जो उपनिवेशवादियो ने औपनिवेशिक उत्पीडन की शिकार जनता को दिये हैं।

पूंजीवादी विश्व आर्थिक व्यवस्था

पूजीवाद ने अपने उदय के आरम्भ मे ही विश्व मडी की रचना की थी। पूजीवादी प्रतिष्ठानो द्वारा उत्पादित माल विश्व के दूर-दराज कोनो तक पहुच गये थे। पूजीवाद की इजारेदारी अवस्था मे विभिन्न देशो के बीच आर्थिक कडिया बहुत घनिष्ठ हो गयी। पूजीवाद के समस्त ससार मे विस्तार से पूजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था का उदय हुआ।

यह व्यवस्था आधिपत्य और पराधीनता के सम्बधो पर आधारित है। साम्राज्यवादी देशो ने मानव समाज के बृहद्तर भाग पर अपना शासन कायम कर लिया।

पूजीवाद के आर्थिक नियमो के परिणामस्वरूप पूजीपतियो के एक छोटे से समूह के हाथो मे सम्पदा केन्द्रित हो जाती है तथा मेहनतकश जनता के अधिकाधिक बडे भाग गरीबी के शिकार हो जाते हैं। ये ही नियम एक ओर योरप और उत्तरी अमरीका के मुट्ठी भर इजारेदारो तथा दूसरी ओर उनके द्वारा गुलाम बनाये गये देशो की कोटि-कोटि जनता के बीच की खाई को और गहरा बना रहे हैं।

पूंजीवाद के पक्षधर उन लाभो का सदा ढोल पीटते रहते हैं जिनके बारे मे कहा जाता है कि ये लाभ अत्यन्त विकसित पूजीवादी देशों ने पराधीन देशो के जनगण को प्रदान किये हैं। वे साम्राज्यवादी देशों और उपनिवेशों के सम्बधों को "सहयोग" के रूप मे चित्रित करते हैं। परन्तु, वास्तव मे यह "सहयोग" घुडसवार और घोडे के बीच का "सहयोग" है। उपनिवेशवादियो द्वारा गुलाम जनगण को लाभ पहुचाने की बात उतनी ही मनगढन्त और झूठी है, जितनी यह कि पूजीपति मजदूरो को लाभ पहुचाते हैं।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था राष्ट्रीय उत्पीडन और नस्ली भेदभाव के अभूतपूर्व रूप से उग्र होने के साथ अभिन्न रूप से जुडी है। साम्राज्यवादियो ने उपनिवेशो और अर्ध-उपनिवेशो मे ऐसी हुकूमतें कायम की, जिनमे स्वामी देशो से आये अफसरो, फौजियो, सौदागरो, धन के लोभियो तथा नाना प्रकार के दुस्साहसवादियो को "ऊची नस्ल" वालो के अधिकार प्रदान किये गये। ये लोग देशी आबादी के साथ अपनी मर्जी के मुताबिक जैसा चाहे वैसा बर्ताव कर सकते थे। अपनी इजारेदारी की अवस्था मे पूजीवाद राष्ट्रो का सबसे बडा उत्पीडक बन गया।

उपनिवेशो का शोषण—इजारेदारी अधिशेष मुनाफों का स्रोत

औपनिवेशिक शोषण साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था का स्तम्भ है। उपनिवेश ऐसे कुए बन गये, जिनमे से साम्राज्यवाद अपार सम्पदा खीचने लगा।

इजारेदारियों को औपनिवेशिक और गुलाम देशों से पूंजी विनियोग पर मुनाफों, रेल भाडो, बीमा कम्पनियों के मुनाफों तथा अन्य वित्तीय सौदों के रूप मे बेशुमार राज-कर प्राप्त होने लगा।

द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ होने से पहले, ब्रिटिश साम्राज्य ने १५ से लेकर १८ करोड पौंड तक की धनराशि सालाना राज-कर के रूप में भारत से वसूल की थी।

उपनिवेश ही इजारेदारियो की अत्यन्त विश्वसनीय एव लाभकारी मडिया थे।

पूजीवाद की स्वतत्र प्रतियोगिता वाली अवस्था के दौरान मालों की बिक्री बिना किसी बाधा के न केवल उपनिवेशों मे, बल्कि अन्य पूजीवादी देशों में भी होती थी। इजारेदारी प्रभुत्व के अन्तर्गत हर औद्योगिक देश की घरेलू मडी पर उसी देश की इजारेदारियो का अविभाज्य अधिकार स्थापित हो जाता है।

साथ ही, चूकि उत्पादन मे लगातार विस्तार होता रहता है और जनता की क्रय-शक्ति घरेलू-मडी मे बिक्री को सीमित करती रहती है, इसलिए विदेशो में विक्रय-मडियो की तलाश जरूरी हो जाती है। उपनिवेशो में भारी कस्टम ड्यूटिया (कर) लगा कर विदेशी प्रतियोगिता को असम्भव बना दिया जाता है और इस प्रकार इजारेदारिया बढी हुई कीमतो पर अपने मालों को बेचने मे सफल होती हैं।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत कच्चे माल की सप्लाई करने वाले स्रोतो के रूप मे उपनिवेशो का महत्व अत्यधिक बढ गया। पूजीवादी देश, कच्चे माल सम्बधी अनेक बुनियादी पदार्थ—जैसे लोहा-रहित धातुए, तेल, रबड, कपास, कॉफी, कहवा तथा अन्य—अधिकाशतः या अनिवार्यतः गैर-विकसित देशो से प्राप्त करते हैं।

असमान विनिमय व्यवस्था के अन्तर्गत उपनिवेशो का एक विशेष महत्व यह भी है कि वे इजारेदारियो के लिए अच्छी विक्रय-मडी एव कच्चे माल की पूर्ति करने वाले स्रोत बन जाते हैं। असमान विनिमय का अर्थ यह है कि एक पूजीवादी देश अन्य देशों (आम तौर पर उपनिवेशो या अर्ध-उपनिवेशों) के हाथो अपने मालो की बिक्री नियोजित ढग से बढी हुई कीमतो पर करता है तथा उन देशो से अत्यन्त सस्ते भाव पर मालो को खरीदता है।

असमान विनिमय उपनिवेशो एव पराधीन देशो का खून चूसने का साधन बन गया है। वह इजारेदारी अधिशेष मुनाफो के कमाने का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत पहले भी था और आज भी है। औपनिवेशिक व्यापार (कच्चे माल की खरीद और तैयार औद्योगिक माल की बिक्री) मे रत इजारेदारियो ने कई सौ

प्रतिशत के हिसाब से मुनाफा बटोरा। वे पूरे के पूरे देशो की शासक बन गयी और करोडो लोगो की जान माल के बारे मे फैसले करने लगी।

उपनिवेश पूजी विनियोग के लिए अत्यन्त विश्वसनीय क्षेत्र रहे हैं। उपनिवेशो मे इजारेदारियो के राजनीतिक एव आर्थिक प्रभुत्व से लगी पूजी पर भारी मुनाफे सुनिश्चित हो गये। औपनिवेशिक शासन ने पूजी विनियोग की पूर्ण तथा अविभाज्य इजारेदारी, सस्ते दर पर श्रमशक्ति की उपलब्धि और कच्चे माल की पक्की गारण्टी कर दी।

सस्ती दर पर श्रमशक्ति के उपलब्ध होने का अर्थ यह हुआ कि साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों व पराधीन देशो से लाखो की सख्या मे मजदूरो का आयात कर सकते थे और नाम मात्र की मजदूरी देकर उनसे कमरतोड मेहनत ले सकते थे।

साम्राज्यवादी देश अपने गुलाम देशो से नाना प्रकार के टैक्सो और एक्साइज ड्यूटियो के रूप मे भारी मुनाफे प्राप्त करते थे तथा इन देशों मे वहीं के जनगण के खर्चों पर सिविल अफसरो और पुलिस की भारी पल्टन को तैनात करते थे।

उपनिवेशवाद—विकासशील देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का कारण

साम्राज्यवाद ने उपनिवेशो और गुलाम देशो को कृषि प्रधान देशो तथा साम्राज्यवादी देशो के लिए कच्चा माल तैयार करने वाले स्रोतो के रूप मे ही कायम रखा। शासकीय इजारेदारियो ने उत्पादन की केवल उन्ही शाखाओ के विकास की इजाजत दी, जो कच्चे माल और खाद्य सामग्री की सप्लाई को सुनिश्चित करने वाली थी, मडी में बेची जाने वाली फसलो की खेती, खान उद्योग और उनकी प्रारम्भिक देख-भाल करने का काम भी उपनिवेशो के सिर्पुद किया गया।

परिणामस्वरूप उपनिवेशो तथा अर्ध-उपनिवेशो की अर्थव्यवस्थाओ का विकास एकांगी हो गया और उनका चरित्र पराधीन बन गया। अनेक पराधीन देशो की अर्थव्यवस्थाओ ने केवल एक या दो वस्तुओ के उत्पादन मे विशेष निपुणता प्राप्त की। ये वस्तुए थी : कपास, तेल, कॉफी, रबड, चीनी, आदि। और, इनका भी अधिकाश भाग निर्यात किया जाता था।

कृषि के एकागी विकास (एकफसली व्यवस्था) का नतीजा यह निकला कि ये सारे देश कच्चे माल की खरीद करने वाली इजारेदारियो पर पूर्ण रूप से आश्रित हो गये। अधिकाश उपनिवेशो तथा पराधीन देशों मे कृषि उत्पादन के लिए अत्यन्त अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितिया मौजूद थीं। किन्तु एकफसली अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप उन्हें अपनी जनता के लिए खाद्यान्नो तक का अन्य देशो से आयात करना पडता था।

अफ्रीका में समस्त ससार के कृषि क्षेत्र का १/५ हिस्सा कृषि के अन्तर्गत है। लेकिन ससार के कुल कृषि उत्पादन मे उसका भाग बहुत ही कम है—अर्थात, जौ मे ७ प्रतिशत, मक्का मे ४ प्रतिशत से कम, गेहू मे २ प्रतिशत, चावल मे १ ५ प्रतिशत से कम तथा जई मे तो ० ५ प्रतिशत ही।

अधिशेष मुनाफे कमाने की हवस के वशीभूत इजारेदारियो को रेलो का निर्माण करना पडा, खनिज पदार्थों को निकालने के उद्योग स्थापित करने पडे तथा कच्चे माल की प्रारम्भिक दुरुस्ती का काम भी शुरू करना पडा। परन्तु साम्राज्यवादी कुशासन के परिणामस्वरूप उपनिवेशो मे उत्पादक शक्तियों का विकास रुक गया। उसने उत्पीडित जनगण को उनके स्वतत्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियो से वचित कर दिया।

उपनिवेशो मे लगने वाली पूजी का इस्तेमाल उनकी आर्थिक गुलामी को और ज्यादा गहरा करने के लिए किया गया। प्रभुता सम्पन्न इजारेदारियो ने उपनिवेशो मे उत्पादन के साधनो के विकास को रोकने का भरसक प्रयास किया। उन्होने उपनिवेशो और पराधीन देशो को उत्पादन के साधनों के विकास की मद मे कर्जे देने से इन्कार किया तथा उनके हाथो आवश्यक साज सामान भी नही बेचा। साम्राज्यवादी देशो की गुलामी मे रहते हुए उपनिवेशों का औद्योगीकरण बिल्कुल ही असम्भव था।

आर्थिक दृष्टि से अविकसित लैटिन अमरीकी तथा अफ्रीकी देशो मे भारी उद्योगो का आम तौर पर नाम निशान तक नही है। एशिया व मध्यपूर्व के देशो में भी बहुत ही कम भारी उद्योग दिखायी पडते हैं। उन देशों मे जहा उद्योगो का विकास अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है—जैसे लैटिन अमरीका के देशो में—केवल खनिज पदार्थ निकालने व हल्के उद्योगो (कपास, चमडे की कमाई या खाद्य उद्योगो) का ही विकास हो रहा है।

अफ्रीका मे खनिज पदार्थों का असीमित भडार पाया जाता है। उसे न्यायोचित तौर पर ससार का महान भण्डारगृह कहा जा सकता है। अफ्रीका के विभिन्न देशो म पूजीवादी ससार के हीरो के कुल उत्पादन का ९६ प्रतिशत, कोबाल्ट के उत्पादन का ७१ प्रतिशत, सोने का ६० प्रतिशत, फास्फोराइट्स का ४२ प्रतिशत, ताबे का २४ प्रतिशत और मैंगनीज का २० प्रतिशत हिस्सा पैदा होता है। लेकिन इसके बावजूद, अफ्रीका की जनता को भीषण निर्धनता मे जीवन गुजारना पडता है, क्योंकि वह भयकर पिछडेपन की शिकार है।

अफ्रीका के सभी देशो की जनसख्या कुल मिला कर २० करोड से अधिक है। मगर वहा प्रति वर्ष केवल १२ लाख टन लोहा गलाया जाता है, जबकि दूसरी ओर बेल्जियम में—जहा कुल जनसख्या मात्र ८७ लाख है—प्रति वर्ष ५० लाख टन लोहा गलाया जाता है। यह मात्रा उन विकासशील देशों मे

तुलना करने पर कही अधिक है, जिनकी जनसख्या १०० करोड से ऊपर है। ब्रिटिश शासन-काल मे भारत मे इस्पात का इस्तेमाल प्रति व्यक्ति २ किलोग्राम वार्षिक था, जबकि इसके मुकाबले ब्रिटेन मे वह २२० किलोग्राम था।

कपडा उद्योग तक मे औपनिवेशिक तथा पराधीन देश अविकसित तथा पिछडी अवस्था मे रहते हैं। औपनिवेशिक काल मे भारत मे तकुओ की कुल सख्या ६७ लाख थी और ब्रिटेन में ४ करोड ११ लाख—जब कि ब्रिटेन की जन-सख्या भारत की जनसख्या की मात्र १/८ है, लैटिन अमरीका मे तकुओ की कुल सख्या ४४ लाख है और उत्तरी अमरीका में यह २८ करोड १० लाख है।

मेहनतकश जनता का औपनिवेशिक शोषण

साम्राज्यवाद द्वारा गुलाम बनाये गये देश औपनिवेशिक उत्पीडन के पूरे काल मे कृषि प्रधान देश ही बने रहते हैं। उन देशो की जनता के बहुत बडे भाग की जीविका का मुख्य आधार कृषि होती है और यह कृषि सामन्ती जजीरो से जकडी रहती है।

भूमि चन्द सामन्ती भूस्वामियो तथा महाजनो के हाथो मे केन्द्रित हो जाती है। इसके अतिरिक्त, बडे-बड़े भूखण्डों पर विदेशी इजारेदारियो का अधिकार भी कायम हो जाता है।

साम्राज्यवादियो ने अनेक उपनिवेशो और पराधीन देशो मे बागात की अर्थव्यवस्था का निर्माण किया। ये बागात बडे-बडे कृषि सस्थान होते है जिन पर उपनिवेशवादियो का स्वामित्व होता है और जिनमे कच्चे माल (कपास, रबड, जूट, सीजल, कॉफी, आदि) का उत्पादन होता है। ये कृषि सस्थान या बागात हर प्रकार के अधिकारो से वचित देशी जनता से लिये जाने वाले दास या अर्धदास श्रम पर आधारित होते हैं।

अत्यन्त घनी आबादी वाले पराधीन देशो मे खेती मे प्राय: छोटे-छोटे किसानी खेतो का बाहुल्य पाया जाता है। बडे-बडे भूस्वामी जमीन के छोटे टुकडो (खेतो) को अत्यन्त कठिन शर्तों पर किसानो को ठेके पर देते हैं। भूस्वामियो तथा महाजनो द्वारा उत्पीडित किसानो मे खेती के निहायत पिछडे हुए उपकरणो के प्रयोग की ही क्षमता होती है। इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति आखिरी हद तक निचुड जाती है। साम्राज्यवाद द्वारा गुलाम बनाये गये देशो की कृषि मे गिरावट की रुझान पैदा हो जाती है।

अपनी कमरतोड मेहनत के बल पर किसान जो थोडा-बहुत उत्पादन कर भी लेते हैं, उसका अधिकाश भाग शोषको, भूस्वामियो, महाजनो, थोक व्यापारियो और टैक्स कलेक्टरो आदि द्वारा हथिया लिया जाता है। वे किसानो के अधिशेष-श्रम द्वारा उत्पादित पदार्थों को ही नही, बल्कि आवश्यक श्रम द्वारा उत्पादित पदार्थों को भी हथिया लेते हैं। फलत. किसानो के पास अक्सर ऐसी

ही आमदनी बचती है जिससे उनको अर्धभुखमरी तक का जीवन बिताना मुश्किल हो जाता है।

औपनिवेशिक एव पराधीन देशो के उद्योगो मे भी शोषण के अर्ध-सामन्ती स्वरूपो का बोलबाला रहता है। मजदूर वर्ग के लिए उपनिवेशवाद का अर्थ है, राजनीतिक अधिकारो का पूर्ण अभाव और भयकर शोषण।

सस्ती मजदूरी एव औपनिवेशिक गुलामो से बिल्कुल मुफ्त ही काम लेने की प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि उपनिवेशो मे औद्योगिक प्रतिष्ठानों एव बागात का तकनीकी स्तर बहुत नीचा रहता है। टेक्नालॉजी के अत्यन्त नीचे स्तर के कारण इजारेदारियो ने मोटे मुनाफे अधिशेष मूल्य की अत्यन्त ऊंची दर पर आधारित होते हैं। बडे पैमाने पर व्याप्त बेरोजगारी और स्पष्ट रूप से श्रम की दासप्रथा का विस्तृत प्रचलन होने से, बुनियादी अधिकारो के लिए लडे जाने वाले मजदूरो के सघर्ष मे बाधा पडती थी।

उपनिवेशो मे काम का दिन १४, १६ या उससे भी अधिक घटो का होता था। सामाजिक कानून लेश मात्र भी नही थे। नियमत, फैक्टरियो और यातायात सस्थानो मे मजदूरो की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही थी।

उपनिवेशो के मजदूरो के वेतन भी जिन्दा रहने के स्तर से बहुत नीचे हैं। देशी मजदूरो को साम्राज्यवादी देशो के मजदूरो की अपेक्षा वेतन का केवल एक अश ही प्राप्त होता है, जब कि दोनो ही देशो के मजदूरो का काम समान होता है।

निर्धनता और भूख की जकड

आर्थिक विकास के निम्न स्तर तथा अत्यन्त भीषण शोषण के परिणामस्वरूप उपनिवेशो के जनगण को गरीबी और विनाश का शिकार होना पडा।

सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा प्रकाशित आकडो के अनुसार मानव जाति के दो-तिहाई भाग की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ४१ डालर तक पहुचती है। यह उप-निवेशो के मालिक देशो की प्रति व्यक्ति आय के केवल दसवें भाग तक होती है। करोडो लोग घोर गरीबी की जिन्दगी बिताते हैं और उन्हे किसी प्रकार की चिकित्सा सहायता तक नही मिल पाती। अमरीका मे प्रति ८०० व्यक्तियों पर, फ्रास मे ९०० व्यक्तियों पर, पश्चिम जर्मनी मे ७०० व्यक्तियो पर एक चिकित्सक की व्यवस्था है जबकि पुराने उपनिवेशो म प्रति ४०,००० से ७०,००० व्यक्तियो पर एक चिकित्सक उपलब्ध है।

औपनिवेशिक उत्पीडन का एक सबसे भयकर परिणाम शैशव काल में होने वाली मृत्यु की बडी ऊची मात्रा है। विकसित पूजीवादी देशो म प्रति १००० शिशुओ मे से २० से ३० तक की मृत्यु एक वर्ष की अवस्था से पहले ही हो जाती है, जब कि कुछ नवस्वतन्त्र देशों के लिए यह सख्या १००

से भी अधिक है। विकसित पूंजीवादी देशो मे औसत आयु ६३ से ७४ वर्ष तक है, परन्तु भूतपूर्व उपनिवेशो मे यह औसत ३५ से ४३ वर्ष तक ही है।

उपनिवेशो और पराधीन देशो मे करोडो लोग भुखमरी के शिकार होकर काल के गाल मे समा जाते हैं; करोडो को मजबूर होकर अर्धभुखमरी का जीवन बिताना पडता है। अफ्रीका मे देशी जनसख्या का ५७ प्रतिशत भाग १५ वर्ष की आयु से पहले ही मृत्यु का वरण कर लेता है। ब्राजील, अर्जेन्टाइना, चिली तथा दक्षिणी अमरीका के अन्य देशो मे लगभग ६ करोड इन्सान स्थायी तौर पर आवश्यकता से कम भोजन पर गुजारा करते हैं।

उत्पीडित जनगण का अपनी स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष

उपनिवेशो के जनगण विदेशी साम्राजियो के खिलाफ लम्बे अर्से से सघर्ष करते रहे हैं। उन्होंने अक्सर सशस्त्र विद्रोह भी किये हैं जिन्हे उपनिवेशवादियो ने अत्यन्त निर्ममता से कुचल दिया।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत उपनिवेशो तथा गुलाम देशो का मुक्ति सघर्ष एक अभूतपूर्व स्तर पर पहुच गया। लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवाद की एक बुनियादी विशेषता यह भी है कि वह अत्यन्त पिछडे हुए देशों में पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया को तेज कर देता है और इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पीडन के खिलाफ होने वाले सघर्ष को तीव्र बनाता है तथा विस्तारित करता है। उपनिवेशो मे होने वाला राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन मुट्ठी भर बडे पूंजीपति देशो के वित्तीय अल्पतत्रो द्वारा उत्पीडित ससार की अधिकाश जनसख्या को अपने साथ लेने मे सफल हो जाता है, और इस प्रकार यह आन्दोलन साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन का रूप धारण कर लेता है।

साम्राज्यवाद विकसित पूंजीवादी देशो के सर्वहारा वर्ग तथा उपनिवेशो के उत्पीडित जनगण का समान रूप से शत्रु है। इसका अर्थ यह है कि समाजवाद के लिए मजदूर वर्ग के सघर्ष तथा उपनिवेशो के जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को एक साम्राज्यवाद-विरोधी मिले-जुले समान सघर्ष मे शामिल किया जा सकता है—और शामिल किया जाना चाहिए।

उपनिवेशो मे लडा जाने वाला राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन तथा शोषण की पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ सर्वहारा वर्ग एव समस्त मेहनतकश जनता का सघर्ष, दोनों ही सामाजिक विकास के एक-जैसे नियमो पर आधारित हैं। उपनिवेशो एव पराधीन देशो के उत्पीडित जनगण का लगातार बढता हुआ राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन साम्राज्यवाद की बुनियादो को कमजोर करता है तथा उसके पराभव का रास्ता तैयार करता है।

औपनिवेशिक ससार के जनगण, जिनका साम्राज्यवादी देशो की इजारेदारियो द्वारा बडी निर्ममता से शोषण किया जाता है, अपनी आजादी और स्वाधीनता के लिए विदेशी उत्पीडन के खिलाफ हथियार उठा लेते हैं। उपनिवशो और पराधीन देशों मे लडा जाने वाला सघर्ष समस्त ससार मे पूजीवाद की स्थितियो को कमजोर करता है।

सोवियत सघ मे समाजवादी क्रान्ति की विजय से उपनिवेशों और पराधीन देशो के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को बहुत बल मिला। प्रथम विश्व युद्ध के, तथा विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के, परिणामस्वरूप उपनिवेशवादी देशो मे काफी कमजोरी पैदा हुई तथा इससे उपनिवेशो के जनगण के स्वाधीनता आन्दोलनो के लिए अनुकूल परिस्थितिया उत्पन्न हुई। समाजवादी विश्व व्यवस्था के उदय और विकास, समाजवादी देशो की बढती हुई शक्ति और प्रतिष्ठा तथा समाजवाद एव पूजीवाद के दरम्यान शक्ति-सतुलन मे होने वाले बुनियादी परिवर्तन ने साम्राज्यवाद द्वारा गुलाम बनाये जनगण को इतना समर्थ कर दिया है कि वे उपनिवेशवाद का हमेशा-हमेशा के लिए सफाया कर दें, अपनी आजादी तथा स्वाधीनता को प्राप्त कर सकें और विकास के गैर-पूजीवादी मार्ग पर अग्रसर हो सकें। इस प्रकार तेजी से आर्थिक और सामाजिक प्रगति करने की विशाल सम्भावनाए उनके सामने खुल गयी हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र ने वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक दृष्टि से अविकसित देशो के जनगण उपनिवेशवाद के समस्त अवशेषो के खिलाफ समझौताहीन एव दृढ निश्चयात्मक सघर्ष चला कर तथा राष्ट्रीय प्रभुसत्ता व उग्र सामाजिक-आर्थिक सुधारो की लडाई लड कर ही अपने ऊपर से निर्धनता, पिछडेपन और दासता के बोझ को उतार फेंक सकते हैं।

सामाजिक विकास के नियमो ने औपनिवेशिक व्यवस्था के, जो कि समस्त मानवजाति के लिए कलक बन गयी है, पूर्ण पराभव को अवश्यम्भावी बना दिया है। उपनिवेशवादियो द्वारा अपने आधिपत्य को हिंसा और धोखाधडी के नये हथकण्डो के जरिये कायम रखने के तमाम प्रयासो का असफल होना लाजमी है।

दोहराने के प्रश्न

१ साम्राज्यवाद के मुख्य आर्थिक लक्षण क्या हैं ?
२ आधुनिक पूजीवाद मे वित्तीय अल्पतत्र की भूमिका क्या है ?
३. साम्राज्यवादी विश्व प्रभुत्व के लिए सघर्ष क्यो करते हैं ?
४ राजनीतिक व आर्थिक स्वतत्रता के लिए होने वाले औपनिवेशिक और गुलाम देशों के सघर्ष का महत्व क्या है ?

अध्याय ८

इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान
पूंजीवाद का आम संकट

१. साम्राज्यवाद—पूंजीवाद की एक विशेष अवस्था

साम्राज्यवाद पूंजीवाद की एक विशेष अवस्था है। उसके तीन विशिष्ट लक्षण होते हैं। सर्वप्रथम तो साम्राज्यवाद इजारेदार पूंजीवाद है, द्वितीय, वह निकम्मा, अपाहिज और सडाध भरा पूंजीवाद है, और तीसरे, वह मरणोन्मुख पूंजीवाद है। साम्राज्यवाद समाजवादी क्रान्ति की पूर्वसध्या है। साधारणतः पूंजीवाद की हैसियत के तौर पर यह उसका ऐतिहासिक स्थान है।

इजारेदारी पूंजीवाद

इजारेदारियो के प्रभुत्व से उत्पादन के समाजीकरण मे विपुल वृद्धि होती है। हजारो लोग इजारेदारिय के प्रतिष्ठानो मे काम करते हैं। बहुत से प्रतिष्ठान आपस मे मिल कर एकाकार हो जाते हैं। विक्रय मडियो, कच्चे माल के स्रोतो, आविष्कारो तथा अन्य नये अनुसन्धानो पर उनका नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। बडे बैंकों का समाज के लगभग समस्त वित्तीय स्रोतो पर नियन्त्रण कायम हो जाता है।

उत्पादन के समाजीकरण की इस उच्च अवस्था से यह साबित होता है कि समाज के समाजवादी रूपान्तरण के लिए आवश्यक परिस्थितिया परिपक्व हो चुकी हैं। किन्तु उत्पादन के समाजीकरण की इस अपार प्रगति से फायदा मुट्ठी भर स्वार्थी इजारेदारो को ही होता है। उत्पादक शक्तियो मे होने वाले विपुल विस्तार का जनसाधारण को कोई प्रत्यक्ष लाभ नही होता। इसके विपरीत, उनका शोषण और भी तीव्र हो जाता है।

इस प्रकार, साम्राज्यवाद, इजारेदार पूंजीवाद होने के कारण, पूंजीवाद मे बुनियादी अन्तर्विरोध की—उत्पादन के सामाजिक चरित्र तथा उसके निजी पूंजीवादी अधिग्रहण के बीच उत्पन्न अन्तर्विरोध की—नयी अवस्था का प्रतीक होता है। इजारेदारियो द्वारा उत्पादन के समाजीकरण के साथ ही उनका आपस मे, प्रतियोगितात्मक, गलाकाट्ट सघर्ष भी तेज होता रहता है। उत्पादन के साधन जब तक पूंजीपतियो की सम्पत्ति बने रहेंगे, तब तक आपसी प्रति-

योगिता को समाप्त करने और उत्पादन को राष्ट्रीय स्तर पर सगठित करने के प्रयासों का असफल रहना अवश्यम्भावी है।

साम्राज्यवाद और टेक्नालॉजीकल प्रगति

इजारेदारी प्रभुत्व के फलस्वरूप टेक्नालॉजीकल प्रगति मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा टेक्नालॉजी के क्षेत्र मे ठहराव आ जाता है। चूंकि इजारेदार अपने उत्पादेय पदार्थों के मनमाने मूल्य निश्चित करने मे समर्थ रहते है और उन्हे अपनी चालबाजी से काफी ऊचे स्तर पर बनाये रहते हैं, इसलिए वे हमेशा ही टेक्नालॉजीकल आविष्कारो की प्रगति मे दिलचस्पी नही रखते।

परन्तु इजारेदारो द्वारा टेक्नालॉजीकल प्रगति को धीमा रखने की प्रवृत्ति का टकराव एक विरोधी प्रवृत्ति—टेक्नालॉजीकल अनुसधानो के प्रयोग—से हो जाता है। इस सघर्ष मे कभी एक, तो कभी दूसरी प्रवृत्ति हावी रहती है। कुल मिला कर, पू जीवाद का विकास पहले की अपेक्षा तेजी से होता है, परन्तु यह विकास अत्यन्त असमान रूप से होता है। इस विकास के साथ कुछ देशो मे तथा कुछ उद्योगो मे ठहराव और गिरावट की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। इन प्रवृत्तियो के बीच होने वाला यह सघर्ष सम्पूर्ण पू जीवाद की इजारेदारी अवस्था की विशेषता है। किन्तु इसके बावजूद, इजारेदार पू जीवाद के विकास की विभिन्न मजिलो मे इसके रूप भी भिन्न भिन्न होते हैं।

टेक्नालॉजीकल ठहराव की प्रवृत्ति विशेष रूप से इजारेदारी पूजीवाद की पहली अवस्था मे दिखायी देती है। उस समय इजारेदारी पूर्व के स्वरूपो का बाहुल्य होता है। टेक्नालॉजीकल तौर पर कम लैस गैर-इजारेदार प्रतिष्ठानो के खिलाफ सघर्ष मे इजारेदारिया प्राय टेक्नालॉजीकल प्रगति को रोक देती हैं, ताकि पिछडी हुई साज सज्जा मे लगी पूजी की विपुल रकमो के घाटे को रोका जा सके।

वर्तमान अवस्था में, जब इजारेदारियो का शिकजा अर्थव्यवस्था पर पूरी तरह मजबूत हो गया है, तो स्थिति में भारी परिवर्तन आया है। अब सघर्ष भीमकाय इजारेदारियों के बीच है। ये, स्वाभाविक तौर पर, अपने इस सघर्ष मे टेक्नालॉजीकल प्रगति जैसे प्रबल हथियार के इस्तेमाल से गाफिल नही रहती। वैज्ञानिक टेक्नालॉजीकल क्रान्ति से वे उत्पादन मे सुधार करती हैं ताकि अपने प्रतियोगियों से पीछे न रह जायें। टेक्नालॉजीकल विकास की वर्तमान दर के कारण, पिछडेपन का अर्थ भारी रकमो का विनाश होगा। पूजीवादी देशा में होने वाला बडे पैमाने का अनुसधान इसके लिए जिम्मेदार है।

इस अनुसधान पर होने वाले अधिकाश खर्च की सरकार की ओर से पूर्ति की जाती है जब कि उसके फल इजारेदारियों की सम्पत्ति बन जाते हैं। अनुसधान की प्रगति अमरीका मे बडी तेज गति से हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध की

समाप्ति के समय अमरीका मे इस अनुसधान कार्यक्रम पर २०० करोड डालरो से कम खर्च होते थे, जिसका ४४ प्रतिशत अश सरकार की ओर से दिया जाता था। १९६२-६३ तक यह खर्च बढ कर १,६०० करोड डालरो तक पहुच गया, तथा सरकारी अशदान की मात्रा ६४ प्रतिशत हो गयी।

विश्व पूजीवादी मडी मे होने वाली प्रतियोगिता और सघर्ष, उत्पादन के टेक्नालॉजीकल स्तर को ऊचा उठाने मे एक महत्वपूर्ण प्रेरक का काम करते है। विदेशी मडियो को हस्तगत करने के लिए होने वाले सघर्ष की तीव्रता के फलस्वरूप इजारेदारिया अधिकाधिक प्रयास करती हैं कि वे अपने प्रतियोगियो से पीछे न रह जायें, और, यदि सम्भव हो तो, उनसे आगे निकल जायें।

दुनिया मे एक नयी परिस्थिति पैदा हुई है जिसमे पूजीवादी देशो को आर्थिक क्षेत्र मे समाजवादी व्यवस्था का मुकाबला करने को बाध्य होना पड रहा है। यह परिस्थिति भी टेक्नालॉजीकल क्षेत्र की प्रगति में बडी भूमिका अदा करती है। इस मुकाबले के लिए लाभकारी वृद्धि दरें अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। इजारेदारी पूजी के शासक और उनके हितो की सेवा करने वाली सरकारें ऊची वृद्धि दरें प्राप्त करने मे कोई कसर नही उठा रखते। यदि हमे उस ठोस स्थिति के बारे मे समझदारी प्राप्त करनी है जिसमे आधुनिक पूजीवाद के अन्तर्गत टेक्नालॉजीकल प्रगति से सम्बधित दोनो प्रवत्तियो के बीच सघर्ष हो रहा है, तो हमे विश्व की समाजवादी व्यवस्था को अवश्य ही ध्यान मे रखना होगा।

अपने अधिकारो और आर्थिक हितो की पूर्ति के लिए मजदूर वर्ग द्वारा किये जाने वाले सघर्ष की गहनता भी इन दोनो प्रवत्तियो के मार्ग को प्रभावित करती है। अपनी स्थिति मे सुधार लाने के लिए मजदूर वर्ग जो लडाई चलाता है, उससे टेक्नालॉजीकल सुधार लागू करने मे प्रोत्साहन मिलता है। वेतन की दरें जब कम होती हैं, तो पूजीपतियों को टेक्नालॉजीकल सुधार करने मे दिलचस्पी नही होती। मगर जब वेतन की दरें ऊची उठ जाती हैं, तो पूजीपति लोग मानव श्रम को बचाने के लिए नये-नये उपकरण लगाने को उद्यत हो जाते हैं। इससे साबित होता है कि आर्थिक हितो की पूर्ति के लिए चलाया जाने वाला मजदूर वर्ग का सघर्ष, टेक्नालॉजीकल प्रगति को रोकने के बजाय, जैसा कि उसके दुश्मनो का आरोप रहता है, उत्पादक शक्तियो की वृद्धि मे सहायक होता है।

पूजीवाद का अपाहिजपन और उसका ह्रास

साम्राज्यवाद दूसरे लोगों पर आश्रित अपाहिज या ढहता हुआ पूजीवाद है। उसका अवसान और पतन उस पकके फल की भाति होना है, जिसे पकने के बाद पेड से तोडा न गया हो।

पूंजीवाद के बढ़ने से नगर तथा ग्रामीण अंचल की मेहनतकश जनता को अवर्णनीय विपत्तियों का शिकार होना पड़ता है। पूंजीवाद का बर्ताव समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति—मानव श्रमशक्ति—की ओर लूटपाट का हो जाता है। सर्वहारा वर्ग का शोषण तीव्र हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मेहनतकश जनता की असुरक्षा और भी बढ़ जाती है।

अपाहिजपन के साथ-साथ पूंजीवाद का अवसान भी बढ़ता रहता है। किरायाखोरों—सिक्योरिटियों से प्राप्य आमदनी के सहारे निकम्मों जैसा जीवन बिताने वाले लोगों—की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। ये लोग शेयरों, राजकीय कर्ज के बॉन्डों, आदि, के मालिक होते हैं और उनके कूपनों को तराशते रहना ही उनका एकमात्र काम होता है। पूंजीपति वर्ग का अधिकांश भाग उत्पादन की प्रक्रिया से स्वयं को अलग कर लेता है। प्रतिष्ठानों का प्रबंध भाड़े पर नियुक्त अधिकारियों के हाथों में चला जाता है।

केवल बहुत सारे लोगों ने ही काहिली और निकम्मेपन को अपना पेशा नहीं बना लिया है, बल्कि पूरे के पूरे देश किरायाखोर बन गये हैं। अपनी सम्पत्ति का एक बड़ा अंश विदेशों में लगा कर वे पूंजीवादी संसार के वित्तीय शोषण के केन्द्र बन जाते हैं—पूंजी के निर्यात द्वारा उन्हें विदेशों से समुचित राज-कर की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है।

जनता के श्रम और उस श्रम से प्राप्त फलों का अन-उत्पादनकारी उपभोग भी बढ़ता जाता है। सम्पत्तिशाली वर्गों की निजी सेवाओं में रत शाखाओं और लोगों की संख्या भी बढ़ती जाती है। पूरे के पूरे देश—जैसे स्विट्ज़रलैंड तथा कुछ अन्य बड़े क्षेत्र (फ्रांस का दक्षिणी भाग, इटली, ऑस्ट्रिया तथा आंशिक रूप से ब्रिटेन)—ऐसे स्थल बन गये हैं, जहां अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग अपनी बिना-कमाई दौलत पानी की तरह बहाता है और ऐय्याशी करता है।

पूंजीवादी देशों में सैन्यवाद भी भयानक रफ्तार से बढ़ता रहता है और जनता की आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा निगलता रहता है। सभी साम्राज्यवादी देश हथियारों की होड़ में हिस्सा लेते हैं। आक्रामक युद्धों की तैयारी में विपुल मात्रा में धन स्वाहा हो जाता है।

राजकीय इजारेदार पूंजीवाद

पूंजीवाद के मुख्य अन्तर्विरोध के तीव्र हो जाने से पूंजीवादी राजसत्ता की, वित्तीय अल्पतंत्र के हितों की रक्षा तथा इजारेदार पूंजी को राजकीय-इजारेदार पूंजी में परिवर्तित करने में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में, अधिकाधिक दखलन्दाजी बढ़ जाती है।

लेनिन ने नोट किया था कि पहले विश्व युद्ध व उसके परिणामस्वरूप जो

असतुलन पैदा हुआ, उसने सभी देशो को बाध्य कर दिया कि वे इजारेदार पू जी की अवस्था से राजकीय इजारेदार पू जी की अवस्था मे सतरित हो जायें।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद, दो विश्व युद्धो के बीच के काल मे, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद भी—राजकीय इजारेदार पू जीवाद की वृद्धि का क्रम जारी रहा।

युद्ध या सकटो के जमाने मे सरकार इजारेदारियो की सहायता उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए करती है, जिनको वे स्वय अपने ही बलबूते पर दूर नही कर सकती हैं। युद्ध-काल मे सरकार ऐसे प्रतिष्ठानो की स्थापना करती है, जिन्हे इजारेदार लोग पर्याप्त मुनाफा देने वाला नहीं समझते। अक्सर ऐसा भी होता है कि बाद मे उन्ही प्रतिष्ठानो को निजी इजारेदारो के हाथ मिट्टी के मोल बच दिया जाता है। सकटो के दौरान इजारेदारियो को विनाश से बचाने के लिए राज्य की ओर से, कर्जों और प्रत्यक्ष सहायता के रूप मे मदद दी जाती है।

पूजीवादी राज्य पू जीवादी इजारेदारो के हित मे कुछ प्रतिष्ठानो का, या उद्योगो की कुछ शाखाओं का, राष्ट्रीयकरण कर लेता है। अनेक मामलो मे तो राज्य की ओर से इजारेदारो के बहुत से निष्क्रिय और बेमुनाफा प्रतिष्ठानो को खरीद लिया जाता है और उनको पुनः लैस करने के लिए भारी रकमे खर्च की जाती है। इस प्रकार, निजी इजारेदारियो के साथ ही साथ, राजकीय-इजारेदारियों का उदय होता है।

राजकीय और निजी इजारेदारिया एक मे मिल जाती हैं। राजकीय इजारेदारियो का क्रियाकलाप निजी इजारेदारियो के हितो के मातहत होता है। राजकीय इजारेदारिया निजी इजारेदारियो को—कम कीमत पर—विद्युत, ईंधन तथा धातुओ की सप्लाई करती हैं। राजकीय रेलें निजी इजारेदारियों का माल कम किराये पर ढोती है। इन घाटो की पूर्ति, जनता पर टैक्सो का बोझ बढा कर की जाती है।

पूजीवादी राज्य कुछ कदम उठा कर इजारेदारियो के हितो मे अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित करता है कच्चे माल और ईंधन का बटवारा करता है, श्रमशक्ति सुलभ बनाता है तथा उत्पादन कार्यो के लिए कर्जों और सहायता की व्यवस्था करता है। आम तौर पर, नियन्त्रण करने वाली ये सस्थाए, पूर्ण रूप से इजारेदारो और उनके प्रतिनिधियो के हाथो मे होती है। राज्य की ओर से बडी-बडी इजारेदारियो को अत्यन्त लाभदायक आर्डर दिए जाते हैं। युद्ध काल मे तथा युद्ध की तैयारियो के जमाने मे, हथियारो के आर्डर विशेष रूप से लाभदायक होते हैं।

इजारेदार पू जीवाद जब राजकीय इजारेदार पूजीवाद का रूप लेता है तो आम जनता के जीवन पर वित्तीय पूजी का उत्पीटक शिकजा और उसका शासन ज्यादा मजबूत हो जाता है। हात्री इजारेदार पूजी और राज्य की प्रशासकीय मशीन एक दूसरे से अधिकाधिक जुडते जाते हैं। राज्य, इजारेदार पूजीपति वर्ग के कारोवार का प्रवन्ध करने वाली एक समिति का रूप ले लेता है। यह राज्य मुट्ठी भर इजारेदारो के अधिनायकत्व का प्रशासन चलाता है और इजारेदार राजसत्ता और उसके शासन यन्त्र का इस्तेमाल यह पूजीवादी व्यवस्था को कायम रखने अपने लिए अधिशेष मुनाफे कमाने, मडियो पर अधिकार जमाने एव दुनिया का पुर्नवितरण करने के लिए करता है।

राजकीय इजारेदार पूजीवाद, इजारेदारियो की शक्ति और राज्य की शक्ति को एकताबद्ध करके एक ही सूत्र मे बाध देता है जिसका उद्देश्य यह होता है कि इजारेदारियो को और अधिक अमीर वनाया जाय, मजदूरो के आन्दोलन तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलनो का दमन किया जाय, पूजीवादी व्यवस्था की रक्षा की जाय तथा आक्रामक युद्धो का सूत्रपात किया जाय।

राजकीय इजारेदार पू जी की जन-विरोधी प्रकृति

इजारेदारियो के दावेदार दावा करते हैं कि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे पू जीवादी राजसत्ता के हस्तक्षेप से पूजीवाद के अर्न्तविरोधो को हल करने मे सहायता मिलती है। पूजीपति वर्ग के सुधारवादी दलाल राजकीय इजारेदार पू जी को एक नयी सामाजिक व्यवस्था के रूप मे चित्रित करने का प्रयास करते हैं, जो पू जीवादी बुराइयो और दुर्गुणो से बिल्कुल मुक्त हो। वे इसे समाजवाद का नाम देने की कुचेष्टा भी करते हैं। वे पूरे जोर-शोर से एलान करते हैं कि पू जीवाद ने अपना स्वभाव वदल लिया है और अब वह "नियोजित", 'नियन्त्रित', "जनसेवी" पू जीवाद वन गया है।

इस प्रकार के दावो का असलियत से कोई वास्ता नही है। राजकीय इजारेदार पू जी से, पू जीवादी व्यवस्था का स्वभाव नही वदल जाता। इस अवस्था मे भी मजदूर वर्ग एव विशाल मेहनतकश जनता के शोषण के आधार पर मुनाफे हासिल करना उत्पादन का उद्देश्य वना रहता है। मजदूरो और पू जीपतियो के बीच तथा राष्ट्र के बहुमत व इजारेदारो के बीच खाई और गहरी हो जानी है। आपसी प्रतियोगिता तेज हो जाती है तथा उत्पादन की अराजकता और ज्यादा वढ जानी है। परिणामस्वरूप, सम्पूर्ण पू जीवादी व्यवस्था की सामान्य अराजकता और विघटन तेज हो जाते हैं।

आर्थिक सकटो का खतरा टालने के प्रयास मे पू जीवादी राज्य, अर्थव्यवस्था को वनावटी जीवन प्रदान करने के लिए, मोटी रकमे खर्च करता है। ये मोटी रकमे सरकारी खजाने से चल कर इजारदारो की तिजारियो मे पहुच जाती

हैं, मगर इनकी वसूलयाबी आम जनता से की जाती है। इससे जनता मे प्रभावी माग घट जाती है। सैन्य सम्बधी मालो के उत्पादन के विस्तार से शान्ति-पूर्ण उद्देश्यो के लिए किये जाने वाले उत्पादन की मात्रा घट जाती है।

तथ्यो ने "जनसेवी" पूजीवाद नामक आविष्कार का पर्दाफाश कर दिया है। इजारेदारियो के पक्षधर तथा उनके सुधारवादी दलाल दावा करते हैं कि पूजीवादी समाज मे राज्य की भूमिका वर्गो से ऊपर, या वर्गों से बिल्कुल अलग होती है, और वह जनता के हितो की रक्षा करता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि पूजीवादी राजसत्ता पूर्ण रूप से वित्तीय अल्पतत्र के हितों की सेवा करती है। घरेलू तथा वैदेशिक—दोनो ही—नीतियो के क्षेत्र मे वह शासक इजारेदार समूहो की इच्छाओ की पूर्ति करती है।

इस प्रकार, राजकीय इजारेदार पूजीवाद के विकास से पूजीवादी समाज के अन्तर्विरोध और टकराव कम होने के बजाय और ज्यादा बढ जाते हैं। पूजीपति वर्ग को आशा होती है कि वह पूजीवाद को सुदृढ बनायेगा, मगर उसकी यह आशा पूरी होना तो दूर रहा, पूजीवाद की आधारशिला की कुछ ईंटें इसके विकास से और भी खिसक जाती है।

समाजवाद का भौतिकवादी अमल

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे पूजीवादी राज्य के हस्तक्षेप से इजारेदारियो को विपुल मुनाफे प्राप्त हो जाते हैं। इसी के साथ-साथ, उत्पादन का समाजीकरण और ज्यादा बढ जाता है।

राजकीय इजारेदार पूजीवाद, पूजीवाद के अन्तर्गत—जबकि उत्पादन के साधन निजी मिल्कियत मे बने रहते है—उत्पादन के समाजीकरण की चरम अवस्था होता है। इस अर्थ मे लेनिन ने राजकीय-इजारेदार पूजीवाद को समाजवाद के लिए सम्पूर्ण भौतिक तैयारी की अवस्था, या उसके आगमन का समय, माना था।

परन्तु, घटनाओ ने यह दिखाया है कि पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण के लिए केवल भौतिक पूर्व आवश्यकताओ का उत्पन्न हो जाना ही पर्याप्त नही है। भौतिक पूर्व-आवश्यकताओं की मौजूदगी से जाहिर होता है कि समाजवादी क्रान्ति को पूरा किया जा सकता है और उसे शीघ्रता से पूरा किया जाना चाहिए। इन परिस्थितियो मे, इजारेदारी सत्ता को तोडने, उसका प्रभुत्व समाप्त करने एव समाजवाद की स्थापना करने के सघर्ष मे जनता की राजनीतिक चेतना और सगठन को बढाने का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

अलग-अलग प्रतिष्ठानो, या उद्योग की कुछ पूरी-की पूरी शाखाओ का पूंजीवादी राजसत्ता के हाथो मे सन्तरण—पूजीवादी राष्ट्रीयकरण—समाजवादी कदम नही होता है, क्योकि सामाजिक स्तर पर उत्पादन के साधन पूजी-

पतियो की सम्पत्ति बने रहते हैं। राजकीय प्रतिष्ठानो की ही भाति, निजी प्रतिष्ठानो मे भी पू जीपतियो द्वारा मजदूरो का शोषण जारी रहता है। लेकिन कुछ परिस्थितियो के अन्तर्गत, मजदूर वर्ग पूजीवादी राष्ट्रीयकरण का इस्तेमाल मनमाने इजारेदारी प्रभुत्व के खिलाफ सघर्ष मे एक हथियार के रूप मे कर सकता है। यही कारण है कि पूजीपति वर्ग प्रायः ही राष्ट्रीयकरण का विरोध करता है तथा मजदूर वर्ग उसका समर्थन करता है।

मजदूर वर्ग कारखानो और बैंको के राष्ट्रीयकरण की माग करते हुए यह चाहता है कि इन राष्ट्रीकृत प्रतिष्ठानो का प्रबध जनता के सच्चे प्रतिनिधियो के हाथो मे सौंपा जाय। इस प्रकार, इजारेदारी शिकजे के खिलाफ अपने प्रहार मे मजदूर वर्ग शोषक इजारेदारो को आम जनता से अलग-थलग करने और मेहनतकश जनता के विशाल हिस्सो को गोलबन्द करने का प्रयास करता है।

आर्थिक कार्यक्रम और नियोजन

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे पूजीवादी राज्य का हस्तक्षेप द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ज्यादा तेज हो गया तथा राजकीय-इजारेदार आर्थिक व्यवस्था का—विशेष रूप से सातवें दशक के आरम्भिक वर्षों मे—बडे पैमाने पर विस्तार हुआ। अनेक देशो मे (फ्रास, इटली, नीदरलैण्ड, जापान तथा कुछ अन्य देशो मे) इजारेदार पूजी के शीर्षस्थ गुटो के हितो का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकारी सस्थाए, कई वर्षों के लिए आर्थिक कार्यक्रम या योजनाए बनाने लगी। इन कार्यक्रमो का उद्देश्य यह होता है कि आर्थिक विकास की एक निश्चित दर प्राप्त की जाय, दुनिया की मडी मे चल रही प्रतियोगिता की लडाई मे राष्ट्रीय इजारेदारियो की स्थिति को मजबूत बनाया जाय, अर्थव्यवस्था का और अधिक केन्द्रीकरण व इजारेदारीकरण किया जाय तथा सबसे ज्यादा मुनाफा देने वाली शाखाओ का विस्तार करके देश के आर्थिक ढाचे मे सुधार किया जाय।

आर्थिक कार्यक्रमो और नियोजन द्वारा इजारेदार पूजीपति वर्ग पूंजीवादी उत्पादन के स्वत.स्फूर्त चक्र को प्रभावित करना चाहता है ताकि पूजीवाद के आर्थिक नियमो का वह अपने आर्थिक व राजनीतिक हितो की पूर्ति के लिए इस्तेमाल कर सके। इजारेदारो को आशा होती है कि उनके आर्थिक कार्यक्रमो और नियोजन से पूजीवादी आर्थिक तत्र मे सुधार हो जायगा, सामाजिक सघर्ष की तीव्रता घट जायेगी, और आधुनिक वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्रान्ति से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयां दूर हो जायेंगी। शीर्षस्थ पूंजीवादी गुट समझते हैं कि उनके आर्थिक कार्यक्रम और नियोजन आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद से मुकाबला करने मे प्रभावकारी साधन बन सकते हैं।

आर्थिक कार्यक्रमों और नियोजन का उदय इसलिए हुआ क्योंकि राजकीय इजारेदार पूजीवाद के विकास से पूजीवादी राज्य के हाथो मे ऐसे साधन

आ गये जिनकी सहायता से वह देश के आर्थिक जीवन पर गम्भीर प्रभाव डाल सकता था। ये साधन प्रतिष्ठानो या उद्योग की सम्पूर्ण शाखाओ के राष्ट्रीयकरण,- राजकीय बजटो के विस्तार—जो अनेक देशो मे कुल राष्ट्रीय आय के २५ से ३३ प्रतिशत तक पहुचता था—कर-नीति एव ऋण व्यवस्था के रूप मे सुलभ थे। अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण तथा हथियारो के लिए होड—राजकीय इजारेदार पूजीवाद को मजबूत बनाने के ये अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है।

इसके बावजूद यह एक अकाट्य तथ्य है कि पूजीवाद के अन्तर्गत, जिसमे उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व की प्रधानता होती है, किसी प्रकार का वास्तविक आर्थिक नियोजन किया ही नही जा सकता। पूजीवादी सरकारो द्वारा निर्धारित एव सचालित आर्थिक कार्यक्रम और नियोजन, पुनरुत्पादन के चक्र को प्रभावित तो अवश्य करते हैं, मगर स्वत स्फूर्त ढग से लागू होने वाले उसके नियमो को ये समाप्त नही कर सकते। कार्यक्रमो और योजनाओ द्वारा निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति केवल सीमित पैमाने पर ही हो पाती है, कभी-कभी तो पूजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया कार्यक्रमो का सर्वनाश तक कर देती है।

इसके बावजूद, यह वास्तविकता कि आर्थिक कार्यक्रम और नियोजन की शुरूआत कर दी जाती है, साबित करती है कि आधुनिक पूजीवाद, समाजवादी पुनर्गठन के लिए बिल्कुल तैयार हो चुका है और समाजवादी क्रान्ति के लिए भौतिक पूर्व-आवश्यकताए परिपक्व हो गयी हैं। मजदूर वर्ग और उसके हिरावल दस्ते—मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टिया—मुट्ठी भर वित्तीय अल्पतत्र द्वारा चलाये जाने वाले तथा उन्ही के हितो की रक्षा के लिए चलाये जाने वाले, आर्थिक नियोजन का विकल्प पेश करते हैं। इस विकल्प से इजारेदारियो की सर्वशक्तिमत्ता को तोडने, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्थाओ का जनवादी-करण करने, राज्य द्वारा जनता के महत्वपूर्ण हितो की पूर्ति हेतु अर्थव्यवस्था का नियंत्रण करने का रास्ता साफ होता है।

यह जनवादी विकल्प ऐसी मागो और ऐसे कदमो को लेकर चलता है जिनसे मजदूर वर्ग और उसके सहयोगियो की शक्ति और क्रियाशीलता को सगठित करके इजारेदारी आधिपत्य के खिलाफ सुनिश्चित सघर्ष चलाया जा सके। इस आर्थिक विकल्प का उद्देश्य यह होता है कि मजदूर वर्ग की राज-नीतिक भूमिका और प्रभाव को बढाया जाय तथा आर्थिक कार्यक्रमो को सामाजिक प्रगति के महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने के साधन के रूप मे बदला जाय, समाज के केवल राजनीतिक ढाचे का ही नही बल्कि सामाजिक ढाचे का भी जनवादीकरण किया जाय, इजारेदार पूजी की ताकत को सीमित किया जाय, राजकीय क्षेत्र के उद्योगो के प्रबन्ध का जनवादीकरण किया जाय एव मजदूर वर्ग व समस्त मेहनतकश जनता के वैध हितो की पूर्ति की जाय।

राजनीतिक प्रतिक्रियावाद का गहरा होना

इस तथ्य से कि सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र मे प्रतिक्रियावाद का बोलबाला है, पूजीवाद का अपाहिजपन और उसका अध पतन पूरे तौर पर उजागर हो जाता है। पूजीवादी जनतंत्र के साथ स्वतंत्र प्रतियोगिता का तालमेल बैठता था, किन्तु इजारदारियों के अभ्युदय से—पूर्ण रूप से तथा हर क्षेत्र म—प्रतिक्रियावाद का बोलबाला हो जाता है। वित्तीय पूजी अपना अबाध आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करती है।

पूजीपति वर्ग आम जनता को उन सीमित पूजीवादी जनवादी अधिकारों और स्वतंत्रताओ से वचित करने का प्रयास करता है, जिन्हें उसने कई पीढियो के कठिन सघर्षों के बाद हासिल किया है। अपने शासन के असली स्वरूप को ढकने के लिए पूजीपति वर्ग स्वतंत्रता और समानता का नारा तो लगाता है, किन्तु स्वय अपने बनाये नियमो को पैरो तले रौदता भी रहता है। इजारेदार पूजी की राज्य मशीन जनता के मताधिकार को सीमित करती है, चुनावो मे जालसाजी करके उसको झुठलाती है तथा मजदूरो के सगठनो का दमन करती है। इजारेदारियो के सरगना लोग गुण्डो और लफंगो के गिरोहो को भाडे पर नौकर रखते हैं और मजदूर आदोलन के कार्यकर्ताओ तथा हडताल के नेताओ के खिलाफ गुण्डागर्दी करने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं।

पूजीपति वर्ग की प्रतिक्रियावादी नीति के गहरा होने पर, मजदूर वर्ग के नेतृत्व मे जनता का प्रतिरोध भी उग्र हो जाता है। लेनिन ने कहा था कि इसके परिणामस्वरूप एक ओर समाजवाद, जो जनतंत्र का गला घोटता है, तथा दूसरी ओर आम जनता, जो जनतंत्र के लिए आवाज उठाती है—के बीच सघर्ष और तीव्र हो जाता है।

साम्राज्यवाद की एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ऐसे मुट्ठी भर धनी साम्राज्यवादी देशो का उदय होता है, जो उपनिवेशो और कमजोर राष्ट्रो को लूट-लूट कर मुनाफे बटोरते है। उपनिवेशो तथा पराधीन देशो की इस लूट-खसोट के परिणामस्वरूप एक ओर लूट से फायदा उठाने वाले देशो मे क्रान्तिकारी आन्दोलनो का उभार किसी हद तक जहा कमजोर हो जाता है—क्योकि इन देशो का पूजीपति वर्ग अपनी लूट के सामान का एक भाग आम जनता के बीच भी वितरित करता है—वहा लूट के शिकार तथा साम्राज्यवादियो द्वारा गला घोंटे जाने की आशका से त्रस्त देशो म क्रान्तिकारी आन्दोलनो का जोर बढता जाता है। १९१७ मे रूस मे बिल्कुल यही स्थिति थी।

मरणोन्मुख पूजीवाद

साम्राज्यवाद मरणोन्मुख पूजीवाद है। यह पूजीवाद की अतिम अवस्था है, जब पूजीवादी

व्यवस्था का शीराजा—स्वय उसके अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधो के परिणाम-स्वरूप—बिखरने लगता है।

इजारेदारी आधिपत्य का नतीजा यह होता है कि मेहनतकश जनता के विशाल भाग अपने को अधिकाधिक असुरक्षित पाते हैं। शोषण का शिकजा ज्यादा मजबूत हो जाने से मजदूर वर्ग मे अत्यधिक रोष बढ जाता है और पू जीवादी दासता को नष्ट करने का उसका निश्चय और भी दृढ हो जाता है। साम्राज्यवादी देशो के इजारेदारो द्वारा शोषित औपनिवेशिक देशो के जनगण, विदेशी शासन के खिलाफ उठ खडे होते हैं और अपनी स्वतन्त्रता एव स्वाधीनता के लिए सघर्ष शुरू कर देते है। बिक्री की मडियो, पू जी के लाभदायक विनियोग क्षेत्रो तथा कच्चे माल के लिए, अर्थात ससार पर अधिकार कायम करने के लिए, साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच सघर्ष भयानक रूप धारण कर लेता है।

साम्राज्यवाद की—मरणोन्मुख पू जीवाद की—एक बडी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत उत्पादक शक्तियो एव उत्पादन के पू जीवादी सम्बधो के बीच अर्न्तविरोध अभूतपूर्व रूप से उग्र हो उठता है। उत्पादन के पू जीवादी सबध समाज की उत्पादक शक्तियो के लिए बधन बन जाते है। साम्राज्यवाद के काल मे, यही अन्तर्विरोध समस्त झगडो और टकरावो की जड होता है।

साम्राज्यवाद—समाजवादी क्रान्ति के आगमन की घटी

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, साम्राज्यवाद मरणोन्मुख पू जीवाद है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि वह अपने आप मर जाता है। समाजवाद द्वारा पूजीवादी व्यवस्था की ऐतिहासिक रूप से पूर्व-निश्चित पराजय एक ऐसी क्रिया है, जो अनवरत क्रान्तिकारी सघर्ष के जरिये सम्पन्न होती है। इस सघर्ष का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग करता है और वह मेहनतकश जनता के विशाल भागो को अपने गिर्द गोलबन्द करता है।

मरणोन्मुख पुजीवाद के रूप मे साम्राज्यवाद की परिभाषा करने के बाद लेनिन ने यह भी दिखाया था कि साम्राज्यवाद की अवस्था ही सर्वहारा वर्ग की समाजवादी क्रान्ति की पूर्व-बेला होती है। पूजीवादी व्यवस्था की ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील भूमिका परिसमाप्त हो जाती है, वह व्यवस्था समाज के आगे के विकास पथ मे एक जबर्दस्त रोडा बन जाती है। समग्र रूप से देखने पर, विश्व पू जीवादी व्यवस्था समाजवादी क्रान्ति के लिए परिपक्व है।

असमान विकास का नियम

समाजवाद के लिए चलने वाला मजदूर वर्ग का सघर्ष जिन परिस्थितियो मे आगे बढता है, वे पूजीवाद की इजारेदारी अवस्था मे बहुत ज्यादा बदल गयी हैं। यह परिवर्तन साम्राज्यवादी युग मे पूजीवादी देशो के असमान विकास के नियम परिणाम है।

उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व तथा उत्पादन मे पायी जाने वाली अराजकता के परिणाम-स्वरूप अलग-अलग औद्योगिक प्रतिष्ठानो, उनकी शाखाओं तथा अलग-अलग देशो का विकास समान गति से आगे नही बढता । कुछ देश विकास की दौड मे अन्य देशो से आगे निकल जाते हैं ।

साम्राज्यवादी काल मे अलग-अलग देशो मे असमान विकास और भी उग्र हो जाता है। अभूतपूर्व प्राविधिक प्रगति ने यह सम्भव बना दिया है कि नये और छोटे देश अपना विकास तेजी से कर सकें तथा अपने पुराने प्रतियोगियों को पीछे छोड कर आगे बढ जायें । जिन देशो ने पूजीवादी विकास के पथ पर—कुछ अन्य देशो के बाद—बढ़ना शुरू किया, उन्होने प्राविधिक प्रगति के फलो का उपयोग किया, आधुनिक साज सज्जा और मशीनो का इस्तेमाल करके विकसित टेक्नालॉजी से फायदा उठाया । वर्तमान युग मे, इजारेदारी शासन मे अपाहिजपन, पतन एव प्राविधिक गिरावट की रुझान दिखायी देती है। इस बात से ही यह साबित हो जाता है कि कुछ देशो का विकास तेजी से क्यो होता है तथा कुछ अन्य देश विकास की दौड मे पिछड क्यो जाते हैं। पूजी के निर्यात से यह असमान विकास और तीव्र हो जाता है ।

साम्राज्यवादी समूहो और शक्तियो द्वारा अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रो और अपने द्वारा शासित प्रदेशो के रूप मे दुनिया का बटवारा पहले से ही पूर्ण हो चुका होना है। अब कोई "स्वतन्त्र" क्षेत्र बाकी नही बचे हैं। लेनिन ने कहा था कि पूजीपति लोग ससार का बटवारा "पूजी के आधार पर," "सत्ता के आधार पर" करते हैं। परन्तु राजनीतिक और आर्थिक विकास के साथ अलग-अलग देशो की सत्ता बदलती रहती है ।

विभिन्न देशो के बीच शक्ति-सन्तुलन मे जो परिवर्तन आता है, उसका उपनिवेशो एव प्रभाव क्षेत्रो के पुराने बटवारे से टकराव होता है। एक जमाने मे समस्त ससार पर साम्राज्यवाद या जहा अविभाज्य शासन था, वहा पहले से ही विभाजित दुनिया के दुबारा विभाजन के लिए होने वाले सघर्ष से अवश्यम्भावी रूप से साम्राज्यवादी समूहो के बीच खूनी और तबाहकारी युद्धो का प्रादुर्भाव हुआ ।

साम्राज्यवादी युग में पूजीवादी देशों का असमान राजनीतिक विकास, उनके असमान आर्थिक विकास से नजदीकी तौर से जुडा हुआ है। साम्राज्यवादी काल मे, सभी पूजीवादी देशों मे प्रतिक्रियावाद के आधिपत्य को बढाने की रुमान देखी जा सकती है। किन्तु इसके बावजूद, अलग-अलग देशो म वर्ग शक्तियों के आपसी सम्बन्ध तथा मजदूर वर्ग के सघर्ष की परिस्थितिया भी अलग-अलग होती हैं । अलग-अलग देशों मे सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक

चेतना और उसकी क्रान्तिकारी दृढता तथा किसानो व जनता के अन्य मेहनतकश भागो के साथ उसके सम्बध अलग-अलग ढग से विकसित होते हैं।

साम्राज्यवादी काल मे पूजीवादी देशो का आर्थिक और राजनीतिक विकास चूकि असमान गति से होता है, इसलिए समाजवादी क्रान्ति के लिए आर्थिक व राजनीतिक पूर्व-आवश्यकताए भी असमान रूप से ही परिपक्व होती है। समाजवादी क्रान्ति का उदय उन्ही देशो मे होता है, जहा सर्वहारा वर्ग की विजय के लिए परिस्थिति विशेष रूप से अनुकूल होती है।

किसी एक देश मे समाजवाद के विजयी होने की सम्भावना

जिस काल मे पूरे ससार पर साम्राज्यवाद का बोलबाला रहा, मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने उस काल को साम्राज्यवाद के युद्धो एव सर्वहारा क्रान्तियो का काल कहा है। मार्क्सवाद का सृजनात्मक विकास करते हुए लेनिन ने बताया कि पूजीवाद का क्रान्तिकारी अवसान, समस्त ससार मे समान गति से आगे नही बढता। साम्राज्यवादी काल मे पूजीवाद का आर्थिक और राजनीतिक विकास चूकि असमान होता है, इसलिए अलग-अलग देशो मे समाजवादी क्रान्ति भी अलग-अलग समय पर सम्पन्न होती है।

समाजवाद पहले किसी एक देश में विजयी होता है। धीरे-धीरे अन्य देश पूजीवाद से अलग होने लगते हैं और वे समाजवाद के पथ पर आगे बढते है। साम्राज्यवादी काल मे समाजवादी तथा पूजीवादी देशो का सह-अस्तित्व रहता है। इस काल मे विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओ वाले देशो के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व ऐतिहासिक रूप से अवश्यम्भावी होता है।

लेनिन की इस शिक्षा ने कि अलग-अलग देशो मे समाजवादी क्रान्ति विजयी हो सकती है, सर्वहारा वर्ग के सामने विशाल एव नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाए उपस्थित कर दी तथा उसको इस बात का साहस प्रदान किया कि अपने-अपने देश मे वह पूजीपति वर्ग की स्थिति पर भरपूर प्रहार करे। यही शिक्षा, युग की महानतम क्रान्ति—रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति—मे अमल की निदेशिका बनी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कुछ देशो का पूजीवाद से अलग हट जाना और समाजवादी पथ पर बढने के लिए कुछ कदम उठाना भी समाजवादी क्रान्ति के बारे मे लेनिन के सिद्धान्त की पक्की पुष्टि करता है।

२. पूंजीवाद का आम संकट

पूंजीवाद के आम संकट का उदय

पूजीवाद मे समाजवाद मे क्रान्तिकारी सक्रमण नियमबद्ध सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम होता है। यदि सामाजिक विकास के पूरे क्रम ने परिस्थितिया उत्पन्न न की होती,

तो पूंजी के आधिपत्य को समाप्त नही किया जा सकता था। लेनिन ने लिखा था कि यदि एतिहासिक चक्र के दौरान पूंजीवाद के पतन की स्थिति उत्पन्न न हो जाय, तो कोई अन्य शक्ति ऐसी नही है जो उसका तख्ता उलट सके।

पुरानी नाकारा सामाजिक व्यवस्था की जगह एक नयी तथा बेहतर सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की प्रक्रिया मे लाजमी तौर पर लम्बा समय लगता है। इस समय के दौरान नयी और पुरानी, नवोदित तथा रूढ़िग्रस्त मरणोन्मुख सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच सघर्ष चलता रहता है। यह समय पूजीवाद के आम सकट का समय होता है। विश्व इतिहास के लम्बे काल मे पूजीवाद का अवसान होता रहता है।

प्रथम विश्व युद्ध तथा महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने पूंजीवाद के आम सकट की शुरूआत कर दी। रूस की समाजवादी क्रान्ति ने साम्राज्यवादी मोर्चे मे पहली दरार पैदा की। उसने विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की नींव को हिला दिया तथा उसके आगे के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर दिया।

लेनिन ने कहा था कि रूस मे होने वाली समाजवादी क्रान्ति विश्व समाजवादी क्रान्ति का शुभारम्भ थी। अगले ऐतिहासिक चरण मे कुछ अन्य योरपीय तथा एशियाई देशो मे पूजीवाद का पतन हो गया और वे समाजवादी पथ पर अग्रसर हो चले। समाजवाद अकेले एक देश की सीमाओ से बाहर उफन चला। वह एक विश्व व्यवस्था बन गया। इस युगान्तरकारी प्रक्रिया को रोकने मे पूजीवाद समर्थ नही रहा। इस समय तक ससार की एक-तिहाई जनता ने पूजीवाद का शिकजा अपने कधो से हमेशा-हमेशा के लिए उतार फेंका है तथा दुनिया के बाकी भाग मे भी पूजीवादी शासन की बुनियादें हिल रही हैं।

संसार का दो सामाजिक व्यवस्थाओं मे बंटवारा

रूस के पूजीवाद से टूट कर अलग हट जाने का अर्थ यह था कि ससार मे पूजीवाद ही अब एकमात्र आर्थिक व्यवस्था नही थी। पूरे ससार पर पूंजीवादी व्यवस्था का अविभाज्य शासन अब इतिहास की एक घटना मात्र बन गया था। पूंजीवाद के अतिरिक्त अब एक समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का भी उदय हो गया था और उसका विकास होने लगा था। दुनिया का दो सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच बटवारा हो गया था।

समाजवाद और पूजीवाद दो अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाए ही नही हैं, बल्कि वे एक-दूसरे की विरोधी व्यवस्थाए हैं। इन दो व्यवस्थाओ के बीच का अन्तर्विरोध ही मानव समाज का आज मुख्य अन्तर्विरोध है।

दो व्यवस्थाओ—मरणोन्मुख पूंजीवाद और विजयी समाजवाद—के बीच सघर्ष विश्व इतिहास मे एक निर्णायक तत्व बन गया है। समाजवाद के शक्तिशाली अभियान से पूजीवाद का बिखरता शीराजा और भी उजागर हो जाता है।

इन दोनो व्यवस्थाओ के अस्तित्व से दोनो के बीच प्रतियोगिता अवश्यम्भावी हो जाती है। यह प्रतियोगिता अर्थव्यवस्था, राजनीति, सस्कृति तथा सामाजिक जीवन के अन्य सभी क्षेत्रो मे चलती रहती है। दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच इस प्रतियोगिता के दौरान पूजीवाद की तुलना मे समाजवाद की श्रेष्ठता लगातार जाहिर होती रहती है। यही प्रतियोगिता ऐतिहासिक विकास की मुख्य धारा को इगित करती है।

पूजीवाद के आम सकट की अवस्थाए

पूजीवाद का आम सकट अपने विकास के दौरान अनेक अवस्थाओ से गुजरता है। इसकी पहली अवस्था पूजीवाद के आम सकट के आरम्भ होने के समय स लेकर द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक चली।

इसकी दूसरी अवस्था को द्वितीय विश्व युद्ध और उसके परिणामो ने जन्म दिया—जब अनेक योरपीय और एशियाई देश पूजीवादी व्यवस्था से टूट कर अलग हो गये।

तीसरी अवस्था समाजवादी शक्तियो की विपुल वृद्धि तथा शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता के दौरान साम्राज्यवादी शक्तियो के ह्रास के नतीजे से पैदा हुई। तीसरी अवस्था का अकेला एक सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उसका विकास बिना युद्ध की परिस्थितियो के हुआ है।

पूजीवाद का आम सकट जब से पैदा हुआ तब से दुनिया का राजनीतिक नक्शा तेजी से बदल गया है। १९१९ मे समाजवादी देशो का क्षेत्रफल ससार के क्षेत्रफल का १६ प्रतिशत तथा जनसख्या ससार की जनसख्या की ७ ८ प्रतिशत थी। १९६४ मे यह क्षेत्रफल बढ कर २६ प्रतिशत और जनसख्या ससार की जनसख्या की ३४ ६ प्रतिशत हो गयी। बडे साम्राज्यवादी देशो (अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, फ्रास, जापान, इटली) और उनके उपनिवेशो का क्षेत्रफल १९१९ में ससार के क्षेत्रफल का ४४ ५ प्रतिशत तथा उनकी जनसख्या ससार की जनसख्या की ४८ १ प्रतिशत थी। १९६४ मे ये सख्याए घट कर क्रमश. १०.६ प्रतिशत और १६ २ प्रतिशत रह गयी। १९१९ मे समस्त उपनिवेशो, अर्ध उपनिवेशो और डोमीनियनो का कुल क्षेत्रफल ससार के क्षेत्रफल का ७७ २ प्रतिशत तथा जनसख्या ससार की जनसख्या की ६९ २ प्रतिशत थी। परन्तु १९६४ मे ये सख्याए घट कर क्रमश ६ ८ प्रतिशत और १४ प्रतिशत ही रह गयी। १९१९ के बाद जिन उपनिवेशो तथा अर्ध उपनिवेशो ने स्वाधीनता प्राप्त की (समाजवादी देशो को छोड कर) उनका क्षेत्रफल १९६४ मे ससार के कुल क्षेत्रफल का ५६ ४ प्रतिशत और उनकी जनसख्या ससार की कुल जनसख्या की ४२ ६ प्रतिशत थी।

आधुनिक युग की मुख्य अन्तर्वस्तु

आधुनिक युग की मुख्य अन्तर्वस्तु है पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण तथा इसकी मुख्य अन्तर्धारा यह रुझान है कि समाजवादी दुनिया का विकास होगा जबकि पूजीवादी दुनिया सिकुडती जायगी। साम्राज्यवादी नियमों का पूरे ससार में अब आधिपत्य कायम नही रह गया। समाजवादी व्यवस्था मे निहित सामाजिक विकास के नये नियमो का उदय और सुदृढीकरण हुआ है तथा वे सामाजिक विकास पर दिनोदिन अधिकाधिक प्रभाव डाल रहे हैं।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि हमारा यह युग, जिसका मुख्य तत्व पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण है, दो परस्पर विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच सघर्ष का युग है, यह समाजवादी एव राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियो, साम्राज्यवाद के पतन तथा औपनिवेशिक व्यवस्था के विनाश का युग है, यह अधिकाधिक देशो के जनगण द्वारा समाजवादी पथ पर अग्रसर होने तथा विश्व के पैमाने पर समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय का युग है।

इस प्रकार विश्व विकास का आधुनिक युग निम्नलिखित तीन बुनियादी प्रक्रियाओ द्वारा निश्चित होता है :

प्रथम, जिन देशो मे समाजवादी क्रान्ति विजयी हो चुकी है, वहा नयी व्यवस्था का उदय तथा उसका मजबूत होना,

द्वितीय, साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीडित देशो मे चलने वाले राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनो के परिणामस्वरूप उपनिवेशवाद का पतन,

तृतीय, पूजीवादी देशो मे समस्त आन्तरिक व बाहरी अन्तर्विरोधो का तीव्रतर होना तथा इन देशो मे समाजवादी क्रान्ति के विजयी होने की पूर्व-आवश्यकताओ का परिपक्व होना।

इन तीनो प्रक्रियाओ मे सबसे उच्च स्थान समाजवाद की शक्तियो के विकास को प्राप्त है। यह अन्य समस्त प्रक्रियाओ पर फैसलाकुन प्रभाव डालती है। पूजीवाद के आम सकट का युग दो व्यवस्थाओ—समाजवादी तथा पूजीवादी—के बीच सघर्ष का युग है। समाजवाद की शक्तिया लगातार आगे बढ रही हैं। अधिकाधिक देश पूजीवाद से टूट कर अलग होते जा रहे हैं। साम्राज्यवाद और समाजवाद के बीच का शक्ति-सतुलन समाजवाद के पक्ष मे बदलता जा रहा है।

उपनिवेशवाद का पतन इसलिए हो जाता है कि औपनिवेशिक तथा पराधीन देशो मे साम्राज्यवाद की स्थिति कमजोर हो जाती है तथा कम विकसित देशो की गुलाम जनता अपनी स्वाधीनता को प्राप्त करके साम्राज्यवादियों को खदेड बाहर करती है।

साम्राज्यवाद के अन्तर्विरोधो के तेज होने से जाहिर होता है कि वह व्यवस्था अपने पतन और विनाश के दौर मे दाखिल हो गयी है। पतन की यह अपरिवर्तनीय प्रक्रिया पू जीवाद के अग-प्रत्यग में—उसकी आर्थिक व राज्य व्यवस्था, उसकी राजनीति और विचारधारा मे—घुलमिल जाती है।

पू जीवादी अर्थव्यवस्था की बढती हुई आन्तरिक अस्थिरता पू जीवाद द्वारा समाज की उत्पादक शक्तियो को पूर्ण रूप से इस्तेमाल करने मे लगातार बढती असमर्थता मे देखी जा सकती है। यह बार बार और जल्दी-जल्दी आने वाली आर्थिक मदी तथा अनेक देशों मे गिरावट के लक्षणो फैक्टरियो मे उनकी क्षमता से कम काम होने तथा भयकर बेरोजगारी मे भी देखी जा सकती है। राजकीय इजारेदार पू जीवाद के विकास तथा सैन्यवाद की वृद्धि से साम्राज्यवाद के अन्तर्विरोधो मे और तीव्रता आयी है।

पू जीवाद का चूकि दिन-प्रति दिन बिखराव हो रहा है, इसलिए मजदूरो और पू जीपतियो के बीच सघर्ष और अधिक तेज हो जाते हैं। साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच आपसी अन्तर्विरोध और गहरे हो रहे हैं। पू जीपति वर्ग राजनीतिक प्रतिक्रियावाद की शक्तियो को मजबूत करता है और पू जीवादी जनतत्र का गला घोट देता है। कुछ देशो मे तो वह फासिस्ट तानाशाहियो की स्थापना कर देता है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय और विश्व विकास के निर्णायक कारक के रूप मे उसका रूपान्तरण

तीन दशाब्दियो तक सोवियत सघ ने पू जीवादी घेरेबन्दी की परिस्थितियो मे समाजवाद का निर्माण किया। द्वितीय विश्व युद्ध मे फासिस्ट आक्रमणकारियो का सफाया हो जाने से अनेक योरपीय तथा एशियाई देश पू जीवादी व्यवस्था से हट कर अलग हो गये।

इन देशो की समाजवादी क्रान्तियो ने साम्राज्यवाद पर एक और जबर्दस्त चोट की। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि अनेक योरपीय व एशियाई देशो म होने वाली क्रान्तिया अक्तूबर १६१७ के बाद से विश्व इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाए रही हैं। इन देशा में, समाजवादी क्रांति की विजय से, समाजवाद एक विश्व व्यवस्था बन गया है। हमारे इस युग मे दो विश्व व्यवस्थाए—समाजवादी और पूंजीवादी—पायी जाती हैं।

रूस मे अक्तूबर क्रान्ति ने विश्व के साम्राज्यवादी मोर्चे मे जो पहली दरार डाली थी, उसे मिटाने के प्रयास मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादियो ने नवोदित सोवियत गणतत्र के खिलाफ फौजी हस्तक्षेप का रास्ता अपनाया। किन्तु जब अनेक योरपीय और एशियाई देशो मे जनता की जनवादी क्रान्तियां हुई और

इस प्रकार साम्राज्यवादी मोर्चे मे दूसरी दरार पडी, तो साम्राज्यवाद पहले वाले कदम का सहारा नही ले सका ।

इसका एकमात्र कारण एक शक्तिशाली समाजवादी देश—सोवियत सघ—का अस्तित्व था। सोवियत सघ ने अपनी समस्त आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के साथ दूसरे विश्व युद्ध के बाद उदित होने वाले नये समाजवादी देशो का मजबूती स समर्थन किया ।

विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय होने और उसके मजबूत होने से ससार म समाजवाद व पू जीवाद के बीच का शक्ति सतुलन बडी मात्रा मे बदल गया है। आज ससार की १०० करोड से अधिक जनता समाजवाद के अन्तर्गत जीवन बिता रही है। यह भाग ससार की जनसख्या का एक तिहाई भाग है।

समाजवादी देशो का विश्वव्यापी समुदाय ससार की प्रगतिशील शक्तियो का सबल दुर्ग है। उसकी शक्ति प्रति वर्ष बढती जा रही है। जिन देशो ने पू जीवादी व्यवस्था से नाता तोड लिया है, वहा अब दुनिया की कोई भी शक्ति पू जीवाद की पुनर्स्थापना नही कर सकती।

विश्वव्यापी व्यवस्था के रूप म समाजवाद के विकास से पू जीवाद के लाजमी पतन की बात पक्के तौर पर साबित हो गयी है। दो सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच होने वाला सघर्ष—वह सघर्ष जो पू जीवाद के आम सकट की मुख्य विशेषता है—एक नयी अवस्था मे पहुच गया है। आधुनिक युग का मुख्य अन्तर्विरोध—बढते हुए समाजवाद तथा ढहते हुए पू जीवाद के बीच अन्तर्विरोध—एक ऊची मजिल पर पहुच गया है।

दो व्यवस्थाओ के बीच होने वाली प्रतियोगिता ने जब विश्वव्यापी व्यवस्थाओ के बीच प्रतियोगिता का रूप धारण कर लिया, तो उसकी छलागें बहुत ज्यादा बढ गयी। समाजवादी व्यवस्था ने एक पूरे ऐतिहासिक दौर मे पू जीवादी व्यवस्था के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता साबित कर दी। विश्व पू जीवादी व्यवस्था के मुकाबले विश्व समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता उजागर होती जा रही है।

विश्व की समाजवादी व्यवस्था सामाजिक विकास के लिए निर्णायक तत्व बनती जा रही है। समाजवाद और पू जीवाद के बीच का शक्ति-सतुलन लगातार समाजवाद के पक्ष मे और पू जीवाद के खिलाफ बदलता जा रहा है।

समाजवाद ने जो अतुलनीय उपलब्धिया प्राप्त की हैं, उन्होंने सोवियत सघ को विकास की एक नयी ऐतिहासिक अवस्था, कम्युनिज्म के लिए भौतिक तथा तकनीकी आधार तैयार करने की अवस्था, म पहुचा दिया है। योरपीय और एशियाई समाजवादी देशो ने भी अपने शान्तिपूर्ण आर्थिक एव सांस्कृतिक

'विकास के क्षेत्र मे विपुल सफलताए हासिल की हैं। इन देशो मे समाजवाद की बुनियादें डाली जा रही हैं जबकि कुछ देशो मे तो समाजवादी निर्माण का काम पूरे जोर-शोर के साथ पहले से ही जारी हो चुका है। आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक क्षेत्रों मे समाजवादी देशो के बीच आपसी सहयोग निरन्तर बढता जा रहा है।

ये सभी परिवर्तन अभिन्न रूप से एक दूसरे से जुडे हुए हैं और परस्पर एक-दूसरे के आधीन हैं। ये विश्व समाजवादी व्यवस्था की तेज प्रगति और निरन्तर विकास की एकमात्र प्रक्रिया को, जो पूजीवाद के साथ अपनी आर्थिक प्रतियोगिता मे निर्णायक विजय की ओर अत्यन्त विश्वास के साथ आगे बढती जा रही है, जाहिर करते हैं। विश्व की समाजवादी व्यवस्था विश्व के सामाजिक विकास पर शाति, जनतत्र और समाजवाद के हित मे अधिकाधिक प्रभाव डाल रही है।

आज के युग मे साम्राज्यवाद नहीं बल्कि समाजवाद ही एक ऐसी व्यवस्था है जो विश्व विकास की मुख्य धारा को निर्धारित करती है। विश्व की समाजवादी व्यवस्था, साम्राज्यवाद के खिलाफ एव समाज के समाजवादी पुनर्गठन के लिए सघर्ष करने वाली शक्तिया ही, आज के युग मे मानवजाति के ऐतिहासिक विकास के मुख्य तत्व, मुख्य रुझान तथा मुख्य विशेषताओ को निर्धारित करती हैं।

उपनिवेशवाद का सकट साम्राज्यवादी औपनिवेशिक व्यवस्था का सकट पूजीवाद के आम सकट के काल मे फूट पडा। यह सकट रूस मे होने वाली अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के प्रत्यक्ष प्रभाव के अन्तर्गत प्रकाश मे आया।

समाजवाद के उदय से उत्पीडित जनगण की स्वाधीनता के युग का सूत्रपात हुआ। अक्तूबर क्रान्ति ने विश्व पूजीवाद को कमजोर कर दिया और साम्राज्यवादी व्यवस्था को एक जबर्दस्त चोट पहुचायी। उसने साम्राज्यवाद के पिछले बचाव के भागो पर भी जबर्दस्त चोट की तथा औपनिवेशिक ससार मे उसकी बादशाहत को उखाड डाला।

पहले के जमाने मे, उपनिवेशो मे साम्राज्यवादी हुकूमत आम तौर पर स्थायी होती थी। मगर अब उस दौर का खात्मा हो गया है। उपनिवेशवाद के खिलाफ उत्पीडित देशो के जनगण के सघर्ष ने अभूतपूर्व ऊचाई हासिल कर ली है। अधिकाश देशों म इस सघर्ष की अगुवाई कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे मजदूर वर्ग ने की।

सोवियत सघ के समर्थन और सहयोग पर भरोसा करके अनेक आर्थिक रूप से अविकसित देशो ने अपने साम्राज्यवादी शासको का पत्ता साफ करने

और साम्राज्यवादी घुसपैठ व दखलन्दाजी के खिलाफ अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की (अफगानिस्तान, टर्की, ईरान)। सोवियत जनता की सहायता से मगोलिया ने अपनी आजादी हासिल की और पूजीवादी अवस्था को छोडते हुए समाजवादी विकास का रास्ता अपनाया। अनेक औपनिवेशिक तथा पराधीन देशो मे आज भी साम्राज्यवादियो का शासन कायम है, मगर अब वे पहले की तरह राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का गला नहीं घोट सकते। ये आन्दोलन जनता के विशाल अगो को अपने गिर्द गोलबन्द करने लगे तथा जनता साम्राज्यवाद व सामन्तवाद के खिलाफ अपनी मुक्ति की लडाई मे एकताबद्ध होने लगी। मुक्ति सघर्ष के दौरान की गयी कुर्बानिया बेकार नही गयी।

औपनिवेशिक व्यवस्था का बिखराव दूसरे विश्व युद्ध ने उपनिवेशवाद की बुराइयो को बेपर्द कर दिया। युद्ध के वर्षों मे उत्पीडित जनगण के मुक्ति आन्दोलनो ने ज्यादा जोर पकडा। फासिस्ट आक्रमणकारियो के ध्वस्त हो जाने से इन आन्दोलनो की विजय के लिए अनुकूल परिस्थितिया पैदा हो गयी।

साम्राज्यवादियो द्वारा गुलाम बनाये गये जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष एक नयी मजिल मे पहुचे। सर्वहारा वर्ग और उसकी कम्युनिस्ट पार्टिया अधिकाधिक बडी भूमिका अदा करने लगी। इस बात का प्रभाव साम्राज्यवाद के खिलाफ चलने वाले राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन पर बहुत ज्यादा पडा। अनेक देशो मे सयुक्त राष्ट्रीय जनवादी मोर्चों की स्थापना हुई। साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामन्तवाद-विरोधी सघर्ष मे मजदूर वर्ग और किसानो के बीच एकता मजबूत हुई। औपनिवेशिक तथा पराधीन देशो मे राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष के सबल उभार से साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का शीराजा बिखरने लगा।

समाजवादी देशो के अस्तित्व ने साम्राज्यवाद की आक्रामक शक्तियो पर लगाम लगा दी। इससे औपनिवेशिक तथा अर्ध-औपनिवेशिक देशो को अपनी स्वतत्रता प्राप्त करने और उसको सुदृढ बनाने मे बडी सहायता मिली।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ससार की जनसख्या का ५० प्रतिशत से अधिक भाग औपनिवेशिक तथा अर्ध-औपनिवेशिक शोषण व उत्पीडन से मुक्त हो गया।

विश्व इतिहास के नये युग मे, जिसकी भविष्यवाणी लेनिन ने की थी, वे देश भी सम्पूर्ण विश्व के भविष्य के निर्माण के काम मे सक्रिय योगदान करने लगे, जिनको अभी तक साम्राज्यवादियो ने प्रगति के मार्ग पर चलने और आगे बढने से रोक रखा था। साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के

बिखराव के परिणामस्वरूप, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बध अब मात्र सफेद चमडी वाले लोगो के देशो के बीच सम्बध नही रहे, सही मानो मे वे अधिकाधिक सच्चे विश्व सम्बध बनते जा रहे हैं। भूतपूर्व औपनिवेशिक जनगण एक नये जीवन के रचयिता तथा साम्राज्यवाद का विनाश करने वाली एक नयी क्रान्तिकारी शक्ति बन गये हैं।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का बिखराव अनेक रूपो मे प्रकट होता है। साम्राज्यवादियो और उनके बगलबच्चो को बेदखल करने के बाद, चीनी जनता ने समाजवादी मार्ग अपनाया। इसी रास्ते को कोरियाई जन-गणराज्य तथा वियतनाम जनवादी जनतत्र ने भी अपनाया। कुछ विकसित देश, जिन्होंने औपनिवेशिक शिकञ्जा उतार फेंका है और अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, अभी तक विश्व पूजीवादी अर्थव्यवस्था से स्वय को मुक्त करने मे सफल नही हो सके हैं।

पूजीवाद के आम सकट की वर्तमान अवस्था मे साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का बिखराव इस हद तक पहुच गया है कि अब इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से नेस्तनाबूद करने का काम सामने आ गया है। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के सबल व सशक्त प्रहारो के परिणामस्वरूप औपनिवेशिक व्यवस्था, सभी अर्थों मे, धराशायी हो गयी है।

द्वितीय विश्व युद्ध के तुरन्त बाद औपनिवेशिक साम्राज्यो के विनाश के परिणामस्वरूप ६० से अधिक स्वतत्र देशो का उदय हुआ। इन मे से अधिकाश देशो को राष्ट्रीय स्वाधीनता १९५५ के बाद प्राप्त हुई। एशियाई और अफ्रीकी जनगण के अधिकाश भाग ने औपनिवेशिक जुए को अपने कधो से उतार फेंका है।

क्यूबा मे जनवादी क्रान्ति की विजय से लैटिन अमरीका मे अमरीकी उपनिवेशवादी मोर्चे मे दरार पड गयी है। क्यूबा की जनता ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए समाजवादी विकास का रास्ता अपनाया है। क्रान्तिकारी क्यूबा का उदाहरण लैटिन अमरीकी देशो की जनता के लिए अमरीकी इजारेदार पूजी के उत्पीडन के खिलाफ तथा अपनी स्वाधीनता व स्वतन्त्रता के सघर्ष के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गया है।

औपनिवेशिक उत्पीडन के शिकार देशो की जनता उत्पीडको के खिलाफ कठिन सघर्ष चला रही है। उपनिवेशवाद के आखिरी दुर्गों की दीवारें हिल रही हैं। बीसवी शताब्दी का सातवा दशक औपनिवेशिक व्यवस्था के पतन के अन्तिम चरण के रूप मे इतिहास मे प्रस्तुत किया जायेगा।

उपनिवेशवाद के कुपरिणामों को दूर करने के लिए संघर्ष

उपनिवेशवाद का उन्मूलन साम्राज्यवाद द्वारा गुलाम बनाये गये जनगण के लम्बे और कठिन मुक्ति संघर्ष का परिणाम है। उनको सदा से ही समाजवादी देशों और प्रगतिशील ताकतों का सहयोग व समर्थन प्राप्त रहा है। राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के बाद आर्थिक रूप से अल्प-विकसित देशों के सामने भारी जिम्मेदारियां आ गयी हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता को मजबूत करने के हेतु इनके लिए आवश्यक है कि ये विदेशी पूंजी से मुक्त होकर अपनी आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राप्त करें। ऐसा होने पर ही ये अपने को भयंकर उपनिवेशवाद की घृणित विरासत से मुक्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

इस विरासत में शामिल हैं: असाधारण किस्म का प्राविधिक व आर्थिक पिछड़ापन, उपनिवेशवादियों द्वारा कृत्रिम रूप से स्थापित सामाजिक जीवन के पुराने घिसे-पिटे रूप, श्रम उत्पादकता तथा राष्ट्रीय आय का असाधारण रूप से निम्न स्तर, भुखमरी और बर्बादी की शिकार जनता की भयानक गरीबी, आदि। अल्प विकसित देशों के जनगण जब तक आर्थिक दृष्टि से साम्राज्यवाद पर आश्रित रहेंगे, तब तक वे अर्ध-औपनिवेशिक शोषण के शिकार बने रहेंगे।

जिन देशों की जनता ने अपने आपको उपनिवेशवादी शिकञ्जे से मुक्त कर लिया है, उन्हें अपने विकास का मार्ग निश्चित करना है। विकास के पूंजीवादी मार्ग का अर्थ होगा—सामाजिक असमानता, कठिनाइयां और विपत्तियां, अनन्तकालीन गरीबी और पिछड़ापन। समाजवाद उनकी अर्थव्यवस्था और संस्कृति को समृद्ध करेगा; जनता को वास्तविक स्वतंत्रता और सुख की प्राप्ति होगी।

व्यवहार ने नये आजाद देशों की जनता के सामने यह साबित कर दिया है कि युगों से चले आये पिछड़ेपन और गरीबी से छुटकारा पाने का बेहतरीन तरीका विकास के गैर-पूंजीवादी पथ को अपनाना है। पूंजीवादी पथ को त्यागने से ही उनको शोषण से मुक्ति मिलेगी और उनकी परिस्थितियों में सुधार होगा। अनेक देशों में—संयुक्त अरब गणराज्य, अल्जीरिया, माली, गिनी, कांगो (ब्राजविले), बर्मा में—विदेशी इजारेदारियों के प्रभुत्व को समाप्त करने, अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने तथा जनता की जीवन स्थितियों में सुधार लाने के उद्देश्य से दूरगामी सामाजिक सुधार किये जा रहे हैं।

नवउपनिवेशवाद

अमरीका की चौधराहट के अन्तर्गत दुनिया के साम्राज्यवादी—एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देशों में राष्ट्रीय व सामाजिक पुनरुत्थान के प्रयासों को रोक रहे हैं।

हिंसा और धोखाधडी की मिली-जुली नीति अपना कर ये साम्राज्यवादी लुटेरे, उपनिवेशवाद को नये रूप मे कायम रखने का प्रयास कर रहे हैं। अपने आक्रामक फौजी गुटो मे शामिल करके तथा भारी शर्तों पर "सहायता" प्रदान करके वे आर्थिक दृष्टि से अल्प विकसित देशो की जनता को गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार वे अपनी पुरानी स्थिति से चिपके रहने तथा नयी स्थितियो को हथियाने की कोशिश करते है।

साम्राज्यवादी लोग नये आजाद देशो मे उनकी पेचीदा सामाजिक एव वर्गीय स्थिति, उनकी आर्थिक कठिनाइयो, तथा उनमे से अधिकाश मे अभी भी कायम विदेशी इजारेदारियो के प्रभुत्व का अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। नये आजाद देश प्रगतिशील देशभक्त शक्तियो और साम्राज्यवाद के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष गठजोड करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियो के बीच सघर्ष के क्षेत्र बन गये हैं। दुनिया मे आज शक्तियो का जो सतुलन है, और भूतपूर्व उपनिवेशो की जनता को विश्व समाजवादी व्यवस्था का जो शक्तिशाली समर्थन व सहयोग प्राप्त है, उससे औपनिवेशिक शक्तियो की कुचेष्टाओ और योजनाओ पर तुषारपात हो रहा है।

३. विश्व पूंजीवाद के अन्तर्विरोधों में वृद्धि

पूंजीवादी व्यवस्था की बढ़ती हुई अस्थिरता

अनेक देशों के पूजीवादी व्यवस्था से अलग हो जाने के परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी मोर्चे मे दरार बहुत ज्यादा चौडी हो गयी है तथा पूजीवादी आधिपत्य का क्षेत्र सिकुड गया है। औपनिवेशिक देशो की जनता द्वारा स्वतत्र विकास का मार्ग अपनाये जाने से औपनिवेशिक शोषण की व्यवस्था काफी कमजोर हो गयी है तथा उसका कार्यक्षेत्र बहुत सीमित हो गया है। इस सब ने पूंजीवादी व्यवस्था मे निहित अन्तर्विरोधो की परिधि और गहराई को और ज्यादा बढा दिया है।

पूजीवाद के आम सकट की पहली अवस्था मे ही, पूजीवाद के ढहने की तथा उसकी आन्तरिक अस्थिरता की प्रक्रिया तेज हो गयी।

साम्राज्यवाद समाज की उत्पादक शक्तियो के विकास को रोकने का प्रयास करता है। पहली अवस्था मे, पूजीपति वर्ग उत्पादक शक्तियो को पूर्ण रूप से इस्तेमाल करने मे समर्थ नही था। यह इस बात से उजागर है कि कारखानो मे लगातार उनकी क्षमता से बहुत कम उत्पादन होता था; साथ ही बडे पैमाने की बेरोजगारी का बोलबाला था। मेहनतकश जनता के लगातार बढते शोषण का परिणाम यह था कि माल सम्भरण की तुलना मे प्रभावी माग निरन्तर गिरती चला गयी। जारशाही रूस, जो उस समय तक शोषण

का शिकार था, विश्व पूजीवाद के प्रभाव क्षेत्र से अलग हो गया । इस सब का नतीजा यह हुआ कि उत्पादन यत्र का बडा भाग निष्क्रिय हो गया और प्रतिष्ठानो मे काम उनकी क्षमता से कम होने लगा ।

दो युद्धो के बीच के पूरे काल में अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी तथा अन्य पूजीवादी देशो मे उद्योगो मे औसतन केवल ५० से ६६ प्रतिशत तक क्षमता का इस्तेमाल हुआ । दूसरे शब्दो में इसे यू भी कहा जा सकता है उसी उत्पादक यत्र को इस्तेमाल करके पूजीवादी दुनिया के कारखाने अपने उत्पादन से ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक अधिक उत्पादन कर सकते थे। आर्थिक सकट के कालो मे साज सामान के इस्तेमाल की दर और भी कम थी।

कारखानो मे उनकी क्षमता से कम काम होने का लाजमी नतीजा बडे पैमाने की बेराजगारी मे दिखायी दिया । १९२१ और १९३६ के बीच के वर्षों मे, ब्रिटेन मे पूर्ण रूप से बेरोजगारो की सख्या औसतन १७ लाख व्यक्ति प्रति वर्ष थी । इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन मे १६ वर्षों तक हर ७ व्यक्तियो मे से १ व्यक्ति बेरोजगार रहा । १९२९ और १९३३ के बीच जर्मनी मे हर चार व्यक्तियो मे से एक व्यक्ति तथा १९३६ मे अमरीका मे हर ६ व्यक्तियो म से एक व्यक्ति बेरोजगार था ।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, मुख्य पूजीवादी देशो मे आर्थिक विकास की दर दो युद्धो के बीच के वर्षों की अपेक्षा ज्यादा हो गयी । किन्तु इसके बावजूद, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की अस्थिरता अपनी जगह कायम है। बहुत से देशो मे मुद्रा स्फीति, उत्पादन म उतार-चढाव, सरकारी कर्जों मे जबर्दस्त वृद्धि तथा आर्थिक कठिनाइयो की प्रचुरता बढती जा रही है।

अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण और उसके परिणाम

राजकीय इजारेदार पूजी का विकास सैन्यवाद की अभूतपूर्व वृद्धि के साथ साथ होता है ।

राष्ट्रीय आय का अधिकाधिक भाग—एक चौथाई से लेकर एक तिहाई तक—राजकीय बजट द्वारा खर्च किया जाता है। हथियारो की दौड पर सरकारी बजट के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले खर्चों का भाग लगातार बढ़ता जाता है ।

प्रभावी इजारेदारियाँ और उनकी इच्छा पर नाचने वाली साम्राज्यवादी सरकारें, पूजीवादी व्यवस्था के अवश्यम्भावी पतन को रोकने के प्रयास मे हथियारो का इस्तेमाल करती हैं । सैन्यीकरण पूजीवादी देशो के जीवन के समस्त पहलुओं को खोखला कर देता है । १९४९ मे अमरीका ने उत्तर अतलांतिक सधि सघ (नाटो) नाम से एक आक्रमणकारी सैनिक गठबधन कायम किया । इस सगठन के अस्तित्व काल मे इस सैनिक गुट की युद्ध मशीन

की स्थापना और उसे चुस्त-दुरुस्त करने पर १,०००,०० करोड डालरो से अधिक की रकम खर्च हुई। राष्ट्रीय बजटो का अधिकाश भाग युद्ध खर्चों की भेंट चढ जाता है। अमरीका मे १९३८-३९ के वर्ष मे प्रत्यक्ष सैन्य व्यय लगभग १०० करोड डालर था, जो १९६४-६५ मे बढ कर ५,५०० करोड डालर हो गया। हथियारो की दौड के परिणामस्वरूप, परमाणु शक्ति के अनुसन्धान की मद मे तथा अमरीका की साम्राज्यवादी हमलावर कारवाइयो मे शरीक या सहायक अन्य देशो की आर्थिक एव सैनिक "सहायता" की मद मे भारी मात्रा मे रकमे खर्च होती हैं। इस समय अमरीका के सघीय बजट का ७५ प्रतिशत से अधिक भाग किसी न किसी ढग से सैन्य मदो पर ही खर्च होता है।

इजारेदार पूंजीपति वर्ग के अलग-अलग गुट अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण से बेशुमार मुनाफे बटोरते हैं। किन्तु यह नीति अर्थव्यवस्था को खोखला बना देती है, टैक्सो की मार से जनता की माली हालत को तबाही के गढे मे धकेल देती है तथा मुद्रा-स्फीति और जीवन के खर्चों को आसमान पर चढ़ा देती है। साम्राज्यवादी सैनिक अड्डो के निर्माण से मानव जाति के लिए मौत और तबाही का खतरा अभूतपूर्व रूप से बढ जाता है।

पूंजीवादी देशो मे अधिकाधिक असमान विकास तथा साम्राज्यवादी शिविर के अन्दर शक्ति संतुलन में परिवर्तन

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के फौरन बाद युद्ध से हासिल लूट के बटवारे को लेकर साम्राज्यवादी देशो के बीच भीषण सघर्ष छिड गया। नये युद्ध का खतरा पैदा हो गया और बढने लगा। पूंजीवादी शिविर मे आपसी टकरावो और गलाकाट्ट संघर्षों का सिलसिला बढता गया और उससे पूरी तबाही मच गयी।

पूंजीवादी देशो का विकास और भी असमान तथा अनिश्चित बन गया।

युद्ध मे परास्त हो जाने से जर्मनी बहुत कमजोर हो गया और युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक वर्षों मे देश की अर्थव्यवस्था पर इसका स्पष्ट प्रभाव दिखायी पडा। किन्तु जर्मन साम्राज्यवाद का आर्थिक आधार समाप्त नही हुआ था। सोवियत सघ के प्रति अपनी अन्ध घृणा से प्रेरित, विजेता देशो के इजारेदारो तथा विशेष रूप से अमरीकी धनकुबेरो ने जर्मन ट्रस्टो को कर्जो से पाट दिया। १० वर्षों से कम समय में ही जर्मन उद्योग ने पूंजीवादी ससार मे पुन: दूसरा स्थान प्राप्त कर लिया।

अमरीका और ब्रिटेन की आर्थिक शक्तियो के बीच सम्बधो मे भी काफी बडा परिवर्तन हुआ। युद्ध ने अमरीकी इजारेदारियो को मालामाल कर दिया। १९२५ मे अमरीकी उद्योगो का कुल उत्पादन ब्रिटेन, फ्रास और जर्मनी के

मिले-जुले उत्पादन के बराबर था। १६२६ मे अमरीका का औद्योगिक उत्पादन १६१३ के स्तर से ७० प्रतिशत अधिक हो गया, जब कि ब्रिटेन बडी मुश्किल से युद्ध-पूर्व के उत्पादन स्तर को पा सका।

युद्ध के परिणामस्वरूप ब्रिटेन ने विदेशो में अपने पूजी विनियोग का एक बडा भाग खो दिया। पूजीवादी ससार के सर्वप्रमुख वित्तीय केन्द्र के रूप मे पहले लन्दन को जो स्थान प्राप्त था, उसे अब न्यूयार्क ने प्राप्त कर लिया।

दूसरे विश्व युद्ध ने, जो स्वय पूजीवाद के असमान विकास का परिणाम था, इस असमानता को और ज्यादा बढा दिया। छः बडे साम्राज्यवादी देशो मे से तीन—जर्मनी, जापान और इटली—को सैनिक पराजय का मुह देखना पडा। फ्रास बहुत ज्यादा कमजोर हो गया था। ब्रिटेन को भारी क्षति उठानी पडी। अमरीकी इजारेदारियो ने अपने पश्चिम योरपीय प्रतियोगियो की इस कमजोरी का फायदा उठाया और कच्चे माल के मुख्य स्रोतो, विक्रय-मडियो और पूजी विनियोग के क्षेत्रो पर अधिकार जमा लिया।

साम्राज्यवाद का आर्थिक केन्द्र—और इसके साथ ही उसका राजनीतिक तथा सैनिक केन्द्र भी—योरप से हट कर अमरीका पहुंच गया।

साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच शक्ति-सतुलन मे जो परिवर्तन हुआ, वह अमरीका के पक्ष मे तथा योरपीय पूजीवादी देशो के खिलाफ था। १६४३ मे अमरीकी उद्योगो का कुल उत्पादन १६३६ के उत्पादन से २.२ गुना अधिक था। मुख्य तौर पर पश्चिम योरपीय पूजीवादी देशो का—जिनको युद्ध मे भारी क्षति उठानी पडी थी—औद्योगिक उत्पादन युद्ध के बाद ज्यादा गिर गया।

इसके परिणामस्वरूप पूजीवादी ससार के कुल औद्योगिक उत्पादन मे अमरीका का भाग युद्ध-पूर्व की अपेक्षा बहुत ज्यादा बढ गया। किन्तु बाद में, योरपीय पूजीवादी देशो ने न केवल अपना युद्ध-पूर्व का उत्पादन स्तर फिर प्राप्त कर लिया, बल्कि उस स्तर से भी आगे बढ गये। यह बात विशेष रूप से पराजित देशो—पश्चिम जर्मनी, जापान और इटली —पर लागू होती थी। पूजीवादी ससार के औद्योगिक उत्पादन मे अमरीका का भाग १६४८ के ५३.६ प्रतिशत से घट कर १६६० में ४४.७ प्रतिशत रह गया; इसी तरह कुल निर्यात मे अमरीका का भाग १६४७ के ३३ प्रतिशत से घट कर १६६४ मे १७.५ प्रतिशत रह गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पूजीवादी देशो मे अमरीका का स्थान फिर लगभग वही हो गया, जो युद्ध से पहले था। हाल के वर्षो मे, विभिन्न देशो की भूमिकाओ में और भी परिवर्तन हुए हैं। अमरीका मे आर्थिक विकास की दर मे वृद्धि हुई है, जबकि पश्चिम योरपीय देशो और जापान मे यह दर घटी है।

आज भी, साम्राज्यवादी खेमे मे मुख्य आर्थिक, वित्तीय और सैनिक शक्ति के रूप मे अमरीकी साम्राज्यवाद का स्थान पहले की तरह बरकरार है। मौजूदा समय मे भी, अमरीकी आर्थिक शक्ति किसी भी दूसरे पूजीवादी देश से अधिक है। इसके फलस्वरूप साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध अत्यन्त तीव्र और पेचीदा हो गये हैं।

साम्राज्यवादी प्रभुत्व क्षेत्र के सकुचित होने से मडी की समस्या बहुत तीखी हो गयी है। कम विकसित देशो के औद्योगिक विकास को रोक कर तथा मेहनतकश जनता के शोषण को तेज करके भी साम्राज्यवाद इस समस्या को हल करने मे सफल नही हो पा रहा है। विक्रय मडियो, पूजी लगाने के लाभदायक क्षेत्रों तथा कच्चे माल के स्रोतो पर अधिकार प्राप्त करने के लिए पूजीवादी देश एक-दूसरे का गला काटने को तैयार है। मडी की समस्या को हल करने के लिए पूजीवादी देश "एकीकरण" का नारा देकर राजकीय इजारेदार सगठनों की स्थापना करते हैं।

योरपीय आर्थिक समुदाय (साझा बाजार) इसी प्रकार का एक सगठन है। इस गुट की स्थापना १९५७ मे ६ पश्चिम योरपीय देशो की—पश्चिम जर्मनी, फ्रास, इटली, बेल्जियम, हालैंड और लक्समबुर्ग की—इजारेदारियो ने की थी। एक ओर जहा साझा बाजार के देशों के बीच व्यापार मे एक्साइज ड्यूटिया और कस्टम करो मे काफी कमी की गयी है या उन्हें समाप्त ही कर दिया गया है, वहा दूसरी ओर गुट के बाहर के देशो के साथ व्यापार मे इन करो की दर को बहुत ज्यादा बढा कर व्यापारिक सम्बधो मे भारी अवरोध पैदा कर दिया गया है। साझा बाजार की स्थापना से इजारेदारी मुनाफे बढते हैं, इजारेदारियो द्वारा किये जाने वाले उत्पीडन की मात्रा बढ जाती है, मजदूर वर्ग का शोषण अधिक तीव्र हो जाता है तथा किसान जनता के अधिकाश भाग की तबाही बढ जाती है। साझा बाजार के चौधरी लोग, नवउपनिवेशवादी हथकडो का इस्तेमाल करके, कम विकसित देशो का—विशेष रूप से नवोदित अफ्रीकी देशो का—शोषण तेज करने का सयुक्त रूप से प्रयास करते हैं।

ये गुट वास्तव मे पूजीवादी विश्व मडी के पुनर्वितरण का एक नया रूप हैं। ये राज्यों के बीच के अन्तर्विरोधों को दूर नही करते, बल्कि ये ऐसे अखाडे हैं जहा ये राज्य—गलाकाट्ट सघर्ष द्वारा—मामलो का निबटारा करते है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था की बढती हुई अस्थिरता तथा इजारेदारो के बीच तीव्र होता सघर्ष साम्राज्यवादी देशो के आर्थिक एव राजनीतिक गुटो को कमजोर ही करते हैं।

मेहनतकश जनता का बढता हुआ शोषण

पूजीवाद के आम सकट के गहरा होने से मेहनतकश जनता का, विशेष रूप से मजदूर वर्ग का, शोषण गहरा हो जाता है तथा उसकी असुरक्षा

बढ जाती है । हथियारो की दौड का खर्च—मुख्य रूप से जनता के कधो पर टैक्सो का बोझ लाद कर—पूरा किया जाता है । सभी साम्राज्यवादी देशो में जीवन-यापन का खर्च बढ रहा है । नामधारी वेतन तथा वास्तविक वेतन के बीच की खाई चौडी हो रही है तथा मेहनतकश किसानो की वास्तविक आमदनी गिर रही है । पूजीवादी समाज का मुख्य अन्तर्विरोध—श्रम और पूजी के बीच का अन्तर्विरोध—दिनोदिन तीव्र हो रहा है । मेहनतकश जनता के बहुत बडे भाग की वास्तविक आमदनी नीची बनी रहती है—बावजूद इसके कि उनकी नामधारी (अर्थात सिक्का के रूप मे) आमदनी म कुछ वृद्धि हो जाती है । बढी हुई नामधारी आमदनी कीमतो मे वृद्धि एव जीवन यापन के बढे हुए खर्चों द्वारा निगल ली जाती है । तेजी से होने वाली प्राविधिक प्रगति के फलस्वरूप श्रम उत्पादकता मे जो वृद्धि होती है, उसे इजारेदारिया पूरी तरह हडप जाती हैं । मिसाल के लिए, पश्चिम जर्मनी मे १९५० और १९६० के बीच, २ करोड औद्योगिक मजदूरो और आफिस कर्मचारियो ने वेतन के रूप मे कुल मिला कर ४,६५० करोड मार्क कमाये, जबकि इसी बीच ५० बडे-बडे प्रतिष्ठानो ने ४,४६० करोड मार्क का मुनाफा बटोरा । १९५२-१९६० के बीच जापान के पूजीपतियो की आमदनी मे ३५० प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि मजदूरो का कुल वेतन केवल १२० प्रतिशत बढा ।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान करोडो लोगो को फौजो मे भर्ती किया गया, या उन्हे हथियारो के उत्पादन के कारखानो मे झोका गया । अस्थायी तौर पर बेरोजगारी दूर कर दी गयी । इन हालात मे पूजीवादी व्यवस्था के दावेदार यह दावा करने लगे कि पूजीवाद के अन्तर्गत सभी लोगो को काम दिया जा सकता है । लेकिन इस प्रकार के वादो का मुलम्मा जल्द ही उतर गया । सरकारी आकडो के ही अनुसार, आज पूजीवादी देशो मे पूर्ण रूप से बेरोजगार लोगो की सख्या ७० लाख स कम नहीं है । इन आकडो मे दरअसल उन लोगो को भी शामिल किया जाना चाहिए जो आशिक रूप से ही काम पाते हैं ।

पूजीवादी अर्थव्यवस्था उत्पादक शक्तियो, तथा विशेष रूप से समाज की सर्वप्रमुख उत्पादक शक्ति—मजदूर वर्ग—को विवेकपूर्ण ढग से इस्तेमाल करने में सक्षम नही है । बेरोजगारी अनिवार्यत मेहनतकश जनता के विशाल भाग की स्थिति को बदतर बना देती है ।

आधुनिक पूजीवाद को 'कल्याणकारी राज्य" के रूप मे पेश करने की पूजीवादी एव सशोधनवादी कोशिशें वास्तविकता से टकराने पर चकनाचूर हो जाती हैं । असलियत यह है कि आधुनिक पूजीवाद नग्न अन्तर्विरोधो का भण्डार है । पूजीवाद करोडों मेहनतकश लोगो को असुरक्षा और नाना प्रकार की विपत्तियों के दलदल में धकेल देता है ।

कठिन सघर्ष के बाद आर्थिक रूप से विकसित कुछ पूजीवादी देशो का मजदूर वर्ग पूजीपति वर्ग से सामाजिक सुरक्षा सम्बधी सुविधाए हासिल करने मे सफल हुआ है। किन्तु इसके बावजूद, बहुत से देशो मे सामाजिक सुरक्षा केवल नाम मात्र को ही है, तथा कुछ दूसरे देशों मे तो बिल्कुल है ही नही। उदाहरण के लिए, पेंशन की आयु आम तौर से ६० वर्ष के ऊपर नियत की गयी है, जबकि मजदूरो की औसत आयु इससे कम ही होती है। बहुत से देशो मे, अस्थायी रूप से अपग होने वालो के लिए सामाजिक सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक सुरक्षा पर होने वाले खर्च के काफी बडे भाग की पूर्ति मजदूरो के वेतन मे की गयी कटौतियो से की जाती है।

वर्ग सघर्ष मे तीव्रता

पूजीवादी देशो का मजदूर वर्ग शोषको के खिलाफ अपने वर्ग सघर्ष को तेज करके अपनी लगातार बिगडती हालतों का मुकाबला करता है।

हडताल आन्दोलन बडे पैमाने पर छिड जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हडतालो तथा उनमे भाग लेने वाले हडतालियो की सख्या मे बहुत वृद्धि हो गयी। १९१९ और १९३९ के बीच जहा १,७७,४०० हडतालें हुई और उनमे ८ करोड ८ लाख लोगों ने भाग लिया, वहा १९४६ और १९६९ के बीच हडतालो की सख्या बढ कर २,४७,४०० तक पहुच गयी और इनमे २२ करोड २६ लाख लोगो ने भाग लिया। पिछले दशक मे हडतालियो की सख्या दो गुनी हो गयी है और अब हर साल ५.५ से ५.७ करोड तक लोग हडताल मे शरीक होते हैं तथा बहुत सी हडतालें राजनीतिक रूप लेती जा रही हैं।

मजदूर अपने आजमाये हुए हथियार—हडताल—का इस्तेमाल अपने आर्थिक हितो की रक्षा, इजारेदारो की जन-विरोधी नीतियो का विरोध करने तथा सैनिक तैयारियो व व्यापक प्रतिक्रियावाद का सामना करने के लिए करते है।

पूजीवादी देशो मे वर्ग सघर्ष मे जैसे-जैसे तेजी आती जाती है, वैसे ही वैसे मजदूर वर्ग की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मागो का दायरा विस्तृत होता जाता है। अनेक देशो म मजदूर वर्ग अधिकाधिक जोरों से माग करने लगता है कि उसे प्रतिष्ठानो के प्रबध और गतिविधियो में ज्यादा हिस्सा दिया जाय, अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण शाखाओ का राष्ट्रीयकरण किया जाय तथा इजारेदारियो की सर्वशक्तिसम्पन्नता पर रोक लगायी जाय। मजदूर वर्ग ने, और आम तौर से आम जनता ने, साम्राज्यवादी आक्रमण तथा साम्राज्यवादी देशो द्वारा उत्पन्न युद्ध के खतरो के खिलाफ जो अभियान चलाया है, उसका समर्थन अधिकाधिक बढता जा रहा है। पूजीपति वर्ग इस सघर्ष को रोकने के लिए अधिकाधिक दमनकारी तरीको को अपनाता है। किन्तु इसके बावजूद

मेहनतकश जनता का संगठन और उसकी कतारों की एकता सुदृढ़ होती जाती है।

इजारेदारियों की जन-विरोधी सर्वशक्तिसम्पन्नता अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है। पूंजीवाद का विकास और मेहनतकश जनता के सर्वहारा बनने की प्रक्रियाएं साथ-साथ चलती रहती हैं। अधिकांश किसानों तथा शहरी लघु-उत्पादकों के सामने बर्बादी और कंगाली का क्रूर खतरा मंडराने लगता है। पहले जो छोटे औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रतिष्ठान स्वतंत्र हुआ करते थे, वे अब पूर्ण रूप से इजारेदारियों पर आश्रित हो जाते हैं। जनता के सभी भागों पर इजारेदारों का शिकंजा अधिक कसता जाता है। मेहनतकश जनता मजदूर वर्ग के इर्द-गिर्द संगठित होती जाती है। इजारेदारियों के प्रतिरोध को समाप्त करके और कठिन वर्गीय लड़ाइयों को लड़ते हुए, सर्वहारा वर्ग अधिकांश किसानों और सफेदपोश कर्मचारियों को अपनी ओर मिला लेता है। जनता की इस लामबंदी में समाज के समाजवादी दिशा में क्रान्तिकारी रूपांतरण के संघर्ष में मदद मिलती है।

आधुनिक युग में, जब साम्राज्यवाद की स्थिति काफी कमजोर हो गयी है तथा दुनिया में समाजवाद एवं पूंजीवाद के बीच का शक्ति-संतुलन लगातार समाजवाद के पक्ष तथा पूंजीवाद के विरोध में बदलता जा रहा है, तो प्रतिक्रियावाद के खिलाफ तथा जनवाद के लिए होने वाले संघर्ष का महत्व बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। नई ऐतिहासिक परिस्थितियों में जनवाद के लिए होने वाला संघर्ष समाजवाद के लिए संघर्ष का ही एक अभिन्न अंग है तथा समाजवादी क्रान्ति को दूर हटाने के बजाय यह उसे नजदीक लाता है। बहुत से पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग ऐसे कदमों का उठाया जाना सुनिश्चित करवाने में समर्थ हो जाता है जिनका दायरा साधारण सुधारों से कहीं ज्यादा बड़ा होता है और जो मजदूर वर्ग के लिए, पूंजीवाद की पूर्ण समाप्ति के पहले ही, समाजवाद के लिए संघर्ष के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।

इजारेदारियों की सर्वशक्तिसम्पन्नता के खिलाफ तथा जनवाद के लिए जूझता हुआ मजदूर वर्ग तमाम प्रगतिशील एवं जनवादी शक्तियों को एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे में संगठित करता है। बहुसंख्यक जनता के हित में मजदूर वर्ग नये विश्व युद्ध की तैयारियों के खिलाफ, स्थानीय युद्धों के खिलाफ तथा फासिस्टवादी प्रतिक्रियावाद के आक्रमण के खिलाफ संघर्ष करता है तथा अर्थव्यवस्था को शान्तिपूर्ण उद्देश्यों में लगाने, शान्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता, जनवादी अधिकारों तथा जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का वह समर्थन करता है। जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए मजदूर बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण की मांग करता है।" इस बात को

भी माग करता है कि अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीकृत शाखाओं एव राज्य की सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधि पर ससद, ट्रेड यूनियनो तथा अन्य जनवादी व प्रतिनिधि सस्थाओ का नियंत्रण कायम किया जाय।

पूजीवाद—ऐतिहासिक तौर पर एक नाशवान व्यवस्था

इस प्रकार, समाजवाद की शक्तियो के विकास, औपनिवेशिक व्यवस्था के बिखराव तथा पूजीवादी समाज के आन्तरिक सामाजिक अन्तर्विरोधो के तेज होने के परिणामस्वरूप पूजीवाद का आम सकट और भी गहरा हो जाता है।

पूजीवादी अर्थव्यवस्था अधिकाधिक अस्थायी होती जा रही है।

पूजीवाद के अन्तर्विरोध एकत्र होते जाते हैं और नये विप्लवो के लिए स्थिति तैयार कर देते हैं। प्रगति के लिए प्रयास करती समाज की उत्पादक शक्तियो और उत्पादन के पूजीवादी सम्बधो के बीच टकराव तेज हो जाता है तथा घिसी-पिटी पुरानी पूजीवादी व्यवस्था का ऐतिहासिक विनाश नजदीक आ जाता है।

साम्राज्यवाद की आक्रमणकारी शक्तिया एक नये विश्व युद्ध की तैयारी करके अपने बचाव का रास्ता खोजती हैं। युद्ध के खतरे का मुख्य स्रोत उन अमरीकी शासक हल्को की आक्रामक कार्रवाइया है, जो ससार पर अमरीकी इजारेदारियो का अधिकार कायम करने की साजिशें रच रहे है।

किन्तु, इसका यह अर्थ कदापि नही है कि नया विश्व युद्ध अवश्यम्भावी है। अब मानव जाति के बहुसंख्यक भाग पर साम्राज्यवाद का दबदबा कायम नही रह गया है। उसके आधिपत्य का दायरा लगातार घटता जा रहा है। दो व्यवस्थाओ—समाजवादी एव पूजीवादी—के बीच शक्तियो का सतुलन ऐसा है जिसमे पूजीवाद यह भरोसा नही कर सकता कि वह समाजवाद के मुकाबले आगे बढ जायेगा। विज्ञान और टेक्नालॉजी की अनेक मुख्य शाखाओ मे समाजवाद ने पूजीवाद को पीछे छोड दिया है तथा शान्तिप्रिय देशो की जनता को साम्राज्यवादी आक्रमण का सामना करने के लिए शक्तिशाली भौतिक साधन सुलभ कर दिये हैं।

सोवियत सघ एव अन्य समाजवादी देशो की शान्तिपूर्ण नीति को मानव-जाति के विशाल बहुमत का समर्थन प्राप्त है। शान्ति के लिए सघर्षरत समस्त शक्तियो के सुदृढीकरण से नये युद्ध की तैयारी करने वाले आक्रामक हल्को को लगाम लगती है। समाजवादी देशों को मुख्य किले के रूप मे इस्तेमाल करती हुई शान्ति की शक्तिया इतनी शक्तिशाली हैं कि वे साम्राज्यवादियो को अपनी युद्ध योजनाओ को रद्द करने व दो व्यवस्थाओ के बीच शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति पर चलने को बाध्य कर सकें।

पूजीवाद मानव विकास की राह मे एक भारी अवरोध बन गया है। हमारा यह युग उत्पादक शक्तियो के वेगपूर्ण विकास तथा विज्ञान व टेक्नालॉजी मे अभूतपूर्व प्रगति का युग है। और, यदि इस युग मे करोडो लोगो की गरीबी का अभी तक अन्त नही हुआ है और समस्त ससार की कुल जनसख्या के लिए भौतिक एव आध्यात्मिक सम्पदा नही जुटायी जा सकी है, तो इसके लिए पूजीवाद दोषी है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है कि "उत्पादक शक्तियो तथा उत्पादन सम्बधो के बीच बढते हुए टकराव का लाजमी तकाजा है कि मानवजाति ढहते हुए पूजीवादी खोल को फाड कर मानवता द्वारा निर्मित शक्तिशाली उत्पादक शक्तियो को आजाद करे तथा सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए उनका इस्तेमाल करे।"

इस काम को समाजवादी क्रान्ति द्वारा पूरा किया जा रहा है।

दोहराने के प्रश्न

१. साम्राज्यवाद को पूजीवाद की अन्तिम अवस्था क्यो कहा जाता है ?
२. राजकीय-इजारेदार पूजीवाद का सार-तत्व क्या है और उसकी भूमिका क्या है ?
३. पूजीवाद के आम सकट की मौजूदा मजिल की खास विशेषताए क्या हैं ?
४. विश्व पूजीवाद के अन्तर्विरोधो के गहरा होने का पता कैसे चलता है ?

समाजवाद और कम्युनिज्म

अध्याय ९

पूंजीवाद से समाजवाद मे संक्रमण का दौर

१. संक्रमण कालीन दौर की आवश्यकता

उत्पादन की समाजवादी पद्धति के उदय की विशेषताए

कहा जाता है कि पूजीवाद का उदय होता है, जबकि समाजवाद का निर्माण किया जाता है। यह बात केवल शब्दजाल नही है, बल्कि स्पष्ट वास्तविकता है।

पिछले अध्यायो मे हमने देखा है कि पूजीवाद का उदय कैसे हुआ। सर्वप्रथम बडे पूजीवादी प्रतिष्ठानो एव उत्पादन सस्थानो की स्थापना सामन्तकाल म ही हो गयी थी। इन उत्पादन सस्थानो का निर्माण मुनाफे बटोरने के उद्देश्य से किया गया था। उनके मालिको ने तत्कालीन व्यवस्था के किसी नई, भिन्न व्यवस्था से बदले जाने की बात सोची तक न थी। इससे जाहिर होता है कि पूजीवाद का उदय स्वत स्फूर्त ढग से होता है कि उसकी स्थापना किसी सचेत योजना के अनुसार नही की जाती। दासप्रथा एव सामन्तवाद का अर्थात पूजीवाद से पहले की शोपणकारी समाज व्यवस्थाओं का, भी स्वत स्फूर्त ढग से ही उदय हुआ था।

उत्पादन की समाजवादी पद्धति का जन्म बिल्कुल दूसरे ही ढग से होता है। मजदूर वर्ग पूजीवाद की जगह समाजवाद और कम्युनिज्म की स्थापना करने का प्रयास करता है। वह इस लक्ष्य की प्राप्ति समाजवादी क्रान्ति को पूर्ण करके तथा एक नये समाज का निर्माण करके करता है।

समाजवादी क्रान्ति मानवजाति के इतिहास मे सबसे उग्र क्रातिकारी उथल पुथल होती है। यह अन्य सभी क्रातियो से बुनियादी तौर पर भिन्न होती है।

पिछली तमाम क्रातियो के दौरान उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के एक रूप के स्थान पर निजी स्वामित्व के दूसरे रूप को प्रस्थापित किया गया था। समाजवादी क्राति उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व का अत करके उन्ह समाजवादी सम्पत्ति बना देती है।

पिछली तमाम क्रान्तियों ने शोषण के एक रूप के स्थान पर दूसरे रूप की स्थापना की। समाजवादी क्रान्ति मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को जड़-मूल से समाप्त कर देती है। शोषकों के शिकंजे से मजदूरों की मुक्ति और मेहनतकश जनता की आर्थिक गुलामी के खात्मे से शोषक वर्गों का तथा उनके परजीवीपन का खात्मा हो जाता है। साथ ही, श्रम के प्रति घृणा की भावना तथा झूठे नैतिक मूल्यों का भी अन्त हो जाता है।

पिछली किसी भी क्रान्ति ने सामाजिक उत्पादन की अराजकता का खात्मा नहीं किया था। केवल समाजवाद ही सामाजिक उत्पादन के नियोजित संगठन को शुरुआत करता है। सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था योजना के अनुसार विकसित होती है।

राजसत्ता पर जब तक पूंजीपति वर्ग का अधिकार कायम रहता है, तब तक समाजवाद की स्थापना नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि उस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधन पूंजीपतियों के हाथ में बने रहते हैं, जब कि समाजवाद के अन्तर्गत इन साधनों को सार्वजनिक सम्पत्ति होना चाहिए। समाजवाद की स्थापना का काम उसी समय शुरू होता है जब राजसत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथों से निकल कर मजदूर वर्ग के हाथों में पहुंच जाती है।

समाजवादी क्रान्ति इस सवाल को हल करती है। राजसत्ता पर अधिकार करने के बाद, मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग के हाथों से उत्पादन के साधनों को छीन लेता है और उन्हें सार्वजनिक सम्पत्ति बना देता है। तभी जाकर उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों का स्थान उत्पादन के समाजवादी सम्बन्ध लेते हैं।

समाजवादी क्रान्ति अनेक रूप धारण कर सकती है। कुछ परिस्थितियो मे यह सशस्त्र विद्रोह का रूप धारण करती है, जब कि कुछ अन्य परिस्थितियो मे यह शातिपूर्ण साधनो से विजयी हो सकती है। लेकिन सभी परिस्थितियो मे ही समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप, राजसत्ता समाज के नगण्य अल्पमत—पूजीपति वर्ग—के हाथो से निकल कर व्यापक जनसमुदाय, जनता के अधिकाश भाग, का नेतृत्व करने वाले मजदूर वर्ग के हाथो मे आ जाती है।

मार्क्स ने कहा था, "पूजीवादी और कम्युनिस्ट समाज के बीच एक ऐसा समय होता है जिसमे एक समाज का दूसरे मे क्रान्तिकारी रूपान्तरण होता है। इसी के साथ एक राजनीतिक सक्रमण काल भी होता है जिसके दौरान राजसत्ता का रूप सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व के अलावा और कुछ हो ही नही सकता।"

आइए, अब यह देखें कि सक्रमण काल के दौरान राजसत्ता मजदूर वर्ग के हाथो मे ही क्यो होनी चाहिए। पूजीवादी समाज मे मजदूर वर्ग ही एक ऐसा वर्ग होता है जो किसी भी रूप मे उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व से जुडा नही होता। पूजीवाद के अन्तर्गत सर्वहारा इस किस्म के स्वामित्व से वचित होता है। इसलिए वह ही पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण का—ऐसे सक्रमण का जो निजी स्वामित्व का पूर्ण रूप से खात्मा करके सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना करता है—नेतृत्व करने मे सक्षम होता है। मजदूर वर्ग की उस श्रम और सघर्ष के द्वारा दीक्षा होती है जो उसे मजबूत बनाता है, गोलबन्द और सगठित करता है। मार्क्सवाद लेनिनवाद—मजदूर वर्ग का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण—सर्वाधिक विकसित वैज्ञानिक विचारधारा है क्योकि यह सामाजिक विकास के नियमो को उजागर करती है। मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व के बिना समाज का समाजवादी रूपान्तरण नही किया जा सकता। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही कि समाजवाद के निर्माण का काम केवल मजदूर वर्ग का अपना मामला है।

समाज के समाजवादी पुनर्गठन के दौरान समस्त मेहनतकश जनता इस बात का अनुभव करती है कि उसके जीवन्त हित मजदूर वर्ग के हितो के साथ जुडे हुए हैं। यही तथ्य समाजवाद के निर्माण एव कम्युनिज्म की ओर उसके विकास के हित मे मजदूर वर्ग व गैर-सर्वहारा मेहनतकश जनता के बीच—सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख रूप से किसानो के बीच—अटूट एकता स्थापित करने मे सहायक होता है। मजदूरो और किसानो की एकता सर्वहारा अधिनायकत्व का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है। यह एकता, जिसकी अगुवाई मजदूर वर्ग करे, हमारे देश मे समाजवाद के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक शर्त थी। समस्त समाजवादी क्रान्तियो का अनुभव दिखाता है कि हर उस देश मे, जिसने पूजीवाद से नाता

होगे, उनके कुछ अपने विशिष्ट लक्षण होगे तथा यह कि सर्वहारा अधिनायकत्व के विभिन्न रूप प्रकट होगे।

समाजवादी लाइनो पर समाजवादी पुनर्गठन के सोवियत स्वरूप के अलावा अब हमारे सामने एक दूसरा स्वरूप—जनता की लोकशाही—भी है जिसका अमल मे व्यापक रूप से परीक्षण हो चुका है और जो एकदम खरा उतरा है। राजनीतिक सगठन का यह स्वरूप आधुनिक ऐतिहासिक परिस्थितियो मे—जिनकी विशेषता साम्राज्यवाद का कमजोर होना और शक्ति सतुलन का समाजवाद के पक्ष मे परिवर्तित होना है—समाजवादी क्रान्ति के विकास का परिचायक है। ऐतिहासिक क्रम के दौरान कुछ देशो मे जो स्थितिया उत्पन्न हुई हैं, उनका भी यह प्रतिबिम्ब है।

समाजवादी निर्माण मे कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका

समाजवाद के निर्माण के लिए मुख्य शर्त सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व है तथा कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका उसकी सफलता की जमानत है।

कम्युनिस्ट पार्टी—मजदूर वर्ग तथा समस्त मेहनतकश जनता का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त से लैस हिरावल दस्ता है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व इस बात की गारटी करता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व सक्रमण काल मे, तथा उसके बाद समाजवादी समाज के कम्युनिज्म की राह पर बढने के दौर मे भी, समाजवादी निर्माण के पेचीदा मसलो को सुलझाने मे सही और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनायेगा।

कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्गीय नीति पर अविचल रूप से चलती हुई भी गैर पार्टी जनता से नजदीकी तौर पर जुडी रहती है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व इस बात को सुनिश्चित करता है कि मेहनतकश जनता का विशाल समुदाय समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण मे सक्रिय हिस्सा ले।

कम्युनिस्ट पार्टी की शक्ति उसकी एकरसता तथा मजदूर वर्ग एव समाजवाद के हितो के लिए उसकी निष्ठा मे निहित है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व समाजवाद के शत्रुओ के विरुद्ध तथा समाजवादी समाज की रचना के सघर्ष मे इच्छा और अमल की एकता को सुनिश्चित बनाने के लिए परमावश्यक है।

सोवियत सघ और अन्य देशों मे समाजवादी निर्माण के अनुभव ने समाजवादी समाज के निर्माण और विकास मे कम्युनिस्ट पार्टी की फैसलाकुन भूमिका के बारे मे मार्क्सवादी लेनिनवादी शिक्षा को पूरी तरह सही साबित कर दिया है। घटनाओ ने साबित कर दिया है कि मार्क्सवाद लेनिनवाद के क्रान्तिकारी विचारो के प्रति वफादार पार्टी ही समस्त जनता को सगठित कर सकती है और उसे समाजवाद की विजय की ओर आगे ले जा सकती है।

तोड कर विकास के समाजवादी पथ पर कदम बढाये हैं, समाजवाद के लिए संघर्ष मे सफलता के वास्ते मजदूर वर्ग और किसानो की एकता सबसे महत्वपूर्ण तत्व रही है। यह एक विशेष प्रकार की एकता होती है क्योकि इसका उद्देश्य वर्ग भेदो को कायम रखना नही, बल्कि उनको मिटाना होता है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व अल्पमत के ऊपर विशाल बहुमत का अधिनायकत्व होता है। यह शोषको के खिलाफ लक्षित होता है, यह राष्ट्रो एव जनगणो के उत्पीडन के खिलाफ लक्षित होता है तथा इसका उद्देश्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करना होता है। सर्वहारा अधिनायकत्व न केवल मजदूर वर्ग के हितो की, बल्कि समस्त मेहनतकश जनता के हितो की, अभिव्यक्ति करता है, इसका निर्देशन बुनियादी तौर पर हिंसा द्वारा नही, बल्कि कृतित्व एव नये समाजवादी समाज की रचना तथा समाज के दुश्मनो से उसकी उपलब्धियो की रक्षा करने की भावना द्वारा होता है।

मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी के नेतृत्व मे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व, समस्त मेहनतकशो की अगुवाई करता है तथा पुराने समाज की शक्तियो एव परम्पराओ के लिए उन्हें लामबन्द करता है। शोषक वर्गों के प्रतिरोध को चकनाचूर करता हुआ विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करता हुआ सर्वहारा अधिनायकत्व एक नयी, समाजवादी अर्थव्यवस्था का सगठन तथा नेतृत्व करता है। इस आर्थिक निर्माण के दौरान उत्पादन के पुराने पूजीवादी सम्बधो को नष्ट कर दिया जाता है और नये समाजवादी सम्बधो का सृजन किया जाता है। निर्माण की इस प्रक्रिया के दौरान उत्पादन की समाजवादी पद्धति के निर्माण और विकास के लिए आवश्यक नयी उत्पादक शक्तियो का सृजन होता है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति समाजवाद के अनजाने पथ पर मानव जाति का पहला कदम थी। समाजवाद का प्रकाश फैलाने की जिम्मेदारी सोवियत जनता के कधो पर आ गयी थी। सोवियत सत्ता, इतिहास मे मजदूर वर्ग के विजयी अधिनायकत्व के अन्तर्गत राजसत्ता का सर्वप्रथम रूप थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सोवियत सघ द्वारा फासिस्टवाद का विनाश करने के बाद योरप और एशिया के अनेक देशो मे जनता की जनवादी क्रान्तियो ने विजय प्राप्त की, जिससे समाजवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि सभी देशो के लोग लाजमी तौर से समाजवाद तक पहुचेंगे, लेनिन ने सही तौर पर इस बात को पहले ही देख लिया था कि समाजवाद मे सक्रमण के रूप अलग-अलग देशो मे अलग-अलग

होगे, उनके कुछ अपने विशिष्ट लक्षण होगे तथा यह कि सर्वहारा अधिनायकत्व के विभिन्न रूप प्रकट होगे।

समाजवादी लाइनो पर समाजवादी पुनर्गठन के सोवियत स्वरूप के अलावा अब हमारे सामने एक दूसरा स्वरूप—जनता की लोकशाही—भी है जिसका अमल मे व्यापक रूप से परीक्षण हो चुका है और जो एकदम खरा उतरा है। राजनीतिक सगठन का यह स्वरूप आधुनिक ऐतिहासिक परिस्थितियो मे—जिनकी विशेषता साम्राज्यवाद का कमजोर होना और शक्ति सतुलन का समाजवाद के पक्ष मे परिवर्तित होना है—समाजवादी क्रान्ति के विकास का परिचायक है। ऐतिहासिक क्रम के दौरान कुछ देशो मे जो स्थितिया उत्पन्न हुई हैं, उनका भी यह प्रतिबिम्ब है।

समाजवादी निर्माण में कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका

समाजवाद के निर्माण के लिए मुख्य शर्त सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व है तथा कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका उसकी सफलता की जमानत है।

कम्युनिस्ट पार्टी—मजदूर वर्ग तथा समस्त मेहनतकश जनता का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त से लैस हिरावल दस्ता है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व इस बात की गारटी करता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व सक्रमण काल मे, तथा उसके बाद समाजवादी समाज के कम्युनिज्म की राह पर बढने के दौर मे भी, समाजवादी निर्माण के पेचीदा मसलो को सुलझाने मे सही और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनायेगा।

कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्गीय नीति पर अविचल रूप से चलती हुई भी गैर पार्टी जनता से नजदीकी तौर पर जुडी रहती है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व इस बात को सुनिश्चित करता है कि मेहनतकश जनता का विशाल समुदाय समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण मे सक्रिय हिस्सा ले।

कम्युनिस्ट पार्टी की शक्ति उसकी एकरसता तथा मजदूर वर्ग एव समाजवाद के हितो के लिए उसकी निष्ठा मे निहित है। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व समाजवाद के शत्रुओ के विरुद्ध तथा समाजवादी समाज की रचना के सघर्ष मे इच्छा और अमल की एकता को सुनिश्चित बनाने के लिए परमावश्यक है।

सोवियत सघ और अन्य देशो मे समाजवादी निर्माण के अनुभव ने समाजवादी समाज के निर्माण और विकास मे कम्युनिस्ट पार्टी की फैसलाकुन भूमिका के बारे मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा को पूरी तरह सही साबित कर दिया है। घटनाओ ने साबित कर दिया है कि मार्क्सवाद लेनिनवाद के क्रान्तिकारी विचारो के प्रति वफादार पार्टी ही समस्त जनता को सगठित कर सकती है और उसे समाजवाद की विजय की ओर आगे ले जा सकती है।

संक्रमण काल के दौरान सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र और वर्ग

समाज के समाजवादी रूपान्तरण का काम हाथ मे लेने पर मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रूप से पूंजीपतियो और भूस्वामियो के हाथो में मौजूद उत्पादन के बुनियादी साधनो का समाजीकरण करता है। बडे उद्योगो, यातायात, बैंको और विदेशी व्यापार को हाथ मे लेकर वह अर्थव्यवस्था मे सर्वोच्च महत्व का स्थान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार समाजवादी क्षेत्र का उदय होता है। सक्रमण काल के दौरान, अर्थव्यवस्था मे इस समाजवादी क्षेत्र का नेतृत्वकारी स्थान होता है। किन्तु, कुछ समय तक यह अकेला, एक मात्र, क्षेत्र नहीं होता, न ही यह प्रधान क्षेत्र होता है।

लेनिन ने बताया था कि सोवियत सत्ता के शुरू के वर्षों में, सोवियत अर्थव्यवस्था मे पाच विभिन्न सामाजिक आर्थिक क्षेत्र थे :

(१) पितृसत्तात्मक किसान अर्थव्यवस्था,
(२) छोटे पैमाने का माल उत्पादन,
(३) निजी पूंजीवाद,
(४) राजकीय पूंजीवाद,
(५) समाजवाद।

पितृसत्तात्मक अर्थव्यवस्था मे, छोटे छोटे किसान परिवार, मुख्यत प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को चलाते थे, अर्थात, मुख्यत वे अपने निजी उपभोग के लिए वस्तुओ का उत्पादन करते थे।

छोटे पैमाने का माल-उत्पादन मुख्यत मझोले किसानो के परिवार करते थे। मडी मे बेचने के लिए अनाज का अधिकाश भाग वे ही पैदा करते थे। इस क्षेत्र मे वे दस्तकार भी आ जाते हैं जो स्वय अपना काम करते थे और वेतन पर अन्य मजदूरो को नही रखते थे।

निजी पूंजीवाद की नुमाइन्दगी शोषक वर्गों के सबसे बडे भाग, धनी किसान—कुलक—और लघु औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिक करते थे। ये लोग वेतन पर मजदूरो को नौकर रखते थे। इनके अलावा व्यापारी भी इस श्रेणी मे आते थे।

राजकीय पूंजीवाद का अस्तित्व मुख्यत विदेशी पूंजीपतियो को दी गई रियायतो एव विदेशियो के प्रतिष्ठानों, खानो, जगलो के टुकडो तथा भूमि पट्टो के रूप मे था। राजकीय पूंजीवाद सोवियत सघ मे जडें नही जमा पा और अर्थव्यवस्था मे उसकी भूमिका बहुत मामूली ही थी।

समाजवादी क्षेत्र मे राज्य द्वारा हस्तगत किये गये कारखाने, यातायात, सचार के साधन, बैंक, तथा राजकीय फार्म आते थे। खेतीबारी के मामले

सामूहिक फार्म भी थे। किन्तु अनेक वर्षों तक किसानों के निजी खेतो के समुद्र में ये छोटे-छोटे टापुओं की तरह ही थे।

योरप और एशिया के अन्य समाजवादी देशों मे भी सक्रमण कालीन अर्थव्यवस्था मे विभिन्न क्षेत्र रहे हैं। क्षेत्रो की सख्या और उनका महत्व आर्थिक विकास के स्तर तथा देश विशेष की ऐतिहासिक विशेषताओ पर निर्भर होते हैं।

सक्रमण काल मे सामाजिक अर्थव्यवस्था के मुख्य रूप हैं : समाजवाद, छोटे पैमाने का माल उत्पादन तथा पूजीवाद। इन्ही के अनुरूप तीन मुख्य वर्ग-शक्तिया हैं : मजदूर वर्ग, किसान तथा पूजीपति। छोटे पैमाने का माल उत्पादन पूजीवाद के लिए उर्वरा भूमि का काम करता है और उससे लगातार पूजीवादी तत्वो का उदय होता है।

सक्रमण काल के दौरान मजदूर वर्ग और पूजीपति वर्ग के बीच संघर्ष होता है। मजदूर वर्ग विशाल किसान जनसमुदाय को पूजीपति वर्ग के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास करता है। वह पूजीपति वर्ग एव पूजीवाद के खिलाफ तथा समाजवादी समाज के निर्माण के सघर्ष में किसानो के साथ अटूट एकता स्थापित करता है।

सक्रमण काल पूजीवाद—जो पराजित तो हो चुका होता है मगर नष्ट नही होता है, और समाजवाद—जो नवोदित और शुरू-शुरू में कमजोर होता है—के बीच सघर्ष का काल होता है। यह जीवन-मरण का सघर्ष होता है, क्योंकि इसके दौरान ही यह निश्चित होता है कि "कौन किसको परास्त करेगा।"

सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशों का ऐतिहासिक अनुभव दिखाता है कि यह संघर्ष विविध रूप ग्रहण करता है। किन्तु बहुक्षेत्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के दौरान अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में विजय हमेशा समाजवाद को प्राप्त होती है।

संक्रमण काल के मुख्य काम

क्रान्ति के विजयी होने तथा अर्थव्यवस्था मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लेने के बाद, समाजवादी राज्य के सामने भारी जिम्मेदारियां आ जाती हैं। उसकी मुख्य समस्या सक्रमण काल की बहुक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को समाजवादी अर्थव्यवस्था मे रूपान्तरित करना होता है।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व जिस आर्थिक नीति का अनुसरण करता है, वह इस समस्या को हल करने मे सहायक होती है। समाजवादी राज्य का निर्देशन समाजवाद के आर्थिक नियमो द्वारा होता है और उसकी आर्थिक नीति उसके द्वारा उठाये जाने वाले समस्त आर्थिक कदमों का योग होती है।

पूजीवाद से समाजवाद मे संक्रमण के सम्पूर्ण काल के लिए सर्वहारा

अधिनायकत्व की नीतियो के गहन वैज्ञानिक आधार को लेनिन ने तैयार किया था। समाजवादी समाज के निर्माण की लेनिन की योजना मे तीन कडिया है। ये कडिया हैं—देश का औद्योगीकरण, कृषि का सहकारीकरण, और सास्कृतिक क्रान्ति। ये रूपान्तरण समाजवाद के लिए तक्नीकी एवं भौतिक आधार तैयार करते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के समाजवादी सम्बधो की पूर्ण विजय को सुनिश्चित बनाते हैं।

समाजवाद के पथ की ओर अग्रसर सभी देशो के सामने सक्रमण काल के दौरान उपरोक्त मुख्य काम पेश होते हैं। इनमे से हर कार्य का आधार तथा उसके कार्यान्वयन के ठोस तरीके प्रत्येक देश के विकास के स्तर तथा उसकी ऐतिहासिक विशेषताओ पर निर्भर करते हैं।

२. समाजवाद के निर्माण के लिए लेनिन की योजना और उसका कार्यान्वयन

सोवियत सघ मे समाजवादी औद्योगीकरण

अक्तूबर क्रान्ति के समय लेनिन ने सबसे पहले राजनीतिक सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने का लक्ष्य बनाया था तथा उसे प्राप्त करने के बाद—उसी की सहायता से—विकसित पूजीवादी देशो को आर्थिक प्रगति की दौड मे पकड लेने तथा उनसे आगे निकल जाने का लक्ष्य सामने रखा था। बाद मे, सोवियत सत्ता के अतर्गत, यही कर्तव्य सोवियत सघ का मुख्य आर्थिक कर्तव्य बन गया।

सोवियत सघ मे समाजवाद के निर्माण के लिए आवश्यक था कि सबसे पहले प्रविधि और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे उसके पिछडेपन को दूर किया जाय तथा पूजीवादी देशो मे उत्पादक शक्तियो का जितना विकास हुआ है, उससे आगे निकल जाया जाय। इसलिए एक शक्तिशाली समाजवादी उद्योग की स्थापना करना तथा समाजवादी लाइनो पर देश का औद्योगीकरण करना आवश्यक हो गया था। लेनिन ने जोर देकर कहा था कि बडे पैमाने का मशीन उद्योग ही, जो कृषि का भी पुनर्गठन करने मे सक्षम हो, समाजवाद के लिए भौतिक आधार बन सकता था।

उत्पादक शक्तियो के विकास के लिए जरूरी है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ की उत्पादक साज-सज्जा का विस्तार हो तथा नई, आधुनिकतम मशीनरी का इस्तेमाल करके उसमे सुधार किया जाय। इजीनियरिंग उद्योग द्वारा आधुनिक मशीनो, खरादो, औजारो, यन्त्रो का निर्माण किया जाता है। इसलिए, अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ—उद्योग, कृषि तथा यातायात—के तकनीकी पुनर्सज्जीकरण के लिए इजीनियरिंग उद्योग का विकास करना एव

फैसलाकुन शर्त है। इसी कारण इजीनियरिंग उद्योग को उचित ही औद्योगीकरण की रीढ माना जाता है।

मशीनो तथा साज-सज्जा को तैयार करने के लिए धातुओ, ईंधन, विद्युत शक्ति, रासायनिक उत्पादो तथा इमारती सामान की आवश्यकता होती है। फलतः धातु शोधन, ईंधन निकालना (कोयला, तेल, गैस), रासायनिक, विद्युत एव इमारती सामान (सीमेण्ट, मिट्टी मिले हुए मसाले, आदि) उद्योग के लिए निर्णायक हो गये हैं। ये तमाम शाखाए तथा इजीनियरिंग मिल कर भारी उद्योग कहलाते हैं। भारी उद्योग की वृद्धि कृषि के सफल विकास, उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे लगातार बढोतरी तथा रहन सहन के स्तर को योजनाबद्ध तरीके से ऊपर उठाने के आधार का काम करती है।

किसी देश की आर्थिक स्वतत्रता को सुनिश्चित करने तथा उसकी सुरक्षात्मक क्षमता को मजबूत बनाने के लिए उसका औद्योगीकरण आवश्यक है। बडे उद्योग-धधो की वृद्धि मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह पूजीवादी तत्वो पर विजय प्राप्त करने की जमानत है तथा करोडो किसानो पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व को मजबूत बनाने के लिए जरूरी है।

सोवियत सघ मे समाजवादी समाज का निर्माण करने के उद्देश्य से लक्षित कम्युनिस्ट पार्टी की आम नीति का आधार देश को समाजवादी औद्योगीकरण की ओर अग्रसर करना था।

घरेलू एव अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने यह आवश्यक बना दिया था कि सोवियत सघ का, जितनी जल्दी सम्भव हो, समाजवादी औद्योगीकरण किया जाय। उस समय देश मे व्याप्त लघु कृषि-अर्थव्यवस्था कम्युनिज्म की अपेक्षा पूजीवाद के लिए अधिक अनुकूल आधार प्रस्तुत करती थी। केवल दो ही विकल्प थे: या तो कृषि समेत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को उन्नत टेक्नालॉजी पर खडा किया जाय और बडे पैमाने पर मशीन उत्पादन की ओर आगे बढा जाय, या पूजीवाद की ओर वापस लौट जाया जाय। सोवियत सघ मे न सिर्फ समाजवाद की विजय, बल्कि देश की और अधिक आजादी भी बडे पैमाने के औद्योगीकरण पर निर्भर थी।

इतने बडे देश का औद्योगीकरण, और वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से इतने कम समय के भीतर, भारी कठिनाइयो से भरपूर काम था। बडे-बडे आधुनिक प्रतिष्ठानो को खडा करने मे कई वर्ष लग जाते हैं। इस पूरी अवधि मे पूजी की भारी रकमो की इनमे खपत होती है और बाद मे ही, जब ये प्रतिष्ठान चालू हालत मे आ जाते है, इनकी उपयोगिता सिद्ध होती है। इसलिए औद्योगीकरण

फैसलाकुन शर्त है। इसी कारण इजीनियरिंग उद्योग को उचित ही औद्योगीकरण की रीढ माना जाता है।

मशीनो तथा साज-सज्जा को तैयार करने के लिए धातुओ, ईंधन, विद्युत शक्ति, रासायनिक उत्पादो तथा इमारती सामान की आवश्यकता होती है। फलत धातु शोधन, ईंधन निकालना (कोयला, तेल, गैस), रासायनिक, विद्युत एव इमारती सामान (सीमेण्ट, मिट्टी मिले हुए मसाले, आदि) उद्योग के लिए निर्णायक हो गये है। ये तमाम शाखाए तथा इजीनियरिंग मिल कर भारी उद्योग कहलाते हैं। भारी उद्योग की वृद्धि कृषि के सफल विकास, उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे लगातार बढोतरी तथा रहन सहन के स्तर को योजनाबद्ध तरीके से ऊपर उठाने के आधार का काम करती है।

किसी देश की आर्थिक स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने तथा उसकी सुरक्षात्मक क्षमता को मजबूत बनाने के लिए उसका औद्योगीकरण आवश्यक है। बडे उद्योग-धधो की वृद्धि मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह पूजीवादी तत्वो पर विजय प्राप्त करने की जमानत है तथा करोडो किसानो पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व को मजबूत बनाने के लिए जरूरी है।

सोवियत सघ मे समाजवादी समाज का निर्माण करने के उद्देश्य से लक्षित कम्युनिस्ट पार्टी की आम नीति का आधार देश को समाजवादी औद्योगीकरण की ओर अग्रसर करना था।

घरेलू एव अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने यह आवश्यक बना दिया था कि सोवियत सघ का, जितनी जल्दी सम्भव हो, समाजवादी औद्योगीकरण किया जाय। उस समय देश मे व्याप्त लघु कृषि अर्थव्यवस्था कम्युनिज्म की अपेक्षा पूजीवाद के लिए अधिक अनुकूल आधार प्रस्तुत करती थी। केवल दो ही विकल्प थे : या तो कृषि समेत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को उन्नत टेक्नालॉजी पर खडा किया जाय और बडे पैमाने पर मशीन उत्पादन की ओर आगे बढा जाय, या पूजीवाद की ओर वापस लौट जाया जाय। सोवियत सघ मे न सिर्फ समाजवाद की विजय, बल्कि देश की और अधिक आजादी भी बडे पैमाने के औद्योगीकरण पर निर्भर थी।

इतने बडे देश का औद्योगीकरण, और वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से इतने कम समय के भीतर, भारी कठिनाइयो से भरपूर काम था। बडे-बडे आधुनिक प्रतिष्ठानो को खडा करने मे कई वर्ष लग जाते हैं। इस पूरी अवधि मे पूजी की भारी रकमो की इनम खपत होती है और बाद मे ही, जब ये प्रतिष्ठान चालू हालत मे आ जाते हैं, इनकी उपयोगिता सिद्ध होती है। इसलिए औद्योगीकरण

अधिनायकत्व की नीतियो के गहन वैज्ञानिक आधार को लेनिन ने तैयार किया था। समाजवादी समाज के निर्माण की लेनिन की योजना में तीन कडिया हैं। ये कडिया हैं—देश का औद्योगीकरण, कृषि का सहकारीकरण, और सास्कृतिक क्रान्ति। ये रूपान्तरण समाजवाद के लिए तक्नीकी एव भौतिक आधार तैयार करते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के समाजवादी सम्बधो की पूर्ण विजय को सुनिश्चित बनाते हैं।

समाजवाद के पथ की ओर अग्रसर सभी देशो के सामने सक्रमण काल के दौरान उपरोक्त मुख्य काम पेश होते हैं। इनमे से हर कार्य का आधार तथा उसके कार्यान्वियन के ठोस तरीके प्रत्येक देश के विकास के स्तर तथा उसकी ऐतिहासिक विशेषताओ पर निर्भर करते हैं।

२. समाजवाद के निर्माण के लिए लेनिन की योजना और उसका कार्यान्वियन

सोवियत सघ मे समाजवादी औद्योगीकरण

अक्तूबर क्रान्ति के समय लेनिन ने सबसे पहले राजनीतिक सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने का लक्ष्य बनाया था तथा उसे प्राप्त करने के बाद—उसी की सहायता से—विकसित पूजीवादी देशो को आर्थिक प्रगति की दौड मे पकड लेने तथा उनसे आगे निकल जाने का लक्ष्य सामने रखा था। बाद मे, सोवियत सत्ता के अतर्गत, यही कर्तव्य सोवियत सघ का मुख्य आर्थिक कर्तव्य बन गया।

सोवियत सघ मे समाजवाद के निर्माण के लिए आवश्यक था कि सबसे पहले प्रविधि और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे उसके पिछडेपन को दूर किया जाय तथा पूजीवादी देशो मे उत्पादक शक्तियो का जितना विकास हुआ है, उससे आगे निकल जाया जाय। इसलिए एक शक्तिशाली समाजवादी उद्योग की स्थापना करना तथा समाजवादी लाइनो पर देश का औद्योगीकरण करना आवश्यक हो गया था। लेनिन ने जोर देकर कहा था कि बडे पैमाने का मशीन उद्योग ही, जो कृषि का भी पुनर्गठन करने मे सक्षम हो, समाजवाद के लिए भौतिक आधार बन सकता था।

उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए जरूरी है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ की उत्पादक साज-सज्जा का विस्तार हो तथा नई, आधुनिकतम मशीनरी का इस्तेमाल करके उसमें सुधार किया जाय। इजीनियरिंग उद्योग द्वारा आधुनिक मशीनो, खरादो, औजारो, यत्रो का निर्माण किया जाता है। इसलिए, अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ—उद्योग, कृषि तथा यातायात—के तक्नीकी पुनर्सज्जीकरण के लिए इजीनियरिंग उद्योग का विकास करना एव

फैसलाकुन शर्त है। इसी कारण इजीनियरिंग उद्योग को उचित ही औद्योगीकरण की रीढ माना जाता है।

मशीनो तथा साज-सज्जा को तैयार करने के लिए धातुओ, ईंधन, विद्युत शक्ति, रासायनिक उत्पादो तथा इमारती सामान की आवश्यकता होती है। फलत. धातु शोधन, ईंधन निकालना (कोयला, तेल, गैस), रासायनिक, विद्युत एव इमारती सामान (सीमेण्ट, मिट्टी मिले हुए मसाले, आदि) उद्योग के लिए निर्णायक हो गये हैं। ये तमाम शाखाए तथा इजीनियरिंग मिल कर भारी उद्योग कहलाते हैं। भारी उद्योग की वृद्धि कृपि के सफल विकास, उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे लगातार वढोतरी तथा रहन-सहन के स्तर को योजनावद्ध तरीके से ऊपर उठाने के आधार का काम करती है।

किसी देश की आर्थिक स्वतत्रता को सुनिश्चित करने तथा उसकी सुरक्षात्मक क्षमता को मजबूत बनाने के लिए उसका औद्योगीकरण आवश्यक है। बडे उद्योग-धधो की वृद्धि मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह पूजीवादी तत्वो पर विजय प्राप्त करने की जमानत है तथा करोडो किसानो पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व को मजबूत बनाने के लिए जरूरी है।

सोवियत सघ मे समाजवादी समाज का निर्माण करने के उद्देश्य से लक्षित कम्युनिस्ट पार्टी की आम नीति का आधार देश को समाजवादी औद्योगीकरण की ओर अग्रसर करना था।

घरेलू एव अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने यह आवश्यक बना दिया था कि सोवियत सघ का, जितनी जल्दी सम्भव हो, समाजवादी औद्योगीकरण किया जाय। उस समय देश मे व्याप्त लघु कृपि-अर्थव्यवस्था कम्युनिज्म की अपेक्षा पूजीवाद के लिए अधिक अनुकूल आधार प्रस्तुत करती थी। केवल दो ही विकल्प थे : या तो कृपि समेत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को उन्नत टेक्नालॉजी पर खडा किया जाय और वडे पैमाने पर मशीन उत्पादन की ओर आगे बढा जाय, या पूजीवाद की ओर वापस लौट जाया जाय। सोवियत सघ मे न सिर्फ समाजवाद की विजय, बल्कि देश की और अधिक आजादी भी वडे पैमाने के औद्योगीकरण पर निर्भर थी।

इतने बडे देश का औद्योगीकरण, और वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से इतने कम समय के भीतर, भारी कठिनाइयो से भरपूर काम था। वडे-वडे आधुनिक प्रतिष्ठानो को खडा करने मे कई वर्ष लग जाते है। इस पूरी अवधि मे पूजी की भारी रकमो की इनमे खपत होती है और बाद मे ही, जब ये प्रतिष्ठान चालू हालत मे आ जाते है, इनकी उपयोगिता सिद्ध होती है। इसलिए औद्योगीकरण

के लिए जरूरी हो जाता है कि भौतिक साधनो के एक बडे भाग को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से एक लम्बे अर्से के लिए अलग खीच लिया जाय।

सोवियत सघ का औद्योगीकरण, बिना किसी विदेशी सहायता के स्वय अपने राष्ट्रीय सचय और बचत के आधार पर, किया गया। देश मे स्थापित सोवियत प्रणाली के फलस्वरूप उसे विदेशी और देशी महाजनो को व्याज देना पडा। मजदूरो व किसानो के श्रम के फलो को पूंजीपतियो, भूस्वामियो और शोषक देशो के हवाले नही करना पडा। भौतिक मूल्यो को उत्पादन की अराजकता और सकटो की बलिवेदी पर नही चढा देना पडा। सोवियत सरकार ने श्रम उत्पादकता को बढाने, लागत-व्यय को घटाने, खर्च मे सख्ती से किफायत बरतने और श्रम-अनुशासन लागू करने के लिए अनवरत सघर्ष शुरू किया। इस प्रकार जितनी भी रकम का सचय हुआ, उसे सोवियत सरकार ने देश के औद्योगीकरण के लिए इस्तेमाल किया।

सोवियत सघ ने अपनी प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ (१९२९-४१) के परिणामस्वरूप बडे पैमाने के मशीन उद्योग के निर्माण मे सफलता प्राप्त की। औद्योगिक उत्पादन मे सोवियत सघ ने योरप मे प्रथम तथा सारे ससार मे द्वितीय (अमरीका के बाद) स्थान प्राप्त कर लिया। सोवियत देश आर्थिक दृष्टि से समस्त पूजीवादी देशो से स्वतत्र हो गया। सोवियत सघ की सुरक्षात्मक क्षमता अकूत रूप से बढ गयी। सोवियत सघ का औद्योगीकरण मजदूर वर्ग तथा समस्त जनता की एक महान उपलब्धि थी, जिन्होने कोई भी साधन और प्रयास उठा नही रखा और देश को पिछडेपन से उबारने के लिए सचेत रूप से कुर्बानिया की।

मजदूर वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार के बाद सर्वाधिक कठिन कार्य—कृषि का समाजवादी पुनर्गठन

समाजवादी समाज के निर्माण से पहले जरूरी है कि कृषि का समाजवादी पुनर्गठन अवश्य ही कर लिया जाय। सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के बाद मजदूर वर्ग के सामने लाजमी तौर पर यह काम आ जाता है कि वह युगो पुरानी कृषि समस्या को हल करे। सभी किसान समान और एक ढग के नही होते। एक छोर पर गरीब किसान होते हैं जो मजदूर वर्ग के स्वाभाविक सहयोगी होते हैं, दूसरी ओर ग्रामीण पूजीपति वर्ग के लोग अर्थात धनी किसान (कुलक) होते हैं। किसानो का अधिकाश भाग मझोले किसानों का होता है।

लेनिन ने इस बात पर जोर दिया था कि पूजीपति वर्ग को ध्वस्त करने के बाद मजदूर वर्ग मझोले किसानो के प्रति नीति अपनाते समय किसान के—

जोकि मजदूर भी होता है और साथ ही अपनी जोतने वाली जमीन का मालिक भी होता है—दिमाग मे मौजूद दो मन्सूबो पर ध्यान रखे। लेनिन ने लिखा था कि यह भेद ही समाजवाद का मूल तत्व था।

मजदूर वर्ग का कर्तव्य है कि किसानों के छोटे-छोटे निजी खेतों को बडे पैमाने के सामूहिक समाजवादी प्रतिष्ठानो मे परिवर्तित करके मेहनतकश किसानो के बहुत व्यापक समुदाय को समाजवादी निर्माण के काम में शरीक करे। छोटे-छोटे निजी खेतो को बडे सामूहिक फार्मों मे मिलाने के बाद ही पूजीवाद की जडो को खोद फेंकना सम्भव हो सकता है, क्योकि जब तक छोटे पैमाने का उत्पादन कायम रहता है तब तक ये जडें भी कायम रहेगी। केवल इस तरह ही किसानो के विशाल बहुमत के लिए ऐसी राह खुलती है जिस पर चल कर वे अपनी गरीबी और दयनीय दशा से मुक्ति हासिल कर सकें तथा अत्यधिक उत्पादनकारी श्रम एव समृद्ध व सांस्कृतिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

मजदूर वर्ग द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के बाद, उसके सामने सबसे कठिन काम किसानो के बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतो का समाजवादी रूपान्तरण करना होता है। सोवियत सघ मे समाजवाद के निर्माण का भविष्य बहुत कुछ इस महत्वपूर्ण समस्या के हल से जुडा हुआ था। समाजवाद का निर्माण करने वाले अन्य देशों के लिए भी इस समस्या का हल तलाश करना उतना ही महत्वपूर्ण है।

कृषि का समाजवादी रूपान्तरण उसी तरह किया जा रहा है जैसी कि लेनिन ने योजना बनायी थी। लेनिन की सहकारी योजना निम्नलिखित लाइनो पर तैयार की गयी है : समाजवादी राज्य ऐसे शक्तिशाली उद्योग की स्थापना करता है जो कृषि को आधुनिक मशीनरी मुहैया करता है। किसानो को धीरे-धीरे सामूहिक श्रम की आदतो मे दीक्षित किया जाता है—इसकी शुरूआत सप्लाई एव क्रय-विक्रय की बहुत साधारण सहकारी समितियो के गठन से की जाती है। सारी आवश्यक शर्तें जब पूरी हो जाती है, तो बिखरे हुए निजी खेतो को मिला कर बडे-बडे समाजवादी उत्पादक सहकारो—सामूहिक फार्मों—की स्थापना की जाती है। इस सक्रमण की मुख्य शर्त यह है कि मजदूर वर्ग का नेतृत्व कायम हो चुका हो तथा भारी समाजवादी उद्योग का विकास हो चुका हो, ताकि कृषि को तकनीकी रूप से लैस किया जा सके।

समाजवादी राज्य बडे-बडे समाजवादी कृषि सस्थानो की स्थापना करता है। वह बडे बडे राजकीय कृषि सस्थानो की स्थापना करता है—सोवियत सघ मे इन्हे राजकीय फार्म कहा जाता है; दूसरे समाजवादी देशो मे इन्हे सरकारी फार्म या जन-फार्म कहा जाता है। राज्य कृषि के सहकारी सस्थानो की स्थापना मे भी मदद करता है : सोवियत सघ मे ये सहकारी फार्म होते हैं, अन्य समाजवादी देशों में इनका रूप विभिन्न प्रकार के उत्पादक सहकारी सघो का

है। समाजवादी राज्य की ओर से इनको हर प्रकार की सम्भव भौतिक सहायता उपलब्ध की जाती है। किसान जनता अपने अनुभव से बडे पैमाने के समाजवादी उत्पादन के लाभो की कायल हो जाती है।

लेनिन ने लिखा था कि *व्यक्तिगत खेती से सामूहिक खेती मे परिवर्तन स्वेच्छा से होना चाहिए। किसानो को स्वय अपने अनुभव के आधार पर यह सीखना चाहिए कि सामूहिक खेती मे निजी खेती की अपेक्षा अधिक लाभ है।* स्वेच्छा का सिद्धान्त मेहनतकश किसानो के बारे मे बरती जाने वाली किसी भी जबर्दस्ती को अस्वीकार करता है। समूहिक खेती मे सक्रमण के लिए आवश्यक यह एक सर्वोच्च सिद्धान्त है। कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी तथा सगठनकारी भूमिका और सामूहिक फार्मों मे किसानों को सगठित करने मे स्वेच्छा के सिद्धान्त का सख्ती से पालन, कृषि के समाजवादी पुनर्गठन मे सफलता के लिए जमानत है। लेनिन की सहकारी योजना ही युगो पुरानी कृषि समस्या का वास्तविक हल है।

सोवियत सघ मे समाजवादी औद्योगीकरण की पहली बडी सफलताओ ने बडे पैमाने के कृषि उत्पादन के लिए रास्ता तैयार कर दिया। ग्रामीण अचलो मे नया साज सामान, जिनमे ट्रैक्टर और पेचीदा आधुनिक कृषि यत्र आदि भी शामिल थे, पहुचने लगे। राजकीय फार्मों तथा मशीन व ट्रैक्टर केन्द्रो का पूरे देश मे जाल बिछाया गया। राजकीय फार्मों ने कृषि मे बडे पैमाने पर यन्त्रीकृत उत्पादन की उपयोगिता को पूरी तरह साबित कर दिया। राज्य के स्वामित्व मे स्थापित मशीन एव ट्रैक्टर केन्द्र, कृषि के सामूहिकीकरण मे तथा सामूहिक फार्मों को सहायता पहुचाने मे बहुत ही महत्वपूर्ण साधन बने।

कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे *तथा मजदूर वर्ग से पूरे तौर पर व हर प्रकार की सहायता प्राप्त करके, सोवियत सघ के किसानो ने समाजवाद का पथ अपनाया।* लाखो छोटे छोटे किसान स्वेच्छा से सामूहिक फार्मो मे एकता बद्ध हो गये।

कृषि के सामूहिकीकरण से ग्रामीण अचल हमेशा हमेशा के लिए कुलको के (धनी किसानो के) आधिपत्य से, वर्गीय स्तरीकरण, तबाही और बर्बादी से मुक्त हो गये। सामूहिक फार्मों मे छोटे और मझोले किसानो के बीच का भेद समाप्त हो गया। ग्रामीण अचलो से *नगरो की ओर काम की तलाश मे लाखो बदनसीब लोगों के निरन्तर पलायन का सिलसिला खत्म हो गया। इस प्रकार बेरोजगारी को बढाने वाला एक मुख्य स्रोत बन्द हो गया तथा* १६३१ के आते आते बेरोजगारी का सोवियत सघ से नाम निशान तक मिट गया।

ग्रामीण अचलो के समाजवादी पुनर्गठन से कृषि का सामाजिक स्वरूप उद्योग के ही समान हो जाता है।

समाजवादी कृषि की एक विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत वैज्ञानिक उपलब्धियो का इस्तेमाल जनता के हित मे किया जाता है। कृषि-विज्ञान के नियमो का तत्परता से पालन किया जाता है, फसलो को सही ढग से अदल-बदल कर उगाया जाता है, बीजो तथा पशु धन मे सुधार किया जाता है। कृषि के अधिकाधिक यन्त्रीकरण से ग्रामीण अचलो मे ऐसे व्यवसायो का उदय होता है, जिनको पहले कोई जानता भी नही था—मिसाल के लिए, ट्रैक्टर और कम्बाइन चालक, मेकैनिक, ड्राइवर, कृषि वैज्ञानिक तथा पशु विशेषज्ञ, आदि-आदि के काम।

ग्रामीण अचलो मे उत्पादन के समाजवादी सम्बधो की सफलता से, कृषि एव पशु पालन क्षेत्र मे तकनीकी प्रगति से, और अन्तत', देहातो मे विद्युतीकरण से—खेत मजदूर, औद्योगिक मजदूरो के निकटतर आ जाते है। कृषि उत्पादन की वस्तुए—गेहू और रुई, दूध तथा मास—केवल सामूहिक फार्म के किसानो का श्रम ही नही होते, बल्कि मजदूरो—ट्रैक्टर बनाने वालो, तेल-मैनो, रसायन-विज्ञानियो और रेल मजदूरो—के श्रम का फल भी होते है।

ग्रामीण अचलो मे समाजवाद की विजय से देहात और नगर के बीच का युगो पुराना अन्तर समाप्त हो जाता है तथा कृषि और उद्योग के दरम्यान और अधिक एकीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सास्कृतिक क्रान्ति

समाज के समाजवादी रूपान्तरण का अर्थ केवल भारी मशीन उद्योग व कृषि मे समाजवादी उत्पादन पद्धति की स्थापना ही नही, बल्कि संस्कृति के क्षेत्र मे भी गहरी क्रान्ति को पूरा करना होता है।

समाजवाद के निर्माण का तकाजा है कि देश की विशाल जनसख्या में सस्कृति का बडे पैमाने पर विकास किया जाय। बडे पैमाने के समाजवादी उत्पादन मे विज्ञान एव इन्जीनियरिंग की आधुनिकतम उपलब्धियो का इस्तेमाल किया जाता है, इसलिए उसे हुनरमन्द मजदूरो, इन्जीनियरों तथा तकनीशियनो की आवश्यकता होती है। उच्चस्तरीय वैज्ञानिक विकास के बिना उद्योग और कृषि के तेज विकास तथा अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ मे निरन्तर तकनीकी प्रगति की बात सोची तक नही जा सकती।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के विस्तार मे सास्कृतिक क्रान्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है तथा आर्थिक रूप से भी इसका योगदान निर्णायक होता है, क्योंकि यह समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति अर्थात जनसाधारण को भी बदल डालती है।

सास्कृतिक क्रान्ति का अर्थ सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख रूप से यह है कि अज्ञान का—जोकि पूजीवाद की विरासत होता है—तेजी के साथ खात्मा कर

दिया जाय। थोडे समय के भीतर ही जनता का आम शैक्षिक स्तर ऊंचा उठ जाता है। अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा लागू की जाती है, जिसका स्तर अलग-देशो की ठोस परिस्थितियो पर निर्भर होता है। विद्यालय तथा दैनिक जीवन के बीच, एव अमल और उत्पादन के बीच, निकट सम्बध स्थापित किये जाते हैं।

सास्कृतिक क्रान्ति का यह भी अर्थ है कि अब मेहनतकश जनता को राजनीतिक, तकनीकी तथा सास्कृतिक शिक्षा के लिए अत्यन्त उपयुक्त अवसर निर्मित होते हैं। करोडो मजदूर और किसान व्यवस्थित रूप से—सामान्य तथा विशेष दोनो ही क्षेत्रों मे—अपने ज्ञान को बढाते है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के सास्कृतिक तथा शैक्षिक केन्द्रो, स्कूलो, वयस्कों की पाठशालाओ, लेक्चर केन्द्रो, पुस्तकालयो तथा क्लबो आदि का सगठन किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, सास्कृतिक क्रान्ति के दौरान माध्यमिक एव उच्च विशेष शिक्षा का बडी ही तेजी के साथ विस्तार होता है। मेहनतकश जनता के बीच से पैदा होने वाला नया बुद्धिजीवी वर्ग आम मजदूरो तथा किसानो से निकट से जुडा होता है और वह पूरी लगन के साथ समाजवाद के उद्देश्य की सेवा करता है।

सास्कृतिक क्रान्ति के पूरे होने से तथा जनता के आम शैक्षिक, सास्कृतिक तथा तकनीकी स्तर के ऊचा उठने से सभी मेहनतकश लोगो को सामाजिक जीवन के प्रबन्ध मे सक्रिय भागीदार बनाना सम्भव हो जाता है। मजदूर वर्ग, किसानो तथा बुद्धिजीवियो की क्रियाशीलता बढ जाती है और वे प्रतिष्ठानो, सस्थानो एव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध मे अधिकाधिक भाग लेने लगते हैं।

समाज का समाजवादी रूपान्तरण हो जाने से एकमात्र वैज्ञानिक एव प्रगतिशील दर्शन—मार्क्सवाद-लेनिनवाद—का प्रभुत्व मजबूती से कायम हो जाता है। इस विचारधारा का धार्मिक अन्धविश्वास और किसी भी प्रकार के झूठे ढकोसलो से कोई मेल नही है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा विज्ञान को बडे पैमाने पर तथा तेज गति से विकसित करने के लिए, प्रकृति के समस्त भेदो को हासिल करने के लिए तथा उसकी अनन्त शक्तियों को सफलता के साथ इस्तेमाल करने के लिए एक कुन्जी है।

समाजवाद विज्ञान का विकास करता है तथा सामाजिक जीवन मे उसको अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। समाजवादी सस्कृति, जिसका स्वरूप सही मानो मे जनप्रिय होता है, तेजी से फलने फूलने लगती है। समाजवादी देशो के समस्त जनगण एक नयी सस्कृति के विकास मे हिस्सा लेते हैं। इस सस्कृति का स्वरूप राष्ट्रीय तथा सार-तत्व समाजवादी होता है।

सास्कृतिक क्रान्ति सम्पन्न होने के फलस्वरूप करोडों ऐसे लोग सास्कृतिक

विकास के कार्यक्रमो मे सक्रिय भाग लेने लगे हैं जिन्हे पहले शिक्षा से ही वंचित रखा गया था। अब विज्ञान और संस्कृति के समस्त स्रोत मेहनतकश जनता के लिए उपलब्ध हो चुके हैं। समाजवाद मे मेहनतकश जनता को भौतिक सुरक्षा प्राप्त होती है, उसके जीवन स्तर मे निरन्तर प्रगति होती रहती है तथा काम के घटे कम हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप समाज के चतुर्दिक आध्यात्मिक विकास, विज्ञान, टेक्नालॉजी, कला के फलने-फूलने तथा आम जनता की प्रतिभाओ एव योग्यताओ के निखरने को अभूतपूर्व सम्भावनाए पैदा हो जाती हैं।

इस प्रकार, समाजवादी रूपान्तरण से शारीरिक एव मानसिक श्रम के बीच का भेद समाप्त होने लगता है। समाजवाद ऐसी परिस्थितिया पैदा कर देता है, जिनमे उनके बीच का भेद निरन्तर घटता जाता है।

विभिन्न देशो मे समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण के सामान्य नियम और विशिष्टताएं

सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो का अनुभव दिखाता है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण कुछ ऐसे सामान्य नियमों पर आधारित होता है, जो सभी देशो में लागू होते हैं। उनमे से सर्वप्रथम नियम तो यह है कि वहा किसी न किसी रूप मे समाजवादी क्रान्ति को सम्पन्न किया गया हो। इससे राजसत्ता मजदूर वर्ग के हाथो मे आ जाती है। यह वर्ग जनता के विशाल अगो का, बहुसख्यक आबादी का, नेतृत्व करता है। समाज के समाजवादी रूपान्तरण तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण मे समाजवादी राजसत्ता ही मुख्य अस्त्र का काम करती है। वह जनता को सगठित तथा गोलबद करती है, आर्थिक एव सास्कृतिक विकास के लिए नियोजित नेतृत्व प्रदान करती है तथा जनता की क्रान्तिकारी उपलब्धियो की रक्षा करती है। समाजवादी राज्य में मजदूर वर्ग गैर-सर्वहारा मेहनतकश जनता तथा विशेष रूप से किसानो के साथ एकता स्थापित करके एक नये समाज के निर्माण की अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को पूरा करता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए यह एक पूर्वआवश्यकता है कि बुनियादी आर्थिक और सामाजिक सुधारो को कार्यान्वित कर लिया गया हो, उत्पादन के बुनियादी साधनो का राष्ट्रीयकरण हो चुका हो, हर प्रकार के शोषण का अन्त हो चुका हो तथा पूजीवादी मुनाफो के लिए होने वाले उत्पादन के स्थान पर पूरे समाज और उसके हर सदस्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली योजनाबद्ध उत्पादन की पद्धति को लागू किया गया हो। पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण हो जाने से उत्पादक शक्तियो के विकास की तेज प्रगति

सुनिश्चित हो जाती है तथा पिछले पूंजीवादी काल की अपेक्षा आर्थिक वृद्धि की दर भी ऊंची उठ जाती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण के सामान्य नियमों को लागू करते समय मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियां अपने-अपने देश की विशेष एवं ठोस विशिष्टताओं का भी ध्यान रखती हैं। किसी देश विशेष के ऐतिहासिक विकास एवं उसके राजनीतिक और आर्थिक ढांचे से सम्बंधित परिस्थितियां, जनसंख्या का वर्गीय संयोजन तथा वर्ग शक्तियों का आपसी संतुलन—इन सबसे निश्चित होता है कि समाजवादी क्रान्ति और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व उस देश विशेष में कौन-सा रूप धारण करेगा तथा मुख्य समाजवादी सुधार लागू करने के लिए किन तरीकों का इस्तेमाल किया जायगा। किसी देश विशेष की प्राकृतिक स्थिति भी उत्पादक शक्तियों के विकास के स्वरूप व दिशा पर प्रभाव डालती है तथा उत्पादन की निश्चित शाखाओं के निर्माण एवं प्रगति को आगे बढ़ाती है।

३. सोवियत संघ में समाजवाद की विजय

अर्थव्यवस्था की समाजवादी पद्धति का अविभाज्य प्रभुत्व

समाजवादी औद्योगीकरण, कृषि के सामूहिकीकरण तथा सांस्कृतिक क्रान्ति से संक्रमण काल की बहुक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में उग्र परिवर्तन हो जाते हैं तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना होती है।

उत्पादक शक्तियों की तेज वृद्धि से समाजवाद का भौतिक एवं तकनीकी आधार तैयार होता है और साथ ही उत्पादन के सम्बंधों में भी बुनियादी परिवर्तन होते हैं। समाजवादी क्षेत्र ज्यादा बड़ा और ज्यादा मजबूत हो जाता है। लघु माल-उत्पादन क्षेत्र का समाजवादी लाइनों पर पुनर्गठन किया जाता है। पूंजीवादी तत्वों को योजनाबद्ध तरीके से हटाया जाता है तथा अन्ततः उनका पूरी तरह सफाया कर दिया जाता है। इन प्रक्रियाओं से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में समाजवाद की पूर्ण विजय होती है और सभी आर्थिक क्षेत्रों में समाजवादी व्यवस्था का अविभाज्य प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।

समाजवादी समाज के निर्माण से निजी सम्पत्ति के प्रभुत्व का सदा के लिए अन्त हो जाता है तथा समाज को परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित करने वाले इस स्रोत को हमेशा के लिए बन्द कर दिया जाता है। उत्पादन के साधनों का समाजवादी स्वामित्व, समाज का अडिग आर्थिक आधार बन जाता है।

समाजवाद सबसे बड़ी सामाजिक समस्या को हल कर देता है—यह शोषक वर्गों को, एवं मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के लिए जिम्मेदार कारणों को, समाप्त

कर देता है। मजदूर वर्ग के दुश्मन समाजवादी क्रान्ति के खिलाफ यह घृणित प्रचार करते हैं कि उसमे गैर मजदूर वर्गों को शारीरिक तौर पर समाप्त कर दिया जाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि समाज का समाजवादी पुनर्गठन शोषक वर्गों को केवल आर्थिक रूप से खत्म करता है क्योंकि उसके द्वारा उन परिस्थितियो का ही सफाया कर दिया जाता है जिनके कारण कुछ वर्ग दूसरे वर्गो की मेहनत के सहारे जिन्दा रहते हैं। बहुत सारे वे लोग, जो पहले गैर-मेहनतकश वर्गों मे शामिल थे, अब समाज की श्रम गतिविधियो मे हिस्सा लेने लगते हैं।

समाजवाद का निर्माण व्यापकतम जनवाद की स्थापना का द्योतक है। समाजवादी जनवाद मे राजनीतिक स्वतत्रता तथा सामाजिक अधिकार शामिल होते हैं—जैसे, भाषण एव प्रेस की स्वतत्रता, सभा व सगठन की स्वतत्रता, मत देने व चुने जाने का अधिकार, काम, आराम व अवकाश पाने का अधिकार, शिक्षा पाने का अधिकार, बीमारी, बुढापे और अपग हो जाने की स्थिति मे सामाजिक सुरक्षा का अधिकार। समाजवाद का अर्थ यह होता है कि बिना किसी जातीय या राष्ट्रीय भेदभाव के सभी नागरिको को समान अधिकार प्राप्त हो, महिलाओ को राज्य के सभी क्षेत्रों एव आर्थिक व सास्कृतिक जीवन मे पुरुषो के समान अधिकार हासिल हो। पूजीवादी जनवाद से भिन्न, समाजवादी जनवाद की विशेषता यह है कि वह न केवल जनता के अधिकारो की घोषणा करता है, बल्कि उन्हे कार्यान्वित करने के लिए परिस्थितिया भी तैयार करता है।

समाजवादी समाज व्यक्ति की सच्ची स्वतत्रता की गारन्टी करता है। इस स्वतत्रता की चरम अभिव्यक्ति होती है—शोषण से मनुष्य की मुक्ति, सामाजिक न्याय की स्थापना।

इतिहास मे सबसे पहली बार समाजवादी समाज का निर्माण सोवियत सघ मे किया गया। सक्रमण काल की बहुक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का स्थान समाजवादी अर्थव्यवस्था ने ले लिया। "कौन किसको परास्त करेगा"—इस प्रश्न का निर्णय समाजवाद के पक्ष मे हो गया। समाजवाद के निर्माण का काम पूरा कर लेने के बाद सोवियत सघ ने कम्युनिज्म की दिशा में बढ़ना आरम्भ किया।

सोवियत सघ मे पूजीवाद से समाजवाद में सक्रमण के काल के कामो को लगभग २० वर्षों मे पूरा कर लिया गया। सोवियत सघ की सहायता तथा समाजवादी विश्व व्यवस्था के देशो के आपसी सहयोग पर आधारित जनता की नयी लोकशाहियो को इन कामो को पूरा करने मे इससे भी कम समय लगता है।

समाज के वर्गीय ढाचे मे उग्र परिवर्तन

समाजवाद की विजय से समाज के वर्गीय ढाचे मे उग्र परिवर्तन होते हैं। शोषक वर्गों का सफाया हो जाने के परिणामस्वरूप समाजवादी समाज मे केवल दो मैत्रीपूर्ण वर्ग—मजदूर वर्ग और किसान—रह जाते हैं। समाजवादी समाज मे बुद्धिजीवी लोग, मजदूर वर्ग और किसानो के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर काम करते हैं। साथ ही, मजदूर वर्ग, किसानो और बुद्धिजीवियो का स्वरूप भी बहुत ज्यादा बदल गया है।

समाजवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग उत्पादन के साधनो से वचित नही रहता। समाज मे यह वग नेतृत्वकारी भूमिका अदा करता है। किसानो का श्रम और उनका जीवन अब व्यक्तिगत तौर पर की जाने वाली छोटी और पिछडी हुई खेतीबारी पर निर्भर नही रहता, बल्कि सामूहिक श्रम, उत्पादन के साधनो और आधुनिक साज-सामान के सामूहिक स्वामित्व पर आधारित होता है।

मजदूर वर्ग और किसानो के बीच का बुनियादी अन्तर मिट गया है क्योकि समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनो ही वर्गो के जीवन यापन का स्रोत बन गयी है। समाजवादी सम्पत्ति के इन दोनो रूपो की समान प्रकृति से मजदूर वर्ग और सामूहिक किसान साथ आ जाते हैं उनके बीच की परस्पर एकता सुदृढ हो जाती है तथा आपस की मैत्री अटूट बन जाती है।

बुद्धिजीवियो के गठन तथा उनकी गतिविधियो के स्वरूप मे भी बुनियादी परिवर्तन हो गया है। इनका विशाल बहुमत मजदूर वर्ग व किसानो से आये लोगो का है। समाजवादी बुद्धिजीवी, जनता के साथ नजदीक से जुडे रहते हैं और समाजवाद के उद्देश्य की सेवा करते हैं। मजदूर वग और किसानो के साथ मिल कर ये लोग समाजवाद व कम्युनिज्म के निर्माण के कार्यों म हाथ बटाते है।

समाजवादी समाज मे मजदूर वर्ग और किसानो के बीच के, तथा इन दोनो वर्गों और बुद्धिजीवियो के बीच के, अन्तर विलीन होते जाते हैं। धीरे-धीरे उनके काम करने और रहने की परिस्थितिया एक जैसी होने लगती है। बुनियादी हितो की समानता से जनता के बीच अटूट सामाजिक-राजनीतिक एव वैचारिक एकता स्थापित हो गयी है।

समाजवाद की विजय से पूजीवाद के अन्तर्गत पाया जाने वाला हर प्रकार का उत्पीडन और गुलामी—जिसमे राष्ट्रीय उत्पीडन और महिलाओ तथा पुरुषो के बीच की असमानता शामिल है—समाप्त हो जाते है।

समाजवाद जातियो की समानता की केवल घोषणा ही नही करता, बल्कि इस समानता को सुनिश्चित बनाने वाली आर्थिक परिस्थितियो का निर्माण भी करता है। समाजवादी समाज मे हर प्रकार के नस्ली और जातीय भेदभाव

को समाप्त कर दिया गया है। पिछड़े सीमावर्ती प्रदेश, जिनमे पहले उत्पीडित जातिया ही रहती थी, अब थोडे ही समय के अन्दर देश के अत्यन्त विकसित क्षेत्रो के समान आर्थिक स्तर प्राप्त कर लेते हैं।

महिलाओ के अधिकारो पर लगी समस्त पाबन्दियो व सीमाओ को समाजवाद खत्म कर देता है तथा उन्हें पुरुषो के समान ही अवसर प्रदान करता है। पूजीवाद के अन्तर्गत महिलाओ को पुरुषो से कम वेतन मिलता है, किन्तु समाजवाद के अन्तर्गत उन्हें पुरुषों के समान ही वेतन मिलने लगता है।

सोवियत सघ मे समाजवाद की पूर्ण तथा अन्तिम विजय

समाजवादी निर्माण की पहली मजिलो के दौरान ही लेनिन ने कहा था कि सोवियत देश मे पूर्ण समाजवादी समाज का निर्माण करने के लिए आवश्यक सभी सामग्री मौजूद है। समाजवादी निर्माण की लेनिनवादी योजना को लागू करके कम्युनिस्ट पार्टी ने सोवियत सघ मे समाजवाद को पूर्ण रूप से विजयी बना दिया।

लेकिन समाजवाद के पूर्ण विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी सोवियत सघ की जनता इस विजय को उस समय तक पूर्ण नही मान सकती थी, जब तक सोवियत सघ ससार मे एकमात्र समाजवादी देश था। उसके चारो ओर पूजीवादी देशो का घेरा पडा हुआ था। और ये पूजीवादी देश आर्थिक तथा सैनिक तौर पर सोवियत सघ से सबल थे। इन परिस्थितियो मे सोवियत जनता विश्व साम्राज्यवाद द्वारा प्रत्याशित सैनिक हस्तक्षेप तथा बल पूर्वक पूजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयासो से अपने को पूर्णत. सुरक्षित नही मान सकती थी।

अब तो दुनिया की परिस्थिति बुनियादी तौर पर बदल गयी है। निरन्तर आगे बढते रहने वाली विश्व समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हो चुका है। अब हम अपने देश के गिर्द पूजीवादी घेरे की बात नही करते। लेकिन, अन्य किसी भी देश की ही तरह, सोवियत सघ के बारे मे भी इस बात की गारन्टी नही है कि साम्राज्यवादी देश उस पर आक्रमण नही करेंगे। किन्तु, दुनिया मे शक्तियो का सतुलन आज ऐसा है कि सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशो मे किसी भी दुश्मन के हमले को पीछे हटाने की शक्ति मौजूद है। ससार मे कोई ऐसी ताकत नही जो हमारे देश म पूजीवाद की पुनर्स्थापना कर सके या समाजवादी देशो के समुदाय को कुचल सके।

इसका अर्थ यह है कि समाजवाद पूर्ण एव अटल रूप से विजयी हो चुका है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत समाजवादी उपलब्धियों की स्थापना

सोवियत सघ जब ससार का एकमात्र समाजवादी देश था, तो समाजवादी अर्थव्यवस्था वाला दुनिया मे वही अकेला देश था। किन्तु जब समाजवाद का विस्तार सोवियत सघ की

सीमाओ के बाहर हो गया तथा कई देशो मे समाजवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण हो गया, तो समाजवाद एक विश्व व्यवस्था बन गया। विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय वर्तमान काल खण्ड मे समाज के प्रगतिशील विकास का मुख्य परिणाम है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पूजीवाद की पुनर्स्थापना की सम्भावनाओ को न केवल सोवियत सघ मे बल्कि अन्य समाजवादी देशो मे भी असम्भव बना दिया गया है। जनता की लोकशाहियो मे समाजवादी समाज के निर्माण की मजबूत बुनियादें डाल दी गयी हैं और ज्यादातर देशो म ये बुनियादें पूरी की जा रही है। सभी समाजवादी देशो म दूरगामी सामाजिक आर्थिक सुधार किये गये हैं जिनके परिणामस्वरूप समाज की वर्गीय बनावट म भारी परिवर्तन आये हैं। जनता के विशाल बहुमत ने समाजवादी व्यवस्था मे दृढता के साथ अपनी आस्था प्रकट की है।

जहा तक बाहरी देशो के आक्रमण का प्रश्न है—समाजवादी देशो के विश्व समुदाय के अस्तित्व से, उनकी आपसी एकता और भाईचारे से, साम्राज्यवादी आक्रमण के खिलाफ सुरक्षा की विश्वसनीय गारन्टी पैदा हो गयी है। समाजवाद और पूजीवाद के बीच शक्तियो के सतुलन मे समाजवाद के पक्ष म तथा पूजीवाद के खिलाफ जो परिवतन हुआ है, उसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद द्वारा समाजवादी व्यवस्था के किसी भी देश के खिलाफ की जाने वाली आक्रामक कार्रवाइया का असफल होना अवश्यम्भावी है।

दोहराने के प्रश्न

१ पूजीवाद से समाजवाद म पहुचने के लिए एक सक्रमण काल क्यो जरूरी है ?

२ सक्रमण काल म सामाजिक अर्थव्यवस्था के मुख्य रूप क्या होते हैं ?

३ समाजवादी समाज के निर्माण मे सर्वहारा अधिनायकत्व की भूमिका क्या है ?

४ समाजवाद के निर्माण की लेनिन-योजना का मूल तत्व क्या है तथा सोवियत सघ म उसे कैसे कार्यान्वित किया गया ?

अध्याय १०

समाजवादी अर्थव्यवस्था

१. उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व. समाजवाद के अन्तर्गत श्रम का स्वरूप

सार्वजनिक, समाजवादी सम्पत्ति का प्रभुत्व

प्रत्येक उत्पादन पद्धति में उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व का विशिष्ट स्वरूप होता है। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व का अविभाज्य प्रभुत्व होता है।

उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व की प्रधानता उन साधनो पर निजी स्वामित्व की समाप्ति के फलस्वरूप स्थापित होती है। समाजवादी क्रान्ति दो अलग-अलग प्रकार की निजी सम्पत्ति के प्रति अलग अलग रुख अपनाती है: एक निजी सम्पत्ति तो पूजीपतियो और भूस्वामियो की होती है जो सर्वहारा वर्ग और किसानो के शोषण के आधार का काम करती है, दूसरी निजी सम्पत्ति छोटे उत्पादको, विशेष रूप से किसानों की होती है, जो छोटे पैमाने के माल उत्पादन का आधार बनती है और जो उनके व्यक्तिगत श्रम पर आधारित होती है। इस प्रकार उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व का उदय दो प्रकार से होता है।

समाजवादी राज्य—वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के संस्थापकों की भविष्यवाणी के अनुरूप ही—लुटेरो को उनके समस्त साधनो से वचित कर देता है, यह भूस्वामियो से जमीन एव पूजीपतियों से उनके कारखाने, रेलें और बैंक छीन लेता है तथा इन्हे राष्ट्रीय सम्पदा म परिवर्तित कर देता है। अलग अलग देशो मे समाजवादी क्रान्ति की ठोस परिस्थितियो के आधार पर समाजवादी राज्य, देश विशेष मे, पूजीपतियो और भूस्वामियो की सम्पत्ति को या तो बिना किसी मुआवजे के ही जब्त कर लेता है, या कुछ मुआवजा दे देता है। आम तौर पर, इस काम को अपेक्षाकृत कम समय मे पूरा कर लिया जाता है।

समाजवादी राज्य छोटे किसानो की सम्पत्ति की ओर बिल्कुल ही दूसरा रुख अपनाता है। वह छोटे पैमाने के जगह-जगह बिखरे कृषि उत्पादन को मिले जुले बडे पैमाने के समाजवादी उत्पादन का रूप दे देता है। उत्पादक सामू-

हिक सघो—सामूहिक फार्मों—की समाजवादी सम्पत्ति का निर्माण किसान-फार्मों के स्वेच्छात्मक विलय तथा उत्पादन के साधनो के समाजीकरण द्वारा होता है। इस काम को पूरा करने म कुछ ज्यादा समय लगता है।

सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति के दो रूप

समाजवादी सम्पत्ति का उदय चूकि दो तरीको से होता है, इसलिए समाजवादी समाज मे उसके दो रूप भी होते हैं।

सर्वप्रथम एव सर्वप्रमुख तो यह राजकीय सम्पत्ति का रूप होता है जिस पर समस्त जनता का अधिकार होता है। दूसरा सहकारी तथा सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति का रूप होता है। सोवियत सघ के विधान के अनुसार, राजकीय सम्पत्ति मे, अर्थात समस्त जनता की सम्पत्ति मे, समूची भूमि और उसमे पायी जाने वाली सम्पदा, जल, जगलात, कारखाने, खानें, रेलें, जल तथा हवाई यातायात के साधन, बैंकें, राजकीय फार्म, सार्वजनिक सेवाए तथा नगरो एव औद्योगिक केन्द्रो मे उपलब्ध आवास ग्रह शामिल हैं। सहकारी या सामूहिक फार्म सम्पत्ति मे, सामूहिक फार्मों और सहकारी सस्थाओ के सहकारिता के सिद्धान्त के आधार पर स्थापित सस्थान, उनमे पाये जाने वाले सजीव या मृत स्टॉक, सामूहिक फार्मों और सहकारी सस्थाओ तथा उनके सार्वजनिक भवनो द्वारा उत्पादित माल शामिल होते हैं।

ये दोनो ही रूप सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति के दो अलग अलग रूप है इन दोनो रूपो के बीच जो अन्तर पाया जाता है, वह इनके गठन के दौरा अपनाये आने वाले रास्ते, अर्थात मजदूरो और सामूहिक किसानो द्वार समाजवाद तथा कम्युनिज्म की ओर बढने मे अपनाये गये ठोस मार्ग, के अन्तर से पैदा होता है।

राजकीय सम्पत्ति समूची जनता की सम्पत्ति होती है, और जनता का प्रतिनिधित्व समाजवादी राज्य करता है। सहकारी और सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति मेहनतकश जनता के समूहों की सम्पत्ति होती है। राजकीय सस्थानो मे उत्पादन के समस्त साधनो का समाजीकरण हो जाता है। सामूहिक फार्मों मे—जो सागठनिक रूप की दृष्टि से साझेदार सघ होते हैं—उत्पादन के केवल मुख्य निर्णायक साधनो का ही समाजीकरण किया जाता है: भूमि पर, जिसका स्वामित्व राज्य के हाथो मे होता है किन्तु जिसे सामूहिक किसानों को हमेशा के इस्तेमाल के लिए दे दिया जाता है, सयुक्त रूप से उत्पादन किया जाता है। यह उत्पादन ट्रैक्टरो और दूसरे उपकरणो की सहायता से किया जाता है। ये सारे उपकरण, तथा फार्म के समस्त पशु भी, सामूहिक फार्म की सम्पत्ति होते हैं। इसी के साथ, उत्पादन के कुछ साधन (कृषि सघ के नियमो के अनुकूल कुछ पशु, सामूहिक

किसानों की अपनी निजी जमीन पर खेती करने के लिए कुछ आवश्यक औजार, आदि), सामूहिक किसानो की निजी सम्पत्ति बने रहते हैं।

इस प्रकार, समाजवादी सम्पत्ति के इन दोनो स्वरूपो के बीच का अन्तर मुख्यत इस बात का अन्तर होता है कि दोनो मे उत्पादन के साधनो का समाजीकरण किस अश तक किया गया है।

राजकीय सम्पत्ति, जोकि समस्त जनता की सम्पत्ति होती है, अर्थव्यवस्था मे नेतृत्वकारी भूमिका अदा करती है। सहकारी और सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति का उदय तभी हो सकता है, जब राजकीय सम्पत्ति ने प्रभुत्वकारी स्थान ग्रहण कर लिया हो। समाजीकृत समाजवादी सम्पत्ति के दोनो रूप एक-दूसरे के बहुत निकट सहयोग से और एक-दूसरे पर असर डालते हुए, विकसित होते हैं।

सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति अपरिवर्तनीय नही है। प्रगतिशील विकास के परिणामस्वरूप, प्रारम्भिक सामूहिकीकरण काल की अपेक्षा यह सम्पत्ति गुणात्मक और सख्यात्मक दोनो ही दृष्टियो से, बहुत ज्यादा बदल गयी है। तीसरे दशक के अन्त मे तथा चौथे दशक के आरम्भ मे सामूहिक फार्मों मे, उत्पादन के समाजीकृत साधनो का साधारण योग—अर्थात उनके घोडे, हल तथा कुदालें, आदि—ही उनकी सम्पत्ति थे। धीरे-धीरे सामूहिक फार्मों मे, सामूहिक स्वामित्व की अर्थव्यवस्था के विकास से, उनकी सम्पत्ति भी बहुत ज्यादा बढ गयी। मजदूर वर्ग और समस्त सोवियत जनता के सक्रिय सहयोग और किसानो के सामूहिक श्रम द्वारा इसमे अपार वृद्धि सम्भव हुई तथा आज उनके पास उत्पादन के आधुनिकतम एव अत्यत उत्पादनकारी साधनों का प्रचुर भडार है।

समाजवादी प्रतिष्ठानो की दो किस्में

समाजवादी सम्पत्ति के दो रूपो के अस्तित्व के कारण समाजवादी प्रतिष्ठान भी दो किस्म के पाये जाते है। पहली किस्म है राजकीय प्रतिष्ठानो की: कारखाने, रेलें, खानें, राजकीय फार्म, व्यापारिक प्रतिष्ठान, बैंकें और सामुदायिक प्रतिष्ठान। दूसरी किस्म है उन प्रतिष्ठानो की जो सामूहिक फार्मों या सहकारी सम्पत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं: सामूहिक फार्म, उत्पादक सघ और उपभोक्ता सहकारी सस्थाए जिनमे प्रमुख स्थान सामूहिक फार्मों को प्राप्त है।

सामूहिक फार्मों तथा राजकीय प्रतिष्ठानों की किस्म एक ही जैसी है, क्योंकि दोनो ही अर्थव्यवस्था के समाजवादी रूप हैं। किन्तु इसके बावजूद, दोनो मे कुछ अन्तर भी है। यह अतर प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध, उनमे तैयार माल को बेचने तथा मजदूरो और सहकारी किसानो द्वारा अपनी आय अर्जित करने के लिए अपनाये जाने वाले तौर-तरीकों से सम्बधित है।

राजकीय प्रतिष्ठानो मे प्रबन्धक की नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती है। उसको राज्य द्वारा अधिकार प्राप्त होता है तथा वह योजनाओ की पूर्ति के लिए राज्य के प्रति उत्तरदायी होता है। सामूहिक फार्मों मे प्रबध की उच्चतम सस्था सामूहिक किसानो की सामान्य सभा होती है। यही सभा सहकारी फार्म के बोर्ड और अध्यक्ष का चुनाव करती है।

राजकीय प्रतिष्ठानो के उत्पादन पर पूर्ण अधिकार राज्य का होता है। राज्य द्वारा निश्चित मूल्यो पर ही माल को उसे बेचा जाता है। सहकारी फार्मों पर होने वाले उत्पादन पर सामूहिक फार्म का अधिकार होता है। राजकीय योजना द्वारा निश्चित की गयी किस्म के सामान के निश्चित मात्रा मे राज्य के हाथ बेच देने और इस प्रकार राज्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी पूरी करने के बाद सहकारी फार्म बचे हुए उत्पादन को अपनी इच्छानुसार बेचते है, सामूहिक किसानो की सामान्य सभा के निर्णयो के अनुसार कोष का निर्माण करते है, या उत्पादन के एक अश को मडी मे ले जाकर बेच देते हैं, आदि।

मजदूरो और सहकारी किसानो को उनके काम की मात्रा और कुशलता के अनुसार वेतन दिया जाता है। किन्तु कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले मजदूरो का वेतन राज्य के वेतन कोष से अदा किया जाता है, जब कि सामूहिक किसानो का वेतन सामूहिक फार्म द्वारा अदा किया जाता है। मजदूर से भिन्न, सामूहिक किसान को वेतन केवल नकद ही नही प्राप्त होता बल्कि माल के रूप मे भी प्राप्त होता है—सामूहिक फार्म पर होने वाले उत्पादन के एक अश के रूप मे।

सामूहिक किसान को जमीन का एक छोटा-सा टुकडा, कुछ पशु, मुर्गिया तथा खेती के छोटे-छोटे उपकरण रखने का अधिकार प्राप्त होता है। जमीन का टुकडा (खेत) सामूहिक फार्म के सदस्यो की तरकारियो तथा दूध सम्बधी निजी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए होता है। निजी इस्तेमाल के जमीन के इस टुकडे का आकार तथा पशुओ की सख्या, कृषि सघो के नियमो के आधार पर, सीमित होती है।

सामूहिक किसान को इजाजत रहती है कि वह सामूहिक स्वामित्व के क्षेत्र से अपने वेतन के रूप मे उत्पादन का जो अश प्राप्त करता है तथा अपने निजी खेत पर जो उत्पादन करता है, उसे वह बाजार मे बेच सकता है। इस प्रकार की बिक्री पूजीवादी सचय का स्रोत नही बनती, क्योकि बिक्री से प्राप्त होने वाली रकम से उत्पादन के ऐसे साधनो को नही खरीदा जा सकता जिनकी मदद से जनता के दूसरे भागो के श्रम का शोषण किया जा सके। इस रकम को सामूहिक किसान केवल अपनी निजी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ही इस्तेमाल कर सकता है।

एक ओर राजकीय प्रतिष्ठानो और सामूहिक फार्मों मे जहा अन्तर होता है, वहां दूसरी ओर यह भी सही है कि दोनो ही समाजवादी प्रतिष्ठान हैं। और, यही बात निर्णायक महत्व की है। दोनो मे ही उत्पादन के साधनो का समाजीकरण हो चुका होता है। फलत, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के लिए कोई गुजाइश नही रहती। श्रम का स्वरूप सामूहिक होता है तथा परिमाण एव गुण के हिसाब से उसकी उजरत का भुगतान किया जाता है। उत्पादन का उद्देश्य समाज के सदस्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति करना होता है।

सामूहिक फार्म व्यवस्था की स्थापना और उसका सुदृढीकरण सोवियत सघ की जनता की महान उपलब्धियो मे से एक है। सामूहिक फार्म व्यवस्था देहातो मे उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर एव उसकी आवश्यकताओ से पूर्ण रूप से मेल खाती है। यदि प्रबन्धक निपुण होते हैं तो वैज्ञानिक उपलब्धियो तथा शक्तिशाली उपकरणो के प्रभावी इस्तेमाल एव श्रम स्रोतो के विवेकपूर्ण प्रयोग को वे सुनिश्चित कर लेते हैं। सामूहिक फार्मों के रूप मे ये कृषि सघ अपने सदस्यो के व्यक्तिगत हितो तथा समाज के सार्वजनिक हितो के बीच ठीक तालमेल जोडते हैं। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि "चूकि सामूहिक फार्मों की अर्थव्यवस्था का स्वरूप—उसका सागठनिक ढांचा तथा उसका जनवादी आधार—सामाजिक होता है जो कि निरन्तर विकसित होगा, इसलिए इस बात की गारन्टी रहती है कि सामूहिक फार्मों में उत्पादन की व्यवस्था सामूहिक किसान ही करते हैं, उनकी सृजनात्मक पहल मे वृद्धि होती है तथा सामूहिक किसानो को कम्युनिस्ट भावना मे दीक्षित किया जाता है।"

सामूहिक फार्मों का सबसे मजबूत पहलू उनका जनवादी सगठन होता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि कृषि सघ के मामलो मे सहकारी किसान बडे पैमाने पर शरीक होते हैं। सहकारी फार्मों का अत्यन्त जनवादी स्वरूप उत्पादन मे वृद्धि के लिए जनता की पहलकदमी को विकसित करता है। सामूहिक फार्म, किसानो के लिए कम्युनिज्म की पाठशाला होते हैं। सामूहिक फार्म का काम होता है—सामूहिक किसानो मे सृजनात्मक पहल एव क्रियाशीलता का विकास करना तथा उनमे जनवाद को मजबूत करना।

समाजवाद के अन्तर्गत निजी सम्पत्ति

समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधन ही नही, बल्कि श्रम के उत्पादन भी सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं। किन्तु चूकि समाज के सदस्यों के बीच सामाजिक उत्पादन का एक अश—उपभोक्ता वस्तुए—बाट दिया जाता है, इसलिए यह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाता है।

समाजवाद मानव व्यक्तित्व या व्यक्तिगत आवश्यकताओ को हरगिज

घटाता नही है, न निर्धनता के आधार पर इन्सानो को हमवार करता है, जैसा कि उसके दुश्मनो का दावा है। इसके विपरीत, इतिहास मे पहली बार वह मेहनतकश जनता की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की सर्वांगीण पूर्ति के लिए परिस्थितिया मुहैया करता है। सामूहिक श्रम और उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व के फलस्वरूप, मेहनतकश जनता की भौतिक खुशहाली मे वृद्धि होती है तथा उसमे सस्कृति का—जो अब उनकी पहुच के भीतर आ जाती है—विकास होता है।

समाजवादी समाज जनता द्वारा कमाये धन की जहा रक्षा करता है, वहा वह दूसरे लोगो के श्रम पर जीवन बिताने का प्रयास करने वालो को कतई बर-दाश्त नही करता।

उत्पादन के साधनों के मामले मे मजदूरों के बीच समानता

उत्पादन के साधन समाजवादी समाज की, जिसमे नगर और देहाती क्षेत्र के मेहनतकश शामिल होते है सामूहिक सम्पत्ति होते हैं। समाजवादी समाज के अन्तर्गत न तो ऐसी स्थित है और न कभी हो ही सकती है, जिसमे कोई वर्ग उत्पादन के साधनो से वचित कर दिया जाय। अत', समाजवाद उत्पादन के साधनो के मामले मे सभी मजदूरो के बीच समानता स्थापित कर देता है। उत्पादन के साधनो के मामले मे सभी मजदूरो के बीच समानता का अर्थ यह है कि सार्वजनिक स्वामित्व वाले इन साधनो पर काम करने का उन्हें समान रूप से अधिकार हासिल होता है तथा उन्हे उनके काम का मुआवजा समाजवादी सिद्धान्त के आधार पर, अर्थात हर मजदूर के काम के परिमाण और उसके गुण के आधार पर, अदा किया जाता है। उ पादन के साधनो को चूकि निजी सम्पत्ति नही बनाया जा सकता, इसलिए समाजवादी व्यवस्था मे मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधन पूजी नही होते, अर्थात शोपण के साधन नही होते। हम पूजी विनियोगो तथा पूजी निर्माण आदि के बारे मे बात करते हैं या लिखते हैं, किन्तु उससे मतलब पूजी के राजनीतिक सामाजिक अर्थों मे नही होता, अर्थात उत्पादन के साधनो, जो शोपण के साधनो के रूप मे काम आते हैं के अर्थों मे नही होता। पूंजी विनियोग से हमारा मतलब यह होता है कि सचित साधनो को प्रतिष्टानो के निर्माण तथा विस्तार, भवनो व सडको के निर्माण, आदि—अर्थात सामाजिक सम्पदा की वृद्धि—के लिए इस्तेमाल किया जाय।

पूजीपति वर्ग और उसके पक्षधर दावा करते हैं कि निजी सम्पत्ति व्यक्ति-गत स्वतन्त्रता का आधार होती है। किन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत जनसख्या का विशाल बहुमत सम्पतिहीन होता है। उत्पादन के साधनों पर पूजीवादी

स्वामित्व का अर्थ उनके लिए स्वतन्त्रता नही बल्कि गुलामी होता है। छोटे उत्पादको के लिए भी सम्पत्ति एक ऐसी जजीर होती है, जो उन्हे इजारेदार पूजीपति वर्ग से बाध देती है। इसके विपरीत, यह निजी सपत्ति बडे पूजीपतियो को विशाल मेहनतकश जनता को लूटने एव उसके श्रम से मुनाफा बटोरने की स्वतन्त्रता प्रदान करती है। सोवियत सघ तथा समस्त विश्व समाजवादी व्यवस्था का अनुभव यही दिखाता है कि निजी सम्पत्ति नही, बल्कि सार्वजनिक सम्पत्ति ही मनुष्य को हर प्रकार की सामाजिक पराधीनता और बन्धन से मुक्त करती है तथा अबाध प्रगति के लिए उसे हर प्रकार का अवसर प्रदान करती है।

उत्पादन मे लगी मेहनतकश जनता की स्थिति मे बुनियादी परिवर्तन

किसी भी सामाजिक व्यवस्था मे उत्पादन जारी रखने के लिए दो तत्वो का होना जरूरी होता है: श्रमशक्ति का तथा उत्पादन के साधनो का। यह भी जरूरी होता है कि इन दोनो तत्वो का मिलन हो। वे एक-दूसरे से किस प्रकार मिलते हैं, इसका स्वरूप अलग अलग समाजो मे अलग अलग होता है। शताब्दियों तक उत्पादन के साधनो पर शोषक वर्गो का स्वामित्व रहा और वे—किसी विदेशी तथा विरोधी शक्ति के समान ही—मेहनतकश जनता का विरोध करते रहे। पूजीवादी कारखाने मे काम करने वाला मजदूर देखता है कि मशीनरी, कच्चे माल और तैयार उत्पादन—सभी कुछ—उसके न होकर पूजीपति के होते हैं। उत्पादन से होने वाला सारा मुनाफा पूजीपति समेट लेता है।

उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के स्थान पर जब सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित हो जाता है, तो श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनो के पारस्परिक सम्बध के ढग मे बुनियादी परिवर्तन आ जाता है। अब यह सम्बध नये और ऊचे आधार पर कायम होता है जिसके अन्तर्गत, उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व की बुनियाद पर, बडे पैमाने के उत्पादन को सगठित किया जाता है, उत्पादन मे विज्ञान और टेक्नालॉजी की आधुनिकतम उपलब्धियो का इस्तेमाल किया जाता है तथा उसे सामाजिक स्तर पर एकबद्ध किया जाता है।

समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक जीवन मे जो परिवर्तन हुए हैं उन्होने समाज मे श्रम की स्थिति तथा उसके प्रति जनता के दृष्टिकोण को बुनियादी तौर पर परिवर्तित कर दिया है। समाजवादी समाज मे श्रम एक ऐसा बोझ नही होता जिसे मजबूरन ढोना और बरदाश्त करना होता है। यह मुक्त श्रम हो जाता है जिससे उत्पन्न समस्त फल स्वतन्त्र मेहनतकश जनता के समाज को प्राप्त होते हैं।

इससे, स्वभावतः, जनता को शिक्षा मिलती है कि वह श्रम को समाज के प्रति अपना प्रथम कर्तव्य समझे। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि "मेहनतकशों मे यह चेतना कि वे शोषकों के लिए नहीं बल्कि अपने लिए तथा अपने समाज के लिए काम कर रहे हैं, उनमें श्रम के प्रति उत्साह पैदा करती है, नये अनुसन्धानो के प्रयास के लिए उनको प्रोत्साहित करती है तथा उनमे रचनात्मक पहलकदमी एव समाजवादी प्रतियोगिता का सृजन करती है। समाजवाद मेहनतकश जनता का सृजनात्मक प्रयास है। एक नये जीवन के निर्माण मे जनता की बढ़ती हुई क्रियाशीलता समाजवादी युग का एक नियम है।"

उत्पादन के समाजवादी सम्बंध और उत्पादक शक्तियों के विकास मे उनकी भूमिका

उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व कायम हो जाने से एक नये किस्म के उत्पादन सम्बध सामने आते हैं, जो पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन सम्बधो से बेहतर होते हैं। समाजवादी उत्पादन सम्बधों के अन्तर्गत मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नही किया जाता। ये सम्बध समाज के समान तथा स्वतंत्र सदस्यो के बीच के सम्बध होते हैं। ये ऐसे सम्बंध होते है जो सामूहिक श्रम में पारस्परिक सहयोग और मैत्रीपूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित होते हैं। सच्चे अर्थों मे ये मानवीय सम्बध होते है तथा पूंजीवाद के अन्तर्गत पाये जाने वाले शोषण और गलाकाट्र प्रतियोगिता के सम्बधो से पूर्णत भिन्न होते है।

समाजवादी क्रान्ति उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना के द्वारा पूजीवाद के अन्तर्गत पाये जाने वाले उत्पादक शक्तियो तथा उत्पादन सम्बधो के बीच के अन्तर्विरोध को समाप्त कर देती है। हमने ऊपर बताया है कि पूजीवाद का मुख्य अन्तर्विरोध उत्पादन के सामाजिक स्वरूप और अधिग्रहण के पूजीवादी स्वरूप के बीच का अन्तर्विरोध है। जब तक पूजीवाद कायम रहता है, तब तक इस अन्तर्विरोध को समाप्त नही किया जा सकता। इसे समाजवाद के अन्तर्गत ही—अर्थात सामाजिक उत्पादन की आवश्यकताओ के अनुरूप उत्पादन के साधना पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित करने वाले समाज के अन्तर्गत ही—मिटाया जा सकता है।

उत्पादन के समाजवादी सम्बध उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए असाधारण अवसर प्रदान करते हैं। यह बात विशेष रूप से समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति—मेहनतकश जनता—के लिए लागू होती है। शोषण से मुक्ति पा जाने के बाद मेहनतकश जनता उत्पादन के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने लगती है। जो लोग हर प्रकार की भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा का सृजन

करते हैं, उन्हें समाजवादी व्यवस्था की कामयाबी तथा उसके फलने-फूलने व विकसित होने मे अत्यधिक दिलचस्पी होती है।

हर वह चीज, जो विशाल मेहनतकश जनता की सृजनात्मक क्रियाशीलता एव शक्ति, उसकी प्रतिभा और योग्यता के पूर्ण विकास मे बाधक होती है, मिटा दी गयी है।

उत्पादन के समाजवादी सम्बधो ने इतिहास मे पहली बार यह सम्भव बना दिया है कि समाज के समस्त उत्पादक स्रोतो—भौतिक तथा इन्सानी दोनो ही प्रकार के स्रोतो—का इस्तेमाल अत्यन्त उचित एव विवेकपूर्ण ढग से किया जाय। उत्पादन की अराजकता को समाप्त कर दिया गया है और समाज अर्थव्यवस्था का नियोजित तथा सानुपातिक विकास सुनिश्चित करने मे समर्थ हुआ है। समाजवाद अतिउत्पादन के विनाशकारी आर्थिक सकटो, बेरोजगारी, तबाह करने वाली प्रतियोगिता, आदि, जैसे पूजीवाद के नासूरो से मुक्त है। उत्पादन में निरंतर तथा तेज वृद्धि एवं उत्पादक शक्तियों का विवेकपूर्ण बंटवारा समाजवाद की विशेषता है।

समाजवाद मे ऐसी परिस्थितिया पैदा होती है जिनमें उत्पादक शक्तियों का विकास पूजीवाद की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। टेक्नालॉजी के तीव्र विकास एव निरतर होने वाली प्राविधिक प्रगति का रास्ता साफ हो जाता है और श्रम उत्पादकता मे अपेक्षाकृत तेज वृद्धि की स्थितिया पैदा हो जाती हैं। विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी देशों में उत्पादन वृद्धि की दरें पूजीवादी देशो की दरो से कही ज्यादा हैं।

किन्तु इसके बावजूद, समाजवाद के अन्तर्गत भी आंतरिक अन्तर्विरोध पाये जाते हैं। इन अन्तर्विरोधो का स्वरूप किसी भी दूसरे समाज में पाये जाने वाले अन्तर्विरोधो से भिन्न होता है।

लेनिन ने कहा था कि अन्तर्विरोध तो कम्युनिज्म के अन्तर्गत भी कायम रहेंगे, लेकिन दुश्मनी भरा विरोध समाप्त हो जायेगा। दुश्मनी भरा विरोध, हल न होने वाला एक ऐसा अन्तर्विरोध होता है, जिसे केवल क्रान्ति द्वारा ही हल किया जा सकता है। पूजीवादी समाज मे उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधो के बीच इसी प्रकार का दुश्मनी भरा विरोध पाया जाता है, जिसे उत्पादन के पूजीवादी सम्बधो को क्रान्तिकारी ढग से समाप्त करके ही खत्म किया जाता है। इसी प्रकार का दुश्मनी भरा विरोध पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच पाया जाता है, जो ऐसी क्रान्ति के फलस्वरूप ही समाप्त होना है जिसमे पूजीवादी शासन का तख्ता उलट दिया जाता है और शोषक वर्गों का सफाया कर दिया जाता है।

समाजवादी समाज के अन्तर्विरोध बिल्कुल ही दूसरी ही प्रकार के होते हैं। इन

अन्तर्विरोधो का स्वरूप दुश्मनी भरे विरोध का नही होता। उन्हें उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधो के विकास और सुदृढीकरण के सफल अभियान के दौरान तथा समाजवादी समाज की उच्चतम अवस्था—कम्युनिज्म —की ओर प्रयाण के दौरान हल कर लिया जाता है।

समाजवाद के अन्तर्गत, प्रगतिशील सामाजिक विकास अन्तर्विरोधो के उदय, विकास तथा समाधान के माध्यम से आगे बढ़ता है। किन्तु, अन्तर्विरोधो के माध्यम से होने वाले इस विकास का उत्पादक शक्तियो पर विनाशकारी प्रभाव नही पडता। इसके विपरीत, इन शक्तियो का विकास तेजी और मजबूती के साथ होने लगता है।

उत्पादन के समाजवादी सम्बधो के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज तथा उसके हर सदस्य की बढ़ी हुई आवश्यकताओ की पूर्ति, उत्पादन के विकास मे एक जबर्दस्त प्रेरक शक्ति का काम करती है। इसके बाद, आवश्यकताओं मे होने वाली वृद्धि का तकाजा यह होता है कि उत्पादन की मात्रा मे और अधिक वृद्धि की जाय तथा समाज की उत्पादक शक्तियो का और अधिक विस्तार किया जाय। इस प्रकार, समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के सम्बध उत्पादक शक्तियो की तेजी से वृद्धि मे सहायक होते हैं।

समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के लाभो को स्वतः स्फूर्त ढग से और अपने आप हासिल नही किया जा सकता। नयी और पुरानी व्यवस्था के बीच सघर्ष मे, सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे पूजीवाद के अवशेषो तथा नयी पैदा होने वाली आर्थिक कठिनाइयो पर काबू पाकर, तथा समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माताओ के उद्देश्यपूर्ण कार्यकलाप के द्वारा ही इनको हासिल किया जा सकता है।

समाजवाद का भौतिक तथा तकनीकी आधार

हर सामाजिक व्यवस्था का अपना भौतिक तथा तकनीकी आधार होता है। हर व्यवस्था के भौतिक तथा तकनीकी आधार के अन्तर्गत सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख रूप से उसका उत्पादन यत्र आता है। श्रम को उपलब्ध की गयी समस्त तकनीकी सज्जा ही यह यत्र होती है। इसमे मशीनरी, कारखाना, औजार तथा उत्पादन के ढाचे, आदि, शामिल होते हैं। उत्पादक यत्र का स्तर, अभिन्न रूप से, मानव श्रमशक्ति के स्तर से तथा साथ ही उत्पादन सम्बधो की एक निश्चित व्यवस्था से, जुडा होता है। समाज का भौतिक और तकनीकी आधार तैयार करने और उसका विकास करने मे श्रम की वस्तुओ—कच्चे एव अन्य प्रकार के माल, इंधन तथा विद्युत-शक्ति—के उत्पादन की भारी भूमिका होती है।

पूजीवाद के आर्थिक आधार की परिभाषा करते हुए मार्क्स ने उसे भाडे

के श्रम पर आधारित बडे पैमाने के मशीन उद्योग का नाम दिया था। दूसरे शब्दो मे, पूंजीवाद का आर्थिक आधार ऐसा मशीन उत्पादन है, जो उत्पादन के पूजीवादी सम्बधो के अधीन चलता है और पूजीवाद के आर्थिक नियमो के अनुसार विकसित होता है।

पूजीवाद का तख्ता उलट देने के बाद, समाजवाद के भौतिक तथा तकनीकी आधार का निर्माण करना तथा उसका विकास करना नये समाज के निर्माण मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य बन जाता है। समाजवाद का भौतिक और तकनीकी आधार उद्योग, कृषि, भवन निर्माण, परिवहन तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे बडे पैमाने का मशीन उत्पादन है। दूसरे शब्दो मे, समाजवाद का भौतिक और तकनीकी आधार उत्पादन के समाजवादी सम्बधो के अन्तर्गत चौमुखी विकसित मशीन उत्पादन है, जिसका समाजवाद के आर्थिक नियमो के अनुसार विकास जारी रहता है।

समाजवाद के आर्थिक तथा भौतिक आधार का जैसे-जैसे विस्तार, विकास और सुधार होता रहता है, वैसे ही वैसे वह कम्युनिज्म का भौतिक तथा तकनीकी आधार बनता जाता है।

समाजवाद के भौतिक तथा तकनीकी आधार की पूर्व-आवश्यकताए पूजीवाद के अन्तर्गत ही उत्पन्न हो जाती हैं, क्योकि उसके अन्तर्गत भी उत्पादन बडे पैमाने के मशीन उद्योग द्वारा होता है। किन्तु समाजवाद के भौतिक तथा तकनीकी आधार का निर्माण समाजवादी क्रान्ति मे विजय प्राप्त करने के बाद ही किया जाता है। यह काम देश के समाजवादी औद्योगीकरण, कृषि के सामूहिकीकरण तथा उसके तकनीकी सज्जीकरण, और सास्कृतिक क्रान्ति—जो भौतिक उत्पादन के विकास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है—के परिणामस्वरूप ही पूरा किया जाता है।

समस्त समाजवादी देशों का अनुभव सिद्ध करता है कि आधुनिक बडे पैमाने के मशीन-उद्योग—जो कृषि का रूपान्तरण करने मे भी समर्थ हो—के रूप मे समाजवाद के भौतिक एव तकनीकी आधार की रचना, समाजवादी समाज के निर्माण के लिए एक मुख्य शर्त है।

सोवियत सघ मे समाजवाद के भौतिक एवं तकनीकी आधार की रचना देश के आर्थिक विकास के लिए चालू की गयी पचवर्षीय योजनाओ के दौरान की गयी थी। १५वी पार्टी काग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रथम पचवर्षीय योजना में १९२८ से १९३२ तक के काल के लिए कार्यक्रम निश्चित किया गया था। उसके बाद दूसरी (१९३३-३७) और तीसरी योजना आयी—यद्यपि १९४१ मे सोवियत सघ पर जर्मनी के आक्रमण के कारण तीसरी योजना के पूर्ण होने मे बाधा पड़ गयी।

समाजवाद के भौतिक तथा तकनीकी आधार की रचना के काम मे सुस्-आती पचवर्षीय योजनाए भी अत्यन्त सफल साबित हुईं। प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे—अर्थात १९२८ मे—सोवियत सघ मे ५०० करोड किलोवाट बिजली, ४३ लाख टन इस्पात, ११६ लाख टन तेल, ३० करोड घन मीटर गैस, ३५५ लाख टन कोयले, १८ लाख टन सीमेन्ट, २००० धातु काटने वाली खरादो, ८०० मोटर कारो, १३०० ट्रैक्टरों, एक लाख चालीस हजार टन (पुरानी इकाइयो मे) खनिज उर्वरकों का उत्पादन होता था।

युद्ध आरम्भ होने के समय १९४० मे, सोवियत सघ मे ४,८३० करोड किलोवाट बिजली, १८३ लाख टन इस्पात, ३११ लाख टन तेल, ३४० करोड घन मीटर गैस, १६ करोड ६० टन कोयला, ५८,४०० धातु काटने वाली खरादों, १,४५,००० मोटर कारो, ३१, ६०० ट्रैक्टरो तथा ३२ लाख टन (पुरानी इकाइयों मे) खनिज उर्वरको का उत्पादन होने लगा था।

जर्मनी के खिलाफ युद्ध में भारी नुकसान उठाना पड़ा। २ करोड से अधिक लोगो की जानें गयी तथा राष्ट्रीय सम्पदा का ३० प्रतिशत भाग नष्ट हो गया। सोवियत सघ के योरपीय क्षेत्र के बहुत बड़े भाग के हजारो नगर और गाव, लाखों कारखाने, खानें, सामूहिक फार्म, राजकीय फार्म, विद्यालय तथा मकान बर्बाद हो गये।

किन्तु सोवियत सघ की जनता ने बहुत थोडे समय के अन्दर युद्ध मे तबाह अपनी अर्थव्यवस्था को नये सिरे से पुनर्जीवित कर लिया और बहुत तेजी के साथ समस्त देश की अर्थव्यवस्था को विकसित किया। युद्ध के बाद की पचवर्षीय योजनाओं—चौथी, पाचवी तथा छठी—एव सप्तवर्षीय योजना (१९५९-६५) के दौरान समाजवाद के भौतिक एव तकनीकी आधार का विस्तार एव सुदृढी-करण हुआ, देश की आर्थिक शक्ति मे प्रचुर मात्रा मे वृद्धि हुई तथा बुनियादी किस्म के उद्योगों मे उत्पादन बहुत ज्यादा बढ गया। १९६५ मे सोवियत सघ मे ५०,७०० करोड किलोवाट बिजली, ९ करोड १० लाख टन इस्पात, २४ करोड ३० लाख टन तेल, १२,९०० करोड घन मीटर गैस, ५७ करोड ८० लाख टन कोयले, ७ करोड २४ लाख टन सीमेन्ट, १,८५ ००० धातु काटने वाली खरादो, ६,१६,००० मोटर कारो, ३,५५,००० ट्रैक्टरो तथा ३ करोड १३ लाख टन (पुरानी इकाइयो में) खनिज उर्वरको का उत्पादन होने लगा था।

इस प्रकार पचवर्षीय योजनाओ की अवधि के दौरान विद्युतशक्ति का उत्पादन १०१ गुना, इस्पात और तेल का उत्पादन २१ गुना, कोयले की खदानें १६ गुना, सीमेन्ट का उत्पादन ३९ गुना, धातु काटने की खरादो का उत्पादन ९३ गुना बढ़ गया। उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन मे भी काफी अधिक वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, कपडे का उत्पादन ३ गुना, चमडे तथा जूतो का

उत्पादन ८४ गुना और दानेदार चीनी का उत्पादन ७ गुना बढ गया। कृषि उत्पादन की कुल वार्षिक मात्रा में २५ गुना वृद्धि हुई।

समाजवादी समाज मे प्राविधिक प्रगति

समाजवाद प्राविधिक प्रगति की प्रक्रिया को तेज करता है। पूजीवाद के अन्तर्गत किसी नये उपकरण का इस्तेमाल रुका रह सकता है, चाहे उसके इस्तेमाल से सामाजिक श्रम में बचत ही क्यों न हो रही हो। उसका इस्तेमाल उसी हालत मे शुरू किया जाता है जब पूजीपति को उत्पादन लागत मे बचत दिखायी पडती है। अक्सर यह देखने मे आता है कि किसी उपकरण का इस्तेमाल सम्पूर्ण समाज के लिए तो लाभदायक होता है, परन्तु पूजीपति के लिए लाभदायक नही होता।

समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी भी नये उपकरण का इस्तेमाल उस हालत मे शुरू कर दिया जाता है, जब उसका इस्तेमाल पूरे समाज के लिए लाभदायक हो तथा श्रम की बचत हो रही हो और उसके अमल मे आसानी हो। नये उपकरणो के बडे पैमाने पर इस्तेमाल से मजदूरो पर श्रम का बोझ हल्का हो जाता है, काम के घटे कम होते हैं तथा सामाजिक सम्पदा मे वृद्धि होती है। प्राविधिक प्रगति से श्रम उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि होती जाती है तथा जनता का जीवन स्तर लगातार ऊपर उठता जाता है। अतएव, समाजवाद के अन्तर्गत समस्त मेहनतकश जनता को टेक्नालॉजी मे बहुत ही ज्यादा दिलचस्पी होती है। वह प्राविधिक प्रगति तथा श्रम-सगठन मे सुधार के कामो मे सक्रिय रूप से भाग लेती है।

क्या इसका अर्थ यह है कि समाजवाद मे मनमाने तौर पर कितने भी उपकरणो का इस्तेमाल किया जा सकता है। नही, ऐसा हरगिज नही है। कितने उपकरणो को इस्तेमाल किया जा सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि सामाजिक सम्पदा का स्तर क्या है। प्राविधिक प्रगति की सम्भावनाओ का दारोमदार उत्पादन की मात्रा, विज्ञान एव इजीनियरिंग के विकास के स्तर तथा विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए समाज के पास उपलब्ध धनराशि पर होता है।

सामाजिक सम्पदा के वर्तमान स्तर मे अगली वृद्धि बडी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि भौतिक साधनो और श्रम साधनो का विवेकपूर्ण इस्तेमाल किया जाय। उत्पादक शक्तियो के विकास की दर इस बात पर निर्भर करती है कि पूजी विनियोग अत्यत उचित ढग से चुना जाय और किया जाय। उत्पादन मे वृद्धि की दर तेज रखने की क्षमता समाजवादी अर्थव्यवस्था में निहित है, परन्तु यह बात अपने आप नही हो जाती, बल्कि इसके लिए समाज की उपलब्धियो का इस्तेमाल करने के लिए लगातार सघर्ष करना पडता है।

२. समाजवाद के आर्थिक नियम

समाजवाद के आर्थिक नियमो को लागू करने के ठोस प्रयास

पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण हो जाने के साथ ही पूजीवाद के आर्थिक नियमो का स्थान समाजवाद के आर्थिक नियम ले लेते हैं।

सभी अन्य सामाजो की भाति समाजवाद के आर्थिक नियमों का स्वरूप भी वस्तुगत होता है। इसका अर्थ यह है कि वे प्रकृतिक वस्तुओ के आन्तरिक सम्बधो को व्यक्त करते है जो जनता की चेतना और इच्छा पर निर्भर न होकर अपना स्वतत्र अस्तित्व रखते हैं। किन्तु इसके साथ ही, समाजवाद के आर्थिक नियम पहले के तमाम समाजो के नियमो से बहुत ज्यादा भिन्न होते हैं।

एगेल्स ने लिखा है कि दोनो के बीच के अन्तर की तुलना आसमान से गिरने वाली विनाशकारी बिजली, तथा तार या प्रकाश के काम मे लायी जाने वाली विद्युत शक्ति से, और इसी प्रकार भयकर अग्निकाण्ड और मनुष्य जाति की सेवा करने वाली अग्नि से, की जा सकती। इस प्रकार की तुलना से अन्तर के मूल-तत्व पर अच्छा प्रकाश पडता है। आसमान से गिरी बिजली और विद्युतशक्ति दोनो ही समान प्रकार की प्राकृतिक शक्ति से पैदा होती हैं। किन्तु आसमानी बिजली मनुष्य पर यकायक प्रहार करती है और मनुष्य उसको नियत्रित नही कर पाता। इसके विपरीत, विद्युत लैम्प को जलाने वाली प्राकृतिक शक्ति को मनुष्य ने समझा और विकसित किया है तथा अपनी समझ के अनुसार वह उसे इस्तेमाल करता है।

पूजीवाद तथा उससे पूर्व के सभी समाजो के आर्थिक नियम स्वत स्फूर्त ढग से अपना काम करते हैं। आसमानी बिजली की भांति ही वे जनता के नियत्रण से बाहर होते हैं। वैज्ञानिको ने जब बिजली की प्रकृति का पता लगा लिया, तब भी वह एक अजनबी शक्ति ही बनी रही। यही बात पूजीवाद के आर्थिक नियमो के बारे मे भी लागू होती है। उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के अन्तर्गत जनता सामाजिक विकास के आर्थिक नियमो का सचेतन ढग से इस्तेमाल करने के अवसर से वचित रहती है। इन नियमो की प्रकृति की जानकारी हो जाने के बाद भी ये नियम प्रकृति की अनियत्रित शक्तिया की भाति अधे तरीके से, हिसात्मक तथा विनाशकारी रूप मे, काम करते रहते हैं।

उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व के आधार पर कायम समाज-वाद राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सम्पूर्ण रूप से एकतावद्ध कर देता है। राष्ट्रीय आर्थिक विकास उसी प्रकार सचेतन तथा उद्देश्यपूर्ण कार्यकलाप का क्षेत्र बन जाता है जैसे किसी एक प्रतिष्ठान म लगने वाला मानव श्रम।

समाजवाद के अन्तर्गत जनता वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमो को समझना, उन

पर काबू हासिल करना तथा उन्हे सभी लोगो, अर्थात सम्पूर्ण समाज, के हित मे रचनात्मक आर्थिक विकास के लिए इस्तेमाल करना सीख लेती है। समाजवादी राज्य के रूप मे समाज, समाजवाद के आर्थिक नियमो को वैज्ञानिक ढग से इस्तेमाल करता है। वह उन्हें उसी तरह नियत्रित करता है जैसे कि विद्युत लैम्प मे बिजली की शक्ति को नियन्त्रित किया जाता है।

समाजवादी निर्माण के दौरान उस व्यवस्था के आर्थिक नियमो का समाज का ज्ञान और ज्यादा परिपक्व हो जाता है तथा उसे उस पर पूरा काबू हासिल हो जाता है। इस काम को कम्युनिस्ट पार्टी पूरा करती है, जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के ज्ञान से लैस होती है। अमली कामो को पूरा करने के साथ-साथ मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी क्रान्तिकारी सिद्धान्तो का विकास भी करती है।

कम्युनिस्ट पार्टी इस बात को मान कर चलती है कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की रचना वैज्ञानिक आधार पर किये जाने का अर्थ यह है कि उसे विज्ञान द्वारा प्रदर्शित वस्तुगत आर्थिक नियमो पर सगठित किया जाय, वस्तुनिष्ठ परिस्थिति का गम्भीरता के साथ मूल्याकन किया जाय, अपने तथा दूसरे लोगो के अनुभव से सीखने की क्षमता पैदा की जाय तथा आर्थिक प्रबन्ध के साधनो एव तरीको मे सुधार किया जाय।

अमली तजुर्बों को जमा करने और वैज्ञानिक तौर पर उनसे सामान्य नतीजे निकालने से समाजवाद के आर्थिक नियमो का अच्छा और बेहतर इस्ते-माल मुमकिन होता है। इसी के साथ, इन नियमो के सही इस्तेमाल से अमली कामो को कामयाबी से पूरा किया जा सकता है तथा इनका उल्लघन करने से इन कामो को पूरा करने मे रुकावट पड़ती है।

समाजवाद और कम्युनिज्म का उदय सामाजिक विकास के आर्थिक नियमो के कार्यान्वियन के फलस्वरूप होता है और ये नियम मनुष्यो की इच्छा और चेतना के बस मे न होकर स्वतत्र रूप से काम करते रहते हैं। इसी के साथ समाजवाद और कम्युनिज्म का उदय और उनका विकास करोडो मेहनतकशो के सचेत कार्यकलाप से होता है।

समाजवादी उत्पादन का उद्देश्य समाजवाद का बुनियादी आर्थिक नियम

पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण होने से उत्पादन का उद्देश्य बुनियादी तौर पर बदल जाता है। पूजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन का प्रत्यक्ष उद्देश्य मजदूरो के शोषण के द्वारा मुनाफा प्राप्त करना होता है। उत्पादन के विकास के लिए उत्प्रेरित करने वाली एकमात्र शक्ति मुनाफो की तलाश होती है। पूजीवाद का निर्माण पूजी द्वारा मजदूरो के शोषण के आधार पर किया जाता है।

समाजवादी समाज मे न पूजीपति होते हैं और न मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण ही पाया जाता है। उत्पादन के साधनों पर मेहनतकशो का सामूहिक स्वामित्व होता है और वे समाज तथा उसके समस्त सदस्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति के उद्देश्य से उत्पादन करते हैं। समाजवाद का उद्देश्य होता है—सामाजिक उत्पादन मे निरन्तर सुधार और विकास करते हुए जनता की लगातार बढने वाली भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ण रूप से पूर्ति करना। यही समाजवादी अर्थव्यवस्था की अपार शक्ति एव मुक्त समाजवादी श्रम की कभी न समाप्त होने वाली रचनात्मक शक्ति का स्रोत है।

इस प्रकार, समाजवाद अराजकतापूर्ण उत्पादन के स्थान पर, जिसका उद्देश्य मुनाफा बटोरना होता है, सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति के उद्देश्य से नियोजित उत्पादन का सगठन करता है। सोवियत सत्ता की स्थापना से पहले ही लेनिन ने लिखा था कि समाजवादी क्रान्ति उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व कायम करके सामाजिक उत्पादन को नियोजित ढग से सगठित करती है तथा समाज के समस्त सदस्यो के चौमुखी विकास और कल्याण को सुनिश्चित बनाती है।

समाजवादी समाज मेहनतकशो के भौतिक कल्याण तथा सास्कृतिक स्तर को ऊचा उठाने के उद्देश्य से उत्पादन मे लगातार सुधार व विकास करता रहता है। यही समाजवाद के बुनियादी आर्थिक नियम का मूल तत्व है। सामाजिक उत्पादन का व्यवस्थित सुधार तथा उसका निरन्तर 'विकास, जो जनता की आवश्यकताओ को पूरा करने की लाजमी शर्त है, समाजवादी समाज के कम्युनिज्म की ओर बढने का आधार बनता है।

समाजवाद मेहनतकश जनता के जीवन स्तर को निश्चित करने वाली परिस्थितियो को बुनियादी तौर पर बदल देता है। पूजीवाद के आर्थिक नियम जनता की महत्वपूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति को सीमित कर देते हैं। पूजीपति अपने मुनाफो को बढाने की खातिर मेहनतकश जनता की कमाई मे काट छाट करने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि मेहनतकश जनता पूजीपतियो के खिलाफ कठिन वर्ग सघर्ष द्वारा ही अपनी आर्थिक स्थिति मे निश्चित सुधार लाने मे समर्थ होती है।

समाजवादी समाज मे मेहनतकश जनता के जीवन स्तर मे सुधार केवल सामाजिक'उत्पादन मे प्राप्त स्तर, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि तथा उत्पादित पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करता है। समाज द्वारा जितनी ही अधिक सम्पदा का उत्पादन किया जाता है, जनता का जीवन स्तर भी उतना ही अधिक ऊचा उठता है।

समाजवादी क्रान्ति मेहनतकश जनता के लिए ऊचे जीवन स्तर की गारन्टी

करती है। जनता की राजसत्ता काम के घंटो को कम करती है तथा मेहनतकश जनता के आवास की स्थिति मे सुधार करती है। वह लगातार ऐसे कदमो को उठाती है जिनसे पहले तो बेरोजगारी की समस्या तेजी के साथ कम हो जाती है और बाद मे बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। समाजवाद किसान जनता के लिए एक खुशहाल और सास्कृतिक जीवन का रास्ता प्रशस्त करता है।

किन्तु समाज का समाजवादी रूपान्तरण भीमकाय कार्यो को अपने हाथ मे लेता है। इन कामो को पूरा करने के लिए—विशेष रूप से पिछडी अर्थव्यवस्था के देशो मे—समस्त जनता द्वारा भारी प्रयासो की आवश्यकता होती है। मेहनतकश जनता के जीवन स्तर मे लगातार उन्नति को सुनिश्चित करने का एकमात्र रास्ता उत्पादक शक्तियो का शीघ्रातिशीघ्र विस्तार करना है। इसका अर्थ यह है कि उद्योग, कृषि एव अन्य क्षेत्रो मे पुराने प्रतिष्ठानो का विस्तार किया जाय तथा नये प्रतिष्ठानो की स्थापना की जाय, श्रम उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि की जाय तथा सभी स्तरो पर प्राविधिक प्रगति एव बेहतर आर्थिक सयोजन को सुनिश्चित किया जाय।

मेहनतकश जनता के दुश्मन इस बात पर बडी चिल्ल-पो मचाते है कि समाजवादी देशो मे अभी भी भौतिक पदार्थों की इफरात नही है। वे जानबूझ कर उन कठिनाइयो पर पर्दा डालने का प्रयास करते हैं जिनका सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशो को—समाजवाद के निर्माण के दौरान उत्पन्न कठिनाइयो के रूप मे—सामना करना पडा था। ये तथा अन्य कठिनाइया थी : रूस तथा अन्य समाजवादी देशो का पुराना आर्थिक पिछडापन, साम्राज्यवादी देशो की विध्वसक कार्रवाइयां तथा वे विनाशकारी युद्ध जो सोवियत सघ पर थोपे गये।

कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा तैयार किये गये आर्थिक प्रबन्ध के सिद्धान्त केन्द्रीकृत प्रबन्ध एव सघीय जनतत्रो के अधिकारो मे विस्तार के बीच समन्वय स्थापित करते हैं, आर्थिक प्रबन्ध मे किफायती तौर-तरीकों को विकसित करते हैं, नियोजन मे बुनियादी सुधार लाते है, प्रतिष्ठानो की आर्थिक स्वतत्रता और पहलकदमी का विस्तार करते हैं तथा उनकी गतिविधियो के परिणामो में भौतिक दिलचस्पी बढाते हैं।

३. समाजवादी राज्य की आर्थिक भूमिका

समाजवादी राज्य आम जनता की रचनात्मक क्रियाशीलता को संगठित करता है

समाजवादी अर्थव्यवस्था में, जो सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमों के सचेत कार्यान्वयन पर आधारित होती है, राज्य की भूमिका पूजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना मे—जो स्वतःस्फूर्त ढग से काम करने वाले आर्थिक नियमो द्वारा संचालित होती है—बुनियादी तौर पर भिन्न होती है।

समाजवादी क्रान्ति एक नये प्रकार के राज्य की स्थापना करती है जिसका कोई उदाहरण मानव इतिहास मे पहले कभी नही था। इस राज्य के सामने ऐसी जिम्मेदारिया आ जाती हैं, जो पहले कभी भी किसी सरकार के सामने नही आयी थी। ये जिम्मेदारिया पुरानी एव निरर्थक पूजीवादी आर्थिक व्यवस्था को नष्ट करके उसके स्थान पर सामाजिक अर्थव्यवस्था के नये रूपो की स्थापना एव समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की रचना करने के रूप मे सामने आती हैं।

समाजवादी राज्य के समक्ष इन जिम्मेदारियो को कामयाबी के साथ पूरा करने की वास्तविक सम्भावना मौजूद रहती है। शोषण का अन्त करके समाजवादी राज्य आम जनता को इतिहास के सचेत निर्माताओ का स्थान प्रदान करता है—यही उसकी रचनात्मक शक्ति का स्रोत है। वह जनता का सगठनकर्ता बन जाता है तथा उसके प्रयासो को सामाजिक रूपान्तरण की महान जिम्मेदारियो को पूरा करने की दिशा मे सचालित करता है।

समाजवादी राज्य अपनी नियोजन एव प्रशासकीय सस्थाओ द्वारा दीर्घकालीन और फौरी आर्थिक योजनाए तैयार करता है तथा इन योजनाओं के लक्ष्यो को प्राप्त करने तथा उनसे और आगे बढ जाने के कार्यों का सगठन करता है। वह अलग-अलग प्रतिष्ठानो, प्रतिष्ठानो के समूहो तथा अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ के प्रबन्ध के लिए अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता है, कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले कर्मचारियो के वेतन सम्बधी नियमो तथा उनके स्वरूप को निर्धारित करता है, उद्योग एव कृषि क्षेत्रो मे तैयार माल के लिए एक निश्चित मूल्य नीति लागू करता है तथा आयात निर्यात कर को निश्चित करता है। राजकीय बजट, जो समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य वित्तीय योजना होता है, समाज के आर्थिक जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

विदेशी व्यापार पर राजकीय एकाधिपत्य, विदेशी पूजी के खिलाफ जबर्दस्त रोक का काम करता है तथा शोषण के उद्देश्य से समाजवादी देशो मे की जाने वाली उसकी घुस-पैठ को रोकता है।

समाजवादी राज्य का एक दूसरा अत्यन्त आवश्यक काम सामाजिक उत्पादन का वितरण करना है। राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे निष्क्रिय हो गये उत्पादन के साधनो के सामान्य पुनर्स्थापन की गारन्टी की जाती है या राज्य द्वारा ही राष्ट्रीय सम्पदा का वितरण किया जाता है ताकि जनता की बेहतरी के लिए लगातार प्रगति की जा सके और आधुनिकतम उपकरणो के आधार पर उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि की जा सके।

समाजवादी समाज ऐसे समय मे जीवित और विकासमान है जब साम्राज्यवाद की आक्रामक शक्तिया आज भी पूजीवादी देशो मे कायम हैं। इसका अर्थ यह होता है कि समाजवादी राज्य को देश की सुरक्षात्मक शक्ति को

संगठित और सुदृढ रखना पड़ता है। समस्त समाजवादी राज्यो का सबसे महत्वपूर्ण काम विश्व समाजवादी व्यवस्था की एकता व एकरसता को मजबूत बनाना है।

समाजवादी राज्य की आर्थिक नीति का वैज्ञानिक आधार

समाजवादी राज्य की आर्थिक नीति, सामान्य नीतियो की भांति ही, मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के आधार पर विकसित होती है। यह सिद्धान्त सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमो को आम तौर से, तथा समाजवाद के वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमो को खास तौर से, प्रकट करता है।

समाजवादी राज्य की चौमुखी गतिविधियो मे आर्थिक नीति का उचित ही केन्द्रीय स्थान होता है। उसका निर्देशन उत्पादक शक्तियो तथा समाजवादी समाज में उत्पादन के सम्बधो के विकास के उद्देश्य से किया जाता है। उसका लक्ष्य सोवियत जनता के न केवल वर्तमान बल्कि भविष्य को भी सुनिश्चित बनाना होता है। समाजवादी राज्य की दूरगामी आर्थिक नीति इस बात की गारन्टी करती है कि आज होने वाली प्रगति भविष्य मे इससे कही ज्यादा शानदार प्रगति की बुनियाद बनेगी। नीति के कार्यान्वियन मे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वर्तमान लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अन्तिम लक्ष्यो को भेंट न चढा दिया जाय। इसी प्रकार अन्तिम लक्ष्य की खातिर वर्तमान से मुह नही मोड लिया जाता। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए आर्थिक विकास की बुनियादी समस्याओ को हल किया जाता है। इन समस्याओ में सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था तथा उसके विभिन्न क्षेत्रो मे आर्थिक विकास की दर, सामाजिक उत्पादन मे अनुपात का निश्चित किया जाना, टेक्नालॉजीकल प्रगति की दिशा तथा जीवन स्तर को सुधारने के तौर-तरीके, आदि, शामिल हैं।

जनता के हित तथा इन हितो को अभिव्यक्त करने वाली समाजवादी राज्य की नीति सामाजिक विकास की वस्तुनिष्ठ प्रवृत्तियों से पूरी-पूरी तरह मेल खाती है। सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमों के फलस्वरूप विजयी समाजवाद कम्युनिज्म की ओर प्रगति करता है, तथा कम्युनिस्ट पार्टी व सोवियत राज्य देश को कम्युनिज्म के मार्ग पर सफलता पूर्वक आगे बढाने की नीति पर अमल करते हैं।

लेनिन ने लिखा था कि समाजवादी राज्य की सम्पूर्ण नीति मजदूर वर्ग तथा किसानो की अटूट एकता पर आधारित होनी चाहिए। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के विकास के साथ-साथ यह एकता भी मजबूत होती जाती है और एक दृढ शक्ति का रूप धारण कर लेती है। आर्थिक निर्माण की समस्त अवस्थाओ मे कम्युनिस्ट पार्टी इस बात का पूरा ध्यान रखती है कि किसान जनता जिस पथ पर समाजवाद की ओर आगे बढ़ेगी, उसकी विशिष्टताए क्या हैं। वह बडे

पैमाने के समाजवादी सामूहिक कृषि उत्पादन के सार्वजनिक हितो और सामूहिक किसानो के व्यक्तिगत हितो के बीच समन्वय स्थापित करके इस प्रगति को सुनिश्चित बनाती है। इसके लिए समृद्धिशीली सामूहिक फार्म अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किसानो के भौतिक हितो मे निरन्तर विस्तार की गारन्टी की जाती है। पार्टी और राज्य की आर्थिक नीति तथा सोवियत सरकार के समस्त आर्थिक कार्य कम्युनिस्ट निर्माण के हितो के लिए मजदूर वर्ग और किसानो के बीच एकता को लगातार मजबूत बनाते हैं।

समाजवादी आर्थिक प्रबन्ध के लेनिनवादी सिद्धान्त

लेनिन ने इस बात पर जोर दिया था कि समाजवादी क्रान्ति मे विजयी मजदूर वर्ग का मुख्य काम करोडो इन्सानो के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों के नियोजित उत्पादन और वितरण को सचालित करने वाले नये पेचीदा सागठनिक सम्बधो को नियन्त्रित करना है। लेनिन ने लिखा था कि पूजीपति वर्ग के खिलाफ राजनीतिक विजय प्राप्त कर लेने तथा उसे सुदृढ बनाने के बाद अर्थव्यवस्था के सगठन मे भी विजय हासिल करनी चाहिए।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के प्रबन्धको की यह जिम्मेदारी है कि सम्पूर्ण आर्थिक-व्यवस्था का सचालन सरलता के साथ निश्चित आधार पर चलता रहे। उनका कर्तव्य यह है कि सम्पूर्ण पेचादा अर्थव्यवस्था घडी की तरह एकदम ठीक-ठीक चलती रहे। समाजवादी अर्थव्यवस्था का जैसे-जैसे परिमाणात्मक तथा गुणात्मक रूप में विकास होता है, वैसे ही वैसे एक ओर अलग-अलग प्रतिष्ठानो के बीच तथा दूसरी ओर प्रतिष्ठानो, शाखाओ और आर्थिक क्षेत्रो के बीच, आपसी सम्बध एव उनकी परस्पर निर्भरता पेचीदा होती जाती है। ऐसी परिस्थिति मे देश के आर्थिक प्रबन्ध का सगठन बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है।

आर्थिक प्रबन्ध के तरीको को सुधारने के मामले मे कम्युनिस्ट पार्टी लेनिन द्वारा निर्धारित समाजवादी प्रबन्ध के सिद्धान्तो पर अमल करती है। व्यवहार ने निहायत शानदार तरीके से इन सिद्धान्तो की शक्ति तथा जीवन्तता को साबित कर दिया है और दिखा दिया है कि जैसे-जैसे समाजवादी अर्थव्यवस्था का विस्तार होता है, जैसे-जैसे उसके विकास की सभावनाए बलवती होती हैं और उसके काम कठिन तथा पेचीदा होते जाते हैं, वैसे ही वैसे ये सिद्धान्त भी विकसित और समृद्ध होते जाते हैं।

जनवादी केन्द्रीयता का लेनिनवादी सिद्धान्त समाजवादी अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध का आधार है। इस सिद्धान्त का अर्थ यह है कि उत्पादन प्रक्रियाओं की समस्त कडियो मे प्रबन्ध की जिम्मेदारी लाजमी तौर पर किसी एक व्यक्ति के सिपुर्द हो और इसी के साथ कारखाने तथा दफ्तर मे काम करने वाले समस्त कर्मचारियो को आर्थिक प्रबन्ध मे शरीक किया जाय। इस प्रकार, मेहनतकश

जनता के विशाल हिस्सो की पहलकदमी तथा उनकी रचनात्मक क्रियाशीलता के अधिकाधिक विकास की गारन्टी होती है तथा उनमे उद्देश्य और इच्छाशक्ति की एकता स्थापित होती है, जिसके बिना बडे पैमाने के उत्पादन की सामान्य क्रियाशीलता एव आधुनिक अत्यन्त विकसित आर्थिक सगठन की स्थापना असम्भव है।

आर्थिक प्रबन्ध और नियत्रण के जनवादी आधार का निरन्तर विकास और विस्तार समाजवादी समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओ मे से एक है। यह उसे सचालित करने वाले वस्तुनिष्ठ नियमो मे से एक है। समाजवादी समाज के विकास के अन्य वस्तुनिष्ठ नियमो की भाति यह नियम स्वत: कार्यरत नहीं हो जाता, बल्कि यह जनता की सचेतन एव उद्देश्यपूर्ण गतिविधि के द्वारा कार्यरत होता है। जैसे-जैसे समाजवादी अर्थव्यवस्था का विकास होता है और उसकी जिम्मेदारियां बढती व पेचीदा होती जाती हैं, वैसे ही वैसे आर्थिक क्रियाकलाप के जनवादी आधार को विकसित करने की आवश्यकता भी बढती जाती है और यह बहुत ही महत्वपूर्ण बन जाती है।

लेनिन ने जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त पर प्रहार करने वाले दो खतरो के खिलाफ जोरदार चेतावनी दी थी। पहला खतरा है जनवादी केन्द्रीयता के स्थान पर नौकरशाही केन्द्रीयता की स्थापना हो जाना तथा दूसरा खतरा है अनेक प्रकार की सकुचित या अराजकतापूर्ण प्रवृत्तियो द्वारा केन्द्रीयता का उल्लघन होना। कम्युनिस्ट निर्माण इस बात को मान कर चलता है कि प्रबन्ध के जनवादी आधार का पूरे तौर पर विकास किया जायगा और साथ ही राज्य केन्द्रीकृत आर्थिक प्रबन्ध को सुदृढ तथा पूर्ण बनायेगा।

उत्पादन की समाजवादी पद्धति के अत्यन्त महत्वपूर्ण नियमो मे से एक यह है कि जनता का रचनात्मक क्रियाकलाप आर्थिक वृद्धि और प्रगति की दिशा मे आगे बढाने वाली एक जबर्दस्त शक्ति है। समाजवाद ने करोडो इन्सानो की शक्ति को मुक्त किया है तथा इस शक्ति के भरपूर इस्तेमाल से ही अधिकाशत: आर्थिक विकास की दर निश्चित होती है। इसके साथ ही, केन्द्रीकृत आर्थिक प्रबन्ध की बढती हुई भूमिका, समाजवादी उत्पादन पद्धति के मुख्य नियमो मे से एक है। अर्थव्यवस्था का केन्द्रीकृत प्रबन्ध उसके विवेकपूर्ण सयोजन के लिए एक शर्त है तथा पूजीवाद पर समाजवाद की मुख्य निर्णायक श्रेष्ठताओं मे से एक है।

आर्थिक प्रबन्ध और नियत्रण मे सुधार जनवादी केन्द्रीयता के दोनो सिद्धान्तो के एक साथ विकास द्वारा पूरा किया जाता है : अर्थात प्रबन्ध का जनवादीकरण एव निर्देशन का केन्द्रीकरण। इन दोनो सिद्धान्तों का ठीक-ठीक

समन्वय समाजवाद और कम्युनिज्म के आर्थिक निर्माण के वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिए निर्णायक महत्व का है।

कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार द्वारा आर्थिक प्रबन्ध के क्षेत्र मे जो सुधार किया जा रहा है, वह समाजवादी प्रबन्ध के वर्षो से परखे और आजमाये हुए लेनिनवादी सिद्धान्तो का और अधिक विकास है—जैसे जनवादी केन्द्रीयता, समाजवादी लागत लेखा, काम को पूरा करने एव उत्पादन मे सुधार लाने के लिए नैतिक एव भौतिक प्रोत्साहनो का समन्वय। प्रबन्ध के लेनिनवादी सिद्धान्त, समाजवाद के वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमो को अभिव्यक्त करते हैं। समाजवादी प्रबन्ध के तरीकों के सुधार का अर्थ होता है—इन नियमो पर और अधिक सफलता से दक्षता प्राप्त करना तथा समाज के हित म इन्हे और अधिक कुशलता के साथ इस्तेमाल करना।

दोहराने के प्रश्न

१ समाजवादी सम्पत्ति के दो रूपो के वीच कौन सी समानताए और विषमताए पायी जाती है ?
२ समाजवाद के आर्थिक नियम किस प्रकार कार्य करते हैं ?
३ समाजवादी अर्थव्यवस्था के वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल तत्व क्या है ?
४ आर्थिक प्रबन्ध मे जनवादी केन्द्रीयता का मूल तत्व क्या है ?

अध्याय ११

समाजवादी अर्थतंत्र का सुनियोजित विकास

१. नियोजित अर्थतंत्र : समाजवाद की सर्वप्रमुख श्रेष्ठता

समाजवाद के अन्तर्गत सुनियोजित आर्थिक प्रबन्ध की सम्भावना तथा उसकी आवश्यकता

सम्पूर्ण अर्थतंत्र के सामान्य विकास के लिए उसके सभी अगो के विकास मे तालमेल बैठाया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि निश्चित किस्म के उत्पादों का—कोयला और मशीनरी, कपडा और जूतो, अनाज और मास का—निश्चित परिमाणात्मक अनुपात मे उत्पादन किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति अर्थतंत्र की विभिन्न शाखाओ के बीच उत्पादन के साधनो और श्रम के एक निश्चित बटवारे से होती है।

जैसा कि हम देख चुके हैं—पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे अलग-अलग भागो के बीच, अर्थात सामाजिक उत्पादन के तत्वो के बीच, आवश्यक अनुपात स्वत.स्फूर्त ढंग से कायम होता है। उत्पादन मे पायी जाने वाली अराजकता के मातहत यह आवश्यक अनुपात असख्य उतार-चढावो के परिणामस्वरूप कायम होता है। इससे आपसी प्रतियोगिता, सकटो और बेरोजगारी के कारण उत्पादक शक्तियो की जबर्दस्त बर्बादी होती है।

उत्पादन की अराजकता पूजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध से—उत्पादन के सामाजिक स्वरूप और हस्तगत करने के व्यक्तिगत पूजीवादी स्वरूप के बीच अन्तर्विरोध से—पैदा होती है। समाजवाद इस अन्तर्विरोध को समाप्त कर देता है। समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व रहता है, इसीलिए उत्पादन के परिणामो का उत्पादन के सामाजिक स्वरूप के साथ पूरा तालमेल रहता है। समाजवादी समाज की सामान्य रूपरेखा की चर्चा करते हुए मार्क्स और एगेल्स ने भविष्यवाणी की थी कि समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक उत्पादन की अराजकता समाप्त करके उसके स्थान पर समस्त समाज और उसके प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के उद्देश्य से, एक योजनाबद्ध तरीके से सामाजिक उत्पादन का सगठन किया जायेगा। लेनिन ने जोर देकर यह बात कही थी कि समाजवादी क्रान्ति के

सामने राज्य के आर्थिक तन्त्र को बदल कर उसकी जगह, योजना के अनुसार, करोडो लोगो के काम को निर्देशित करने वाले एक सक्षम यन्त्र को कायम करने की महान जिम्मेदारी आ गयी है।

इसका अर्थ यह है कि समाजवाद मे नियोजित आर्थिक प्रबन्ध सम्भव है और आवश्यक भी। जिस प्रकार उत्पादन म अराजकता के बिना पूजीवाद की कल्पना भी नही की जा सकती, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास के बिना समाजवाद की कल्पना नही की जा सकती। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध समाजवादी अर्थव्यवस्था के मुख्य लक्षणो मे से एक है। समाजवादी देशो के बीच सहयोग भी नियोजन के आधार पर होता है।

राज्य की आर्थिक योजना उत्पादन एव उत्पादित माल के वितरण को सामाजिक स्तर पर एक सूत्र मे बाध देती है। राजकीय प्रतिष्ठानो के मुख्य सूचको, अर्थात लक्ष्यो,की स्वीकृति उच्चतर आर्थिक सस्थाओ से प्राप्त की जाती है। सामूहिक फार्म अपन बोर्डों द्वारा निश्चित तथा सामूहिक किसानों की आम सभा द्वारा अनुमोदित योजनाओ के अनुसार काम करते हैं। न केवल उद्योग, कृषि, यातायात, निर्माण सगठन तथा व्यापारिक सस्थान, बल्कि वैज्ञानिक सस्थाए सास्कृतिक, शैक्षिक एव चिकित्सा सम्बधी सस्थान भी—सभी योजना के अनुसार काम करते हैं। समाजवादी समाज मे योजना का लक्ष्य सम्पूर्ण आर्थिक एव सास्कृतिक विकास तथा समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण की पूरी प्रक्रिया मे उद्देश्य और इच्छा के बीच एकता स्थापित करना होता है।

आर्थिक विकास का नियोजित स्वरूप पूजीवाद पर समाजवाद की निर्णायक आर्थिक एव सामाजिक श्रेष्ठताओ मे से एक है। समाजवादी अर्थव्यवस्था का नियोजित विकास उसे पूजीवादी उत्पादन की अराजकता से पैदा होने वाली विनाशकारी प्रतियोगिता, सकटो, बेरोजगारी तथा अन्य व्याधियो से मुक्त करता है। नियोजित अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप समाजवाद के अन्तर्गत आर्थिक वृद्धि की दर पूजीवाद की अपेक्षा कही ज्यादा होती है।

अर्थव्यवस्था के नियोजित, समानुपातिक विकास का नियम

अर्थव्यवस्था का नियोजित, समानुपातिक विकास समाजवाद का एक वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियम है। इस नियम को लागू करता हुआ समाजवादी समाज अपनी अर्थव्यवस्था को, एक योजना के अन्तर्गत, अधिक सफलता से चलाता है।

अर्थव्यवस्था का नियोजित सगठन एक ऐसा नया काम है जिसे समाजवादी समाज ने सर्वप्रथम अपने हाथ में लिया। पूजीवाद के अन्तर्गत—जिसका आधार उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व होना है—आर्थिक प्रबन्ध का दायरा अलग अलग प्रतिष्ठानो, फर्मों और उद्योगो तक ही सीमित रहता है। पूजीवादी

राज्य, विशेष रूप से वर्तमान परिस्थितियों मे, आर्थिक विकास मे संगठन के कुछ तत्वो का समावेश करने का प्रयास करता है। किन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, अपने समग्र रूप मे, बिना किसी नियत्रण के चलती है— उस पूजीवादी उत्पादन पद्धति के स्वत स्फूर्त नियमो की दया पर छोड दिया जाता है। पूजीवादी व्यक्तिगत स्वामित्व के सकुचित दायरे के कारण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास मे नियोजन लागू करने की सम्भावना रह ही नही जाती। समाजवाद इन सीमाओ स बधा नही होता। फलत, वह योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था के अत्यत विवेकपूर्ण तथा प्रभावी सगठन के लिए असीमित सम्भावनाए खोल देता है।

आर्थिक नियोजन मे निरन्तर सुधार करके अर्थव्यवस्था के नियोजित, समानुपातिक विकास के नियम को बेहतर तरीके स लागू किया जाता है तथा उस पर अधिकाधिक काबू पाया जाता है। नियोजित प्रबन्ध समस्त आर्थिक कड़ियो के निर्विघ्न कार्यकलाप को सुनिश्चित बनाता है। अर्थव्यवस्था मे आवश्यक अनुपात सुनिश्चित करना एक बडी पेचीदा समस्या होती है। व्यावहारिक अनुभव को सचित करके समाजवादी समाज इस समस्या को सफलतापूर्वक हल कर रहा है।

किन्तु, समस्या के अभूतपूर्व आकार के होने तथा उसके समाधान की कठिनाइयो के कारण अस्थायी तौर पर कुछ अनुपातो मे गडबडी भी पैदा हो जाती है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि, जितनी जल्दी सम्भव हो सके, इस गडबडी का पता लगाया जाय और उसे दूर करने के लिए कदम उठाये जायें।

अर्थव्यवस्था मे विभिन्न तत्वो के बीच अनुपात वस्तुनिष्ठ ढग के होते हैं। हर अवस्था मे वे एक ओर तो प्राविधिक विकास, श्रम स्रोतो की उपलब्धता और श्रम उत्पादकता के स्तर पर, तथा दूसरी ओर, सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर करते हैं। अनुपातो को स्वेच्छा से कायम नही किया जा सकता, बल्कि उपरोक्त कारको को ध्यान मे रखना पडता है।

किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न कडियो के बीच अनुपात अपरिवर्तनीय होते हैं। प्राविधिक प्रगति, विशेष रूप से इस समय जब वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति अपने पूरे वेग पर है, आर्थिक अनुपातो को बदलती रहती है।

आधुनिक वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्रान्ति उत्पादन की सर्वोच्च विकसित एव प्रगतिशील शाखाओ व किस्मो के तेज विकास की आवश्यकता को उजागर करती है। प्रगतिशील शाखाओ मे श्रम उत्पादकता कही ज्यादा ऊची होती है। उन शाखाओ मे पूजी विनियोग, अपेक्षाकृत कम ही समय मे अपनी उपयोगिता

सिद्ध कर देते हैं। इसी कारण उत्पादन की प्रगतिशील शाखाओ के गहन विकास के परिणामस्वरूप आर्थिक ढाचे म जो परिवर्तन लाये जाते हैं, व आर्थिक विकास की ऊची तथा स्थायी दरो को सुनिश्चित करने के लिए अत्यत आवश्यक होते हैं।

सामाजिक उत्पादन के ढाचे मे विधिवत सुधार करना नियोजित एव समानुपातिक आर्थिक विकास तथा कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार की रचना के लिए असाधारण रूप स आवश्यक कर्तव्य है। किन्तु ढाचे सम्बधी इन परिवर्तनो को अर्थव्यवस्था मे समानुपातिक विकास मे दखलन्दाजी नहीं करनी चाहिए और न ही उन्हे अनुपातो को बिगाडना चाहिए।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि "यह अनिवार्य है कि अर्थव्यवस्था का विकास सख्ती के साथ समानुपातिक आधार पर किया जाय, आर्थिक अनुपातो म पैदा होने वाली गडबडी को समय रहते रोक दिया जाय, आर्थिक विकास की स्थायी ऊची दरो के लिए समुचित आर्थिक सचय को सुनिश्चित बनाया जाय, प्रतिष्ठानो को निर्विघ्न रूप से चालू रखा जाय तथा जनता की खुशहाली म लगातार वृद्धि की जाय।"

श्रम में किफायत का नियम

आर्थिक प्रबन्ध मे किफायत के बिना नियोजित आर्थिक विकास की कल्पना भी नही की जा सकती। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की माग है कि किफायती आर्थिक प्रबन्ध लागू किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने बस भर हर प्रयास करती है। यह आवश्यकता सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले समाजवादी उत्पादन के लक्ष्य के अनुसार काम करती है। दूसरी ओर, इसकी सम्भावना इस तथ्य द्वारा निश्चित होती है कि उत्पादन की अराजकता, विनाशकारी प्रतियोगिता, आर्थिक सकट तथा बेरोजगारी, आदि, जैसी पूजीवाद की असाध्य बीमारियो से समाजवाद मुक्त है। समाजवाद उत्पादक शक्तियो मे होने वाली बर्बादी के लिए जिम्मेदार कारणो को मिटा डालता है तथा समस्त सामाजिक साधनो का अत्यन्त विवेकपूर्ण एव उचित इस्तेमाल सम्भव बनाता है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के ग्रन्थो ने समाजवाद के अन्तर्गत किफायत के अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त पर जोर दिया है। उन्होने इस सवाल को समाजवादी उत्पादन के नियोजित स्वरूप स अभिन्न रूप से जुडा हुआ माना है। मार्क्स ने श्रम मे किफायत और उत्पादन की विभिन्न शाखाओ के बीच उनके नियोजित वितरण को समाजवादी उत्पादन पद्धति का एक आवश्यक नियम माना था।

लेनिन हमेशा किफायत पर जोर देते थे। उनका कहना था कि मुद्रा का

हमेशा हिसाब-किताब रखा जाना चाहिए तथा समाजवादी राज्य मे अपव्यय को सहन नही किया जा सकता। मार्क्स की तरह उन्होंने भी किफायती आर्थिक प्रबन्ध को समाजवादी निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया के नियोजित निर्देशन से जोड़ा था।

किफायती आर्थिक प्रबन्ध समाजवाद के अन्तर्गत नियोजित आर्थिक विकास के अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्षणो मे से एक है। किफायत को नजरन्दाज करने वाले प्रबन्ध को नियोजित प्रबन्ध नही कहा जा सकता। नियोजित आर्थिक विकास ऐसा विवेकशील प्रबन्ध होता है, जो देश की प्राकृतिक सम्पदा एव समस्त भौतिक, श्रम एव वित्तीय स्रोतो के अत्यन्त उचित और प्रभावी इस्तेमाल पर आधारित होता है। न्यूनतम खर्च पर समाज के हित मे अधिकतम उपलब्धिया प्राप्त करना समाजवादी समाज के आर्थिक विकास का एक अपरिवर्तनीय नियम है।

समाजवाद के आर्थिक नियमों के सचेतन इस्तेमाल के आधार पर आर्थिक नियोजन

नियोजित आर्थिक प्रबन्ध से समाज की बढती हुई आवश्यकताओ की अधिकाधिक पूर्ति के लिए उत्पादन मे निरन्तर तथा तेज वृद्धि को सुनिश्चित करने की माग भी की जाती है। वह समाजवाद के आर्थिक नियमो पर—विशेष रूप से नियोजित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता को निश्चित करने वाले नियोजित सानुपातिक विकास के नियम तथा खर्च और उत्पादन के परिणामों के बीच तालमेल की माग करने वाले मूल्य के नियम पर—आधारित होता है। इसी के साथ, नियोजित अर्थव्यवस्था एक ऐसा स्वरूप है जिससे समाजवाद के अन्य समस्त नियमो के यथासम्भव लागू किये जाने की गारन्टी की माग की जाती है।

नियोजन तथा आर्थिक कर्तव्यो को पूरा करने मे मनमानेपन के बीच कोई तालमेल नही बैठ सकता। योजनाओ का वैज्ञानिक आधार, उनकी कामयाबी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शर्त है।

आर्थिक नियोजन अर्थव्यवस्था के, उसकी प्रेरक शक्तियो एव प्रवृत्तियो के विकास की वस्तुनिष्ठ शर्तों के सूक्ष्म अध्ययन पर आधारित होता है। योजनाओ को निर्धारित करते समय वस्तुनिष्ठ परिस्थितियो तथा आर्थिक नियमो पर जितने अधिक विस्तार और पूर्णता से विचार किया जाता है, उनके कार्यान्वयन मे उतनी ही अधिक सफलता भी मिलती है। समाजवादी योजना वैज्ञानिक तौर पर निर्धारित सामाजिक आवश्यकताओं तथा उत्पादक स्रोतो और सचयो के मूल्याकन पर आधारित होती है। वह अर्थव्यवस्था के सर्वाधिक प्रभावी विकास के मार्गों को इगित करती है।

योजना के कर्तव्य हम ऊपर बता चुके हैं कि समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य सामाजिक उत्पादन मे निरन्तर विकास और सुधार करके जनता की बढती हुई भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ण सन्तुष्टि करना है। स्वाभाविक है कि समाजवादी योजनाओ के कर्तव्य उपरोक्त लक्ष्य के तहत आते हैं। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध हर अवस्था म कुछ और ठोस काम भी अपने सामने रखता है जो किसी परिस्थिति विशेष मे पैदा हो जाते हैं।

लेनिन ने, १९२० मे निश्चित, रूस के विद्युतीकरण की राजकीय योजना को आधुनिकतम टेक्नालॉजी, अर्थात समस्त देश के विद्युतीकरण के आधार पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के कार्यक्रम, का नाम दिया था।

सोवियत सघ की शुरूआती पचवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य यह था कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की बुनियाद कायम कर दी जाय, अर्थव्यवस्था का प्राविधिक पुनर्सज्जीकरण सुनिश्चित बनाया जाय, देश की अर्थव्यवस्था मे पूजीवादी तत्वो के ऊपर समाजवादी तत्वो की प्रधानता स्थापित की जाय तथा अन्ततोगत्वा पूजीवादी तत्वो का पूर्ण रूप से सफाया कर दिया जाय—मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण तथा उसके लिए जिम्मेदार कारणो को मिटा दिया जाय। इसी के साथ, युद्ध-पूर्व की पचवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य सोवियत सघ की आर्थिक व राजनीतिक स्वतत्रता को मजबूत बनाना एव साम्राज्यवादी सशस्त्र आक्रमण के बढते हुए खतरे के मुकाबले उसकी सुरक्षात्मक शक्ति को सुदृढ करना भी था। ऐतिहासिक परिस्थितियो द्वारा निश्चित क्रम मे इन सभी कर्तव्यो को निर्धारित एव पूर्ण किया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत सघ की आर्थिक योजनाओ का लक्ष्य युद्ध मे नष्ट अर्थव्यवस्था के शीघ्रातिशीघ्र पुनर्स्थापन और समाजवादी अर्थव्यवस्था के तेजी से बढाव को सुनिश्चित बनाना था।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मुख्य अनुपात समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजन मे आर्थिक ढाचे के अलग-अलग भागो और क्षेत्रो के बीच परिमाण से सम्बधित सम्बधो की गारन्टी की जानी चाहिए।

अर्थव्यवस्था मे मुख्य अनुपात तो उसके मुख्य क्षेत्रो, अर्थात उद्योग और कृषि के विकास के बीच, औद्योगिक एव कृषि उत्पादन के बीच तथा यातायात के साधनो मे वृद्धि के बीच, होते हैं। स्वय उद्योग मे उत्पादन के साधनो और उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन के बीच सम्बधो को बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है। इन दोनो विभागो मे अलग-अलग क्षेत्रो के बीच निश्चित अनुपात कायम होते हैं। उदाहरण के लिए, निर्माण के विस्तार को सुनिश्चित करने के लिए उसी के अनुरूप मात्रा मे निर्माण सामग्री (सीमेन्ट, तैयार क्क्रीट, धातुओ, आदि) का उत्पादन होना चाहिए।

उद्योग और कृषि मे जो उत्पादन होता है वह उपभोग और सचय के साधनो की पूर्ति करता है। उपभोग और सचय के बीच अनुपात अत्यन्त आवश्यक आर्थिक अनुपातो मे से एक है जो समाजवादी समाज मे एक योजना के अनुसार स्थापित किया जाता है और कायम रखा जाता है।

यह अनुपात उत्पादन के साधनो और उपभोक्ता मालों के उत्पादन के बीच अनुपात से अभिन्न रूप से जुडा होता है। उपभोक्ता मालो को पैदा करने वाले क्षेत्रो का उत्पादन सीधे तौर पर जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। उत्पादन के साधनो को पैदा करने वाले क्षेत्रो का उत्पादन घिस गये तथा बेकार हो गये उत्पादन के साधनो की पूर्ति करता है और उत्पादक क्षमताओं म विस्तार करता है।

अगर अर्थव्यवस्था को सामान्य रूप से विकसित होना है तो उत्पादन और प्राप्ति के बीच तालमेल होना चाहिए। जनता की बढती हुई क्रय शक्ति के अनुरूप ही बिक्री के सामानो की मात्रा मे भी वृद्धि होनी चाहिए। राज्य की आय और व्यय के बीच भी एक निश्चित अनुपात होना चाहिए।

न केवल उत्पादन के ढाचे मे, बल्कि श्रम स्रोतो के इस्तेमाल म भी निश्चित अनुपातो का होना आवश्यक है।

अन्तर-जिला अनुपात भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। समाजवाद देश के समस्त आर्थिक क्षेत्रो के तेज विकास को एव उत्पादक शक्तियो के विवेकपूर्ण वितरण को सुनिश्चित बनाता है। हर क्षेत्र का चौमुखी विकास होने के साथ ही, उस क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक स्रोतो तथा अन्य तत्वो को दृष्टिगत रखते हुए उसका विशेष प्रकार का विकास भी चलता रहता है। विशेषीकरण के कारण अन्तर जिला कडियो के विकास की आवश्यकता उत्पन्न होती है। ये कडिया अधिकाधिक विविधतापूर्ण होती जाती हैं।

विभिन्न आर्थिक शाखाओ और प्रतिष्ठानो के बीच ही नही, बल्कि प्रत्येक प्रतिष्ठान के अन्दर भी निश्चित अनुपात कायम रहते हैं। इस प्रकार, इजी-नियरिंग कारखाने मे पुर्जे तैयार करने और जुडाई का काम करने वाले विभागो के बीच निश्चित अनुपात होना चाहिए। यदि पुर्जे तैयार करने वाले विभाग आवश्यक पुर्जे नही भेजते, तो जुडाई वाले विभाग बेकार पडे रहेगे। अगर जुडाई वाला विभाग अपना काम पूरा नही करता, तो तैयार पुर्जे बेकार स्टॉक की तरह विभाग या स्टोर मे जमा होते जायेंगे और तैयार माल का उत्पादन रुक जायेगा।

राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन

राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन के आधार पर योजना के विभिन्न अगो का समन्वय, समाजवादी योजना का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। राष्ट्रीय आय और उसके इस्तमाल

योजना के कर्तव्य हम ऊपर बता चुके हैं कि समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य सामाजिक उत्पादन मे निरन्तर विकास और सुधार करके जनता की बढती हुई भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ण सन्तुष्टि करना है। स्वाभाविक है कि समाजवादी योजनाओ के कर्तव्य उपरोक्त लक्ष्य के तहत आते हैं। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध हर अवस्था मे कुछ और ठोस काम भी अपने सामने रखता है जो किसी परिस्थिति विशेष मे पैदा हो जाते हैं।

लेनिन ने, १९२० मे निश्चित, रूस के विद्युतीकरण की राजकीय योजना को आधुनिकतम टेक्नालॉजी, अर्थात समस्त देश के विद्युतीकरण के आधार पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के कार्यक्रम, का नाम दिया था।

सोवियत सघ की शुरुआती पचवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य यह था कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की बुनियाद कायम कर दी जाय, अर्थव्यवस्था का प्राविधिक पुनर्सज्जीकरण सुनिश्चित बनाया जाय, देश की अर्थव्यवस्था मे पूजीवादी तत्वो के ऊपर समाजवादी तत्वो की प्रधानता स्थापित की जाय तथा अन्ततोगत्वा पूजीवादी तत्वो का पूर्ण रूप से सफाया कर दिया जाय— मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण तथा उसके लिए जिम्मेदार कारणो को मिटा दिया जाय। इसी के साथ, युद्ध-पूर्व की पचवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य सोवियत सघ की आर्थिक व राजनीतिक स्वतत्रता को मजबूत बनाना एव साम्राज्यवादी सशस्त्र आक्रमण के बढते हुए खतरे के मुकाबले उसकी सुरक्षात्मक शक्ति को सुदृढ करना भी था। ऐतिहासिक परिस्थितियो द्वारा निश्चित क्रम मे इन सभी कर्तव्यो को निर्धारित एव पूर्ण किया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत सघ की आर्थिक योजनाओ का लक्ष्य युद्ध मे नष्ट अर्थव्यवस्था के शीघ्रातिशीघ्र पुनर्स्थापन और समाजवादी अर्थव्यवस्था के तेजी से बढाव को सुनिश्चित बनाना था।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मुख्य अनुपात समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजन मे आर्थिक ढाचे के अलग-अलग भागो और क्षेत्रो के बीच परिमाण से सम्बधित सम्बधो की गारन्टी की जानी चाहिए। अर्थव्यवस्था मे मुख्य अनुपात तो उसके मुख्य क्षेत्रो, अर्थात उद्योग और कृषि के विकास के बीच, औद्योगिक एव कृषि उत्पादन के बीच तथा यातायात के साधनो मे वृद्धि के बीच, होते हैं। स्वय उद्योग मे उत्पादन के साधनो और उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन के बीच सम्बधो को बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है। इन दोनो विभागो मे अलग-अलग क्षेत्रो के बीच निश्चित अनुपात कायम होते हैं। उदाहरण के लिए, निर्माण के विस्तार को सुनिश्चित करने के लिए उसी के अनुरूप मात्रा मे निर्माण सामग्री (सीमेन्ट, तैयार कक्रीट, धातुओ, आदि) का उत्पादन होना चाहिए।

उद्योग और कृषि मे जो उत्पादन होता है वह उपभोग और सचय के साधनो की पूर्ति करता है। उपभोग और सचय के बीच अनुपात अत्यन्त आवश्यक आर्थिक अनुपातो मे से एक है जो समाजवादी समाज मे एक योजना के अनुसार स्थापित किया जाता है और कायम रखा जाता है।

यह अनुपात उत्पादन के साधनो और उपभोक्ता मालो के उत्पादन के बीच अनुपात से अभिन्न रूप से जुडा होता है। उपभोक्ता मालो को पैदा करने वाले क्षेत्रो का उत्पादन सीधे तौर पर जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। उत्पादन के साधनो को पैदा करने वाले क्षेत्रो का उत्पादन घिस गये तथा बेकार हो गये उत्पादन के साधनो की पूर्ति करता है और उत्पादक क्षमताओ मे विस्तार करता है।

अगर अर्थव्यवस्था को सामान्य रूप से विकसित होना है तो उत्पादन और प्राप्ति के बीच तालमेल होना चाहिए। जनता की बढती हुई क्रय शक्ति के अनुरूप ही बिक्री के सामानो की मात्रा मे भी वृद्धि होनी चाहिए। राज्य की आय और व्यय के बीच भी एक निश्चित अनुपात होना चाहिए।

न केवल उत्पादन के ढाचे मे, बल्कि श्रम स्रोतो के इस्तेमाल मे भी निश्चित अनुपातो का होना आवश्यक है।

अन्तर-जिला अनुपात भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। समाजवाद देश के समस्त आर्थिक क्षेत्रो के तेज विकास को एव उत्पादक शक्तियो के विवेकपूर्ण वितरण को सुनिश्चित बनाता है। हर क्षेत्र का चौमुखी विकास होने के साथ ही, उस क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक स्रोतो तथा अन्य तत्वो को दृष्टिगत रखते हुए उसका विशेष प्रकार का विकास भी चलता रहता है। विशेषीकरण के कारण अन्तर-जिला कडियो के विकास की आवश्यकता उत्पन्न होती है। ये कडिया अधिकाधिक विविधतापूर्ण होती जाती हैं।

विभिन्न आर्थिक शाखाओ और प्रतिष्ठानो के बीच ही नही, बल्कि प्रत्येक प्रतिष्ठान के अन्दर भी निश्चित अनुपात कायम रहते है। इस प्रकार, इजीनियरिंग कारखाने मे पुर्जे तैयार करने और जुडाई का काम करने वाले विभागो के बीच निश्चित अनुपात होना चाहिए। यदि पुर्जे तैयार करने वाले विभाग आवश्यक पुर्जे नही भेजते, तो जुडाई वाले विभाग बेकार पडे रहेंगे। अगर जुडाई वाला विभाग अपना काम पूरा नही करता, तो तैयार पुर्जे बेकार स्टॉक की तरह विभाग या स्टोर मे जमा होते जायेंगे और तैयार माल का उत्पादन रुक जायेगा।

राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन

राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन के आधार पर योजना के विभिन्न अगो का समन्वय, समाजवादी योजना का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। राष्ट्रीय आय और उसके इस्तेमाल

के बीच सतुलन, आर्थिक जिलो के अनुरूप बाटे गये श्रम स्रोतो और उनके इस्तेमाल के बीच सतुलन, जनता की वित्तीय आय और उसके व्यय के बीच सतुलन वित्तीय साधनो का सतुलन एव मुख्य भौतिक सतुलन—ये अत्यन्त महत्वपूर्ण सतुलन हैं। सतुलनो की एक गहन तथा वैज्ञानिक रूप से निर्धारित व्यवस्था सही आर्थिक अनुपात और सम्बधो को सुनिश्चित करने की एक मुख्य शर्त है।

राष्ट्रीय आय और उसके इस्तेमाल के बीच सतुलन से जाहिर होता है कि राष्ट्रीय आय का बटवारा उसके मुख्य भागो मे, अर्थात उपभोग मे और सचय के क्षेत्रो मे, किस प्रकार हुआ है। श्रम स्रोतो के सतुलन से श्रम आवश्यकताओ तथा श्रम स्रोतो के सचय को स्थापित करने मे सहायता मिलती है।

जनता की मौद्रिक आय और व्यय के सतुलन मे जनता की हर प्रकार की वित्तीय आय को दृष्टिगत रखा जाता है—जैसे कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले कर्मचारियो का वेतन, कार्य दिवस इकाइयों के अनुसार सामूहिक किसानो की आय, पेन्शनें, अनुदान एव अन्य आमदनिया। इस सतुलन का दूसरे पक्ष के अन्तर्गत जनता के हाथो बेचे जाने वाले समस्त मालो और सेवाओ की कीमतो के योग तथा हर प्रकार की अदायगी से होने वाले जनता के खर्चों को दृष्टिगत रखा जाता है। वित्तीय आमदनी और खर्च के बीच सतुलन मुद्रा सचार को नियोजित करने का अति महत्वपूर्ण साधन है। राजकीय बजट—राजकीय आय और व्यय का सतुलन होता है।

भौतिक सतुलनो मे से निम्नलिखित मुख्य सतुलन हैं: उत्पादन के साधनों—विद्युत शक्ति, ईंधन, धातुओं, उपकरणो, इमारती सामान, रासायनिक पदार्थों, कागज—के बीच सतुलन। ये सतुलन खुदाई और निर्माण करने वाले उद्योगो के उत्पादन को समन्वित करने तथा सहयोगी उद्योगो के विकास को नियोजित करने मे सहायक होते हैं। भौतिक सतुलनो मे उपभोक्ता वस्तुओ (औद्योगिक माल एव खाद्य पदार्थ) के सतुलन भी शामिल होते हैं। इसी के साथ वे कृषि पदार्थों के उत्पादन और उपभोग के सतुलनो से जुडे होते हैं।

अपने सम्पूर्ण रूप मे, सतुलन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को अपनी परिधि मे लेते हैं और वे उसके सभी प्रमुख तत्वो के बीच पारस्परिक सम्बधो को उजागर करते हैं। ये ही सतुलन अर्थव्यवस्था मे सही अनुपातों की स्थापना को सुनिश्चित बनाते हैं और आन्तरिक स्रोतो तथा सचयो को उजागर करने मे सहायक होते हैं।

योजना का इष्टतम रूप

यथार्थवादी हो ... ना को ... चाहिए। योजन ... बीच ... होना ... अनुपातो म गड ... ो है ... म

बहुत बढ जाता है और तब योजना मे, उसके कार्यान्वयन के दौरान, सुधार करना जरूरी हो जाता है। किन्तु, यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि योजना के अत्यत सुसतुलित और व्यावहारिक रूप में पूरे किये जा सकने वाले अनेकानेक प्रकार हो सकते हैं।

अतएव, योजना के सर्वश्रेष्ठ प्रकार को चुनना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आर्थिक विकास की योजनाओ मे निर्दिष्ट दरें और अनुपात इष्टतम होने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि योजनाओ मे समाजवादी व्यवस्था के समस्त स्रोतो और क्षमताओं के सबसे कारगर उपयोग की व्यवस्था होनी चाहिए।

राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर (निश्चित रूप से, जनता की खुशहाली के लिए आवश्यक स्तर एव समाज के श्रम स्रोतो के पूर्ण उपयोग की व्यवस्था करते हुए) यह जाचने के लिए आम कसौटी का काम करती है कि योजना इष्टतम ढग पर निश्चित की गयी है या नही। अलग-अलग शाखाओ के लिए अलग-अलग कसौटियों—उत्पादन वृद्धि, खर्च में कमी, आदि, को अपनाया जा सकता है, जिनका चयन ठोस परिस्थिति पर निर्भर करता है।

उत्पादन मे वृद्धि की ऊची दरो, सबसे उपयुक्त आर्थिक अनुपातो तथा उत्पादित पदार्थों की उच्च गुणात्मकता की गारन्टी के लिए एक सतुलित योजना आवश्यक होती है। इन समस्त लक्ष्यो की प्राप्ति कम से कम सामाजिक श्रम के खर्च पर की जानी चाहिए।

जैसे-जैसे समाजवादी अर्थव्यवस्था का विकास होता है और उसके सामने आने वाले काम पेचीदा होते जाते हैं, वैसे ही वैसे योजना को इष्टतम रूप देना और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तथा उसकी माग होती है कि अर्थव्यवस्था मे अन्तर-निर्भरता अत्यन्त शुद्ध और ठीक ठीक गणना पर आधारित हो। योजना को इष्टतम रूप गणित के तरीको को लागू करके ही दिया जाता है। गणित और गणना-तकनीक के आधुनिक विकास से योजना के इष्टतम प्रकारो को प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक गणना-तकनीकें हमे आर्थिक समस्याओ को थोडे ही समय के अन्दर हल करने के सर्वोत्तम तरीको का पता लगाने के लिए आवश्यक असख्य गणनाए करने मे समर्थ बनाती हैं।

२. आर्थिक नियोजन का संगठन और उसके तरीके

योजना का संग्रह

समाजवादी निर्माण में प्राप्त अनुभव ने योजना सम्बधी ठोस अमली तरीकों को निश्चित करना सम्भव बना दिया है।

आर्थिक विकास की योजनाए पार्टी और सरकार द्वारा स्वीकृत निर्देशो के आधार पर तैयार की जाती हैं। ये निर्देश योजना के मुख्य राजनीतिक और

के बीच सतुलन, आर्थिक जिलो के अनुरूप बाटे गये श्रम स्रोतो और उनके इस्तेमाल के बीच सतुलन, जनता की वित्तीय आय और उसके व्यय के बीच सतुलन, वित्तीय साधनो का सतुलन एव मुख्य भौतिक सतुलन—ये अत्यन्त महत्वपूर्ण सतुलन हैं। सतुलना की एक गहन तथा वैज्ञानिक रूप से निर्धारित व्यवस्था सही आर्थिक अनुपात और सम्बधो को सुनिश्चित करने की एक मुख्य शर्त है।

राष्ट्रीय आय और उसके इस्तेमाल के बीच सतुलन से जाहिर होता है कि राष्ट्रीय आय का बटवारा उसके मुख्य भागो मे, अर्थात उपभोग मे और सचय के क्षेत्रो म, किस प्रकार हुआ है। श्रम स्रोतो के सतुलन से श्रम आवश्यकताओ तथा श्रम स्रोतो के सचय को स्थापित करने मे सहायता मिलती है।

जनता की मौद्रिक आय और व्यय के सतुलन मे जनता की हर प्रकार की वित्तीय आय को दृष्टिगत रखा जाता है—जैसे कारखानो और दफ्तरों मे काम करने वाले कर्मचारियो का वेतन, कार्य दिवस इकाइयों के अनुसार सामूहिक किसानो की आय, पेन्शनें, अनुदान एव अन्य आमदनिया। इस सतुलन का दूसरे पक्ष के अन्तर्गत जनता के हाथो बेचे जाने वाले समस्त मालो और सेवाओ की कीमतो के योग तथा हर प्रकार की अदायगी से होने वाले जनता के खर्चों को दृष्टिगत रखा जाता है। वित्तीय आमदनी और खर्च के बीच सतुलन मुद्रा सचार को नियोजित करने का अति महत्वपूर्ण साधन है। राजकीय बजट—राजकीय आय और व्यय का सतुलन होता है।

भौतिक सतुलनो मे से निम्नलिखित मुख्य सतुलन हैं· उत्पादन के साधनो—विद्युत शक्ति ईंधन, धातुओं, उपकरणो, इमारती सामान, रासायनिक पदार्थों कागज—के बीच सतुलन। ये सतुलन खुदाई और निर्माण करने वाले उद्योगो के उत्पादन को समन्वित करने तथा सहयोगी उद्योगो के विकास को नियोजित करने मे सहायक होते हैं। भौतिक सतुलनो मे उपभोक्ता वस्तुओ (औद्योगिक माल एव खाद्य पदार्थ) के सतुलन भी शामिल होते हैं। इसी के साथ वे कृषि पदार्थों के उत्पादन और उपभोग के सतुलनो से जुडे होते हैं।

अपने सम्पूर्ण रूप मे, सतुलन सम्पूण अर्थव्यवस्था को अपनी परिधि मे लेते हैं और वे उसके सभी प्रमुख तत्वो के बीच पारस्परिक सम्बधो को उजागर करते हैं। ये ही सतुलन अर्थव्यवस्था मे सही अनुपातो की स्थापना को सुनिश्चित बनाते हैं और आतरिक स्रोतो तथा सचयो को उजागर करने मे सहायक होते हैं।

योजना का इष्टतम रूप

यथार्थवादी होने के लिए योजना को सुसतुलित होना चाहिए। योजना के सभी तत्वो के बीच तारतम्य न होने से अनुपातो मे गडबडी पैदा हो जाती है तथा उनका तनाव

बहुत बढ जाता है और तब याजना मे, उसके कार्यान्वयन के दौरान, सुधार करना जरूरी हो जाता है। किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि योजना के अत्यत सुसतुलित और व्यावहारिक रूप मे पूरे किये जा सकने वाले अनेकानेक प्रकार हो सकते हैं।

अतएव, योजना के सर्वश्रेष्ठ प्रकार को चुनना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आर्थिक विकास की योजनाओ मे निर्दिष्ट दरें और अनुपात इष्टतम होने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि योजनाओं में समाजवादी व्यवस्था के समस्त स्रोतो और क्षमताओ के सबसे कारगर उपयोग की व्यवस्था होनी चाहिए।

राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर (निश्चित रूप से, जनता की खुशहाली के लिए आवश्यक स्तर एव समाज के श्रम स्रोतो के पूर्ण उपयोग की व्यवस्था करते हुए) यह जाचने के लिए आम कसौटी का काम करती है कि योजना इष्टतम ढग पर निश्चित की गयी है या नही। अलग-अलग शाखाओ के लिए अलग-अलग कसौटियो—उत्पादन वृद्धि, खर्च मे कमी, आदि, को अपनाया जा सकता है, जिनका चयन ठोस परिस्थिति पर निर्भर करता है।

उत्पादन में वृद्धि की ऊची दरो, सबसे उपयुक्त आर्थिक अनुपातो तथा उत्पादित पदार्थों की उच्च गुणात्मकता की गारन्टी के लिए एक सतुलित योजना आवश्यक होती है। इन समस्त लक्ष्यों की प्राप्ति कम से कम सामाजिक श्रम के खर्च पर की जानी चाहिए।

जैसे-जैसे समाजवादी अर्थव्यवस्था का विकास होता है और उसके सामने आने वाले काम पेचीदा होते जाते हैं, वैसे ही वैसे योजना को इष्टतम रूप देना और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तथा उसकी माग होती है कि अर्थव्यवस्था मे अन्तर-निर्भरता अत्यन्त शुद्ध और ठीक ठीक गणना पर आधारित हो। योजना को इष्टतम रूप गणित के तरीको को लागू करके ही दिया जाता है। गणित और गणना-तकनीक के आधुनिक विकास से योजना के इष्टतम प्रकारों को प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक गणना-तकनीकें हमे आर्थिक समस्याओ को थोडे ही समय के अन्दर हल करने के सर्वोत्तम तरीकों का पता लगाने के लिए आवश्यक असख्य गणनाए करने में समर्थ बनाती हैं।

२. आर्थिक नियोजन का संगठन और उसके तरीके

योजना का सग्रह

समाजवादी निर्माण में प्राप्त अनुभव ने योजना सम्बधी ठोस अमली तरीकों को निश्चित करना सम्भव बना दिया है।

आर्थिक विकास की योजनाए पार्टी और सरकार द्वारा स्वीकृत निर्देशो के आधार पर तैयार की जाती हैं। ये निर्देश योजना के मुख्य राजनीतिक और

आर्थिक कर्तव्यो को तथा अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं एव देश के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो के मुख्य परिमाणात्मक लक्षणो को निर्धारित करते हैं। ये पूंजी विनियोगो की मात्रा और उनकी दिशा को तथा प्राविधिक प्रगति के क्षेत्र मे व आर्थिक प्रबन्ध के तरीको मे सुधार के कर्तव्यो को निर्दिष्ट करते हैं।

पार्टी और सरकार के निर्देशो के आधार पर केन्द्रीय नियोजन सस्थाएं—गोस्प्लान (राजकीय योजना समिति) और मंत्रालय—योजना के ठोस मसौदे और लक्ष्य निश्चित करते हैं। इस काम मे वे अर्थव्यवस्था की बुनियादी कड़ियो, अर्थात प्रतिष्ठानो, द्वारा योजना सग्रह के दौरान किये गये परिश्रम का सहारा लेते हैं। प्रतिष्ठानो की योजनाओं का सक्षिप्त सार अर्थव्यवस्था की शाखाओ की योजनाओ मे निहित रहता है। योजना के बुनियादी सूचको (लक्ष्यो) को जब उच्च आर्थिक सस्था स्वीकृत कर देती है तो ये ही लक्ष्य प्रतिष्ठान के कार्यकलाप का आधार बन जाते हैं।

इस समय जो आर्थिक सुधार जारी है उसने योजना के ऐसे सूचको (लक्ष्यों) को कम कर दिया है, जिनकी स्वीकृति उच्च आर्थिक सस्थाओ से प्राप्त करनी होती है। दूसरे तमाम सूचको (लक्ष्यों) को प्रतिष्ठान स्वतत्र रूप से निश्चित करते हैं। ऐसा करते समय उन ठोस परिस्थितियो को ध्यान मे रखा जाता है जिनमे प्रतिष्ठान काम करता है, साथ ही सम्भावनाओ का भी ध्यान रखा जाता है। प्रतिष्ठान की वार्षिक योजना उसके कार्यकलाप मे प्राविधिक, आर्थिक और वित्तीय पहलुओ को जोड़ती है। इसलिए यह योजना टेक्नालॉजीकल उत्पाद और वित्तीय योजना कहलाती है। यह समस्त उत्पादन को, प्रतिष्ठान की वर्ष भर की प्राविधिक एव वित्तीय गतिविधियो को, निश्चित करने वाला कार्य-क्रम होता है। इसमे उत्पादन कार्यक्रम, प्राविधिक विकास, भौतिक तथा तकनीकी पूर्ति, श्रम तथा मजूरी, उत्पादन की लागत की, वित्तीय गतिविधियो की तथा सागठनिक एव प्राविधिक कदमो की योजना शामिल रहती है।

उत्पादन कार्यक्रम तकनीकी उत्पादन और वित्तीय योजना के बीच मुख्य कड़ी होता है। यह उत्पादन और प्राप्ति के लिए लक्ष्य का काम करता है। उत्पादन कार्यक्रम उत्पादित पदार्थों की मात्रा, उनकी रचना तथा किस्म को निर्दिष्ट करता है।

किसी भी प्रतिष्ठान के विभिन्न विभाग आन्तरिक रूप से एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इसलिए योजना के समस्त सूचको (लक्ष्यो) को एक सूत्र मे बधा होना चाहिए। प्रतिष्ठान के विभिन्न कार्यकलापो को नियत्रित करने वाले योजना के सभी हिस्से इन्हीं शुरूआती सूचको (लक्ष्यो) पर आधारित होते हैं। आन्तर-कारखाना नियोजन के दौरान प्रतिष्ठान की योजना के सूचको का प्रतिष्ठान के अलग-अलग उत्पादन सभागो, खातो, विभागों और टीमो के आधार पर बटवारा किया जाता है।

प्रत्येक प्रनिष्ठान की योजना मे दूसरे प्रतिष्ठानो से निश्चित प्रकार के कच्चे माल, ईंधन, विद्युत शक्ति व उपकरणो की प्राप्ति की व्यवस्था होती है। प्रनिष्ठान के कार्यकलाप के इस पहलू की पूर्ति करने वाले तथा उपभोक्ता प्रतिष्ठानो के आपसी सम्बधो को नियत्रित करने वाले आर्थिक करारो मे स्पष्ट इसका उल्लेख रहता है। अमुक कारखानो मे पहुचाये जाने वाले माल की किस्म, पहुचाने की शर्तें, माल की कीमत और अदायगी की शर्तो को भी करारो मे स्पष्टत: निर्दिष्ट किया जाता है। करारो को पूरा करना दोनो पक्षो के लिए लाजमी होता है। करार के उल्लघन की स्थिति मे हर पक्ष को भौतिक रूप से जिम्मेदार ठहराया जाता है।

योजना का प्रारूप तैयार किया जाना नियोजित आर्थिक प्रबन्ध की केवल शुरूआत होती है। इस प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण पहलू योजनाओ की पूर्ति तथा अतिपूर्ति के लिए जनता के प्रयासो को सगठित करना होता है। इन प्रयासो को जब कार्यान्वित किया जाता है, तो समाजवादी अर्थव्यवस्था मे निहित नयी सम्भावनाए प्रकट होती हैं तथा प्रतिष्ठानो, शाखाओ और आर्थिक क्षेत्रो के अदृश्य सचयो को एकत्रित किया जाता है।

दीर्घकालीन एवं तत्कालीन नियोजन

समाजवादी आर्थिक नियोजन दीर्घकालीन तथा तत्कालीन (वार्षिक) योजनाओ के सागठनिक सयोजन पर आधारित होता है। आजकल पचवर्षीय योजना, वैज्ञानिक नियोजन का सर्वप्रमुख रूप है। यह किसी प्रतिष्ठान के उत्पादक एव आर्थिक क्रियाकलाप की सम्भावनाओ को एक ऐसी अवधि के लिए निर्धारित करती है, जो उत्पादन मे सुधार और उसकी प्रभावकारिता वढाने सम्बधी मुख्य कर्तव्यो को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से लम्बी हो। पचवर्षीय योजना के अत्यधिक महत्वपूर्ण लक्ष्यो को वार्षिक लक्ष्यो मे बाट दिया जाता है। समाज की आवश्यकताओ और स्रोतो मे होने वाले परिवर्तनो तथा प्राविधिक व आर्थिक प्रगति को ध्यान में रखते हुए, वार्षिक योजनाओ मे लक्ष्यों को ठोस बनाया जाता है और व्यवस्थित किया जाता है।

पचवर्षीय योजनाओ को उत्पादन वृद्धि, वैज्ञानिक एव प्राविधिक उपलब्धियो के वडे पैमाने पर इस्तेमाल और सामाजिक उत्पादन के ढाचे मे प्रगतिशील परिवर्तनो द्वारा अर्थव्यवस्था के सामने प्रस्तुत कर्तव्यो की पूर्ति के लिए प्राविधिक एव आर्थिक आधार को सुनिश्चित बनाना है। ये योजनाकार को उस अवधि मे उठाये गये कदमो की (उदाहरण के लिए, नये क्षेत्रो के विकास और बडे विद्युत स्टेशनो, कारखानो, आदि, के निर्माण के बारे मे) आर्थिक प्रभावकारिता का सही मूल्याकन करने मे सक्षम बनाते हैं।

दूसरी ओर, तत्कालीन योजनाए एक निश्चित अवधि के भीतर ठोस लक्ष्यो

की पूर्ति की गारंटी करती हैं। ये आर्थिक निर्माण की फौरी जिम्मेदारियों को पूरा करने के काम म, तथा अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओ मे उत्पादन की नियोजित और निरन्तर वृद्धि को सुनिश्चित करने के समस्त जनता एव मेहनतकश लोगो की सामूहिक सस्थाओ के प्रयासो म, एकता स्थापित करती हैं।

केंद्रीकृत राजकीय नियोजन और प्रतिष्ठानो की पहलकदमी

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वीं पार्टी काग्रेस के निर्णयो म केंद्रीकृत नियोजन और प्रतिष्ठानो की आर्थिक पहलकदमो के विकास के सही सही सयोजन की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। काग्रेस ने निर्णय किया है कि केंद्रीकृत नियोजित आर्थिक प्रबन्ध को सर्वप्रथम मुख्य आर्थिक अनुपातो को सुधारने उत्पादन के स्थापन तथा आर्थिक क्षेत्रो के पेचीदा विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। नियोजित प्रबन्ध को उत्पादन को ऊची दरो तथा मूल पदार्थों की पूर्ति की गारन्टी करनी होती है। उसे प्राविधिक प्रगति, पूजी विनियोगो, श्रम के मुआवजे, कीमतो, मुनाफो, वित्तीय सहायता और कर्जों के बारे म एकताबद्ध राजकीय नीति को कार्यान्वित करने की व्यवस्था करनी होती है। अन्त मे किन्तु कम महत्वपूर्ण नहीं, उत्पाद परिसम्पत्ति श्रम, भौतिक तथा प्राकृतिक साधनो के कारगर इस्तेमाल पर आर्थिक नियत्रण होना चाहिए।

समाजवादी नियोजन इस बात को मान कर चलता है कि योजनाओ को तैयार करने तथा उन्हें पूरा करने मे जनता सक्रिय रूप से भाग ले। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध आम जनता प्रतिष्ठानो एव मेहनतकश लोगों के सामूहिको की रचनात्मक पहल को दरकिनार नही करता बल्कि उस पहले से ही आवश्यक मान कर चलता है।

लेनिन ने रूस के विद्युतीकरण की राजकीय योजना (गोयलरो) को पार्टी का दूसरा कार्यक्रम बताया था। लेनिन ने कहा था कि पार्टी कार्यक्रम से भिन्न, जिसे केवल पार्टी काग्रेस द्वारा ही बदला जा सकता है, इस दूसरे पार्टी कार्यक्रम को व्यवस्थित ढग से सुधारना चाहिए इसका विकास और सशोधन करके इसे फिट बनाना चाहिए।

योजना को जब पूर्ण किया जा रहा होना है तो प्रतिष्ठानो के कर्मचारी उत्पादन मे वृद्धि एव उत्पादित पदार्थों के सुधार की नयी सम्भावनाओ को उजागर करने के लिए रचनात्मक ढग से बडे जोश के साथ काम करते हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठानो, शापो, विभागो, सामूहिक फार्मों और टीमो के आन्तरिक सचय एव अदृश्य शक्तिया उजागर होती हैं। नये क्षेत्रों के विकास और नये खोज गये प्राकृतिक साधनो के इस्तेमाल सम्बधी महत्वपूर्ण प्रश्न एजेंडा पर आ जाते

हैं, नये उपकरणो और टेक्नालॉजी को लागू करने तथा उत्पादन के सगठन को सुधारने के व्यापक कर्तव्य सामने उपस्थित हो जाते हैं।

राष्ट्रीय आर्थिक योजना, निर्जीव आकडो का जोड मात्र नही होती, बल्कि समाजवाद एव कम्युनिज्म का निर्माण करने वाली जनता की सजीव गतिविधियो का प्रतिबिम्ब होती है। योजना की पूर्ति एव अतिपूर्ति के काम मे प्रतिष्ठानों, टीमो और अलग-अलग मजदूरो के बीच समाजवादी प्रतियोगिता अभियान शुरू हो जाता है। योजना की सफलता जनता पर निर्भर करती है।

सही नियोजन प्रतिष्ठान के सफल सचालन, उपकरणो के पूर्णतम प्रयोग, समय की बर्बादी को खत्म करने तथा योजना के लक्ष्यों की पूर्ति और अतिपूर्ति करने के लिए आवश्यक परिस्थितियो को पैदा करता है। किन्तु, यह समझना गलत होगा कि समूची आबादी के महान प्रयासो के बिना और आर्थिक व सास्कृतिक निर्माण के सभी क्षेत्रो मे कठिन परिश्रम के बिना, योजना को अपने आप पूरा किया जा सकता है। इसके लिए जनता के समस्त प्रयासो और उसकी रचनात्मक क्षमताओ को एकजुट करना जरूरी होता है।

समाजवादी नियोजन का अर्थ होता है: सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का नियोजित प्रबन्ध। राष्ट्रीय आर्थिक योजनाए सामान्य राजकीय हितो को सर्वोच्च प्राथमिकता देती हैं। इससे यह आवश्यक हो जाता है कि योजना के कार्यान्वयन मे कडे अनुशासन का पालन किया जाय, सकीर्णतावादी एव विभागवादी उन सभी तत्वों को समाप्त किया जाय, जो पूरी अर्थव्यवस्था के हितो को नुकसान पहुचाते हैं।

आर्थिक विकास मे जनवादी केन्द्रीयता

समाजवादी अर्थव्यवस्था का नियोजित सगठन जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त मेहनतकश अवाम के विशालतम हिस्सों की पहलकदमी और उनकी रचनात्मक शक्ति के विकास के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करता है तथा उन्हें समाजवादी प्रतिष्ठानो एव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक इच्छा और उद्देश्य की एकता से जोडता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था का जैसे-जैसे विकास होता है, वैसे ही वैसे केन्द्रीकृत आर्थिक प्रबन्ध तथा जनता की पहलकदमी, दोनो का महत्व बढता जाता है। नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था मे जनवादी सिद्धान्तो का विकास और विस्तार समाजवादी व्यवस्था की एक वस्तुनिष्ठ प्रवृत्ति है।

अर्थव्यवस्था जैसे-जैसे विकसित होती है, वैसे ही वैसे आर्थिक निर्माण मे जनवादी केन्द्रीयता अपने रूप बदलती जाती है। नियोजन और आर्थिक प्रबन्ध के तरीको मे सुधार जनवादी केन्द्रीयता के दोनो सिद्धान्तो का—प्रशासन के जनवादीकरण तथा नियोजित प्रबन्ध के केन्द्रीकरण का—साथ-साथ विकास करता है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्णय

प्रशासन के जनवादी सिद्धान्तो के चौमुखी विकास तथा साथ ही केन्द्रीकृत नियोजित आर्थिक प्रबन्ध का सुदृढ करने और उसे सुधारने के लिए निरन्तर प्रयास की आवश्यकता पर जोर देते हैं।

आर्थिक प्रबन्ध की नयी व्यवस्था एकतावद्ध राजकीय नियोजन और पूर्ण लागत लेखा (आत्मनिर्भरता) के आधार पर प्रतिष्ठानो मे काम को एक-दूसरे से सयोजित करती है, वह अर्थव्यवस्था की शाखाओ के केन्द्रीकृत प्रबन्ध को व्यापक गणराज्यीय तथा स्थानीय आर्थिक पहलकदमी से लगातार जोडती है, इसी प्रकार वह एक व्यक्ति द्वारा प्रबन्ध के सिद्धान्त को उत्पादन सामूहिक की बढती हुई भूमिका से जोडती है। पार्टी ने अर्थव्यवस्था के नियोजन और प्रबन्ध म किफायती तरीको की ओर अपर्याप्त ध्यान दिये जाने की आलोचना की है। इसलिए प्रबन्ध की नयी व्यवस्था केंद्रीकृत नियोजित निर्देशन तथा प्रतिष्ठानो और उनके कर्मचारियो की आर्थिक पहलकदमी के सयोजन तथा आर्थिक उत्तोलको एव उत्पादन के भौतिक प्रोत्साहनो के सुदृढीकरण पर आधारित है।

आर्थिक प्रबन्ध का सुधार, उसके जनवादी आधार के और अधिक विकास तथा उत्पादन प्रबन्ध मे जनता की अधिकाधिक शिरकत से जुडा हुआ है। आर्थिक सुधार का लक्ष्य कीमत, मुनाफा, बोनस और कर्ज जैसे आर्थिक अस्त्रो की सहायता से उत्पादन के लिए अधिक प्रोत्साहनो को उपलब्ध करना होता है। इसस प्रबन्ध के जनवादी सिद्धान्तो का और अधिक विस्तार सुनिश्चित होता है। उत्पादन के प्रबन्ध मे जनता की बडे पैमाने पर शिरकत की आर्थिक परिस्थितिया पैदा होती है तथा जनता को प्रतिष्ठानो के आर्थिक कार्यकलापो के परिणामो पर प्रभाव डालने का अवसर प्राप्त होता है।

एकतावद्ध राजकीय नियोजन के साथ पूर्ण लागत लेखा के सयोजन, प्रतिष्ठानो की स्वतत्रता व अधिकारो के विस्तार तथा व्यापक स्थानीय पहलकदमी के साथ अर्थव्यवस्था की शाखाओ के केन्द्रीकृत प्रबन्ध से उसके जनवादी सिद्धान्तो का और ज्यादा विस्तार सम्भव हो जाता है तथा उत्पादन के प्रबन्ध मे जनता की पहले से अधिक शिरकत के लिए आवश्यक आर्थिक परिस्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं। जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त पर आधारित औद्योगिक प्रबन्ध और नियोजन की व्यवस्था सोवियत अर्थतत्र की वर्तमान आवश्यकताओ को सर्वोत्तम रूप से पूरा करती है।

अन्य समाजवादी देशो म जिन आर्थिक सुधारो को कार्यान्वित किया जा रहा है वे भी जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त तथा इस मान्यता पर आधारित हैं कि नयी परिस्थितियो मे इस सिद्धान्त को और ज्यादा विकसित किया जाना चाहिए।

सामूहिक फार्म नियोजन की विशेषताएं

समाजवादी कृषि, अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग है। वह उद्योग, निर्माण, यातायात और व्यापार से नजदीकी तौर पर जुडी हुई है। इसलिए सामूहिक कृषि उत्पादन का विकास केवल योजना के अनुसार ही हो सकता है।

सम्पूर्ण कृषि का—जिसमे समान स्वामित्व वाले सामूहिक फार्मों की अर्थ-व्यवस्था भी शामिल होती है—नियोजित प्रबन्ध, योजना के केन्द्रीकृत लक्ष्यों तथा सामूहिक फार्मों की आर्थिक पहलकदमी के सही सयोजन पर आधारित होता है। सामूहिक फार्मों को अपने आन्तरिक सचयो के इस्तेमाल तथा अपने साधनो के प्रयोग के सर्वोत्तम तरीको को प्रकट करने की पूरी स्वतत्रता रहती है। किन्तु इसके बावजूद, सामूहिक फार्म उत्पादन के नियोजन की अनेक विशेषताए भी हैं। सामूहिक फार्म उत्पादन-विकास की योजनाए कुछ निश्चित कृषि उत्पादनो को सरकार के हाथ बेचने के उन आदेशो के आधार पर तैयार की जाती हैं, जो उन्हें ऊपर से प्राप्त होते हैं। कृषि उत्पादनो की अनेक वर्षों तक खरीद की ठोस योजनाए पहले से तैयार करने और उन्हें सामूहिक फार्मों के सामने प्रस्तुत करने की प्रणाली सामूहिक फार्म अर्थव्यवस्था के सही प्रबन्ध के लिए आवश्यक परिस्थितियो की गारन्टी करती है। कृषि उत्पादनों की आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त मुनासिब कीमतो के फलस्वरूप, तथा योजना के लक्ष्यो से अधिक उत्पादन के लिए इससे भी ऊची कीमतो के फलस्वरूप, उत्पादन के बेहतर सगठन और उसकी प्रभावकारिता को बढ़ाने से सामूहिक फार्मों और किसानो की उनमे दिलचस्पी बढ जाती है। उत्पादन योजनाओ की रूपरेखा सीधे-सीधे फार्मों पर ही तैयार की जाती है और उनमे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उत्पादन की मात्रा को बढाने, राजकीय खरीद की योजना को पूरा करने, सरकारी किसानो की खुशहाली मे वृद्धि करने एव उत्पादन का विस्तार करने के लिए कितने भौतिक तथा मानवीय साधन उपलब्ध हैं। यहा श्रम उत्पादकता को बढ़ाने तथा उत्पादन की लागत को कम करने के साथ ही सामूहिक किसानो के लिए भौतिक प्रोत्साहन बढाने के हेतु जमीन, मशीनों, उपकरणों एव उत्पादन गृहो के सही इस्तेमाल पर बहुत जोर दिया जाता है।

कृषि विकास की राजकीय योजना, सामूहिक फार्मों और राजकीय फार्मों की योजनाओं का सक्षिप्त रूप होती है। वह कृषि मे पूजी विनियोगो के आकार और दिशा, सामूहिक फार्मों एव राजकीय फार्मों को मशीनों और उपकरणो की पूर्ति, भूमि के सुधार, कृषि क्षेत्र को कर्ज देने की परिस्थितियो, उद्योग और व्यापार के साथ सामूहिक फार्मों और राजकीय फार्मों के सीधे सम्बधो को निर्दिष्ट करती है।

योजनाओ का आधार वैज्ञानिक क्यों होना चाहिए ?

नियोजित आर्थिक प्रबन्ध, मजबूत वैज्ञानिक बुनियाद पर आधारित होता है। समाजवादी नियोजन का विज्ञान प्रति दिन के अमल से प्राप्त नये ज्ञान द्वारा निरन्तर विकसित हो रहा है और समृद्ध होता जा रहा है।

आर्थिक नियोजन, हर मंजिल पर आर्थिक विकास के लक्ष्यो को निर्धारित करता है तथा इन लक्ष्यो की प्राप्ति के साधनो को भी तय करता है। आर्थिक कार्यकलाप के लक्ष्यो तथा साधनो को वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित करने के लिए जरूरी होता है कि समस्त उपलब्ध साधनो और आवश्यकताओ, आर्थिक विकास के लिए आवश्यक सभी शर्तों तथा सभी जानी-मानी व नयी पैदा होने वाली रुझानो का ठीक-ठीक जायजा लिया जाय।

अपने विकास की पहली मंजिलो मे सोवियत अर्थव्यवस्था ने अपेक्षाकृत कम जन उत्पादो का—जैसे कोयले, धातुओ, सीमेंट, आदि, का—उत्पादन किया। इन परिस्थितियो मे साधनो और आवश्यकताओ को निश्चित करने का काम अपेक्षाकृत आसान था। किन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था मे असीम वृद्धि हो जाने से यह काम भी बहुत कठिन हो गया। समाजवादी उद्योग अब उन बहुत-सी वस्तुओ को उत्पादित करता है, जिनका कुछ वर्षों पहले तक अस्तित्व ही नही था। वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति के आधार पर तैयार किये जाने वाले नये उत्पादो की संख्या तेजी से बढती जा रही है।

विशाल आर्थिक प्रगति, नियोजित आर्थिक प्रबन्ध को बहुत ज्यादा पेचीदा बना देती है। इससे नियोजित आर्थिक प्रबन्ध मे सुधार करना तथा राज्य के नियोजन मे उच्चतर वैज्ञानिक मानदण्ड कायम करना आवश्यक हो जाता है। सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रूप से यह बात उत्पादन व राष्ट्रीय आय की वृद्धि की नियोजित दरो तथा अर्थव्यवस्था के बुनियादी अनुपातो के वैज्ञानिक औचित्य पर लागू होती है। योजनाओ के लिए जरूरी होता है कि वे समस्त साधनो एव शक्तियो के सर्वाधिक प्रभावकारी इस्तेमाल को सुनिश्चित करें तथा उद्योगो मे विज्ञान व टेक्नालॉजी की आधुनिकतम उपलब्धियो का तेज गति से लागू किया जाना निश्चित करें। इसका अर्थ यह है कि उन्हे वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति मे उत्पन्न होने वाली सम्भावनाओ को ध्यान म रखना चाहिए। उत्पादक शक्तियों द्वारा प्राप्त स्तर तथा अर्थव्यवस्था के सामने पेश जिम्मेदारियो से नियोजित आर्थिक प्रबन्ध मे बुनियादी सुधार की जरूरत सामने आती है। इस प्रबन्ध को सच्चे वैज्ञानिक आधार एव वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमो पर आधारित होना चाहिए तथा सामाजिक आवश्यकताओ एव असली सम्भावनाओं, दोनो को ही, गम्भीरता से ध्यान मे रखना चाहिए।

वैज्ञानिक नियोजन एव केन्द्रीकृत आर्थिक प्रबध का उच्चतर स्तर औद्योगिक और कृषि उत्पादन मे आर्थिक प्रोत्साहनो को बढा कर तथा प्रबन्ध के किफायती तौर-तरीको को निर्णायक रूप से मजबूत करके प्राप्त किया जाता है।

वैज्ञानिक नियोजन का स्तर ऊचा उठ जाने से नियोजन सस्थाओ के सामने भारी जिम्मेदारिया उठ खडी होती हैं। उनको विभिन्न शाखाओ के विकास के लिए सर्वोत्तम अनुपातो तथा देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए सर्वथा उपयुक्त ढाचे का चुनाव करना होता है। उन्हें सामाजिक उत्पादन की प्रभाव-कारिता को बढाने के रास्ते और ढग खोजने पडते हैं तथा राष्ट्रीय आय एव जनकल्याण मे तेज वृद्धि के लिए साधन तलाश करने पडते हैं।

योजनाओ के वैज्ञानिक, प्राविधिक एव आर्थिक औचित्य से उनका स्थायित्व बढ जाता है। किन्तु इसके बावजूद, योजनाओ के कार्यान्वयन के दौरान, बदलती हुई परिस्थितियो के अनुरूप, उनको जाचा जाना चाहिए।

नियोजित कोटे योजना के वैज्ञानिक औचित्य के लिए नियोजित कोटे (या मानदण्ड) सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

ये ही कोटे भौतिक एव श्रम साधनो के उपयोग तथा वित्तीय साधनो के इस्तेमाल को भी नियन्त्रित करते हैं। ये कोटे उत्पादन की प्रति इकाई के लिए श्रम, ईंधन, बिजली तथा अन्य पदार्थों की खपत तथा उपकरणो, अर्ध-तैयार मालो, कच्चे माल और ईंधन स्टाको के लिए भी निर्धारित किये जाते हैं।

कोटे हमेशा के लिए एक बार ही निश्चित नही किये जा सकते। आर्थिक विकास, प्राविधिक प्रगति, श्रम एव उत्पादन के सगठन मे होने वाले सुधारो के फलस्वरूप इनमे भी सुधार होता है। मशीनरी तथा उपकरणो के इस्तेमाल के कोटो मे सुधार विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है—उदाहरण के लिए, वात्या भट्ठियो के कुशल उपयोग के गुणाक, खुली चूल्हा भट्ठियो के प्रत्येक वर्ग मीटर चूल्हे पर इस्पात का उत्पादन, विद्युत घरो के काम के घटो की सख्या तथा प्रति कम्बाइन कोयले का उत्पादन, आदि-आदि। उत्पादन की प्रति इकाई पर श्रम और भौतिक पदार्थों के खर्चों के कोटो मे कमी भी बहुत महत्वपूर्ण होती है।

तेज-चाल मजदूरो का अनुभव मशीनरी और उपकरणो के इस्तेमाल के कोटो से सुधार के लिए, कच्चे और दूसरे साधनो की किफायत के लिए तथा श्रम उत्पादकता मे वृद्धि एव उत्पादन लागतो मे कमी के लिए विशाल सम्भावनाए प्रस्तुत करता है। समाजवादी नियोजन विकासमान प्रतिष्ठानो, प्रगतिशील मजदूरो, इजीनियरो तथा तकनीशियनो के अमल पर भरोसा करता है। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओ मे विज्ञान पर

आधारित प्रगतिशील कोटो को व्यवस्थित ढग से लागू करने के उद्देश्य पर अमल करता है।

मशीनरी और उपकरणो, कच्चे और दूसरे प्रकार के सामानो तथा प्राविधिक तौर तरीको एव काम को पूरा करने की शर्तों के कार्यान्वयन के लिए निश्चित प्रगतिशील, नियोजित कोटो की मानक योजना मे मिलनी चाहिए। वर्तमान परिस्थिति मे विभिन्न क्षेत्रो म कृषि वस्तुओ के प्रति सेन्टनर (एक माप-अनु०) उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम व्यय के लिए कोटे निश्चित किये जा रहे हैं। उन्नत सामूहिक फार्मों और राजकीय फार्मों मे प्राप्त स्तर इन कोटो के लिए आधार का काम करता है।

योजना और समयबद्ध उत्पादन

नियोजित अर्थव्यवस्था प्रत्येक प्रतिष्ठान के समयबद्ध कार्यकलाप के लिए हर सम्भव अवसर प्रदान करती है। सभी प्रतिष्ठानो का निरन्तर समयबद्ध कार्यकलाप योजना की पूर्ति के लिए एक पूर्व-शर्त है।

इस प्रकार यदि कोई प्रतिष्ठान हर दशक मे नियोजित मासिक मात्रा का ३२ से ३४ प्रतिशत अश उत्पादित करता है, तो उसका कार्यकलाप समयबद्ध कहा जायगा। किन्तु, कुछ प्रतिष्ठान पहले दशक मे मासिक लक्ष्य का केवल १० से १५ प्रतिशत अश और दूसरे दशक मे १५ से २० प्रतिशत के बीच अश ही उत्पादित करते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि उन्हें अन्तिम दशक मे ६५ स ७० प्रतिशत अश तक उत्पादित करना होता है। इसका अर्थ यह है कि इन प्रतिष्ठानो मे महीने के आरम्भ के दिनों और मध्य मे क्षमता से कम काम होता है तथा अन्तिम दिनो मे तूफानी कार्यनीति को अपनाया जाता है। स्वाभाविक है कि इस प्रकार का सगठन प्रतिष्ठान के कृतित्व को आगे नही बढाता।

उत्पादन की अनियमित गति योजना के समस्त लक्ष्यो की पूर्ति पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इस प्रकार का कार्यकलाप सामान्य गतिविधि मे बाधा डालता है तथा खातों और विभागो मे क्षमताओ के प्रयोग के अनुपातो मे गडबडी पैदा करता है। मजदूर बेकार खडे रहते हैं और उपकरणो की क्षमता का पूरा उपयोग नही होता। उत्पादन की गुणात्मकता घट जाती है तथा "अस्वीकृत मालो" की मात्रा बढ़ जाती है।

निर्धारित समय के अनुसार काम करने से समयबद्ध उत्पादन की गारन्टी होती है। प्रत्येक सेक्शन—खाते, विभाग या टीम—के लिए मासिक उत्पादन करने के जो लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं, वे कुल मात्रा को निर्दिष्ट करते हैं, जिसे दस-दस दिनों के अनुसार, या कभी-कभी तो प्रति दिन के आधार पर, बांट दिया जाता है। समयबद्ध काम की रूपरेखा बनाने से मासिक लक्ष्यों की पूर्ति म

हुई प्रगति का निरन्तर नियन्त्रण करना और देरी व बाधाओ को दूर करने के लिए कदम उठाना सम्भव हो जाता है।

नियोजन और लेखा

आर्थिक लेखा और सांख्य गणित (स्टैटिस्टिक्स) का तरीका नियोजन प्रणाली का एक बहुत महत्वपूर्ण उपकरण है। लेनिन ने कहा था कि समाजवाद लेखा है और सांख्य गणित के बिना लेखा की कल्पना भी नही की जा सकती। कम्युनिस्ट निर्माण के समय म लेखा का काम इसस भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है।

समाजवादी समाज म लेखा और प्रतिवेदन (रिपोर्टिंग) आर्थिक योजना स अभिन्न रूप से जुडे होते है। योजना मे चूकि वित्तीय और आकारीय दोनो ही प्रकार के सूचक (लक्ष्य) शामिल होते है, इसलिए लेखा भी वित्तीय और आकार सम्बधित, दोना ही रूपो से, किया जाता है।

लेखा और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की नियमबद्ध प्रणाली से सम्पूर्ण योजना तथा उसके अलग-अलग अगो की पूर्ति मे प्राप्त प्रगति को नियत्रित करना सम्भव हो जाता है। इससे योजना की पूर्ति मे उपस्थित अवरोधक तत्वो को प्रकट करने तथा काम को सुधारने के तरीको को निश्चित करने म सहायता मिलती है। लेखा और प्रतिवेदन प्रणाली द्वारा योजना की पूर्ति से सम्बधित जो आकडे प्रस्तुत किये जाते हैं, वे आगामी काल की योजनाओ को बनान के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था म लेखा की मुख्य किस्म सांख्य गणित और मुनीमी है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और उसके अलग अलग क्षेत्रो मे रत प्रक्रियाओ के आकडो का सामान्यीकृत रूप सांख्य गणित है। सांख्य-गणित लेखा के आकडो, उनकी एकता तथा उनके तुलनात्मक मूल्याकन को कायदे से एकत्र करने और समूहीकृत करने की प्रणाली की गारटी करता है। इसी कारण सांख्य गणित समाजवादी लेखा की समस्त प्रणाली मे एक प्रमुख सगठनकारी व नेतृत्वकारी सिद्धात का काम करता है। इसके द्वारा प्रस्तुत आकडो के बिना, समाजवादी उत्पादन पद्धति के नियमो की समझदारी पर आधारित, कोई वैज्ञानिक आर्थिक प्रबध हो ही नही सकता।

सांख्य गणित अर्थव्यवस्था के विकास की कमजोर कडियो को इगित करती है तथा अनुपातो म गडबड होने के अन्देशो के प्रति पहले से खबरदार करती है। सांख्यकीय हिसाब किताब की निश्चितता और समयानुकूलता का महत्व नियोजित अर्थव्यवस्था के लिए बहुत ज्यादा है।

मुनीमी का तरीका हर प्रतिष्ठान और सस्थान मे भौतिक तथा वित्तीय साधनो के दैनिक प्रचलन को अकित करन का तरीका है। उसे बचत खाते के

रूप मे तैयार किया जाता है तथा उससे प्रतिष्ठान के कार्यकलाप कि वित्तीय परिणामो की विशेष प्रकृति का ज्ञान होता है। मुनीमी के वित्तीय सूचक प्रतिष्ठान के कार्यकलाप के सभी पहलुओ—उत्पादन के क्षेत्र मे उसकी सफलताओं और असफलताओ—को प्रकट करते हैं।

मुनीमी, योजनाओ की पूर्ति को नियन्त्रित करने का माध्यम है तथा इसके द्वारा किसी भी प्रतिष्ठान के पास राज्य की ओर से जिन भौतिक मूल्यो और मुद्रा को उपलब्ध किया जाता है उनकी सही स्थिति और प्रचलन का पता चलता है। इस तरीके को बिल्कुल निश्चित और आसान होना चाहिए ताकि यह मेहनतकश जनता के विशाल भाग की पहुंच के भीतर रहे। मुनीमी का उत्तम सगठन हर प्रतिष्ठान मे योजना की सफल पूर्ति और कुप्रबध के खिलाफ सघर्षरत लागत-लेखा व्यवस्था के कार्यान्वियन के लिए एक आवश्यक शर्त है।

२. आधुनिक परिस्थितियों मे नियोजन का विकास

नियोजन की नयी प्रणाली और उत्पादन मे आर्थिक प्रोत्साहन

नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के ठोस रूपो मे—बदलती हुई परिस्थितियो और अर्थव्यवस्था के सामने आयी नयी जिम्मेदारियों के अनुरूप—सुधार होता रहता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजित प्रबन्ध मे सुधार—यह सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे किये जा रहे आर्थिक सुधारो के सबसे महत्वपूर्ण कामो मे से एक है।

के द्रीय समिति के सितम्बर (१९६५) मे हुए प्लेनम एव सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्णयो के अनुसार जो आर्थिक सुधार लागू किया जा रहा है उसमे उद्योग और नियोजन मे सुधार करने तथा औद्योगिक उत्पादन के लिए और अधिक आर्थिक प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक कदम शामिल हैं। आर्थिक सुधार सोवियत अर्थव्यवस्था के विकास मे केन्द्रीकृत नियोजित प्रबन्ध की नेतृत्वकारी भूमिका को स्वीकार करता है। नियोजित प्रबध की प्रणाली तथा प्रब ध के तौर तरीको मे सुधार करना, उन्हे कम्युनिस्ट निर्माण की बडी जिम्मेदारियो के अनुरूप बनाना उत्पादन की समाजवादी पद्धति की श्रेष्ठताओ व उसके बुनियादी पहलुओ मे सुधार करना तथा उन्हें पूर्ण रूप से इस्तेमाल करना उसका मुख्य उद्देश्य है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास ने जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त के आधार पर आर्थिक प्रबध के सगठित स्वरूपो के सुधार की वस्तुगत आवश्यकता पैदा कर दी है। इसका अर्थ यह है कि प्रबध के पुराने घिस पिटे स्वरूपो के स्थान पर समाजवादी समाज मे उत्पादक शक्तियो एव उत्पादन के विकास की नयी आवश्यकताओ के अनुरूप स्वरूपो की स्थापना की जानी है।

प्रबन्ध की नयी प्रणाली देश की भीमकाय उत्पादक शक्तियो के अधिक विवेकपूर्ण इस्तेमाल के लिए, राष्ट्रीय खुशहाली मे तीव्र प्रगति के लिए तथा समाजवादी व्यवस्था के लाभो के पूर्ण उपयोग के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितिया पैदा करती है।

शाखा-सिद्धान्त के आधार पर औद्योगिक प्रबन्ध

कम्युनिस्ट पार्टी ने पिछले कुछ वर्षों के दौरान औद्योगिक प्रबन्ध के सगठन से प्राप्त अनुभव का गहराई से विश्लेषण किया है और यह परिणाम निकाला है कि शाखा सिद्धान्त को अस्वीकार करने से गम्भीर त्रुटियाँ सामने आयी हैं। यह सही है कि आर्थिक परिषदो (इकॉनामिक काउसिल्स) के द्वारा औद्योगिक प्रबन्ध के सगठन मे शुरू मे कुछ लाभ दिखायी दिये थे, किन्तु समय गुजरने के साथ इस प्रणाली की कमजोरिया ज्यादा तेजी से उभर कर सामने आयी। शाखा सिद्धान्त को अस्वीकार करने के नकारात्मक परिणाम सामने आने लगे।

उद्योग की शाखाओ का प्रबन्ध बिगड चला, प्राविधिक नीति की एकता क्षत विक्षत हो गयी तथा अत्यन्त दक्ष कार्यकर्ता इधर-उधर बिखर गये। अनेक समितियो वाली प्रबन्ध की बहुस्तरीय प्रणाली का नतीजा यह हुआ कि एक ही काम के लिए कई-कई दिशाओ से प्रयास किये जाने से शक्तियो की बर्बादी हुई और गैर-जिम्मेदारी फैल चली। समस्याओं के अन्तहीन समन्वय से काम करने की क्षमता पर बुरा असर पडा।

इन त्रुटियो को दूर करने के लिए फैसला किया गया कि औद्योगिक प्रबन्ध को शाखा सिद्धान्त के आधार पर नये सिरे से गठित किया जाय उद्योग की विभिन्न शाखाओ के लिए सघ-जनतत्रीय तथा अखिल सघीय मत्रालयो को गठित किया जाय।

इसका अर्थ, साधारण रूप से, पुराने मत्रालयो की ओर वापस जाना नही था। नये मत्रालय उद्योग की शाखाओ का प्रबन्ध नये ढग से सगठित करते हैं, और इस नये ढग मे वे प्रशासकीय तरीको को लागत लेखा तरीको के चतुर्मुखी विकास और आर्थिक प्रोत्साहनो से जोडते है। इससे प्रतिष्ठानो और उनके सगठनो की आर्थिक स्वतत्रता में काफी अधिक विस्तार हो जाता है तथा जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त का विकास होता है।

राष्ट्रीय आर्थिक योजना, शाखाओ द्वारा नियोजन को अधिक महत्व देती है। वह जनतत्रो तथा आर्थिक क्षेत्रो द्वारा किये जा रहे नियोजन के साथ शाखाओ द्वारा नियोजन को सही तरीके से जोडती है।

प्रतिष्ठानों के अधिकारों और जिम्मेदारियों का विस्तार

प्रबन्ध की नयी प्रणाली प्रतिष्ठानों और उनके सगठनो की आर्थिक स्वतन्त्रता और पहलकदमी को, साथ ही उनके आपसी सम्बधों को, काफी मात्रा मे बढाती है। इस सुधार के लागू होने से पहले, प्रतिष्ठानो का कार्यकलाप योजना के अनेकानेक सूचको से जकडा होना था। इससे प्रतिष्ठानो की स्वतन्त्रता और पहलकदमी पर बन्दिश लगती थी तथा उत्पादन के कारगर सगठन की उनकी जिम्मेदारी कम हो जाती थी।

आजकल प्रतिष्ठानो को ऊपर से दिये जाने वाले (स्वीकृत) योजना सूचको की सख्या घटा दी गयी है। प्रतिष्ठानो को केवल निम्नलिखित योजना लक्ष्यांक दिये जाते हैं

बाजार मे बचे जाने वाले माल की कुल मात्रा,
बुनियादी नामकरण,
वेतन कोष,
कुल मुनाफे तथा मुनाफे की उपलब्धि का स्तर,
बजट की अदायगिया तथा बजट का आवटन।

उपरोक्त के अलावा, निम्नलिखित सूचक भी प्रतिष्ठानो को दिये जाते हैं केन्द्रीकृत पूजी विनियोगो की कुल मात्रा, उत्पादक क्षमताओ व अचल साधनो के कार्यान्वियन के लक्ष्यांक नये उपकरणो के इस्तेमाल के बुनियादी लक्ष्यांक, तथा सामानो और उपकरणो की सुपुर्दगी की मात्रा।

प्रतिष्ठान के आर्थिक कार्यकलाप के अन्य सभी सूचक, जिनमें कर्मचारियों की सख्या, श्रम उत्पादकता, औसत वेतन और उत्पादन लागत शामिल होते हैं, हर प्रतिष्ठान द्वारा स्वतन्त्र रूप से स्वय निश्चित किये जाते हैं तथा उच्च-स्तरीय सगठनो द्वारा स्वीकृति की उन पर कोई बन्दिश नही रहती।

प्रतिष्ठानो की आर्थिक गतिविधियो की अत्यधिक जकडबन्दी को समाप्त किया जा रहा है। उत्पादन के विकास के लिए आवश्यक साधन प्रतिष्ठानो को उपलब्ध किये जाते हैं। प्रतिष्ठानो के बढे हुए अधिकारों की कानूनी गारन्टी, समाजवादी राजकीय-उत्पादक-प्रतिष्ठान-कानून द्वारा दी गयी है। प्रतिष्ठान को अनावश्यक सरक्षण से मुक्त कर दिया गया है तथा उसे उत्पादन की ठोस परिस्थितियो के अनुरूप अपनी समस्याओ को सबसे उपयुक्त तरीके से हल करने का अवसर दिया गया है।

प्रबन्ध की नयी परिस्थितियो मे प्रतिष्ठानो और उद्योगो की शाखाओ के सक्रमण की परिस्थितिया जैसे-जैसे परिपक्व होती जाती हैं, वैसे ही वैसे आर्थिक सुधार को क्रमशः लागू किया जा रहा है।

प्रबन्ध की नयी प्रणाली योजना के लक्ष्यांकों की पूर्ति के उपाय और रास्ते

तलाश करने के लिए प्रतिष्ठानो को अमली और आर्थिक क्षेत्र मे व्यापक स्वतन्त्रता प्रदान करती है। यह उत्पादक प्रतिष्ठानो और उपभोक्ताओ के बीच तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानो व व्यापारिक सगठनो के बीच, सीधे सम्बधो के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। आर्थिक प्रबन्ध के मामले मे जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त को विकसित करते समय, पार्टी लेनिन के इन निर्देशो पर अमल करती है कि प्रतिष्ठानो के अधिकारो और जिम्मेदारियो को हर सम्भव तरीके से बढाया जाय।

सोवियत संघ के पंचवर्षीय (१६६६ ७०) आर्थिक विकास की योजना के मुख्य कामो के बारे मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वीं काग्रेस के निर्णय

१६६३-७० के लिए निर्धारित पचवर्षीय योजना, जिसे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्देशो के आधार पर तैयार किया गया है, कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण करने तथा देश की आर्थिक व सुरक्षात्मक शक्ति को और अधिक मजबूत बनाने के पार्टी तथा समस्त सोवियत जनता के सघर्ष की एक नयी महत्वपूर्ण मंजिल है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस द्वारा निर्धारित नयी पचवर्षीय योजना का मुख्य कर्तव्य यह है कि विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियो का भरपूर इस्तेमाल करके, समस्त सामाजिक उत्पादन का औद्योगिक विकास करके तथा उसकी दक्षता को बढा कर एव उच्च श्रम उत्पादकता हासिल करके उद्योगो मे भारी वृद्धि की जाय तथा कृषि विकास की स्थायी उच्च दरें हासिल की जायें और इस प्रकार समस्त सोवियत जनता के जीवन स्तर को सारभूत रूप से उन्नत किया जाय तथा उसकी भौतिक व सांस्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्णरूपेण पूर्ति की जाय।

पचवर्षीय योजना के कर्तव्यो का तकाजा है कि भौतिक व तकनीकी आधार को विकसित किया जाय तथा जनता के जीवन स्तर को उन्नत बनाया जाय। उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि के साथ ही अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन भी होंगे। उत्पादक शक्तियो मे वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक सम्बधो मे सुधार भी चलेगा।

पचवर्षीय योजना के लक्ष्याको का तकाजा है कि अत्यधिक उच्च उत्पादकता वाले औद्योगिक आधार पर, सामाजिक श्रम की सभी शाखाओ के प्राविधिक पुनर्संज्जीकरण को सुनिश्चित किया जाय। देश के समाजवादी औद्योगीकरण की पार्टी की आम नीति को निरन्तर लागू करने के फलस्वरूप सोवियत सघ के पास—विशेषीकृत इजीनियरिंग और औजार-निमार्ण कारखानो की लम्बी शृखला के सहित—एक शक्तिशाली औद्योगिक आधार मौजूद है। इससे अर्थ-

व्यवस्था की सभी शाखाओ म औद्योगिक पद्धतियो को लागू करना सम्भव हो गया है ।

औद्योगीकरण करना सोवियत आर्थिक विकास की पहले भी आम नीति थी और आज भी है । किन्तु, आर्थिक विकास ने ढाचे का अब बहुत ज्यादा विस्तार हो गया है । औद्योगीकरण की पहली मजिलो मे, पार्टी और जनता के सामने कर्तव्य उपस्थित था—सोवियत सघ को एक कृषि प्रधान देश से औद्योगिक देश मे बदलना । उद्योगो का भारी विकास करके, नये कारखानो का—विशेष रूप स भारी उद्योगो म नये कारखाना का—निमाण करके, इस कतव्य का पूरा किया गया । आज औद्योगिक विकास का अर्थ है उत्पादन म तीव्रता लाना तथा सभी आर्थिक शाखाओ व क्षेत्रो म उसकी कारगरता को बढाना ।

अथव्यवस्था की सभी शाखाओ के पुनर्संज्जीकरण म भारी उद्योग निर्णायक भूमिका अदा करता है । उसकी प्रमुख शाखाओ को—विद्युत इजीनियरिंग, मशीन निर्माण, रसायन उद्योग को—सम्पूर्ण उद्योग के विकास की रफ्तार की अपेक्षा अधिक तज रफ्तार स विकसित करना है । इन शाखाआ का विकास प्राविधिक प्रगति के लिए एव श्रम उत्पादकता म वृद्धि के लिए भौतिक परिस्थितिया तैयार करता है । वर्तमान पचवर्षीय अवधि में हमारे देश के औद्योगिक विकास का एक नया लक्षण है . जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाली शाखाओ के प्राविधिक स्तर म उन्नति—जैसे कृषि म, खाद्य तथा हल्के उद्योग मे, व्यापार तथा सार्वजनिक पूर्ति म, सेवाओ के क्षेत्र मे, परिवहन मे, सचार म तथा सेवाआ के क्षेत्र के अर्थव्यवस्था की यत्रीकृत शाखा म रूपान्तरण मे । अर्थव्यवस्था की सभी शाखाआ को आधुनिक उपकरण मुहैया करने स कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार की रचना मे एक कदम और आग बढ जाया जायेगा ।

पचवर्षीय योजना सामाजिक उत्पादन और राष्ट्रीय आय की ऊची दरो की व्यवस्था करती है । कुल सामाजिक उत्पादन प्रति वर्ष औसतन ७ प्रतिशत से अधिक बढ जायेगा जबकि इससे पहले की पचवर्षीय योजना की अवधि में वार्षिक वृद्धि ६ प्रतिशत म कुछ ही ज्यादा होती थी । औद्योगिक उत्पादन में पूर्ण वृद्धि औसतन २२००-२३०० करोड़ रूबल प्रति वर्ष की होगी, जबकि पिछली योजना के काल म यह १५८० करोड़ रूबल ही थी । इन पांच वर्षों म औद्योगिक उत्पादन की मात्रा म लगभग ५० प्रतिशत तथा कृषि उत्पादन म २५ प्रतिशत वृद्धि होगी ।

अर्थव्यवस्था म पूंजी विनियोग की रकम लगभग ३,१०,०० करोड़ रूबल होगी, अर्थात पिछली पचवर्षीय योजना म यह ५० प्रतिशत अधिक बढ जायगी । इसस अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं और सभी सोवियत जनतत्रो के विकास की गारटी होती है ।

अध्याय १२

समाजवादी माल उत्पादन

१. समाजवाद के अन्तर्गत माल उत्पादन की विशेषताएं

माल-मुद्रा सम्बधों का नियोजित स्वरूप

उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व की समाप्ति तथा सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना से माल उत्पादन के स्वरूप मे तथा माल मुद्रा सम्बधो की भूमिका मे मूलगामी परिवर्तन हो जाता है।

समाजवादी समाज मे उत्पादो की पूरी मात्रा समाजवादी प्रतिष्ठानो मे तैयार होती है। इनका अधिकाश भाग राजकीय प्रतिष्ठानो मे उत्पादित होता है, इसलिए य समस्त जनता की सम्पत्ति होते हैं। इनके एक निश्चित भाग का उत्पादन सामूहिक फार्मों पर होता है और ये मेहनतकश जनता के समूहो की सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं। समाजवादी उत्पादन के उत्पादो मे देशव्यापी पैमाने पर सगठित प्रत्यक्ष सामाजिक श्रम शामिल होता है। इसम निजी उत्पादको के व्यक्तिगत श्रम के लिए कोई स्थान नही है।

इसलिए, समाजवाद के अन्तर्गत माल का उत्पादन योजनाबद्ध होता है। उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के प्रभुत्व के काल मे उत्पादन की जो अराजकता होती है उससे पैदा होने वाले अन्तर्विरोधो स यह मुक्त होता है। यह नया, समाजवादी, माल उत्पादन होता है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम म बताया गया है कि कम्युनिस्ट निर्माण म माल-मुद्रा सम्बधो का पूरा इस्तेमाल किया जाना चाहिए। ऐसा करते समय उस नयी अन्तर्वस्तु को ध्यान मे रखना चाहिए, जिस समाजवादी काल म इन सम्बधो ने अपना लिया होता है। आर्थिक विकास के ऐसे उपकरणो का जैसे लागत लेखा, मुद्रा, कीमत, उत्पादन लागत, मुनाफा, व्यापार, ऋण, वित्त, का इस्तमाल एक प्रमुख भूमिका अदा करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु : उसका उपयोग मूल्य और मूल्य

समाजवादी उत्पादन के अन्तर्गत तैयार वस्तुए जनता के बीच नये, समाजवादी उत्पादन सम्बधो की वाहक होती हैं। समाजवादी उत्पादन के उत्पाद के रूप मे माल एक ओर उपयोग मूल्य होता है, दूसरी ओर,

अर्थव्यवस्था की समाजवादी प्रणाली मे माल के उपयोग मूल्य और मूल्य के बीच ऐसा कोई अन्तर्विरोध नही होता, जैसा निजी स्वामित्व के आधिपत्य काल मे पूजीवादी उत्पादन पद्धति—समस्त विरोधों सहित—भ्रूण रूप मे समेटे रहती है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु के उपयोग मूल्य और मूल्य मे कोई अन्तर्विरोध होता ही नही है। ऐसे समय भी आते हैं जब कुछ उत्पादो की बिक्री नही होती क्योकि उनका गुणात्मक स्तर नीचा होता है या कीमत ऊची होती है।

नियोजित आर्थिक विकास की पद्धतियों को त्रुटिहीन बनाते समय इस तथ्य को पूरी तरह ध्यान में रखा जाता है कि समाजवादी देशो मे उत्पादित वस्तुओं के उपयोग मूल्य तथा उनके मूल्य के बीच भी अन्तर्विरोध सम्भव है। जिस समय किसी प्रतिष्ठान के कार्यकलाप को नियन्त्रित करने वाला मुख्य सूचक उसके उत्पादन की कुल मात्रा होती थी, तब वह प्रतिष्ठान कभी कभी योजना की पूर्ति ऐसे उत्पादो से कर देता था जिनका तत्कालीन आवश्यकताओ से कोई मेल नही बैठता। प्रबन्ध की नयी प्रणाली के अन्तर्गत, योजना के लक्ष्याको मे से एक लक्ष्याक उत्पादो की ऊपर से निर्धारित ऐसी मात्रा होती है जिसे मडी मे बेचा जाना होता है। इसका अर्थ यह है कि योजना की पूर्ति के लिए यह जरूरी है कि उत्पाद सामाजिक आवश्यकताओ से मेल खायें। इससे अतिउत्पादन की सम्भावना—जो माल के उपयोग मूल्य और उसके मूल्य के अन्तर्विरोध का परिणाम होती है—समाप्त हो जाती है।

किसी माल के मूल्य के परिमाण का निर्धारण उस पर खर्च हुए निजी श्रम से नही, उसके उत्पादन पर लगे वास्तविक श्रम से नही होता—बल्कि उस माल के उत्पादन एव पुनरुत्पादन के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम से होता है। समाजवादी समाज के विकास की हर अवस्था मे प्रत्येक उत्पाद म सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की एक निश्चित मात्रा शामिल रहती है। यह उस अवस्था विशेष मे उपलब्ध प्राविधिक स्तर, उत्पादन के सगठन तथा श्रम उत्पादकता के स्तर पर निर्भर करती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे खर्च के मुआवजे से हमारा अभिप्राय सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम के मुआवजे से होता है। उदाहरण के लिए, कोई प्रतिष्ठान यदि ऐसी वस्तुओ का उत्पादन करता है जो अनावश्यक हैं, तो उस अपने खर्च के बदले जो मुआवजा मिलेगा वह प्रत्यक्षत समाज की भौतिक सम्पदा की कुल मात्रा मे कमी पैदा करेगा। जब कोई प्रतिष्ठान उत्पादों के उत्पादन के लिए, तत्कालीन ठोस उत्पादन परिस्थितियो मे, आवश्यकता से अधिक श्रम और साधनों को खर्च करता है, तब भी यही नतीजा निकलता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत वे प्रतिष्ठान तबाही और विनाश के शिकार हो जाते

हैं, जिनमे श्रम और साधनों का अलग-अलग खर्च सामाजिक रूप से आवश्यक खर्च से ज्यादा होता है। समाजवादी समाज मे ऐसे प्रतिष्ठानो का स्तर नियोजित ढग से बढा कर विकासमान प्रतिष्ठानो के बराबर लाया जाता है। इसके लिए उनके उपकरणो का आधुनिकीकरण किया जाता है, उत्पादन व श्रम का सगठन और प्रविधि का विकास किया जाता है तथा श्रम एव साधनो के अलाभकर खर्च के लिए जिम्मेदार कारणो को समाप्त किया जाता है।

उत्पादन की बदली हुई परिस्थितियो, बेहतर उपकरणो और प्रविधि के इस्तेमाल तथा श्रम उत्पादकता मे हुई वृद्धि के कारण उत्पादो की किसी इकाई मे निहित सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा घट जाती है।

अर्थव्यवस्था के नियोजित प्रबन्ध के दौरान कीमतें निश्चित करते समय और वेतन आदि अदा करते समय, समाज उपरोक्त वस्तुगत तथ्यो को ध्यान मे रखता है।

उत्पादन लागतें और उनका ढांचा किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन पर होने वाला सामाजिक खर्च होता है। किसी माल के मूल्य तथा किसी प्रतिष्ठान विशेष मे उसके उत्पादन की लागत मे भेद किया जाना चाहिए।

कोई प्रतिष्ठान किसी निश्चित माल के उत्पादन पर जो कुल खर्च करता है, वही उसका उत्पादन खर्च होता है।

किसी माल की उत्पादन लागत उसके मूल्य का केवल एक अश होती है। उसमे अतिरिक्त श्रम मे निहित मूल्य का अश शामिल नही होता। किसी माल के उत्पादन पर कोई प्रतिष्ठान जो भी प्रत्यक्ष खर्चा करता है, उसमे अनेक तत्व शामिल होते हैं।

सर्वप्रमुख तत्व तो उस प्रतिष्ठान मे काम करने वाले मजदूरो के श्रम का प्रतिफल, अर्थात वेतन, होता है।

दूसरा तत्व कच्चे एव अन्य मालो व ईंधन पर होने वाला खर्च शामिल होता है।

तीसरा तत्व अचल सम्पत्ति, अर्थात उत्पादन के दौरान खर्च हुए श्रम के साधनो के पुनर्स्थापन पर होन वाला खर्च है। किसी प्रतिष्ठान के स्थायी रूप से कार्य करते रहने की गारन्टी के लिए श्रम के घिसे और खर्च हो गये साधनों का व्यवस्थित ढग से नवीनीकरण होना चाहिए। उत्पादन मे काम आने वाली इमारतो, ढाचो, आदि, की मरम्मत होनी चाहिए या नये सिरे से उनकी स्थापना की जानी चाहिए, मशीनरी और साज-सज्जा की मरम्मत या नवीनीकरण होना चाहिए तथा औजारो का बदलाव या सुधार किया जाना चाहिए, आदि।

किसी विशेष समय वेतनों की अदायगी और कच्चे मालों व अन्य मालो

तथा ईंधन के लिए जो रकम खर्च की जाती है, वह उत्पादित पदार्थों की लागत मे पूर्ण रूप से शामिल रहती है। किन्तु यह बात मशीनरी, उपकरणो तथा उत्पादक ढाचो के पुनर्स्थापन एव नवीनीकरण पर होने वाले खर्च पर लागू नही होती।

यह खर्च किसी एक उत्पादन प्रक्रिया या उत्पादित वस्तु के किसी निश्चित भाग पर पूर्ण रूप से नही डाला जा सकता। यह उन श्रम साधनो की सहायता से उनके पूरे सेवा काल मे किये जाने वाले कुल उत्पाद की लागत मे शामिल रहता है तथा घिसाव की कटौतियो के रूप मे सानुपातिक हिस्सो मे काट लिया जाता है।

यह कटौती उस अचल सम्पत्ति के घिसाव का मुआवजा होती है, जो धीरे-धीरे अपने मूल्य को नये उत्पादित पदार्थो मे हस्तातरित करती रहती है। घिसाव की कटौतिया पदार्थों के उत्पादन पर होने वाले खर्च का एक अग होती हैं तथा उनके आकार से उत्पादन की लागतो पर प्रभाव पडता है। अचल सम्पत्ति के पूरे सेवा काल मे घिसाव की कटौतियो की रकम इतनी बडी अवश्य होनी चाहिए कि उस सम्पत्ति को हस्तगत करने के समस्त खर्चों व उनके आशिक पुनर्स्थापन व आधुनिकीकारण को पूरा कर दे।

वेतनो, कच्चे एव अन्य मालो तथा घिसाव कटौतियो पर होने वाले खर्च के अलावा उत्पादन लागत मे वह खर्च भी शामिल होता है, जो खातो तथा पूरे प्रतिष्ठान मे उत्पादन को सगठित करने पर किया जाता है। इसमे प्रशासकीय कार्यकर्ताओं, इजीनियरो या अन्य तकनीकी कार्यकर्ताओ एव मरम्मत का काम करने वालो का वेतन शामिल होता है। इसमे विभिन्न उत्पादन गृहो और उनके स्थानो की मरम्मत, प्रतिष्ठान की विद्युत साज-सज्जा पर होने वाले खर्च और कारखाने के अन्दर यातायात के खर्च शामिल होते हैं। खर्चो के इस समूह को फैक्टरी या खाते का सामान्य खर्च कहा जाता है।

अन्ततोगत्वा, पूरी उत्पादन लागत मे उत्पादित पदार्थों की बिक्री पर होने वाला खर्च, अर्थात गोदामो, यातायात और पैकिंग आदि पर होने वाला खर्च, भी शामिल रहता है।

उत्पादन लागत के विभिन्न अगो के अनुपात को उनका ढाचा कहा जाता है। उत्पादन लागत का ढाचा उद्योग की विभिन्न शाखाओ मे अलग-अलग होता है, किसी एक ही शाखा की अलग-अलग फैक्टरियो मे भी यह अलग-अलग होता है। यह भिन्नता उनके आकार, तकनीकी उपकरणो तथा स्थिति आदि पर निर्भर करती है।

उत्खनन उद्योग मे उत्पादन लागत का बहुत बडा भाग वेतनो का होता है क्योंकि वे वस्तुए जिन पर श्रम किया जाता है (कोयला, कच्चे खनिज पदार्थ)

प्रकृति से प्राप्त हो जाते हैं। ये उद्योग की श्रम-सघन शाखाए होती हैं। दूसरी ओर, वस्तु-निर्माण, मैन्युफैक्चरिंग उद्योग, मे सामान पर होने वाला खर्च उत्पादन लागत का बडा भाग होता है। ये उद्योग की सामान सघन शाखाए होती है। उद्योग की कुछ शाखाओ मे—विद्युत सघन उद्योगो मे—विद्युत शक्ति पर (मिसाल के लिए, अलौह धातु उद्योग मे) खर्च बहुत ज्यादा होता है। अन्त मे उद्योग की ऐसी भी शाखाए हैं जिनमे उपकरणों के घिसाव का हिस्सा बहुत ज्यादा होता है (उदाहरण के लिए तेल उद्योग मे)। ये ऐसी शाखाए हैं जिनम पूजी/उत्पादन का अनुपात, बहुत ऊचा होता है। १९६४ मे समस्त सोवियत उद्योग का ढाचा कुल मिला कर इस प्रकार था कि उद्योगो मे उत्पादन की लागत के अलग-अलग हिस्से निम्नलिखित थे · कच्चे और अन्य बुनियादी माल ६३ ६ प्रतिशत, सहयोगी माल ४ ६ प्रतिशत, ईंधन ३ २ प्रतिशत, विद्युत २ प्रतिशत, घिसाव ४ ६ प्रतिशत, वेतन एव सामाजिक सुरक्षा सेवाए १८ ४ प्रतिशत तथा अन्य खर्चे ३ ३ प्रतिशत।

उत्पादित पदार्थों के गुणो मे सुधार

आर्थिक विकास की वर्तमान अवस्था का एक सबसे महत्वपूर्ण काम उत्पादित पदार्थों के गुणो मे बुनियादी सुधार करना है। आधुनिक प्राविधिक प्रगति की माग है कि मशीनरी, मशीन के पुर्जों और उपकरणो मे सतत सुधार किया जाय। पुरानी किस्म के उपकरण उत्पादन की वृद्धि को रोकते हैं तथा श्रम उत्पादकता को बढने नही देते। श्रम के साधनो का उत्पादन करने वाली शाखाओ को विज्ञान और प्रविधि के क्षेत्र मे होने वाली प्रगति के साथ कदम मिला कर चलना चाहिए तथा प्राविधिक विकास के आधुनिक स्तर के अनुरूप उत्पादन करना चाहिए। मशीनरी के जीवन काल को बढाने तथा उसकी विश्वसनीयता व यथार्थता के लिए यह बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

प्राविधिक प्रगति से भौतिक पदार्थों की माग बहुत ज्यादा बढ जाती है। बहुत से आधुनिक उद्योगो को उच्चतम शुद्धता और शक्ति वाले सामानों की जरूरत होती है।

सोवियत जनता की खुशहाली मे वृद्धि होने से उपभोक्ता मालो को गुणात्मक रूप से बेहतर बनाने की माग बढती है। उपभोक्ताओ का सुन्दर कपडो, जूता, आधुनिक साज सज्जा के सामानो, आदि, की जरूरत होती है।

अन्तिम बात यह कि चूकि सोवियत सघ मे तैयार वस्तुए विश्व मडी मे जाती हैं जहा उन्हें अत्यन्त विकसित पूजीवादी देशो के सामानो स होड करनी पडती है, इसलिए यह विशेष रूप से आवश्यक है कि सोवियत सघ मे निर्मित वस्तुए विदेशो मे तैयार हुए सामानो की अपेक्षा गुणात्मक रूप से बेहतर हो।

उत्पादित वस्तुओ का गुणात्मक स्तर जितना ही ऊचा होता है, सामाजिक

श्रम उतना ही ज्यादा प्रभावकारी और लाभदायक होता है। वर्तमान पचवर्षीय योजना के काल का एक मुख्य काम यह है कि उत्पादित वस्तुओ का गुणात्मक स्तर ऊचा उठाया जाय ताकि उत्पादन की सभी शाखाओ को उत्पादन के बेहतर साधनों (अति उत्पादक मशीनरी, उपकरणो, औजारो, उच्च किस्म के कच्चे व दूसरे माल) से लैस किया जा सके तथा सोवियत जनता की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के सामान समस्त जनसख्या के लिए उपलब्ध किये जा सकें।

२. नियोजित अर्थव्यवस्था में मूल्य के नियम की भूमिका

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य के नियम का वस्तुनिष्ठ चरित्र

अर्थव्यवस्था के नियोजित प्रबन्ध से उत्पादन पर होने वाले खर्च और उससे प्राप्त फलो की तुलना करना आवश्यक हो जाता है। उत्पादन पर होने वाले खर्च मे प्रथम तो जीवन्त श्रम पर होने वाला खर्च और द्वितीय, उत्पादन के साधनों—कच्चे माल, ईंधन, मशीनरी और उपकरणो—के रूप मे निहित श्रम का खर्च शामिल होता है। सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता उस समय सर्वाधिक होती है जब कोई प्रतिष्ठान न्यूनतम लागत पर अधिकतम फल देता है। उत्पादन पर खर्च होने वाली कुल रकम की तुलना उसके परिणामो से करने से हम इस बात का मूल्याकन करते है कि किसी प्रतिष्ठान मे समाजवादी आर्थिक प्रबन्ध के इस अचल नियम को किस तरह लागू किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त, किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत, विभिन्न आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए वस्तुओ का उत्पादन करने के लिए सामाजिक श्रम को एक निश्चित मात्रा मे खर्च करने की आवश्यकता होती है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था मे सामाजिक श्रम को निश्चित अनुपातो मे बाटने की आवश्यकता को रद्द नही किया जा सकता। सभी समाजो मे, समाज के पास जितना कुल कार्य-समय उपलब्ध रहता है, उसका वितरण किसी न किसी प्रकार उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे किया जाता है।

अलग-अलग शाखाओं और प्रतिष्ठानो के बीच सामाजिक श्रम और उत्पादन के साधनो के नियोजित बटवारे के लिए आवश्यक है कि श्रम और भौतिक साधनों के खर्च और उससे प्राप्त होने वाले फलो का ठीक-ठीक तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया जाय। किसी एक निश्चित समय के लिए किसी प्रतिष्ठान मे होने वाले खर्च तथा उसी समय मे उस प्रतिष्ठान मे उत्पादित होने वाले कुल पदार्थों की तुलना करने के लिए आवश्यक है कि खर्च तथा उससे प्राप्त

वाले फल, दोनो को ही किसी समान सूचक मे परिवर्तित किया जाय। केवल मूल्य और उस पर आधारित आर्थिक सभागो को ही इस प्रकार के समान सूचक के रूप म इस्तमाल किया जा सकता है।

इस बारे म निम्नलिखित प्रश्न पैदा हो सकता है क्या यह सम्भव नहीं है कि उत्पादन पर होने वाले खर्च और उससे प्राप्त फलो की तुलना सीधे श्रम की इकाइयो अर्थात काम के घटो या दिनो, आदि, मे—मूल्य के सभागों, जैसे कीमत उत्पादन लागत आदि, का बिना सहारा लिये—कर ली जाय?

इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है। समाजवादी श्रम का चरित्र यद्यपि सीधे सीधे समाजवादी होता है, तथापि गुणो के मामले मे यह समरूप नही होता। इस मामले मे वह पूर्ण कम्युनिज्म के जमाने के श्रम से भिन्न होता है। अभी भी शारीरिक श्रम एव मानसिक श्रम तथा मजदूरो व सामूहिक किसानो के बीच श्रम मे भेद कायम रहता है। भिन्न भिन्न मजदूरो की कार्यकुशलता भी एक जैसी नही होनी। अर्थव्यवस्था की अलग-अलग शाखाओ और अकेले प्रतिष्ठानो मे श्रम के मशीनीकरण के मामले मे अन्तर होता है।

इन परिस्थितियो मे उत्पादन पर होने वाले खर्च और उससे प्राप्त फलो की तुलना केवल मूल्य के नियम के आधार पर की जा सकती है। पूजीवाद के अन्तर्गत मूल्य का नियम अधे रूप से और स्वत स्फूर्त ढग से काम करता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था म इस नियम का इस्तेमाल समाजवादी समाज द्वारा अर्थव्यवस्था के सचेत ढग मे नियोजित सगठन के लिए किया जाता है।

इस प्रकार, मूल्य का नियम समाजवादी उत्पादन पद्धति का वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियम है। नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के किफायती तरीके और उत्पादन की आर्थिक प्रेरणाए इसी वस्तुनिष्ठ नियम पर आधारित होती हैं।

कम्युनिस्ट निर्माण के काल में उत्पादन की आर्थिक प्रेरणा के लिए किफायती प्रबन्ध के लिए, सामाजिक सम्पदा म वृद्धि के लिए तथा जनता की खुशहाली म इजाफे के लिए मूल्य के नियम पर पूरी दक्षता प्राप्त करना एक पूर्व शर्त है। मूल के सभाग समाजवादी समाज के हाथो म एक ऐसा पैमाना दे देते हैं जिसस किसी भी आर्थिक कदम की प्रभावकारिता, उपयोगिता और विवेकशीलता को नापा जा सकता है। वे प्रतिष्ठानो और आर्थिक शाखाओ के खर्चों की वापसी की गारन्टी करते हैं। मूल्य के ये ही सभाग कम्युनिज्म की उच्चतम अवस्था म सक्रमण के लिए परिस्थितिया तैयार करने म सहायक होते हैं।

कम्युनिस्ट समाज आर्थिक निर्माण म प्रत्यक्ष रूप स श्रम की लिफायत के सिद्धान्त स निर्देशित होगा और उसम मूल्य के रूपों म श्रम के माप का सहारा नही लिया जायगा। तदुपरान्त सम्पत्ति का जब एक मात्र कम्युनिस्ट रूप म

संक्रमण पूर्ण हो जायेगा और वितरण की कम्युनिस्ट प्रणाली का आधिपत्य हो जायेगा तो माल मुद्रा सम्बध अनावश्यक होकर समाप्त हो जायेंगे।

समाजवाद के अन्तर्गत मूल्य सम्बधों की प्रणाली

समाजवादी व्यवस्था सामान्यत. क्रियाशील रहे इसके लिए परस्पर सम्बधित मूल्य सम्बधो की एक निश्चित प्रणाली का होना जरूरी है। इन सम्बधो मे कीमत और मुनाफा, वेतन और बोनस, व्यापार, वित्त, कर्ज, सापेक्ष लगान, ब्याज, टैक्स, आदि, शामिल हैं। नियोजित प्रबन्ध के किफायती तरीके, जिनका मजबूत किया जाना प्रबन्ध की नयी प्रणाली का सबस महत्वपूर्ण पहलू है, मूल्य सम्बधो की उसी प्रणाली पर आधारित होते हैं। आर्थिक सुधार का लक्ष्य यह होता है कि—समाजवाद की मूल्य सभागो की प्रणाली की सहायता से—लागत लेखे को सुदृढ़ करके उसका विकास किया जाय और उत्पादन की आर्थिक प्रेरणाओ को बढाया जाय।

समाजवाद के मूल्य सभागो की विषयवस्तु उसी प्रकार के पूजीवाद के सभागो से बिल्कुल भिन्न होती है।

निजी सम्पत्ति के प्रभुत्वकाल के अन्तर्गत कीमत मूल्य के नियम की अभिव्यक्ति का एक रूप होती है, जो उत्पादन की अराजकता और विनाशकारी होड की परिस्थितियो म स्वत स्फूर्त ढग से काम करता रहता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे कीमत नियोजित आर्थिक विकास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन होती है। यह उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व की अवस्था मे मूल्य के नियम के कार्यान्वयन की अभिव्यक्ति होती है।

पूजीवाद के अन्तर्गत वेतन सर्वहारा वर्ग की श्रम शक्ति की कीमत होता है, जिसे वह पूजीपति के हाथों वेचता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वेतन शोषण से मुक्त, सामाजिक उत्पादन के लिए कार्यरत मजदूरो के श्रम का प्रतिफल होता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत मुनाफा पूजी द्वारा श्रम के शोषण का फल होता है। इस मुनाफे मे पूजीवादी शोषको के वग द्वारा हथियाया गया मजदूरो के अनचुकता श्रम द्वारा उत्पादित अधिशेष मूल्य निहित होता है। समाजवादी अर्थ०व्यवस्था मे मुनाफा वह पैमाना होता है, जिसमे प्रत्येक प्रतिष्ठान द्वारा सामाजिक उत्पादन के विकास और सामाजिक सम्पदा की वृद्धि के लिए किये गय योगदान का मापा जाता है।

इसी प्रकार मूल्य के समस्त अन्य सभागो की प्रकृति और भूमिका भी बदल जाती है। व पूजीवादी उत्पादन सम्बधो की अभिव्यक्ति के रूप न रह कर समाजवाद के उत्पादन सम्बधो की अभिव्यक्ति मे बदल जाते हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे विविध गतिविधियो के विनिमय को नियन्त्रित

करने वाली समाजवादी मूल्य सम्बधों की प्रणाली, प्रभावपूर्ण आर्थिक प्रेरणा के लिए आधार का काम करती है। समाजवादी समाज मे अलग-अलग मेहनतकशो, प्रतिष्ठानो के कर्मचारियों तथा समाज के हितो के बीच अन्तर्विरोधो के पैदा होने का कोई वस्तुगत आधार नही रहता। तथापि, इस प्रकार के अन्तर्विरोध अपरिहार्य नहीं हैं। लेकिन, यदि वे कभी-कभी दिखायी पड जाते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि आर्थिक प्रेरणा की प्रणाली मे कही कोई दोष है। इस प्रणाली को ऐसी स्थिति का उत्पन्न कर देना जरूरी है जिसमे जो चीज पूरे समाज के लिए लाभदायक हो, वह प्रतिष्ठानो मे काम करने वाले सभी कर्मचारियो तथा प्रत्येक मजदूर के लिए भी लाभदायक हो।

योजना की एकता और मूल्य का नियम

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे माल-मुद्रा सम्बधो की नवीनता इस बात मे है कि वे नियोजित आधार पर सगठित समाजवादी उत्पादन के समाजवादी उत्पादन सम्बधो को प्रकट करते हैं। समाजवादी समाज मे मूल्य का नियम पूजीवाद के अन्तर्गत उसी नियम की अपेक्षा अपने रूप और विषयवस्तु, दोनो मे ही, भिन्न होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत हर श्रमजीवी को समाज से उतना ही प्रतिफल प्राप्त होता है जो वह समाज को देता है, उसके अश मे केवल उतनी कमी हो जाती है जितना कि सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे खच होता है। समाज के लिए वह अपने श्रम की जितनी मात्रा खर्च करता है वह दूसरे रूप मे उसे प्राप्न हो जाती है। यह बात केवल अलग-अलग मजदूरो पर ही नहीं, बल्कि समस्त सामूहिक सगठनो, प्रतिष्ठानो और शाखाओ के मामले मे भी लागू होती है। किसी प्रतिष्ठान या शाखा के सामान्य रूप से विकसित होने के लिए आवश्यक है कि उस पर होने वाले खर्च की वापसी होती रहे। उदाहरण के लिए, यदि खेती पर किये जाने वाले खर्च की रकम वापस नही आती, तो उसका विकास नही हो सकेगा। उत्पादन की भौतिक प्रेरणा, खर्च की वापसी पर आधारित होती है।

यह बात समाजवाद के अन्तर्गत समाजवादी माल उत्पादन, मूल्य के नियम तथा उस नियम से सम्बधित सभी भागो के बुनियादी लक्षणो को निर्धारित करती है।

पहली बात तो यह कि समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य का नियम कीमतो के अन्तहीन उतार-चढावों द्वारा स्वत स्फूर्त ढग से काम करने वाली शक्ति नही रह जाता। मूल्य के समाजवादी नियम के फलस्वरूप, उत्पादन की अराजकता और विनाशकारी सकटो का जन्म नही होता।

दूसरे, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के उन्मूलन के बाद श्रमशक्ति माल

नहीं वनी रहती, वह क्रय-विक्रय की चीज नही बनी रहती। कृपि का समाजवादी पुनर्गठन होने से जमीन भी क्रय-विक्रय की चीज नही रह जाती। इसलिए समाजवाद के अन्तर्गत मूल्य के नियम के लागू होने के वे परिणाम नही होते जो निजी सम्पत्ति के प्रभुत्व काल मे लाजमी तौर पर होते है। इससे पूजीवादी सम्बघो का—उनके तमाम अर्न्तविरोधो सहित—उदय नही हो सकता। इसका कारण यह है कि समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधन शोषण के साधनो या पूजी का रूप नही धारण कर सकते। केवल उपभोक्ता वस्तुओ को ही खरीदा जा सकता है और उन्हें निजी सम्पत्ति का रूप दिया जा सकता है।

इस प्रकार, समाजवादी समाज मे मूल्य के नियम तथा उस पर आधारित अन्य सभी सभागो—कीमतो, वेतन, मुनाफो, आदि—की अन्तर्वस्तु एकदम नया रूप धारण कर लेती है। ये नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था के आर्थिक सभाग बन जाते हैं जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण तथा उत्पादन की अराजकता आदि से मुक्त होते हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य का नियम अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के प्रतिकूल नही होता, बल्कि यह उससे अभिन्न रूप से जुडा रहता है। मूल्य का नियम समाजवाद के वस्तुगत आर्थिक नियमो की सम्पूर्ण प्रणाली का अभिन्न अग बन जाता है। वैज्ञानिक नियोजन इन नियमों की अधिकाधिक गहरी जानकारी और कार्यान्वयन पर आधारित होता है।

इन नियमो की एकता से, इनके अभिन्न पारस्परिक सम्बधो तथा पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया से समाजवादी प्रतिष्ठानो के केन्द्रीकृत नियोजित आर्थिक प्रबन्ध तथा साथ ही समाजवादी प्रतिष्ठानो की बुनियादी आर्थिक इकाइयो की व्यापक कार्यकारी एव आर्थिक स्वतत्रता की वस्तुगत आवश्यकता पैदा होती है। इस समायोजन के लिए यह वात पहले से ही मान कर चलना होता है कि समाजवादी मूल्य सभागो—जैसे कीमतो और मुनाफो, वेतन और बोनस, कर्ज और ब्याज, व्यापार और वित्त—की प्रणाली की सहायता से नियोजित प्रबन्ध के आर्थिक तरीको का चौमुखी विकास किया जाय तथा उनको मजबूत बनाया जाय।

मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा के बुनियादी सिद्धान्तो और आम जनता के सृजनात्मक अनुभव पर आधारित समाजवादी निर्माण के अमल ने आर्थिक पद्धतियो की एक पूरी प्रणाली को जन्म दिया है, जो कुल मिला कर, विवेकपूर्ण उद्यम प्रबन्ध को सुनिश्चित करने के लिए इस्तेमाल की जा सकती हैं। ये पद्धतिया, मूल्य के नियम के सचेतन इस्तेमाल के साथ, नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के आगिक समायोजन पर आधारित होती हैं।

समाजवादी माल उत्पादन के मूल्य सभाग किसी प्रतिष्ठान, उसके कर्म

चारियो तथा अलग-अलग प्रत्येक मजदूर की क्रियाशीलता का मूल्याकन करने की वस्तुनिष्ठ कसौटी होत हैं। वे आर्थिक संस्थाओ, औद्योगिक तथा कृषि प्रतिष्ठानो उनके समूहो एव निर्माण और डिजाइन सगठनो के सामने लगातार उपस्थित होने वाली आर्थिक एव प्राविधिक समस्याओ को हल करने मे सहायक होते हैं। आर्थिक पद्धतिया उद्योग और कृषि के बीच, आर्थिक शाखाओ के बीच तथा प्रतिष्ठानो के बीच सम्बधो को उच्चतम सम्भव तरीके से नियमित करती हैं। साथ ही ये सामाजिक रूप स आवश्यक खर्चे की वापसी तथा मजदूरो को उनके काम के गुण और मात्रा के अनुसार पारिश्रमिक की गारन्टी करती हैं।

समाजवादी मूल्य सभागो और आर्थिक प्रोत्साहनो का व्यापक प्रयोग देश के आर्थिक नियोजन का सुधारने, आर्थिक योजनाओ के सतुलन और प्रभावकारिता को सुनिश्चित बनाने, तथा उत्पादन उपभोग एव सचय के बीच समन्वय स्थापित करने व अर्थव्यवस्था मे सही अनुपात स्थापित करने के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे कीमतें

किसी समाजवादी प्रतिष्ठान मे उत्पादित माल की कीमत, उसके मूल्य का भौतिक रूप होती है। मूल्य के नियम पर पूरी दक्षता हासिल करने के बाद समाजवादी राज्य मालो की कीमतें इस आधार पर निश्चित करता है कि उनके उत्पादन पर सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम किस मात्रा मे खर्च किया गया है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि कीमतो की प्रणाली मे सतत सुधार किया जाना चाहिए, उसे कम्युनिस्ट निर्माण के कर्तव्यो प्राविधिक प्रगति, उत्पादन और उपभोग मे वृद्धि तथा उत्पादन के खर्चों में कटौती के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। कीमतो को श्रम के सामाजिक रूप से आवश्यक खर्च को अधिकाधिक प्रतिबिम्बित करना चाहिए तथा इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि सामान्य रूप से प्रत्येक प्रतिष्ठान मे उत्पादन और प्रचलन की लागत की वापसी हो जाय तथा कुछ मुनाफा भी हो।

अतएव किसी माल की कीमत उसके मूल्य पर—अर्थात उसके उत्पादन पर खर्च हुए सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम, उत्पादन के लिए आवश्यक जीवन्त और निहित श्रम के खर्च पर—आधारित होती है।

कीमतें, सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रूप से नियोजित समाजवादी माल उत्पादन में लेखा के सर्वभौम साधन का काम करती हैं। इसके अतिरिक्त कीमत सभाग अनेक दूसरे काम भी अजाम देता है। कीमतें प्राविधिक प्रगति की प्रेरणा देने, उत्पादन का विस्तार करन और लागत को लगातार घटाने के उद्देश्य से भी निश्चित की जाती हैं। इसके अलावा, कीमतें किन्ही विशेष मालो

की उपभोक्ता माग और उनका उत्पादन बढ़ाने की सभावनाओ के बीच समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से भी निर्धारित की जाती हैं। इसलिए कभी-कभी यह जरूरी हो जाता है कि कुछ मालो की कीमतें उनके मूल्य से अलग हट कर निश्चित की जायें।

समाजवादी राज्य मे कीमतो सम्बधी नीति उत्पादन की तकनीक के लगातार सुधार को प्रोत्साहित करती है। कीमतों के परिणामस्वरूप अच्छे प्रकार के उपकरणो, मशीनरी और औजारो का उत्पादन बढ़ना चाहिए। इसके साथ ही, कीमतो के कारण प्रतिष्ठानो मे बेकार व निरर्थक किस्म के सामानो का उत्पादन बन्द होना चाहिए।

कीमत सम्बधी नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह दुर्लभ किस्म के कच्चे मालो के खर्च मे किफायत करने, नये मालो को चालू करने और स्थानीय तौर पर उपलब्ध ईंधन व कच्चे मालो के इस्तेमाल को शुरू करने मे सहायक होती है। कीमत सम्बधी नीति अत्यधिक दूरी वाले तथा अविवेकपूर्ण माल भाडे वाले यातायात के खिलाफ सघर्ष का साधन होती है। अलग-अलग मालो के बीच कीमतो का सम्बध इस आधार पर निश्चित किया जाता है कि जिन पदार्थों का (कच्चे मालो, उत्पादक क्षमताओ, आदि, की उपलब्धि के कारण) उत्पादन तेजी से बढ़ाया जा सकता हो उनके उपभोग को प्रोत्साहित किया जाय।

कम्युनिस्ट निर्माण के काल मे कीमत-नीति की बुनियादी रुझान श्रम उत्पादकता मे वृद्धि और उत्पादन लागत मे कटौती के आधार पर कीमतों के विवेकपूर्ण ढग से घटाये जाने की होती है। फुटकर कीमतो को घटाने के लिए आवश्यक शर्त उत्पादित पदार्थों की प्रति इकाई उत्पादन और प्रचलन लागत मे कटौती करना है।

३. समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मुद्रा का स्थान

समाजवादी समाज मे मुद्रा के काम

समाजवाद के अन्तर्गत मूल्य के नियम के कार्यान्वयन के लिए जरूरी है कि एक मौद्रिक प्रणाली भी हो। मूल्य के सभागो—कीमत, उत्पादन लागत, वेतन, मुनाफा, आदि—को मुद्रा के रूप मे ही व्यक्त किया जाता है।

समाजवादी आर्थिक प्रणाली मे मुद्रा, समाजवादी उत्पादन सम्बधो को अभिव्यक्त करती है और नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण अस्त्र का काम करती है। वह अनेक कामो को पूरा करती है।

प्रथम, मुद्रा मूल्य के मापदण्ड के रूप मे काम करती है। किसी भी माल के मूल्य की—उसके उत्पादन पर खर्च हुए सामाजिक तौर पर आवश्यक समस्त

जीवन्त और निहित श्रम की—माप केवल मुद्रा के रूप मे की जा सकती है। माल के मूल्य को मुद्रा की एक निश्चित रकम द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है जिसे कीमत कहते हैं। इस सिलसिले म मुद्रा, कीमतो को मापने का एक पैमाना भी है। वह मालो की कीमतें मापने और उनकी तुलना करने का काम भी करती है।

मूल्य की माप के काम मे मुद्रा श्रम एव समाज के सदस्यो द्वारा उपभोग की मात्रा पर सामाजिक नियत्रण के साधन के रूप मे भी काम करती है। समाज के सदस्यो के श्रम की माप मुद्रा के रूप मे की जाती है। कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले मजदूर, तथा बडी हद तक सामूहिक किसान भी, अपने काम का प्रतिफल मुद्रा के रूप मे प्राप्त करते हैं।

मूल्य की माप का काम करती हुई मुद्रा, लागत लेखा के उपकरण के रूप मे भी काम करती है। वस्तुओ के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम के खर्च, कच्चे व दूसरे मालो तथा ईंधन के खर्च, उपकरणो की घिसाई, इमारतो की टूट-फूट, उत्पादन के प्रबन्ध पर होने वाले खर्च, यातायात के भाडे, व्यापारिक सस्थानो द्वारा उपभोक्ता के पास मालो को पहुचाने के खर्च, आदि, को मुद्रा के रूप मे ही व्यक्त किया जाता है। किसी प्रतिष्ठान की कारगुजारी के नतीजो को सर्वाधिक पूर्ण रूप स और सर्वाधिक सामान्य रूप से मुद्रा के रूप मे ही व्यक्त किया जा सकता है।

द्वितीय, समाजवाद के अन्तगत मुद्रा, परिचालन के साधन का काम करती है। राजकीय प्रतिष्ठानो और सस्थाना के कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले मजदूर अपने वेतनो को सामानो की खरीद के लिए खर्च करते हैं। सामूहिक किसान भी अपनी मुद्रा रूपी आय से सामानो की खरीद करते हैं। मालो का क्रय विक्रय मुद्रा के माध्यम से होता है।

पूजीवाद स बिल्कुल भिन्न, समाजवाद के अन्तर्गत परिचालन के साधन के रूप म काम करती हुई मुद्रा अन्तर्विरोधो को जन्म नही देती और न ही सकटो के खतरे का शिकार बनती है। समाजवादी समाज म बिकने वाले सामान, अधिकाशत, प्रत्यक्ष एव सामाजिक श्रम द्वारा उत्पादित होते हैं। इसी कारण सामानो की बिक्री म उन कठिनाइयो का सामना नही करना पडता, जो पूजीवाद के अतर्गत उत्पादन के सामाजिक स्वरूप और उसको हस्तगत करने के निजी पूजीवादी स्वरूप के बीच अतर्विरोध स पैदा होती हैं।

यदि कुछ मालो की बिक्री नही हो पाती, यदि हमको किन्ही विशेष वस्तुओ के अधिक स्टाकों का बोध होता है, तो इसका कारण वस्तुओ के गुणात्मक स्तर का नीचा होना तथा व्यापारिक सस्थानो के काम की खराबी

होता है। इस प्रकार की खराबिया समाजवादी आर्थिक प्रणाली के मूल मे नही होती और आर्थिक प्रबन्ध मे सुधार करके उनको दूर कर दिया जाता है।

तृतीय, समाजवादी समाज मे मुद्रा अदायगी के साधन का काम करती है। अदायगी के साधन के रूप मे मुद्रा का इस्तेमाल समाजवादी प्रतिष्ठानो के बीच हिसाब-किताब को तय करने, कारखानो व दफ्तरो मे काम करने वाले मजदूरो को वेतन अदा करने, टैक्सो, लाटरी के इनामो, राजकीय कर्जों पर ब्याज अदा करने, आदि, के लिए किया जाता है। पूजीवाद के अन्तर्गत अदायगी के साधन के रूप मे मुद्रा, मालों मे निहित अन्तर्विरोधो को उग्र कर देती है और इस प्रकार आर्थिक सकटों की स्थिति को परिपक्व बना देती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था पूजीवाद के इन सकटो से मुक्त है। समाजवादी प्रतिष्ठान यदि किन्ही सामानो या सेवाओ के लिए आयद अदायगी मे देर करते हैं, तो इसका कारण उत्पादन या निर्माण योजना की पूर्ति मे असफलता, उत्पादित सामानो की घटिया गुणात्मकता, अत्यधिक उत्पादन लागत या भौतिक साधनो का धीमा परिचालन हो सकता है। अदायगी की इन कठिनाइयो को, प्रतिष्ठान के काम मे सुधार करके और अपनी स्वत निर्धारित जिम्मेदारियो को पूरा करने की ओर प्रतिष्ठानो की जागरूकता को बढा कर, दूर किया जा सकता है।

चौथे, समाजवादी समाज मे मुद्रा समाजवादी सचय और बचत की भूमिका अदा करती है। समूची अर्थव्यवस्था मे होने वाले सचयो का एकत्रीकरण भी मुद्रा के रूप मे होता है। इन साधनो का इस्तेमाल समाजवादी उत्पादन का विस्तार करने, देश की आर्थिक क्षमता को सुदृढ बनाने तथा मेहनतकश अवाम की भौतिक और सास्कृतिक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए किया जाता है।

अन्त मे, समाजवादी राज्य मे मुद्रा विश्वव्यापी मुद्रा का काम करती है। इस प्रकार, सोवियत मुद्रा समाजवादी व्यवस्था के देशो के साथ, तथा उस व्यवस्था मे बाहर के अनेक देशो के साथ भी, माल विनिमय तथा अन्य आर्थिक सम्बधो के लिए अदायगी के साधन के रूप मे काम करती है। कमोवेश यही भूमिका अन्य समाजवादी देशो, बाहरी दुनिया के देशो के साथ जिनके व्यापक आर्थिक सम्बन्ध कायम हैं, की मुद्राओ द्वारा अदा की जा रही है।

मुद्रा परिचालन का नियम

समाजवादी अर्थव्यवस्था को यदि सफलतापूर्वक विकसित होना है, तो मुद्रा मे स्थायित्व होना चाहिए। इसलिए मुद्रा परिचालन पर नियत्रण, नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के मुख्य कामो मे से एक है।

समाजवादी समाज मे मुद्रा के स्थायित्व की गारन्टी, सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख रूप से, राज्य के हाथो मे सचित मालो के प्रचुर भडारों तथा राज्य द्वारा

निश्चित कीमता पर ही इन मालो की बिक्री से होती है। मुद्रा के स्थायित्व की गारन्टी अर्थव्यवस्था के सकट मुक्त विकास तथा सामाजिक स्तर पर श्रम के नियोजित सगठन स भी होती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ साथ समाजवादी मुद्रा व्यवस्था भी मजबूत होती जाती है। इस बात को युद्धोपरान्त काल म सावियत मुद्रा व्यवस्था के उदाहरण स देखा जा सकता है। औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन म वृद्धि के परिणामस्वरूप जनता की वास्तविक आमदनी मे प्रचुर वृद्धि हुई है।

माल-मुद्रा सम्बधो वाली अर्थव्यवस्था म, परिचालन के लिए आवश्यक मुद्रा की रकम को परिचालन म शामिल मालो की कीमतो के कुल योग और मुद्रा वापसी की दर स निश्चित किया जाता है। परिचालनगत मालो की कीमतो का योग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही अधिक मात्रा मे परिचालन के लिए मुद्रा आवश्यक होगी। यह मुद्रा परिचालन का नियम है। इस नियम के उल्लघन से, अर्थात अधिक मात्रा मे मुद्रा को जारी कर देने से, कीमतें बढ जाती हैं। जिन स्थाना पर हिसाब किताब को लिखित आदेशो के आधार पर तय किया जाता है, वहा परिचालनगत मुद्रा की मात्रा को घटाया जा सकता है।

नियोजित आर्थिक प्रबन्ध का एक काम यह भी है कि वह बिक्री के लिए उपलब्ध समस्त मालो और परिचालनगत मुद्रा की मात्रा के बीच समन्वय स्थापित करे। मालो के उत्पादन मे वृद्धि तथा व्यापार का विस्तार करके समाजवाद की ऋण तथा वित्तीय प्रणाली द्वारा इस समन्वय को स्थापित किया जाता है।

दोहराने के प्रश्न

१ समाजवादी माल उत्पादन की विशेषताए क्या हैं ?

२ समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य के नियम की क्या भूमिका है ?

३ आर्थिक विकास के लिए उत्पादो की गुणात्मक श्रेष्ठता का क्या महत्व है ?

अध्याय १३

लागत-लेखा और लाभदायकता

१. समाजवादी उत्पादक प्रतिष्ठान

प्रतिष्ठान अर्थव्यवस्था की बुनियादी इकाई

समाजवादी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत राजकीय स्वामित्व के उद्योग, निर्माण, कृषि, यातायात तथा अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाओ मे दसियों हजार प्रतिष्ठान शामिल हैं। राजकीय प्रतिष्ठानो के अलावा सामूहिक फार्म और सहकारी प्रतिष्ठान भी पाये जाते हैं जिनमे प्रधानता सामूहिक फार्मों की है, जो कृषि उत्पादन का बहुलाश उत्पादित करते हैं।

कोइ भी प्रतिष्ठान एक उत्पादन इकाई के साथ-साथ प्राविधिक इकाई भी होता है। प्रत्येक प्रतिष्ठान एक निश्चित किस्म के पदार्थों का उत्पादन करता है, उसके पास उसी के अनुरूप उत्पादक यत्र होता है और वह इस उद्देश्य के लिए उसी के अनुसार कच्चे एव दूसरे मालो को प्रयोग मे लाता है। इसी के साथ, प्रत्येक प्रतिष्ठान एक सामाजिक-आर्थिक इकाई भी होता है—वह अर्थव्यवस्था की उस इकाई विशेष मे काम करने वाले लोगो का समूह होता है।

प्रतिष्ठान अर्थव्यवस्था की बुनियादी, प्रारम्भिक, इकाई होता है। उसकी गतिविधिया सम्पूर्ण नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं। आजकल बहुत से प्रतिष्ठानो ने बडी-बडी उत्पादन इकाइयो का रूप धारण कर लिया है। उद्योग की कुछ ऐसी शाखाए हैं, जिनमे एक अकेला बडा प्रतिष्ठान उतना या उससे ज्यादा उत्पादन करता है, जितना क्रान्तिपूर्व के रूस मे पूरी शाखा द्वारा किया जाता था।

राज्य हर प्रतिष्ठान को भौतिक तथा मौद्रिक साधन मुहैया करता है। इनमे इमारतें, मशीनरी, उपकरण, कच्चे माल के भण्डार, ईंधन, आदि, शामिल होते हैं। प्रतिष्ठान सभी उत्पादित एव उपलब्ध पदार्थों को बेचता है और उनकी बिक्री की रकम से अपने खर्चों को पूरा करता है। समाजवादी प्रतिष्ठान एक आर्थिक इकाई के रूप मे कानूनी हैसियत से काम करता है और अपने कार्यकलाप के परिणामों के लिए पूरे तौर पर जिम्मेदार होता है। उसका कार्यकलाप केन्द्रीकृत निर्देशन एव आर्थिक स्वतत्रता व अपनी स्वय की

पहलकदमी पर आधारित होता है। लागत लेखा के आधार पर योजनानुसार काम करते हुए उसे श्रम तथा भौतिक व वित्तीय साधनो के न्यूनतम खर्च पर अधिकाधिक परिणाम प्राप्त करने चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिष्ठान को अपनी उत्पादन क्षमता, आन्तरिक सचयो, अपने पास उपलब्ध जमीन तथा अन्य प्राकृतिक ससाधनो का भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए।

प्रतिष्ठान को सख्ती के साथ मितव्ययिता की नीति का पालन करना चाहिए, विज्ञान, प्रविधि, आधुनिक अनुभवो, कच्चे व दूसरे मालो, ईंधन व विद्युत शक्ति के खर्च के प्रगतिशील कोटो मे प्राप्त आधुनिकतम उपलब्धियों को लागू करना चाहिए, उसे उत्पादन लागतो को घटाना और उत्पादन की लाभदायकता का बढाना चाहिए। प्रतिष्ठान इस प्रकार के परिणामो को प्राप्त कर सकता है, क्योकि उसे अधिकारो से सम्पन्न बनाया गया है और उसे आर्थिक पहलकदमी प्रदर्शित करने का हर अवसर प्रदान किया गया है।

अमली जरूरतो ने उद्योग के सगठन के जिस नये और बहुत महत्वपूर्ण स्वरूप को पेश किया है, वह है लागत लेखा के आधार पर शाखा-समूहो की स्थापना। इस प्रकार के समूहो की स्थापना से विशेषीकरण, सहयोग तथा उत्पादन के केन्द्रीकरण की व्यापक सम्भावनाए पैदा होती हैं तथा कुशल कार्यकर्ताओ के विवेकपूर्ण इस्तेमाल व प्रतिष्ठान के बेहतर प्राविधिक व आर्थिक प्रबन्ध का विकास होता है।

लागत लेखा के आधार पर काम करने वाले समाजवादी प्रतिष्ठान के लिए राज्य भौतिक व मौद्रिक साधनो की व्यवस्था करता है। ये साधन प्रतिष्ठान की परिसम्पत्ति होते हैं।

प्रतिष्ठान अपनी परिसम्पत्ति का इस्तेमाल पदार्थों के उत्पादन के लिए करता है। तैयार माल को ग्रहण किया जाता है, अर्थात उसे मुद्रा के बदले दूसरे उत्पादन प्रतिष्ठानो या व्यापारिक सगठनो के हाथ बेच दिया जाता है। प्रतिष्ठान इस प्रकार प्राप्त रकम से उत्पादन को जारी रखने के लिए आवश्यक खर्चों की अदायगी करता है। इस प्रकार प्रतिष्ठान को जो परिसम्पत्ति प्राप्त होती है वह लगातार परिचालन मे रहती है।

समाजवादी प्रतिष्ठानो मे उत्पादन के साधन उनकी उत्पादन परिसम्पत्ति का रूप धारण कर लेते हैं। उनका बटवारा स्थिर परिसम्पत्ति और परिचालन परिसम्पत्ति के आधार पर किया जाता है। स्थिर परिसम्पत्ति मे श्रम के साधन शामिल होते हैं तथा परिचालन परिसम्पत्ति मे श्रम की वस्तुए।

स्थिर परिसम्पत्ति, अनेक उत्पादन चक्रो के दौरान, उत्पादन की प्रक्रिया में सहायक होती है। लम्बे समय के दौरान, वह थोडा थोडा करके अपना मूल्य

तैयार माल मे हस्तातरित करती रहती है। सम्पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया के दौरान वह अपना आगिक स्वरूप कायम रखती है।

परिचालन परिसम्पत्ति, हर उत्पादन चक्र मे पूर्ण रूप से इस्तेमाल हो जाती है। इसलिए वह अपने मूल्य को तैयार माल मे हस्तातरित कर देती है। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान वह अपना रूप बदल कर किसी सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करने वाले नये पदार्थों का रूप ले लेती है।

किसी भी प्रतिष्ठान की परिचालन परिसम्पत्ति मे (१) उत्पादन की प्रक्रिया मे अभी तक शामिल न होने वाले श्रम के विषय, तथा (२) उत्पादन प्रक्रिया मे पहले से ही लगे श्रम के विषय, शामिल होते हैं। इस बटवारे के अनुसार परिचालन परिसम्पत्ति मे (१) उत्पादन भडार (कच्चे माल, ईंधन, आदि, के भण्डार), और (२) चालू काम सम्मिलित रहते हैं।

उत्पादक स्थिर परिसम्पत्ति के अलावा, प्रतिष्ठानो के पास गैर उत्पादक परिसम्पत्ति भी होती है। इस प्रकार की स्थिर परिसम्पत्ति मे प्रतिष्ठान के भवन, पाठशालाए, क्लब, चिकित्सालय, आदि, आते हैं।

उत्पादक परिसम्पत्ति के अलावा हर प्रतिष्ठान परिसम्पत्ति का एक निश्चित भाग अपने हाथ मे रखता है। यह भाग परिचालन के क्षेत्र मे सहायक प्रतिष्ठान के साधनो के रूप मे होता है। इसमे तैयार किन्तु बिना बिका माल एव वेतनो की अदायगी, कच्चे और अनेक प्रकार के मालो की खरीद तथा फुटकर अदायगियो के उद्देश्य से रकम शामिल रहती है।

परिचालन मे काम आने वाली उत्पादक परिसम्पत्ति और हाथ मे उपलब्ध परिसम्पत्ति मिल कर प्रतिष्ठान की आवर्तरत परिसम्पत्ति बनती है। आवर्तरत परिसम्पत्ति का एक भाग राज्य द्वारा प्रतिष्ठान को दिया जाता है। यह प्रतिष्ठान की अपनी आवर्तरत परिसम्पत्ति होती है। दूसरा भाग वह होता है, जो प्रतिष्ठान को बैंक से कर्ज के रूप मे प्राप्त होता है।

यदि किसी प्रतिष्ठान को प्रभावकारी ढग से काम करना है तो उसके समस्त साधनो और परिसम्पत्ति का इस्तेमाल चतुरता के साथ, विवेकपूर्ण ढग से, किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि स्थिर परिसम्पत्ति—उत्पादक क्षेत्रों, भवनो, उपकरणो, मशीनो, खरादो, आदि—का इस्तेमाल अधिकतम रूप से किया जाना चाहिए। इसमे यह भी पूर्वनिहित है कि आवर्तरत परिसम्पत्ति का खर्च किफायती ढग से किया जाय, कच्चे व अन्य प्रकार के मालो व उत्पादन की प्रति इकाई पर ईंधन पर होने वाले खर्च को कम किया जाय, फालतू और अनावश्यक भण्डारों को हटा कर और तैयार माल की बिक्री को तेज करके आवर्तरत परिसम्पत्ति के परिचालन मे तेजी लायी जाय।

समाज, प्रतिष्ठान और प्रत्येक व्यक्तिगत मजदूर के बीच आर्थिक सम्बध

समाज, प्रतिष्ठान और प्रत्येक व्यक्तिगत मजदूर के बीच निश्चित आर्थिक सम्बध स्थापित होते हैं। समाज प्रतिष्ठान को व्यापक अधिकार देता है। इससे प्रतिष्ठान के कर्मचारियो पर समाज के प्रति, जिसका प्रतिनिधित्व समाजवादी राज्य करता है, निश्चित जिम्मेदारिया आयद होती हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत समाज के समस्त सदस्यो के महत्वपूर्ण हित एक ही बिन्दु पर मिल जाते हैं क्योकि उसमे उत्पादन के साधन सार्वजनिक सम्पत्ति होते है। समाजवादी समाज के सभी सदस्यो को (१) समाजवादी राजनीतिक व सामाजिक प्रणाली को कायम रखने व उसे मजबूत करने, तथा (२) समाजवादी अर्थव्यवस्था की वृद्धि करने और उस समृद्ध बनाने मे अत्यधिक दिलचस्पी होती है क्योकि यही उनकी खुशहाली मे वृद्धि की पूर्व शर्त और मुख्य गारन्टी होती है। इसी के कारण, समाजवाद के अन्तर्गत, जनता की सार्वजनिक दिलचस्पी नेतृत्वकारी भूमिका अदा करती है।

समाज, हर प्रतिष्ठान और प्रत्येक मेहनतकश इन्सान, मुख्य तौर पर, समान हितो के लिए प्रयत्नशील रहते है। किन्तु, इसका यह अर्थ कदापि नही है कि उनके हित, हर अमली सवाल पर और हर ठोस परिस्थिति मे, स्वत. एक हा जाते हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे, प्रथम तो कुछ निश्चित सीमाओ के अन्दर प्रतिष्ठानो की आर्थिक और कार्यगत स्वतत्रता की व्यवस्था पूर्व निहित होती है, इसीलिए उनके कर्मचारियो को उनके प्रयासो के लिए समान प्रतिफल देने की आवश्यकता होती है। दूसरे, समाजवादी अर्थव्यवस्था मे यह बात पूर्व निहित है कि मजदूरो को समाज की भलाई के लिए किये गये उनके श्रम की मात्रा और गुण के हिसाब से भुगतान करने के सिद्धान्त पर अमल किया जाय। किन्तु इन विशिष्ट लक्षणो के बावजूद समाज, उत्पादन सस्थानो एव अलग-अलग मेहनतकशों के हितो के बीच विभेद पैदा हो जाते हैं। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि हितो मे आवश्यकीय एकता व समानता को सुनिश्चित बनाने के लिए आर्थिक प्रेरणा देने की विवेकशील विधियो को काम मे लाया जाय।

समाजवाद के अन्तर्गत प्रतिष्ठान और सम्पूर्ण समाज के प्रत्यक्ष आर्थिक हितो के बीच अन्तर्विरोध उसी हालत मे पैदा होते हैं, जब आर्थिक प्रोत्साहन देने की प्रणाली का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे नही किया जाता। समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास तथा उसकी जिम्मेदारियों के लगातार पेचीदा होते जाने से भौतिक प्रोत्साहनो के बारे मे लेनिनवादी सिद्धान्त का लागू किया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। इस सिद्धान्त मे यह पूर्व-निहित है कि अलग-अलग

मेहनतकशो, मेहनतकशो के समूहो, प्रतिष्ठानो और सम्पूर्ण समाज के हितो का सही ढग से समन्वय किया जाय। वर्गीय विरोधो से मुक्त समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रश्न के सफलतापूर्वक हल किय जाने की पूरी पूरी सम्भावना रहती है, क्योकि समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन से होने वाले फायदे जनता के होते हैं और उसमे होने वाली वृद्धि से जनता की खुशहाली मे इजाफा होता है। सम्पूर्ण समाज और उसके प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताओ की अधिकाधिक एव चतुर्मुखी पूर्ति करने के लिए उत्पादन करना, समाजवाद और कम्युनिज्म के अन्तर्गत आर्थिक विकास की बुनियाद है।

योजना के लक्ष्य तथा प्रतिष्ठान की कारगुजारी के मूल्याकन की कसौटिया, अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन मे प्रतिष्ठानो मे दिलचस्पी पैदा करने एव राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयुक्त तरीको का इस्तेमाल करने के उद्देश्य से निश्चित की जाती हैं। इस नतीजे को प्राप्त करने के लिए आर्थिक प्रेरणाओ से काम लिया जाता है।

लागत लेखा का मूल तत्व और उसके काम

हमने ऊपर देखा है कि कम से कम लागत से समाज के हित मे अधिकाधिक नतीजे हासिल करना समाजवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास का एक अटल नियम है। लागत लेखा समाजवादी प्रतिष्ठानो मे किफायत को सुनिश्चित बनाने का अत्यन्त महत्वपूर्ण अस्त्र है।

लागत लेखा समाजवादी प्रतिष्ठानो के नियोजित प्रबन्ध की एक विधि है, जो उनके खर्च तथा मूल्य (मुद्रा) के रूप मे उत्पादन के नतीजो की तुलना पर आधारित होती है।

लागत लेखा म निहित है कि प्रतिष्ठान मे होने वाले खर्च और उसके कार्यकलाप से प्राप्त होने वाले नतीजो के बीच लगातार अनुरूपता कायम की जाय। लागत लेखा के आधार पर काम करने वाला हर प्रतिष्ठान अपनी आमदनी और खर्च, अपने मुनाफो और घाटो को व्यक्त करते हुए हिसाब का एक लेखा-जोखा स्वतन्त्र रूप स तैयार करता है। राजकीय बैंक मे उसका एक चालू खाता होता है तथा सामयिक नियमो के अनुसार वह इस खाते की रकमो का सचालन करता है। प्रतिष्ठान अन्य प्रतिष्ठानो, सस्थाओ तथा सगठनो के साथ आर्थिक करार करता है तथा इन करारो की पूर्ति के लिए जिम्मेदार होता है। वह अपने साधनो को मजबूत करने के लिए ऋण प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

इस प्रकार लागत लेखा समाजवादी राज्य और प्रतिष्ठानो के बीच, तथा अलग अलग प्रतिष्ठानो के बीच, सम्बधो का एक ठोस स्वरूप है। सम्बधो का

यह स्वरूप राज्य द्वारा प्रतिष्ठान को दी गयी परिसम्पत्ति के अति उत्तम और विवेकपूर्ण इस्तेमाल को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निश्चित किया जाता है।

लागत लेखा सिद्धान्त पर अनवरत रूप से आचरण करने से प्रतिष्ठान के समस्त ससाधनो व शक्तियो को प्रकट करने तथा उनका पूरा पूरा इस्तेमाल करने म सहायता मिलती है। लागत लेखा का उद्देश्य है—प्रत्येक माल के उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम की मात्रा को घटा कर उसे सामाजिक रूप से आवश्यक न्यूनतम श्रम के स्तर पर लाना। इससे श्रम के सामाजिक रूप से आवश्यक खर्च को योजनाबद्ध तरीके से घटाने म सहायता मिलती है।

लागत लेखा किफायत की प्रणाली से अभिन्न रूप से जुडा होता है, क्योकि उसमे यह बात निहित है कि श्रम एव भौतिक व मौद्रिक ससाधनो को विवेकपूर्ण ढग से और सावधानी से खर्च किया जायगा, उद्योग की समस्त शाखाओ मे घाटो तथा गैर-उत्पादक खर्चों से बचा जायगा।

लागत लेखा म हर प्रतिष्ठान को (उसके प्रशासन को) अपनी परिसम्पत्ति के इस्तेमाल व प्रतिष्ठान की कारगुजारी के नतीजो के प्रति जिम्मेदार होना होता है। इसके लिए जरूरी होता है कि प्रतिष्ठान मे कडी व्यवस्था कायम की जाय, प्रतिष्ठान की समस्त भौतिक एव मौद्रिक परिसम्पत्ति का पूरी तत्परता से हिसाब रखा जाय और उनके खर्चों पर सख्त नियन्त्रण स्थापित किया जाय।

समाजवाद के अन्तर्गत समस्त मेहनतकश लोग, हर अलग-अलग प्रतिष्ठान मे तथा राष्ट्रीय स्तर पर भी, कारोबार के प्रबन्ध को बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से एव सर्वश्रेष्ठ विधि से चलाने मे दिलचस्पी लेते हैं। कारोबार को जितना ही अधिक दक्षतापूर्ण ढग से चलाया जायेगा, श्रम और भौतिक खर्च की उसी मात्रा से जितना अधिक उत्पादन किया जायेगा, सम्पूर्ण समाज तथा उसके प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताओ को उतना ही अधिक पूरा किया जा सकेगा।

इस सामान्य दिलचस्पी के अलावा, लागत लेखा प्रत्येक प्रतिष्ठान के कर्मचारियो की योजना की पूर्ति व अतिपूर्ति मे तथा न्यूनतम लागत पर अधिकतम नतीजे प्राप्त करने मे प्रत्यक्ष भौतिक दिलचस्पी भी पैदा करता है। इस उद्देश्य को लागत लेखा पर आधारित उत्पादन की आर्थिक प्रेरणा प्रणाली को लागू करके प्राप्त किया जाता है।

कारखानो के अन्दर लागत लेखा

राष्ट्रीय आर्थिक योजना की सफलता का निर्णय प्रतिष्ठानो में होता है, जबकि हर प्रतिष्ठान की योजना की सफलता का निर्णय शाखो, उत्पादन अनुभागों, टीमो और काम के सभी स्थानो पर किया जाता है।

लागत लेखा यदि विभिन्न प्रतिष्ठानो के बीच केवल उनके परस्पर आर्थिक सम्बधों तक ही सीमित रहता है, तो वह पूर्ण नही हो सकता। पूर्ण बनने के लिए उसे प्रतिष्ठान के भीतर अर्थात उसके विभिन्न अगो—शापो, अनुभागो, टीमो—के सम्बधो को भी अपने दायरे मे लेना चाहिए। कारखाने के भीतर लागत लेखा—जिसे शाप, अनुभाग या टीम के आधार पर लागू किया जाता है—इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। अन्तर कारखाना (शाप) लागत लेखा उत्पादन की आर्थिक प्रेरणा प्रणाली का अभिन्न अग है। प्रबन्ध की नयी प्रणाली लागू करने के सम्बध मे अन्तर कारखाना लागत लेखा का अगला विकास बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है।

अन्तर कारखाना लागत लेखा लागू करने मे सर्वप्रथम यह बात निहित है कि उत्पादन के हर भाग को योजना के लक्ष्य सौपे जायें। योजना के लक्ष्यो की पूर्ति और अतिपूर्ति को प्रोत्साहन देने के लिए शाप, अनुभाग या टीम के मजदूरो को बोनस दिया जाता है।

लागत लेखा और समाजवाद के आर्थिक नियम

समाजवादी लागत लेखा समाजवाद के वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियमो—विशेष रूप से श्रम की किफायत के नियम, नियोजित सानुपातिक विकास के नियम तथा मूल्य के नियम—के इस्तेमाल पर आधारित होता है।

लागत लेखा का उद्देश्य यह होता है कि—श्रम की किफायत के नियम के अनुसार—प्रत्येक प्रतिष्ठान मे कारोबार को किफायत के आधार पर सगठित करने की गारन्टी की जाय। इसके अलावा, लागत लेखा का उद्देश्य यह भी होता है कि प्रतिष्ठान की समस्त गतिविधि को इस तरह सचालित किया जाय कि वह अपनी योजना के लक्ष्यो को अत्यधिक सफलता के साथ पूरा कर सके। तृतीय, लागत लेखा मूल्य के नियम के पूर्ण इस्तेमाल पर आधारित होता है।

प्रबन्ध की नयी आर्थिक प्रणाली का अर्थ यह है कि उसका सक्रमण अर्थ-व्यवस्था मे प्रबन्ध की आर्थिक विधियो तथा पूर्ण लागत लेखा के आधार पर प्रतिष्ठानो को आर्थिक प्रेरणा देने वाली प्रणाली मे किया जाय, जिसमे राष्ट्रीय स्तर पर तथा प्रत्येक प्रतिष्ठान मे खर्चों और उनसे प्राप्त होने वाले परिणामो मे पूर्ण एव आर्थिक रूप से सुदृढ अनुरूपता लाने की व्यवस्था हो। प्रबन्ध की आर्थिक विधिया और समाजवादी लागत लेखा मे निहित है कि करोबार का प्रबन्ध मूल्य समागो—जैसे कीमतो, मुनाफो वेतन और बोनस, कर्ज और ब्याज, किराया और उत्पादक परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के महसूल—की प्रणाली की सहायता से किया जाय।

२. लागत लेखा के मूल सिद्धान्त

उत्पादन की लाभदायकता और उसको बढ़ाने की विधियां

लागत लेखा समाजवादी आर्थिक प्रबन्ध का एक अत्यन्त विशिष्ट लक्षण है। किंतु, जब तक आर्थिक प्रबन्ध के प्रशासकीय तौर-तरीकों का प्रभुत्व था, तब तक उसका स्वरूप केवल रस्मी था। उत्पादन की नयी प्रणाली की माग होती है कि प्रतिष्ठान की समस्त गतिविधियो मे वास्तव मे लागत लेखा लागू किया जाय। खर्चों और उनके परिणामो को ठीक ठीक मापने की कुशलता, पूजी विनियोगो की प्रभावकारिता की स्थापना, निश्चित प्राविधिक प्रक्रियाओ की अपेक्षाकृत लाभदायकता तथा कुछ विशेष किस्मो के कच्चे व अन्य मालो के इस्तेमाल, अर्थात सक्षेप मे, बडे छोटे सभी मामलो मे विवेकपूर्ण आर्थिक निर्णय, अन्तिम रूप से, जनता के श्रम के परिणामो को, और इस प्रकार उसके रहन सहन के स्तर मे प्रगति को, निश्चित करते हैं।

लागत लेखा का उद्देश्य प्रतिष्ठानो के लाभदायक कार्यचालन को सुनिश्चित बनाना होता है। लागत लेखा के आधार पर चलने वाले हर प्रतिष्ठान को तैयार माल की बिक्री से प्राप्त होने वाली रकम से न केवल अपने खर्चों की पूर्ति करनी चाहिए बल्कि कुछ निश्चित मुनाफा भी प्राप्त करना चाहिए।

समाजवादी निर्माण के प्रथम वर्षों मे ही लेनिन ने सख्त लागत लेखा और प्रतिष्ठानो के लाभदायक सचालन पर जोर दिया था। नयी आर्थिक नीति म सक्रमण हो जाने के बाद लेनिन ने कहा था कि लागत लेखा के अनुसार काम करने वाले ट्रस्टो और प्रतिष्ठानो की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी थी कि उन्हे बिना घाटे के काम के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार बनाया जाय। उन्होने यह भी कहा था कि लागत लेखा मे उनका सक्रमण श्रम उत्पादकता बढाने एव हर प्रतिष्ठान के काम को बिना किसी घाटे के व निश्चित मुनाफे के आधार पर सगठित करने की गारण्टी करने की आवश्यकता से जुडा हुआ था।

प्रतिष्ठान के पास सुलभ समस्त ससाधनो के बेहतर इस्तेमाल, हर प्रकार की किफायत के विस्तार तथा प्रतिष्ठान के कारोबार के समस्त पहलुओ पर पक्के वित्तीय नियत्रण द्वारा उत्पादन लागत को घटा कर और उत्पादित पदार्थों की गुणात्मक श्रेष्ठता की गारण्टी करके उत्पादन की लाभदायकता को बढाया जाता है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि लागत घटाने और उत्पादन की लाभदायकता बढाने के लिए लागत लेखा को हर प्रकार से मजबूत बनाया जाना आवश्यक है।

वास्तविक लागत लेखा को सुदृढ़ एव विकसित करने तथा इस प्रकार लाभदायकता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पडते हैं। प्रथम, ऐसी

परिस्थितिया उत्पन्न की जायें जिनमे प्रतिष्ठान, स्वतत्र रूप से, उत्पादन के सुधार से सम्बधित सवालो को हल कर सके और अपनी परिसम्पत्ति के इष्टतम इस्तेमाल मे—उत्पादन की वृद्धि करने और अपने मुनाफो को बढाने मे—दिलचस्पी लें। द्वितीय, विभिन्न प्रतिष्ठानो मे बीच लागत लेखा के सिद्धान्त को मजबूत करना इसलिए भी आवश्यक है ताकि उनके द्वारा उपलब्ध किये जाने वाले सामानो को पक्का और सुनिश्चित किया जा सके तथा कर्तव्यो को पूरा करने मे उनकी भौतिक जिम्मेदारी को बढाया जा सके। तृतीय, लागत लेखा के तरीके के लागू किये जाने से प्रत्येक प्रतिष्ठान, प्रत्येक शाप तथा सभाग को न केवल अपने लक्ष्यो को पूरा करने के लिए, बल्कि प्रतिष्ठान के सचलन के फनो म सुधार लाने, योजना के उच्चतर लक्ष्यो को निश्चित करने व उन्हें पूरा करने तथा उत्पादन की लाभदायकता बढाने के उद्देश्य से आन्तरिक ससाधनो का बेहतर इस्तेमाल करने म दिलचस्पी लेना चाहिए।

प्रतिष्ठानो की विस्तारित आर्थिक स्वतत्रता

प्रबन्ध की नयी प्रणाली प्रतिष्ठानो की कार्यगत तथा आर्थिक स्वतत्रता को निश्चयात्मक रूप से विस्तारित करती है। प्रतिष्ठान को उत्पादन के सगठन और आर्थिक कार्यकलाप के अन्य समस्त क्षेत्रो मे व्यापक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

सोवियत सघ के मत्रिमडल द्वारा स्वीकृत प्रतिष्ठानो के अधिकार और कर्तव्य समाजवादी राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठान नियमावली मे दर्ज हैं और अक्तूबर १९६५ से लागू हैं। यह नियमावली उत्पादन वृद्धि एव नियोजन की नयी प्रणाली तथा सितम्बर १९६५ मे लिये गये सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की विस्तारित बैठक व सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्णयो के ऐन मुताबिक है।

समाजवादी राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठान नियमावली मे प्रतिष्ठान के कार्यकलाप को नियन्त्रित करने वाले आम सिद्धान्त दर्ज हैं। उत्पादन उपकरणो एव प्रविधि मे सुधार करने, सामानो एव उपकरणो की प्राप्ति व तैयार माल की बिक्री करने तथा वित्त, श्रम और वेतन के क्षेत्रो मे सतुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक प्रबन्धकीय ढाचे, प्रतिष्ठान के आर्थिक एव उत्पादन सम्बधी कार्यकलाप, साथ ही, नियोजन, भारी निर्माण एव मरम्मत के बडे कामो की रूपरेखा इस नियमावली मे दी हुई है। नियमावली मे प्रतिष्ठानो के अधिकारो, उनकी आर्थिक पहलकदमी और स्वतत्रता को काफी विस्तारित किया गया है और यह नियमावली न केवल औद्योगिक प्रतिष्ठानो बल्कि निर्माण, कृषि, यातायात तथा सचार सम्बधी प्रतिष्ठानो के सामने आने वाली नयी जिम्मेदारियो के पूरे तौर पर अनुकूल है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं प्रतिष्ठानों की आर्थिक स्वतन्त्रता को विकसित करने का अर्थ, सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख रूप से, यह है कि उनके कार्यकलाप को नियमित करने वाले ऐसे योजना-सूचकों की संख्या, जिनकी स्वीकृति उच्च संगठनों से प्राप्त करना जरूरी होता है, घटती जाती है। दूसरे, समस्त सूचकों का निश्चय प्रतिष्ठानों द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाता है और प्रतिष्ठान के कर्मचारी तथा मजदूर उत्पादन के नियोजन के काम में पहले से बहुत ज्यादा बड़े पैमाने पर शरीक होते हैं।

उच्च आर्थिक संस्थाओं द्वारा, प्रतिष्ठानों के साथ मिल कर, उत्पादन की योजनाओं पर विचार किया जाता है। एक बार स्वीकार कर लिये जाने के बाद योजनाएं केवल अपवाद स्वरूप ही परिवर्तित की जाती हैं। जब कभी लक्ष्यों में परिवर्तन किया जाता है तो उसी के साथ समस्त परस्पर सम्बंधित योजना के सूचकों तथा प्रतिष्ठान के हिसाब-किताब और बजट में भी संशोधन करना पड़ता है।

यदि प्रतिष्ठान के पास पर्याप्त मात्रा में आन्तरिक संसाधन उपलब्ध हों तो उसके कर्मचारियों को अधिकार प्राप्त होता है कि बिना अनुमति लिये ही वे अपने कार्यक्रम में वृद्धि कर सकते हैं, दूसरे प्रतिष्ठानों से आर्डर प्राप्त कर सकते हैं और उनके साथ करार भी कर सकते हैं—बस शर्त एक ही है कि इस तरह राजकीय लक्ष्यों की पूर्ति में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिए। किसी भी प्रतिष्ठान को, यदि फालतू उत्पादन की बिक्री की गारण्टी हो तो, योजना के लक्ष्यों से अतिरिक्त उत्पादन करने की अनुमति रहती है।

प्रतिष्ठान के कार्मचारियों को पूरे प्रतिष्ठान की लाभकारी कारगुजारी में बहुत ही अधिक दिलचस्पी होती है क्योंकि इसी कारगुजारी के नतीजों के परिणामस्वरूप प्रोत्साहन निधियों का निर्माण होता है, जिनके द्वारा मजदूरों, इन्जीनियरों और तकनीशियनों व प्रशासकीय कर्मचारियों को उनके वेतनों के अलावा बोनसों का भुगतान किया जाता है, तथा प्रतिष्ठान के कर्मचारियों का रहन सहन सुधारने व उत्पादन को बढ़ाने के कदम उठाये जाते हैं।

लागत लेखा और कीमत-निर्धारण

लागत लेखा के सही तौर पर लागू किये जाने का अर्थ होना है कि कीमत निर्धारित करने वाली प्रणाली में सुधार किया जाय।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में कीमतें भारी भूमिका अदा करती हैं। सर्वप्रथम, कीमत एक ऐसा समान हर (मापक) होती है, जिसकी सहायता से उत्पादन पर होने वाले समस्त खर्चों की तुलना उत्पादन से प्राप्त होने वाले फलों से की जाती है। कीमत प्रणाली एक ऐसा केन्द्र होती है जहां पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित प्रबन्ध के सभी ताने-बाने एक स्थान पर

मिलते हैं। कीमतें अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ के आन्तरिक सम्बधो तथा अलग-अलग आर्थिक शाखाओ के पारस्परिक सम्बधो को पेचीदा प्रणाली मे समन्वय स्थापित करती हैं। उत्पादन लागत कच्चे और दूसरे सामानो की कीमतो, विद्युत शक्ति के रेट तथा यातायात के किरायो पर निर्भर करती है। और मुनाफा, किसी निश्चित उत्पादन लागत के आधार पर, प्रतिष्ठान द्वारा उत्पादित की गयी वस्तुओ की कीमत पर, निर्भर करता है।

किसी औद्योगिक पदार्थ की कीमत या तो लागत लेखा सिद्धान्त के आधार पर काम करने वाले राजकीय प्रतिष्ठानो के बीच रिश्तो (थोक कीमतो), या उपभोक्ता पदार्थों के बटवारे के क्षेत्र मे राज्य और समाजवादी समाज के अलग-अलग सदस्यो के बीच सम्बंधो (फुटकर कीमतो) को व्यक्त करती है। राज्य और सामूहिक फार्मों के बीच रिश्ते सामूहिक फार्म के पदार्थों की खरीद की कीमतो द्वारा व्यक्त होते हैं।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है कि कीमतो को अधिकाधिक पैमाने पर श्रम के सामाजिक तौर पर आवश्यक खर्च को व्यक्त करना चाहिए तथा सामान्य रूप से काम करने वाले प्रतिष्ठानो मे उत्पादन और वितरण पर होने वाले खर्चो की वापसी तथा एक निश्चित मुनाफे की गारन्टी करना चाहिए।

किसी भी वस्तु की कीमत उसकी औसत शाखा उत्पादन लागत पर आधारित होनी है। परन्तु कीमत, उत्पादन लागत के बराबर नही हो सकती। लागत मे तो उस वस्तु क उत्पादन पर खर्च हुए सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम का केवल एक भाग, अर्थात कच्चे तया अन्य मालो, स्थिर परिसम्पत्तियों की घिसावट तथा वेतनो की अदायगी पर होने वाला खर्च ही शामिल होता है। किन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पादित वस्तुओ मे मजदूरो का अधिशेष श्रम भी शामिल होता है जो उत्पादन लागत मे शामिल नही होता। अत. लागत मे वस्तु के उत्पादन पर खर्च होने वाले सामाजिक तौर पर आवश्यक समस्त श्रम को नही जोडा जाना, इसलिए उससे मुनाफे और सचय की गारन्टी नही होती।

वस्तुओ की कीमते, जिनमे उनके उत्पादन पर खर्च हुआ सम्पूर्ण सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम शामिल हो, वस्तुओं की औसत शाखा लागत और कुछ निश्चित मुनाफो को जोड कर तय की जाती है। समाज द्वारा उत्पादित समस्त वस्तुओ की कीमतो मे मुनाफे की जो रकम शामल रहती है, वह सामाजिक उत्पादन के दौरान लगाये गये अधिशेप श्रम के कुल योग के मूल्य के बराबर होती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित समस्त वस्तुओं की कीमतो का कुल योग उनके मूल्यो के कुल योग के बराबर होता है।

उत्पादन की लागत वस्तु के श्रम/उत्पादित सामान और भौतिक पदार्थ/उत्पादित सामान के अनुपात को अभिव्यक्त करती है, जबकि मुनाफे को परिसम्पत्ति/उत्पादित सामान की अभिव्यक्ति भी करनी चाहिए। जिन सामानो के उत्पादन के लिए समाज को पूजी का भारी विनियोग करना होता है (अर्थात स्थिर तथा चल उत्पादक परिसम्पत्तियो का खर्च बहुत ज्यादा होता है) उनकी लागत उन सामानो की लागत से अधिक होनी है जिनके उत्पादन के लिए पूजी के अपक्षाकृत छोटे विनियोगो की आवश्यकता होती है। अत समाज को स्वभावत विभिन्न उद्योगो की परिसम्पत्ति/उत्पादित सामान के अनुपात मे दिलचस्पी होती है। इससे नतीजा निकलता है कि आम तौर पर उत्पादित वस्तुओ की कीमतो म उनकी लागत के अलावा शुद्ध मुनाफे का एक अश भी अवश्य शामिल रहना चाहिए। इस अश का आकार वस्तुओ की परिसम्पत्ति/उत्पादित सामान के अनुपात पर निर्भर करता है।

उत्पादन के आर्थिक प्रोत्साहन मे मुनाफे की बढी हुई भूमिका

प्रबन्ध की नयी प्रणाली किसी भी प्रतिष्ठान, उसके उत्पादन कर्मचारियो और प्रशासन की कारगुजारी के मूल्याकन की कसौटी के रूप मे मुनाफे की भूमिका म निर्णायक वृद्धि स अभिन्न रूप से जुडी हुई है। पहले प्रतिष्ठान की कारगुजारी का मूल्याकन ऊपर से दिये गये अनेक योजना सूचको के आधार पर किया जाता था, अब चूकि इन सूचको की सख्या काफी कम हो गयी है इसलिए उसकी कारगुजारी के मूल्याकन का आधार बिक्री की गयी वस्तुओ की मात्रा, मुनाफो का कुल योग और लाभदायकता का स्तर हो गया है।

अर्थव्यवस्था मे आवश्यक आनुपातिक स्थिति कायम रखने के लिए हर प्रतिष्ठान को अपने द्वारा उत्पादित सामानो की बिक्री की मात्रा और अपने सामानो की आधारभूत नामावली के बारे मे कुछ निश्चित लक्ष्यो को पूरा करना चाहिए। इन लक्ष्यो के पूरा हो जाने पर निम्नलिखित आधारो को उक्त प्रतिष्ठान की कारगुजारी की सामान्य कसौटी मान लिया जाता है—उत्पादन पर लगने वाली लागत तथा उत्पादित पदार्थों की बिक्री से प्राप्त होने वाले धन का अन्तर जिसे मुनाफा कहा जाता है तथा मुनाफो के कुल योग एव उत्पादक परिसम्पत्तियो के बीच अनुपात, जिसे लाभदायकता का स्तर (या सामान्य तौर पर लाभदायकता) कहा जाता है।

मडी मे बेचे जाने वाले [illegible] मुनाफो [illegible]
दायकता के सूचको के बीच [illegible] जाता है। [illegible] लाभ-
सामान का लक्ष्य तय करने [illegible] यान
सम्बध स्थापित करना होना [illegible] और [illegible]

उत्पादन की प्रभावकारिता तथा हर प्रतिष्ठान द्वारा समाजवादी समाज के ससाधनो मे किये गये योगदान का मूल्याकन करने मे समर्थ बनाते हैं।

मडी मे वेचे जाने वाले सामान की मात्रा उत्पादन के फलो को प्रकट करती है। किन्तु वह अपने आप उत्पादन पर होने वाले खर्चों को प्रकट नही करती। उत्पादन पर होने वाले कुल खर्च को उत्पादन लागत के जरिये जाहिर किया जाता है, किन्तु इस सूचक से जोकि योजना के तकनीकी, वित्तीय तथा उत्पादन सम्बधी पक्षो के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उत्पादन से प्राप्त होने वाले फलो का अन्दाजा लगाने मे कोई सहायता नही मिलती। जहा उत्पादित पदार्थों की प्रति इकाई उत्पादन लागत का घटाया जाना बहुत जरूरी है—क्योकि समाज के ससाधनो मे वृद्धि करने का यह एक रास्ता है—वही दूसरी ओर उत्पादित किये जाने वाले तथा बिक्री किये जाने वाले सामानो की मात्रा मे वृद्धि तथा उनके गुणात्मक स्तर मे सुधार इस उद्देश्य की प्राप्ति के दूसरे रास्ते हैं।

मुनाफो का सूचक अत्यन्त आवश्यक है क्योकि यह प्रतिष्ठान के उत्पादन कार्यकलाप के सभी पहलुओ पर प्रकाश डालता है। उसके काम के प्रत्येक सुधार—कच्चे माल मे किफायत, उपकरणो के बेहतर इस्तेमाल, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि, आदि—से मुनाफो की मात्रा मे वृद्धि होती है तथा कारगुजारी के खराब होने पर मुनाफे घट जाते है। उत्पादन मे होने वाले विस्तार के परिणामस्वरूप तैयार मालो मे जो वृद्धि उपलब्ध होती है तथा उत्पादन लागत घटने से कुल खर्चों मे जो कमी होती है, इन दोनो ही कारणो से मुनाफे बढ जाते हैं। इसीलिए मुनाफा किसी प्रतिष्ठान की आर्थिक कारगुजारी के मूल्याकन की सामान्य कसौटी का काम करता है।

लाभदायकता का सूचक भी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वह उत्पादन की प्रभावकारिता को प्रकट करता है। यदि उत्पादक परिसम्पत्ति के प्रति रूबल पर मुनाफा अधिक होता है, तो प्रभावकारिता भी अधिक होती है।

रूबल नियंत्रण

समाजवादी लागत लेखा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है रूबल नियत्रण, अर्थात प्रतिष्ठान की गतिविधियो का वित्तीय नियत्रण।

प्रतिष्ठान के समस्त वित्तीय ससाधनो—तैयार माल की बिक्री से प्राप्त होने वाली रकम, बैको के कर्ज तथा बजट के साधन—को राजकीय बैंक में प्रतिष्ठान के खाते मे जमा किया जाता है।

प्रतिष्ठान दूसरी सस्थाओ और सगठनो के साथ तथा वित्तीय प्रणाली के साथ भी अपना आपसी हिसाब-किताब लिखित आदेशो के आधार पर तय करते हैं। वेतनो की अदायगी और कुछ दूसरे खर्चों के लिए बैंक से रकम निकाली जानी

है। अपवादस्वरूप कुछ मामलो म, नियोजका की सहमति के बगैर, खाते स रुपया निकाला जा सकता है, किन्तु ऐमा उसी समय और उन्ही प्रतिष्ठानो के साथ होता है जो समय के अन्दर अपने कर्जों को चुकता नही करते और इस प्रकार योजना की चतुर्मुखी पूर्ति के लिए आवश्यक वित्तीय अनुशासन का उल्लघन करने के दोषी होते हैं।

प्रतिष्ठान का खाता ही उसके कोषाध्यक्ष का काम भी करता है क्योकि आमदनी और खर्च की समस्त मद उसके जरिए ही अमल म आती हैं। खाते मे रकमो के जो इदराज होते हैं वे उत्पादन के लिए योजना के सूचको की पूर्ति और उत्पादित पदार्थों की बिक्री को ठीक ठीक परिलक्षित करते हैं। खात की स्थिति और वित्तीय लखो व बचत खातो से बैंक को पता रहता है कि सस्थान विशेष ने योजना की पूर्ति मे कितनी सफलता प्राप्त की है। जब कभी आवश्यक होता है ता बैंक प्रतिष्ठान के उच्च आर्थिक सगठनो को प्रतिष्ठान की वित्तीय स्थिति के बारे मे सामयिक चेतावनी देता है और कार्यकलाप को सुधारने की दिशा मे आवश्यक कदमो के उठाय जाने के सुझाव भी देता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतिष्ठान के कायकलाप पर बैंक का वित्तीय नियत्रण रहता है।

इस नियत्रण का आधार प्रतिष्ठान के कायकलाप के परिणामो पर उसकी वित्तीय निभरता तथा दूसरे प्रतिष्ठानो उपभोक्ताओ तथा पूर्ति करने वालो (सप्लायर्स) के साथ करार किये गये कर्तव्य होते हैं। जिस प्रतिष्ठान का काय-कलाप जितना ही अच्छा होता है उसम कच्चे और दूसरे सामानो ईंधन और वित्तीय ससाधनो का इस्तेमाल उतनी ही ज्यादा किफायत क साथ किया जाता है और प्रतिष्ठान की परिसम्पत्तियो का परिचालन जितना ही शीघ्र होता है उसकी वित्तीय स्थिति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।

किन्तु बहुत ही कुशलतापूर्वक चलाये जाने वाल किसी भी प्रतिष्ठान की वित्तीय स्थिति असतोषजनक हो जाती है—यदि उसके द्वारा उत्पादित सामानो के खरीदार समय से रकम का भुगतान नही करते या कच्च या दूसरे सामाना व ईंधन की सप्लाई करने वाले नियमित रूप से सप्लाई जारी नही रखत, या खराब किस्म के सामाना की सप्लाई करते हैं। इस तथ्य स प्रतिष्ठानो और आर्थिक सस्थानो के पारस्परिक नियत्रण की आवश्यकता की बात समझ म आती है।

प्रतिष्ठानों की प्रोत्साहन निधियां

प्रतिष्ठानो को आर्थिक प्रेरणा देने के काम म मुनाफे द्वारा अदा की जान वाली अधिकाधिक भूमिका उन प्रतिष्ठाना म प्रोत्साहन निधियो के निर्माण स नजदीकी तौर पर जुड़ी होती है। प्रतिष्ठान के मुनाफे स कटौती करके भौतिक प्रोत्साहन निधिया, सामाजिक व सास्कृतिक कदमो के लिए व आवासीय निर्माण के लिए आवश्यक

निधियो, तथा उत्पादन मे सुधार के लिए निधियो की स्थापना की जाती है। इन निधियो के लिए कटौतियो को कई वर्षों के लिए पहले से ही निश्चित कोटो द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इन निधियो का आकार योजना मे प्रस्तावित मडी मे बेचे जाने वाले सामान की मात्रा, मुनाफो और लाभदायकता पर निर्भर होना है। योजना की अनिपूर्ति के लिए दी जाने वाली रकम की मात्रा योजना की पूर्ति की रकम से कम होती है जिससे योजना के ऊचे लक्ष्य निर्धारित करने मे प्रतिष्ठानो को दिलचस्पी होती है।

भौतिक प्रोत्साहन निधियो से मजदूरो को बोनस दिया जाता है। बोनस केवल वर्ष के दौरान उत्पादन के ऊचे सूचको के लिए ही नही अदा किया जाता, बल्कि साल के अन्त मे एक मुश्त इनाम के रूप में भी दिया जाता है और इसकी मात्रा उक्त समय मे प्रतिष्ठान के कार्यकलाप के नतीजो पर निर्भर करती है।

सामाजिक व सास्कृतिक कदमो तथा आवासीय निर्माण के निमित्त निर्मित निधि का इस्तेमाल प्रतिष्ठान के कर्मचारियो की फौरी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किया जाता है। आवास निर्माण और सामाजिक विकास, प्रतिष्ठान की आवासीय सुविधाओ की मरम्मत, उसके कर्मचारियो के कल्याण एव चिकित्सा सेवाओ, औषधालयो एवं महामारी विरोधी केन्द्रो पर औषधियो की खरीद, विश्राम-गृहो व सैनेटोरियमो के रख-रखाव पर तथा मजदूरो को एक मुश्त सहायता देने के काम पर इस निधि को इस्तेमाल किया जाता है।

उत्पादन विकास निधि का इस्तेमाल नये उपकरणो को लगाने, कार्यगत उपकरणो के आधुनिकीकरण और उत्पादन विस्तार आदि के कदमो के लिए किया जाता है।

प्रतिष्ठानो की प्रोत्साहन निधियो का इस्तेमाल न केवल मजदूरो के द्वारा पूरे किये गये काम की सफलताओ के लिए किया जाता है, बल्कि पूरे प्रतिष्ठान के किफायती एव प्रभावकारी काम के लिए भी भौतिक इनाम देने के हेतु किया जाता है। इससे न केवल मेहनतकश लोगो मे भौतिक दिलचस्पी पैदा करने मे सहायता मिलती है, बल्कि मजदूरो मे पूरे सस्थान के हितो के लिए लिहाज पैदा होना है और वे अपने प्रतिष्ठान के साथ गहरा रिश्ता महसूस करने लगते है।

प्रबन्ध की नयी प्रणाली से सम्भव होता है कि उत्पादन की वृद्धि और लाभदायकता, श्रम सगठन के सुधार, उत्पादित सामान के गुणात्मक स्तर के विकास तथा उत्पादक परिसम्पत्तियो की उत्पत्ति मे विस्तार के बारे मे मजदूरो की भौतिक दिलचस्पी को पूर्ण रूप से जागृत किया जा सके। भौतिक प्रेरणा

देने की प्रणाली की माग है कि प्रतिष्ठानो, उनके कर्मचारियो व प्रबन्धको को
अपने समस्त सचयो को जुटाने और सभी ससाधनो को इस्तेमाल करके उत्पादन
के स्तर को ऊचा उठाने म भौतिक तौर पर दिलचस्पी लेनी चाहिए।
इस प्रकार उन्हें सार्वजनिक सम्पत्ति के लिए अपने योगदान को बढाना
चाहिए।

पूर्ण लागत लेखा की शुरुआत

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस ने इस बात पर जोर दिया है कि लागत लेखा सम्बधी लेनिनवादी सिद्धान्त को मजबूती के साथ कार्यान्वित करना बहुत जरूरी है। उसने इस बात पर भी बल दिया है कि प्रतिष्ठानो की आर्थिक स्वतत्रता और उनके अधिकारो का लगातार विस्तार करना तथा उनकी पहलकदमी का विकास करना बहुत जरूरी है। इसके लिए प्रतिष्ठानो के सघो को उनके उच्च उत्पादन परिणामो—समाज के हित मे—के लिए भौतिक प्रेरणाए दी जानी चाहिए और योजना व अनेक करारो से पैदा होने वाले कर्तव्यो को पूरा करने की भौतिक जिम्मेदारी प्रतिष्ठानो मे पैदा करनी चाहिए।

पचवर्षीय योजना के लिए २३वी काग्रेस के निर्देश अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओ मे वास्तविक लागत लेखा सिद्धान्त का लागू किया जाना लाजमी बना देते हैं। प्रतिष्ठानो की कारगुजारी मे सुधार लाना, उत्पादन का विस्तार करना, प्रतिष्ठानो की लाभदायकता म वृद्धि करना, उत्पादित सामानो के गुणात्मक स्तर को ऊचा उठाना तथा उत्पादक परिसम्पत्तियो के इष्टतम स्तर तक इस्तेमाल के लिए प्रतिष्ठान के कर्मचारियो व अलग अलग मजदूरो की दिलचस्पी को बढाना—यही पूर्ण लागत लेखा के लागू किये जाने स अपेक्षा की जाती है। सही लागत लेखा सिद्धान्त के कार्यान्वयन का अर्थ है कि अलग-अलग प्रतिष्ठानो सम्पूर्ण उद्योगो तथा आर्थिक क्षेत्रो के आर्थिक कार्यकलाप का गहन और निपुण विश्लेषण किया जाय। जनता के श्रम की प्रभावकारिता को बढाने वाले सभी कदमो का महत्व बहुत ज्यादा बढ जाता है।

इन कदमो मे पूजी विनियोगो के अत्यन्त प्रभावी रास्ते तथा उद्योग व कृषि म उपलब्ध समस्त ससाधनो के इस्तमाल के अत्यन्त लाभदायक तरीके शामिल होते हैं। किफ़ायत के लिए लेनिन की अपील का अर्थ है कि प्रतिष्ठानो को सार्वजनिक रकम को बहुत सावधानी से खर्च करना चाहिए तथा हर प्रकार के अनावश्यक खर्च से बचना चाहिए। इसका अर्थ यह भी है कि प्रत्यक उद्योग और प्रत्येक सस्थान को सर्वोच्च उत्पादक दिशा मे विकसित करने का लगातार प्रयास करना चाहिए।

सामूहिक फार्मों में लागत लेखा के विशिष्ट लक्षण

लागत लेखा न केवल राजकीय प्रतिष्ठानो में बल्कि सामूहिक फार्मों मे भी विवेकपूर्ण प्रबन्ध के आधार का काम देती है।

राजकीय प्रतिष्ठानो की ही भांति सामूहिक फार्मों मे भी किफायती प्रबन्ध का अर्थ यह होता है कि उत्पादन पर होने वाले सभी खर्चों एव उत्पादन से प्राप्त होने वाले फलो का हिसाब किताब ठीक ठीक तरह से और मजबूती के साथ रखा जाय, और इन दोनो की तुलना ठीक-ठीक की जाय। प्रत्येक सामूहिक फार्म को लागत लेखा के कठोर सिद्धान्तो के आधार पर चलाया जाय।

किसी भी सामूहिक फार्म की कारगुजारी का मापदण्ड उक्त फार्म द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ की मात्रा, उनके गुण तथा लागत, या यथार्थ मे उत्पादित सामान के प्रति इकाई उत्पादन पर होने वाला श्रम का खर्च, होता है। सामूहिक फार्म मे उत्पादित पदार्थों की उत्पादन लागत निकालने के कुछ विशिष्ट तरीके होते हैं। यह विशिष्टता इस बात से उत्पन्न होती है कि सामूहिक फार्मों मे उत्पादित पदार्थों का एक अश (बीज, पशु) अपने प्राकृतिक रूप मे—उसी फार्म पर अधिक उत्पादन बढाने के लिए—इस्तेमाल किया जाता है, जबकि दूसरा अश सघ के सदस्यो मे उनके काम के दिनो की गिनती के अनुसार वितरित कर दिया जाता है।

राजकीय प्रतिष्ठानो की भांति सामूहिक फार्मों के कार्यकलाप के सामान्य आर्थिक परिणाम उत्पादन पर होने वाले खर्च और उससे प्राप्त होने वाले फलो के अनुपात द्वारा निश्चित होते हैं। इससे सामूहिक फार्मों मे दिलचस्पी पैदा होती है कि वे सामाजिक श्रम और भौतिक साधनो पर होने वाले खर्चों को व्यवस्थित ढग से कम करें और साथ ही फार्म पर उत्पादित होने वाले पदार्थों की मात्रा मे वृद्धि करें। इस प्रकार उन्हें उत्पादित सामान की प्रति इकाई लागत तथा मूल्यो को घटाना होता है। इस काम को उत्पादक ससाधनो और श्रमशक्ति के चतुर्मुखी इस्तेमाल, श्रम के अनुसार प्रतिफल देने के समाजवादी सिद्धान्त के मजबूती से पालन, सामूहिक फार्म की सम्पत्ति की ओर किफायती दृष्टिकोण तथा सामूहिक फार्मों की सार्वजनिक स्वामित्व वाली सम्पत्ति मे लगातार वृद्धि द्वारा ही पूरा किया जाता है।

सर्वोत्तम परिणाम हासिल करने के लिए भूमि का विवेकपूर्ण इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि अधिकाधिक मूल्यवान फसलें उगायी जा सकें। सोवियत सघ के विशाल क्षेत्रफल और विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक स्थितियो के फलस्वरूप सभी क्षेत्रों मे समान कृषि प्रणाली नही हो सकती। साचे मे ढले हुए निश्चित तौर-तरीके नही अपनाये जा सकते। इसलिए कृषि विशेषज्ञो

देने की प्रणाली की माग है कि प्रतिष्ठानो, उनके कर्मचारियो व प्रबन्धको को अपने समस्त सचयो को जुटाने और सभी ससाधनो को इस्तेमाल करके उत्पादन के स्तर को ऊचा उठाने मे भौतिक तौर पर दिलचस्पी लेनी चाहिए। इस प्रकार उन्हे सार्वजनिक सम्पत्ति के लिए अपने योगदान को बढाना चाहिए।

पूर्ण लागत लेखा की शुरुआत

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस ने इस बात पर जोर दिया है कि लागत लेखा सम्बधी लेनिनवादी सिद्धान्त को मजबूती के साथ कार्यान्वित करना बहुत जरूरी है। उसने इस बात पर भी बल दिया है कि प्रतिष्ठानो की आर्थिक स्वतत्रता और उनके अधिकारो का लगातार विस्तार करना तथा उनकी पहलकदमी का विकास करना बहुत जरूरी है। इसके लिए प्रतिष्ठानो के सघो को उनके उच्च उत्पादन परिणामो—समाज के हित मे—के लिए भौतिक प्रेरणाए दी जानी चाहिए और योजना व अनेक करारो से पैदा होने वाले कर्तव्यो को पूरा करने की भौतिक जिम्मेदारी प्रतिष्ठानो मे पैदा करनी चाहिए।

पचवर्षीय योजना के लिए २३वी काग्रेस के निर्देश अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओ मे वास्तविक लागत लेखा सिद्धान्त का लागू किया जाना लाजमी बना देते है। प्रतिष्ठानो की कारगुजारी मे सुधार लाना, उत्पादन का विस्तार करना, प्रतिष्ठानो की लाभदायकता मे वृद्धि करना, उत्पादित सामानो के गुणात्मक स्तर को ऊचा उठाना तथा उत्पादक परिसम्पत्तियो के इष्टतम स्तर तक इस्तेमाल के लिए प्रतिष्ठान के कर्मचारियो व अलग अलग मजदूरो की दिलचस्पी को बढाना—यही पूर्ण लागत लेखा के लागू किये जाने से अपेक्षा की जाती है। सही लागत लेखा सिद्धान्त के कार्यान्वयन का अर्थ है कि अलग-अलग प्रतिष्ठानो सम्पूर्ण उद्योगो तथा आर्थिक क्षेत्रो के आर्थिक कार्यकलाप का गहन और निपुण विश्लेषण किया जाय। जनता के श्रम की प्रभावकारिता को बढाने वाले सभी कदमो का महत्व बहुत ज्यादा बढ जाता है।

इन कदमो मे पूजी विनियोगो के अत्यन्त प्रभावी रास्ते तथा उद्योग व कृषि मे उपलब्ध समस्त ससाधनो के इस्तमाल के अत्यन्त लाभदायक तरीके शामिल होते हैं। किफायत के लिए लेनिन की अपील का अर्थ है कि प्रतिष्ठानो को सार्वजनिक रकम को बहुत सावधानी से खर्च करना चाहिए तथा हर प्रकार के अनावश्यक खर्च से बचना चाहिए। इसका अर्थ यह भी है कि प्रत्येक उद्योग और प्रत्येक सस्थान को सर्वोच्च उत्पादक दिशा मे विकसित करने का लगातार प्रयास करना चाहिए।

सामूहिक फार्मों मे लागत लेखा के विशिष्ट लक्षण

लागत लेखा न केवल राजकीय प्रतिष्ठानो मे बल्कि सामूहिक फार्मों मे भी विवेकपूर्ण प्रबन्ध के आधार का काम देती है।

राजकीय प्रतिष्ठानो की ही भाति सामूहिक फार्मों मे भी किफायती प्रबन्ध का अर्थ यह होता है कि उत्पादन पर होन वाले सभी खर्चों एव उत्पादन से प्राप्त होने वाले फलो का हिसाब किताब ठीक ठीक तरह से और मजबूती के साथ रखा जाय, और इन दोनो की तुलना ठीक ठीक की जाय। प्रत्येक सामूहिक फार्म को लागत लेखा के कठोर सिद्धान्तो के आधार पर चलाया जाय।

किसी भी सामूहिक फार्म की कारगुजारी का मापदण्ड उक्त फार्म द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ की मात्रा, उनके गुण तथा लागत, या यथार्थ मे उत्पादित सामान के प्रति इकाई उत्पादन पर होने वाला श्रम का खर्च, होता है। सामूहिक फार्म मे उत्पादित पदार्थों की उत्पादन लागत निकालने के कुछ विशिष्ट तरीके होते हैं। यह विशिष्टता इस बात से उत्पन्न होती है कि सामूहिक फार्मो मे उत्पादित पदार्थों का एक अश (बीज, पशु) अपने प्राकृतिक रूप मे—उसी फार्म पर अधिक उत्पादन बढाने के लिए—इस्तेमाल किया जाता है, जबकि दूसरा अश सघ के सदस्यो मे उनके काम के दिनो की गिनती के अनुसार वितरित कर दिया जाता है।

राजकीय प्रतिष्ठानो की भाति सामूहिक फार्मो के कार्यकलाप के सामान्य आर्थिक परिणाम उत्पादन पर होने वाले खर्च और उससे प्राप्त होने वाले फलो के अनुपात द्वारा निश्चित होते हैं। इससे सामूहिक फार्मों मे दिलचस्पी पैदा होती है कि वे सामाजिक श्रम और भौतिक साधनो पर होने वाले खर्चों को व्यवस्थित ढग से कम करें और साथ ही फार्म पर उत्पादित होने वाले पदार्थों की मात्रा मे वृद्धि करें। इस प्रकार उन्हे उत्पादित सामान की प्रति इकाई लागत तथा मूल्यो को घटाना होता है। इस काम को उत्पादक ससाधनो और श्रमशक्ति के चतुर्मुखी इस्तेमाल, श्रम के अनुसार प्रतिफल देने के समाजवादी सिद्धान्त के मजबूती से पालन, सामूहिक फार्म की सम्पत्ति की ओर किफायती दृष्टिकोण तथा सामूहिक फार्मों की सार्वजनिक स्वामित्व वाली सम्पत्ति मे लगातार वृद्धि द्वारा ही पूरा किया जाता है।

सर्वोत्तम परिणाम हासिल करने के लिए भूमि का विवेकपूर्ण इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि अधिकाधिक मूल्यवान फसलें उगायी जा सकें। सोवियत सघ के विशाल क्षेत्रफल और विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक स्थितियो के फलस्वरूप सभी क्षेत्रों मे समान कृषि प्रणाली नही हो सकती। साचे म ढले हुए निश्चित तौर-तरीके नही अपनाये जा सकते। इसलिए कृषि विशेषज्ञो

व अमली कार्यकर्ताओ को कृषि की फसलो के चयन मे पूरे फैसले लेने का अधिकार होना चाहिए। विवेकपूर्ण खेती मे—भूमि का सुधार, उर्वरको का भरपूर इस्तेमाल, बजर भूमि का सुधार व उस पर खेती, दलदली जमीनो का पुनरुद्धार, सिचाई, जलाशयो का निर्माण तथा फसलो की सही अदला-बदली की शुरुआत, आदि, काम शामिल हैं।

उत्पादन के साधनो के विवेकपूर्ण इस्तेमाल का अर्थ यह है कि उपकरणो का इस्तेमाल होशियारी के साथ किया जाय तथा उत्पादन का वृद्धिमान पैमाने पर यत्रीकरण किया जाय। इससे यह जरूरी हो जाता है कि सामूहिक फार्मों व राजकीय टीमो को बेहतर और अधिक उपकरण उपलब्ध कराये जायें तथा कृषि के उपकरणो के डिजाइन मे पर्याप्त सुधार किया जाय। विशेष महत्व तो प्राविधिक प्रगति को है जो अधिकतर उत्पादक मशीनरी के उत्पादन म सहायक होती है और जिसका इस्तेमाल करके सामूहिक फार्म कम मशीनो से ज्यादा काम अजाम दे पाते हैं।

सामूहिक फार्मों के श्रम ससाधनो का भरपूर इस्तेमाल फार्मों के सभी स्वस्थ लोगो द्वारा सघ के काम मे अधिकाधिक भाग लेने से ही सम्भव होता है। सामूहिक फार्मों म श्रमशक्ति के पूर्ण रूप से इस्तेमाल की गारन्टी तभी की जा सकती है जब किये गये काम की मात्रा और उसके गुण के अनुसार प्रतिफल अदा करने के समाजवादी सिद्धान्त को मजबूती से लागू किया जाय, समतावाद का अन्त किया जाय तथा श्रम का प्रतिफल अदा करने के अत्यन्त प्रगतिशील तरीको को लागू किया जाय।

विवेकपूर्ण प्रबन्ध का अर्थ यह भी होता है कि समय से मशीनरी और औजारो की देखरेख की जाय, सामूहिक फार्म के भवनों व अन्य निर्माणो की रक्षा की जाय, कच्चे व दूसरे सामानो पर होने वाले खर्च मे किफायत की जाय और पशुधन पर ध्यान दिया जाय। काम के दिनो की सख्या को बढन से रोकना, सामूहिक फार्म के प्रशासकीय यत्र म कर्मचारियो की बहुतायत को कम करना और प्रशासकीय खर्चों मे व्यवस्थित ढग से कमी लाना भी बहुत जरूरी है। सामूहिक फार्मों के उत्पादन के सभी क्षेत्रो और अवस्थाओ मे घाटे को समाप्त करने, सामूहिक फार्म की सम्पत्ति की रक्षा करने तथा लेखा प्रणाली को सुधारने के लिए लगातार सघर्ष चलाना चाहिए।

कृषि पदार्थों के उत्पादन की मात्रा को बढाने का सबसे महत्वपूर्ण ढग कृषि उत्पादन को—यत्रीकरण, विद्युतीकरण तथा रसायनिकीकरण के आधार पर—लगातार आगे बढाना है तथा इसके साथ ही जिन क्षेत्रो मे प्रतिकूल प्राकृतिक स्थितियाँ पायी जाती हों, उन क्षेत्रों का वृहद पैमाने पर विकास किया जाना चाहिए।

कृषि उत्पादन के विस्तार और लागत मे कमी के परिणामस्वरूप सामूहिक फार्मों तथा सामूहिक किसानो की आमदनी मे लगातार वृद्धि होती रहती है, साथ ही कृषिजन्य सामानो की फुटकर कीमतो मे कमी लाना भी सम्भव होता है जिसके परिणामस्वरूप सोवियत जनता के रहन सहन का स्तर ऊचा उठता है।

सापेक्ष लगान

भूमि के राष्ट्रीयकरण से बुनियादी लगान बाधे जाने की परिस्थितिया तो समाप्त हो गयी, परन्तु यह बात सापेक्ष लगान के बारे मे लागू नही होती।

भूमि के कुछ भागो को कुछ विशेष गुण, जैसे जलवायु की अनुकूलता, भूमि का उपजाऊपन, मडियो से निकटता, आदि, उपलब्ध होते हैं, जिससे इन भागो मे अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होती है। इसे सापेक्ष लगान कहते हैं।

उपजाऊ भूमि पर स्थापित सामूहिक फार्मो को कम उपजाऊ भूमि वाले फार्मों की अपेक्षा प्रति इकाई उत्पादन पर कम श्रम खर्च करना पडता है। यदि कृषि की प्रणाली समान है तथा यत्रीकरण के समान स्तर पर समान रूप से खच किया जाय, तो अच्छी भूमि वाले सामूहिक फार्मों का उत्पादन खराब भूमि वाले सामूहिक फार्मो से अधिक होगा।

रेलवे स्टेशनो, बन्दरगाहो, सचय केन्द्रो, नगरो तथा कृषिजन्य पदार्थों के प्रबन्ध के अन्य केन्द्रो से सामूहिक फार्मों के अलग अलग फासलो के नतीजो के तौर पर भी सापेक्ष लगान का उदय होता है। जो सामूहिक फार्म इन केन्द्रो के नजदीक स्थापित होते हैं, उन्हे अपने सामानो के यातायात पर कम मेहनत और रकम को खर्च करना पडता है। इसका नतीजा यह होता है कि इन सामूहिक फार्मो मे प्रति इकाई उत्पादन का मूल्य ज्यादा फासले पर स्थापित फार्मों की अपेक्षा कम होना है।

सोवियत राज्य की आर्थिक नीति सापेक्ष लगान की रकम के बारे म इस आधार पर तय होती है कि प्राकृतिक उपजाऊपन तथा विक्रय मडियो से नजदीकी के परिणामस्वरूप जो अधिक आमदनी प्राप्त होती है, उसे सार्वजनिक उद्देश्यो के लिए इस्तेमाल किया जाय।

इस सिद्धान्त पर अमल मुख्यत· देश के विभिन्न अचलों मे उत्पन्न होने वाले कृषि पदार्थों की कीमतें सापेक्ष रूप से निश्चित करके किया जाता है। ये कीमतें कृषि उत्पादन की परिस्थितियो को देखते हुए भिन्न-भिन्न होती हैं। सापेक्ष लगान का एक भाग सामूहिक फार्मों के पास रहता है, जिसे उत्पादन का विस्तार करने और सामूहिक किसानो के जीवन स्तर को सुधारने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम का उद्देश्य है कि देश के

अलग-अलग क्षेत्रो मे, तथा एक ही क्षेत्र मे भी, असमान प्राकृतिक एव आर्थिक परिस्थितियो के अन्तर्गत काम करने वाले सामूहिक फार्मों की आमदनी बढाने के लिए समान आर्थिक परिस्थितिया उत्पन्न की जायें ताकि सभी सामूहिक फार्मों मे समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को अधिक मजबूती के साथ लागू किया जा सके।

३. सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे वृद्धि

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता बढाने की मुख्य विधियां

प्रबन्ध की नयी प्रणाली और सही लागत लेखा के सिद्धान्त को लागू करने का उद्देश्य प्रभावकारिता मे लगातार वृद्धि को सुनिश्चित करना होता है। सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे न्यूनतम सामाजिक श्रम के खर्च के आधार पर उत्पादन की वृद्धि को तय करने वाली समस्त प्रक्रिया शामिल रहती है। सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को बढाने वाले मुख्य कारण वे सभी तत्व होते हैं, जो तत्कालीन परिस्थितियो के अन्तर्गत उत्पादन के फलो की वृद्धि मे सहायक होते हैं। इन कारणो मे श्रम उत्पादकता मे वृद्धि, कच्चे और दूसरे सामानो मे किफायत, उत्पादित पदार्थों के गुणात्मक स्तर मे सुधार तथा विशेष रूप से उत्पादक परिसम्पत्तियो की प्रति इकाई उत्पादन मात्रा—परिसम्पत्ति/उत्पादित सामान अनुपात—मे वृद्धि शामिल होते हैं।

सोवियत अर्थव्यवस्था के पास एक ऐसी आर्थिक शक्ति है, जो उसे सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे लगातार वृद्धि करने की गारन्टी करने मे समर्थ बनाती है। किन्तु सप्तवर्षीय योजना काल के अन्तिम वर्षों मे सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता की उस वृद्धि दर मे गिरावट आयी, जिस पर वह पहले बढ रही थी। उत्पादन-वृद्धि की दरो तथा श्रम की उत्पादकता को भी उसी प्रकार धक्का लगा। उत्पादक परिसम्पत्तियो और पूजी विनियोगो को कम प्रभावी ढग से इस्तेमाल किया गया। उद्योगो की अनेक शाखाओ मे समय से नये प्रतिष्ठान स्थापित नही किये गये और जो पहले से स्थापित थे वे अपनी निश्चित क्षमता पर नही पहुच सके। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर सप्तवर्षीय योजना मे निश्चित स्तर तक नही पहुच सकी।

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे वृद्धि चालू पचवर्षीय योजना के मुख्य लक्ष्यो मे से एक है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३ वी काग्रेस के पचवर्षीय योजना के सम्बध मे निर्देशो म प्राविधिक प्रगति के आधार पर उत्पादन की प्रभावकारिता बढाने, उत्पादन और श्रम के सगठन म सुधार लाने, उत्पादक परिसम्पत्तियो और पूजी विनियोगो का इस्तेमाल बढाने, उत्पादित

सामान का गुणात्मक स्तर ऊचा उठाने तथा किफायत की प्रणाली पर मजबूती से अमल करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

पूजी विनियोगो के लिए आवश्यक सचयो को बढाने तथा साथ ही जनता के जीवन स्तर को ऊचा उठाने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे चतुर्मुखी वृद्धि हो, जीवन्त तथा निहित दोनो ही प्रकार के श्रम मे सख्ती से किफायत की जाय, पूजी विनियोगो और स्थिर उत्पादक परिसम्पत्तियो से उत्पादन मे व्यवस्थित वृद्धि हासिल की जाय।

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता बढाने के लिए जरूरी है कि पूजी विनियोगो के बिखराव तथा नयी परियोजनाओ के निर्माण व नयी क्षमताओ, मशीनरी तथा उपकरणो पर दक्षता प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय के फैलाव के रूप मे आने वाली कमजोरियो को दूर किया जाय, कच्चे और दूसरे सामानो के इफरात भण्डार जमा हो जाने के परिणामस्वरूप रकम के फस जाने की स्थिति को रोका जाय, चालू काम की मात्रा मे वृद्धि से बचा जाय तथा जीवन्त व निहित दोनो ही प्रकार के श्रम की हर प्रकार की बर्बादी के खिलाफ सघर्ष किया जाय। दूसरे शब्दो मे, समाजवादी अर्थव्यवस्था के सचयो व ससाधनो को अधिकाधिक रूप से एकजुट किया जाना चाहिए तथा अर्थ-व्यवस्था की समाजवादी प्रणाली की शक्तियो और श्रेष्ठताओ का भरपूर इस्ते-माल किया जाना चाहिए।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जरूरी है कि, प्रथम, उत्पादक क्षमताओ के इस्तेमाल में लगातार सुधार किया जाय तथा उत्पादक परिसम्पत्तियो मे लगे प्रति रूबल से उपलब्धि की मात्रा मे वृद्धि की जाय; और द्वितीय, श्रम व सामानों के प्रति इकाई खर्च मे व्यवस्थित ढग से कमी की जाय।

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे वृद्धि जनता की खुशहाली को तेजी से बढाने की गारन्टी करने मे निर्णायक भूमिका अदा करती है। समाज-वादी समाज मे सामाजिक उपभोग की निधि मे वृद्धि तेजी से होती है, सामा-जिक श्रम की उत्पादकता अधिक होती है, उत्पादक परिसम्पत्तियो के प्रति रूबल पर उत्पादन अधिक होता है, प्रत्येक टन कच्चे व अन्य मालो से होने वाले उत्पादित सामान की मात्रा अधिक होती है। इससे मजदूर वर्ग, सामूहिक किसानो और बुद्धिजीवियो मे सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को बढ़ाने के प्रति अत्यधिक दिलचस्पी पैदा हो जाती है।

आर्थिक प्रबन्ध की नयी प्रणाली इस उद्देश्य की प्राप्ति मे भारी भूमिका अदा करती है। प्रतिष्ठानो को विस्तृत आर्थिक पहलकदमी दिये जाने से उत्पादन की मात्रा और गुणों मे वृद्धि होती है तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के अदृश्य सचयो और ससाधनो के अधिकतम इस्तेमाल मे सहायता मिलती है।

आर्थिक सुधार उत्पादक परिसम्पत्तियो के बेहतर इस्तेमाल मे सहायक होता है

आर्थिक प्रबन्ध की नयी प्रणाली का उद्देश्य सोवियत अर्थव्यवस्था मे आन्तरिक सचयो को पूर्ण रूप से एकजुट करना होता है । उत्पादन की उच्च आर्थिक प्रेरणा स किफायती प्रणाली को लागू करने के लिए अनुकूल परिस्थितिया पैदा होती हैं । इस किफायती प्रणाली का अर्थ यह होता है कि श्रम एव भौतिक व वित्तीय ससाधनो को विवेकपूर्ण ढग स तथा किफायत के साथ खर्च किया जाय, अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ स घाटो और अनुत्पादक खर्चों को समाप्त किया जाय ।

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को बढाने के लिए जरूरी है कि सर्वप्रथम एव सर्वप्रमुख रूप से उत्पादनकारी परिसम्पत्तियो के कुशल इस्तेमाल की गारन्टी की जाय ।

नयी प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिष्ठानो को अपनी स्थिर परिसम्पत्ति एव परिचलन परिसम्पत्ति के इस्तेमाल मे पर्याप्त स्वतत्रता प्राप्त रहती है । मुनाफो का बडा भाग उत्पादनकारी स्थिर परिसम्पत्ति की पूर्ति के लिए चला जाता है और प्रतिष्ठानो के हाथ मे रहने वाले, घिसावट की कटौतियो के भाग का अशदान बढा दिया जाता है । इससे उपकरणो की मरम्मत तथा उनके आधुनिकीकरण के निमित्त स्थापित कोप के विवेकपूर्ण इस्तेमाल मे सहायता मिलती है और पूजी के विनियोगो को उत्पादन के निर्णायक क्षेत्रो मे लगाना सम्भव होता है । इसके अतिरिक्त, अब प्रतिष्ठानो को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि जो उपकरण तथा भौतिक व अन्य परिसम्पत्ति उनके लिए अनावश्यक हो, उसे वे बेच सकते हैं ।

इससे अपनी उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के विवेकपूर्ण इस्तेमाल के लिए प्रतिष्ठान की जिम्मेदारी बढ जाती है । पूर्ण लागत लेखा की परिस्थितियो के अन्तर्गत कच्चे व दूसरे सामानो व उपकरणो के इस्तेमाल की प्रभावकारिता से प्रतिष्ठान के मुनाफे का आकार और लाभदायकता का स्तर तय होता है । इसी प्रकार प्रोत्साहन निधियो का आकार भी इसी आधार पर निश्चित होता है । इससे कर्मचारियो मे किफायत की कठोर प्रणाली लागू करने और कच्चे व अन्य सामानों, ईंधन और विद्युत शक्ति के खर्च के प्रगतिशील कोटे निश्चित करने मे दिलचस्पी पैदा होती है ।

उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के लिए अदायगी

प्रबन्ध की नयी प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के लिए बजट मे मुनाफो मे एक प्रकार की कटौती की शुरूआन—टैक्स के रूप में—की जाती है । इस कटौती का आकार प्रतिष्ठान की रोकड़-बही मे दर्ज स्थिर व चल परिसम्पत्ति के मूल्य पर निर्भर होता है ।

उत्पादनकारी परिसम्पत्ति राष्ट्रीय सम्पदा का बुनियादी आधार होती है। उसकी परिमाणात्मक एव गुणात्मक वृद्धि सामाजिक श्रम की उत्पादकता बढाने तथा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के लिए मुख्य शर्त होती है। स्वाभाविक तौर पर, समाज जब अपनी सम्पदा का एक अश किसी प्रतिष्ठान के हवाले कर देता है तो वह यह आशा भी करता है कि प्रतिष्ठान राष्ट्र की सम्पदा को बढाने मे योगदान करेगा। इस योगदान का एक अश परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के लिए महसूल के रूप मे अदा किया जाता है।

परिसम्पत्ति का स्वतन्त्र रूप से बटवारा किया जाना, नियोजित समाजवादी वस्तु-उत्पादन के सिद्धान्तो के विपरीत है। इससे प्रतिष्ठान की कारगुजारी की गलत तस्वीर सामने आती है और प्रतिष्ठान के कार्यकलाप के इतने महत्वपूर्ण पहलुओ को—जैसे कि उत्पादनकारी परिसम्पत्ति का इस्तेमाल किस हद तक किया गया है—ध्यान मे नही रखा जाता। इस महत्वपूर्ण तथ्य को नजरअन्दाज कर देने से उत्पादित पदार्थों के उत्पादन पर प्रतिष्ठान द्वारा किये जाने वाले कुल खर्च का अन्दाजा नही लगाया जा सकता। उत्पादनकारी परिसम्पत्ति को बिना किसी महसूल की अदायगी के प्रतिष्ठानो के हाथो मे देने से उनके अधिकतम इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता।

उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के इस्तेमाल पर महसूल आयद करने का उद्देश्य प्रतिष्ठान को अपने उत्पादन को विस्तारित करने तथा न केवल अपने कुल मुनाफे मे बल्कि लाभदायकता मे भी—अर्थात उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के मूल्य के अनुपात मे मुनाफे के आकार मे—वृद्धि करने मे दिलचस्पी पैदा करना है। उत्पादनकारी परिसम्पत्ति पर महसूल इस हिसाब से निश्चित किया जाता है कि इस महसूल की अदायगी के बाद भी सामान्य रूप से कार्यरत प्रतिष्ठानो के पास मुनाफे की एक निश्चित रकम बच रहे जो प्रोत्साहन निधियो को स्थापित करने व नियोजित खर्चों को पूरा करने मे काम आये।

परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के लिए लिया जाने वाला यह महसूल बजट के मुनाफो की ऐसी कसौटी नही होता जो इस महसूल के लागू होने से पहले की अदायगियों से अधिक हो। यही वह मुख्य तरीका बन गया है जिसके द्वारा राज्य बजट के लिए प्रतिष्ठान की अधिकाश अदायगिया की जाती है। इस महसूल के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे अन्य प्रकार की अदायगियो, विशेष रूप से परिचलन टैक्स, का महत्व घटता जायेगा। परिसम्पत्ति के इस्तेमाल के बदले वसूल किये जाने वाले महसूल के कोटे कई वर्षों के लिए पहले से ही निश्चित कर दिये जायेंगे ताकि जो प्रतिष्ठान अपनी परिसम्पत्ति का इस्तेमाल किफायत के साथ करें, उनके पास प्रोत्साहन निधियो की स्थापना के लिए अधिक मुनाफे बचे रहें।

प्रविधि और उत्पादक क्षमताओ के बेहतर इस्तेमाल की विधियां

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता बढाने के कदमो मे प्राविधिक प्रगति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जब वैज्ञानिक एव प्राविधिक क्रान्ति हो रही होती है तो उसी समय कम्युनिज्म के लिए भौतिक एव तकनीकी आधार का निर्माण होता रहता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था वैज्ञानिक एव प्राविधिक क्रान्ति की प्रथम पक्तिया मे मार्च करने तथा शीघ्राति-शीघ्र उसके परिणामो से फायदा उठाने के लिए पूरे तौर से लैस रहती है। समाजवाद विज्ञान की सभी शाखाओ के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितिया की गारन्टी करता है। समाजवादी देश हमेशा से ही वैज्ञानिक कार्यकर्ताओ के प्रशिक्षण पर बहुत जोर देते हैं और वैज्ञानिक अनुसधान सस्थाओ की स्थापना एव उनको लैस किये जाने पर भारी रकम खर्च करते हैं। सोवियत सघ आज विज्ञान की अनेक महत्वपूर्ण शाखाओ म अगुवाई कर रहा है।

वर्तमान समय म तेज प्राविधिक प्रगति की जरूरत विशेष रूप से अत्यधिक आवश्यक हो गयी है। उपकरणो, मशीनो और खरादो की पूर्ण और उत्पादनकारी किस्मो का लगाया जाना तथा तेजी के साथ प्रविधि मे सुधार लाना बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है। कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार की रचना के कामो का तकाजा है कि विज्ञान की भूमिका को, विशेष रूप से भौतिक उत्पादन के समस्त क्षेत्रो म उसकी उपलब्धियो के इस्तेमाल को, बढाया जाय। विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धिया सोवियत जनता की खुशहाली मे वृद्धि तथा कम्युनिज्म की ओर आगे बढने की दर को निश्चित करती हैं। विज्ञान और प्रविधि की नवीनतम कामयाबियो को उद्योग, कृषि ट्रान्सपोर्ट और सचार साधनो मे तेजी से लागू किया जाना चाहिए तथा सर्वाधिक पूर्ण तकनीकी आधार पर देश के उत्पादनकारी यत्र मे लगातार विकास को सुनिश्चित बनाने और उसके इस्तेमाल से बेहतर नतीजे हासिल करने के लिए सब कुछ करना चाहिए।

औद्योगिक और कृषि उत्पादन मे तकनीकी उपकरणो की मात्रा म जैसे-जैसे वृद्धि होती है स्वभावत वैसे ही वैसे मशीनरी, खरादो और दूसरे उपकरणो के रख रखाव और बदलाव पर होने वाले खर्च का अश भी बढता जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि उत्पादन लागत मे घिसाव के अश मे वृद्धि हो जाती है। किन्तु उसी के साथ श्रम उत्पादकता मे भी वृद्धि होती है और इस प्रकार प्रत्येक मजदूर द्वारा प्रति घटे व प्रति दिन किये जाने वाले उत्पादन की मात्रा भी बढ जाती है। एक ओर जहा घिसाव की कटौतियो के आकार मे सामान्य तौर पर वृद्धि हो जाती है और पूरे उत्पादन की लागत मे उनका

हिस्सा बढ़ जाता है, वही दूसरी ओर उत्पादित सामान की प्रत्येक इकाई की उत्पादन लागत मे उनका हिस्सा घट जाता है।

समाजवाद को पूजीवाद के ऊपर असाधारण श्रेष्ठता यह हासिल है कि उसमे उत्पादक क्षमताओ—मशीनो, उपकरणो, आदि—का विवेकपूर्ण इस्तेमाल किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे, जहा अतिउत्पादन का कोई सकट पैदा नही होता और जहा वस्तुओ के तेजी से बढते हुए भण्डारो के लिए हमेशा के वास्ते एक विस्तृत मडी खुली रहती है, उत्पादनकारी यत्र को जबर्दस्ती बेकार नही रखा जाता।

समाजवादी प्रणाली मे अर्थव्यवस्था उत्पादक क्षमताओ के भरपूर इस्तेमाल के लिए अनुकूल स्थिति की गारन्टी करती है। हर प्रतिष्ठान का काम होता है कि अपने उपकरणो का पूर्ण रूप से इस्तेमाल करे और अपनी उत्पादक क्षमताओ के सभी सचयो को एकजुट करे।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के फैसले औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए उपकरणो के इस्तेमाल मे सुधार करना, उनकी उत्पादकता को बढाना और इस प्रकार उत्पादित सामान की मात्रा मे वृद्धि करना तथा उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के प्रत्येक रूबल पर लाभदायकता के स्तर को ऊचा उठाना लाजमी करार देते हैं। चालू पचवर्षीय योजना के दौरान अवरोधो को दूर करके, उत्पादन प्रक्रियाओ को तेज करके, प्रविधि मे सुधार करके, विनिमय के गुणाक मे वृद्धि करके तथा उपकरणो के निष्क्रिय रहने के समय को समाप्त करके कार्यरत प्रतिष्ठानो का उत्पादन व्यवस्थित रूप से बढाया जायगा। पचवर्षीय योजना का उद्देश्य पदार्थों के गुणात्मक स्तर मे वृद्धि करना तथा प्रमुख उपकरणो की मरम्मत की लागत मे कमी लाना भी है।

कच्चे व अन्य मालों, ईंधन और विद्युत-शक्ति, का किफायती इस्तेमाल

सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता बढाने की एक जरूरी शर्त यह है कि कच्चे व अन्य सामानो, ईंधन और विद्युत शक्ति का इस्तेमाल किफायत के साथ किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जरूरी है कि उत्पादन की प्रत्येक इकाई पर भौतिक सामान/उत्पादित पदार्थ, एव विद्युत शक्ति/उत्पादित पदार्थ के अनुपात, मे व्यवस्थित ढग से कमी लायी जाय।

कच्चे और दूसरे सामानो एव विद्युत शक्ति मे बचत करने का अर्थ यह है कि इनके इस्तेमाल से पूरा पूरा लाभ उठाया जाय। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन मे होने वाली बर्बादी को व्यवस्थित ढग से कम किया जाय, अस्वीकृत होने वाले पदार्थों का उत्पादन बन्द हो तथा सामानो के असावधानीपूर्ण भण्डार जमा हो जाने से होने वाले घाटो को समाप्त किया जाय। इसका अर्थ यह भी है कि केवल उच्च गुणात्मक स्तर के पदार्थों का ही उत्पादन किया जाय क्योकि

गुणात्मक रूप मे निम्न-स्तर के पदार्थों के उत्पादन से बहुमूल्य सामानो की बर्बादी होगी। उत्पादन की प्रति इकाई पर कच्चे और दूसरे सामानो, ईंधन और विद्युत शक्ति के खर्च के लिए प्रगतिशील कोटो की प्रणाली का चालू होना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन कोटो का आधार तकनीकी होना चाहिए तथा इन्हे विकासशील प्रविधि एव उत्पादन सगठन के आधुनिक स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

उत्पादन के विकासशील सामूहिक सघो और अन्वेषको का अनुभव भौतिक ससाधनो की किफायत के लिए विशाल सचयो को लाकर सामने पेश कर देता है। इस प्रकार के सचय उद्योग और कृषि मे, निर्माण और ट्रान्सपोर्ट मे, व्यापार, अनुसधान और डिजाइन मे तथा सरकारी सस्थाओ मे प्राप्त होते हैं। बहुत से मामलो मे उत्पादन की प्रति इकाई पर कच्चे माल और ईंधन का खर्च अब भी बहुत ज्यादा है। कुछ मशीनें बहुत ही ज्यादा भारी हैं। उदाहरण के लिए, मशीनी औजार बनाने के उद्योग मे १ टन धातु से केवल ४००-५०० किलोग्राम ही पक्का माल तैयार होता है। प्रति वर्ष ४० लाख टन धातु, मशीन निर्माण की छीजन मे बर्बाद हो जाती है।

पचवर्षीय योजना के निर्देशो मे धातुओ के चयन मे सुधार लाने और उनके गुणात्मक स्तर को ऊचा उठाने के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं उनसे १९७० मे ५० लाख टन शोधित धातुओ का अतिरिक्त उत्पादन होगा।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्णय इस बात की आवश्यकता पर जोर देते हैं कि सर्वोच्च प्रभावकारी प्राविधिक प्रक्रियाओ—भौतिक-रासायनिक, विद्युती-भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक तथा अन्य—को निश्चित करके उन्हे लागू किया जाय। चालू पचवर्षीय योजना मे कच्चे व दूसरे सामानो तथा ईंधन के बेहतर इस्तेमाल के बारे मे महत्वपूर्ण काम निश्चित किये गये हैं। आशा की जाती है कि मशीन निर्माण और धातुओ के कामो मे लौह-मिश्रित शोधित धातुओ के खर्च मे लगभग २० से २५ प्रतिशत तक की कमी होगी, शोधित धातुओ के उत्पादन मे इस्पात की बचत की जायगी तथा लौह-रहित धातुओ के स्थान पर सस्ते सामानो और द्विधातुओ का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जायेगा। पचवर्षीय योजना के काल मे उद्योगो मे ईंधन के खर्च की दर मे कम से कम ८-१० प्रतिशत कमी लाने के उद्देश्य से ऐसा किया गया है। इसी के साथ विद्युत शक्ति के उत्पादन को ११ से १४ प्रतिशत बढाने तथा विद्युत शक्ति के खर्च की दर मे ६ से ८ प्रतिशत कमी करने का फैसला किया गया है। फैसलो मे इस बात पर भी जोर दिया गया है कि उतने ही कच्चे माल के इस्तेमाल से तैयार मालो के उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि की

जाय तथा ईंधन व विद्युत शक्ति और कच्चे तथा अन्य सामानो की गौण श्रेणियो का भरपूर इस्तेमाल किया जाय।

किफायत और बचत के लिए सघर्ष

प्रत्येक समाजवादी प्रतिष्ठान का कर्तव्य होता है कि वह श्रम के हर प्रकार के खर्च की ओर—श्रम चाहे जीवन्त हो या भौतिक साधनो मे निहित—किफायत का दृष्टिकोण अपनाये। अनुत्पादक खर्च मे लगातार कमी करके, उत्पादन मे हर प्रकार के फालतूपन को दूर करके तथा राजकीय वित्तीय अनुशासन को मजबूत करके इस उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है।

नियोजित अर्थव्यवस्था मे उत्पादित सामानो की उपलब्धि और बिक्री से सम्बधित खर्चों मे कमी करने की असीम सम्भावनाए मौजूद है। देश की उत्पादनकारी शक्तियो के नियोजित वितरण से ट्रासपोर्ट के खर्चों मे भारी कमी करने का अवसर मिलता है।

समाजवादी प्रबन्ध का अर्थ यह है कि हर प्रकार के घाटे और अनावश्यक खर्च के खिलाफ निर्णायक सघर्ष किया जाय तथा श्रम का बोझ कम करके उसकी स्थिति मे सुधार लाया जाय। इस प्रकार, विद्युत शक्ति की बर्बादी रोकने का अर्थ यह हरगिज नही है कि हर कीमत पर बिजली के खर्च मे कमी की जाय या हर मामले मे बिजली के उपभोग को घटाया जाय। इसके विपरीत विद्युत शक्ति के विवेकपूर्ण इस्तेमाल के साथ साथ मजदूरो के लिए, तथा उनके काम की स्थितियो मे सुधार लाने के लिए, बिजली अवश्य ही उपलब्ध होनी चाहिए। मिसाल के लिए, उत्पादनकारी इमारतो मे अच्छी रोशनी और शुद्ध वायु के आगमन पर बिजली का खर्च अवश्य किया जाना चाहिए।

समाजवादी समाज मे किफायत के लिए सघर्ष को सही तौर पर एक राष्ट्रीय कर्तव्य माना जाता है। किफायत और बचत के लिए प्रतियोगिता की भावना पूरी दक्षता के साथ निर्धारित समस्त सागठनिक एव तकनीकी कदमो और समाजवादी जिम्मेदारियो मे निहित होती है। सचयो को जाहिर करने और उनका इस्तेमाल करने के लिए जरूरी है कि आधुनिकतम उपकरणो और प्रविधि को लागू किया जाय, प्रगतिशील अनुभवो को प्रसारित किया जाय तथा श्रम और उत्पादन को वैज्ञानिक आधार पर सगठित किया जाय। कभी-कभी छोटी चीजो मे भी किफायत देखी जा सकती है जैसे कि किसी ढिबरी या लोहे के टुकडे को—जो वैसे तो फेंक दिया जाता—उठा लेना और उसे काम मे लाना, हवा या भाप के खारिज होने के सूराख को ढकना, या जरूरत न बाकी रहने पर बिजली के स्विच को बुझा देना, आदि। छोटे-बडे सभी मामलो मे किफायत करना सोवियत सघ की समस्त श्रमिक जनता का कर्तव्य माना गया है।

गुणात्मक रूप से निम्न-स्तर के पदार्थों के उत्पादन से बहुमूल्य सामानो की बर्बादी होगी। उत्पादन की प्रति इकाई पर कच्चे और दूसरे सामानो, ईंधन और विद्युत शक्ति के खर्च के लिए प्रगतिशील कोटो की प्रणाली का चालू होना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन कोटो का आधार तकनीकी होना चाहिए तथा इन्हे विकासशील प्रविधि एव उत्पादन सगठन के आधुनिक स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

उत्पादन के विकासशील सामूहिक सघो और अन्वेषको का अनुभव भौतिक ससाधनो की किफायत के लिए विशाल सचयो को लाकर सामने पेश कर देता है। इस प्रकार के सचय उद्योग और कृषि मे, निर्माण और ट्रान्सपोर्ट मे, व्यापार, अनुसधान और डिजाइन मे तथा सरकारी सस्थाओ मे प्राप्त होते हैं। बहुत से मामलो मे उत्पादन की प्रति इकाई पर कच्चे माल और ईंधन का खर्च अब भी बहुत ज्यादा है। कुछ मशीनें बहुत ही ज्यादा भारी हैं। उदाहरण के लिए, मशीनी औजार बनाने के उद्योग मे १ टन धातु से केवल ४००-५०० किलोग्राम ही पक्का माल तैयार होता है। प्रति वर्ष ४० लाख टन धातु, मशीन निर्माण की छीजन मे बर्बाद हो जाती है।

पचवर्षीय योजना के निर्देशों मे धातुओं के चयन मे सुधार लाने और उनके गुणात्मक स्तर को ऊचा उठाने के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं उनसे १९७० मे ५० लाख टन शोधित धातुओं का अतिरिक्त उत्पादन होगा।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्णय इस बात की आवश्यकता पर जोर देते हैं कि सर्वोच्च प्रभावकारी प्राविधिक प्रक्रियाओं—भौतिक-रासायनिक, विद्युती-भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक तथा अन्य—को निश्चित करके उन्हें लागू किया जाय। चालू पचवर्षीय योजना मे कच्चे व दूसरे सामानो तथा ईंधन के बेहतर इस्तेमाल के बारे मे महत्वपूर्ण काम निश्चित किये गये हैं। आशा की जाती है कि मशीन निर्माण और धातुओं के कामो मे लोह-मिश्रित शोधित धातुओं के खर्च मे लगभग २० से २५ प्रतिशत तक की कमी होगी, शोधित धातुओं के उत्पादन मे इस्पात की बचत की जायगी तथा लोह-रहित धातुओं के स्थान पर सस्ते सामानो और द्विधातुओं का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जायेगा। पचवर्षीय योजना के काल मे उद्योगो मे ईंधन के खर्च की दर मे कम से कम ८-१० प्रतिशत कमी लाने के उद्देश्य से ऐसा किया गया है। इसी के साथ विद्युत शक्ति के उत्पादन को ११ से १४ प्रतिशत बढ़ाने तथा विद्युत शक्ति के खर्च की दर मे ६ से ८ प्रतिशत कमी करने का फैसला किया गया है। फैसलों में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि उतने ही कच्चे माल के इस्तेमाल से तैयार मालो के उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि की

जाय तथा ईंधन व विद्युत शक्ति और कच्चे तथा अन्य सामानो की गौण श्रे
का भरपूर इस्तेमाल किया जाय ।

किफायत और बचत के लिए संघर्ष

प्रत्येक समाजवादी प्रतिष्ठान का कर्तव्य होत कि वह श्रम के हर प्रकार के खर्च की ओर—चाहे जीवन्त हो या भौतिक साधनो मे निहि किफायत का दृष्टिकोण अपनाये । अनुत्पादक खर्च मे लगातार कमी क उत्पादन मे हर प्रकार के फालतूपन को दूर करके तथा राजकीय वि अनुशासन को मजबूत करके इस उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है ।

नियोजित अर्थव्यवस्था मे उत्पादित सामानो की उपलब्धि और बिक्र सम्बधित खर्चों मे कमी करने की असीम सम्भावनाए मौजूद हैं । देश उत्पादनकारी शक्तियो के नियोजित वितरण से ट्रासपोर्ट के खर्चो मे भारी करने का अवसर मिलता है ।

समाजवादी प्रबन्ध का अर्थ यह है कि हर प्रकार के घाटे और अनाव खर्चे के खिलाफ निर्णायक सघर्ष किया जाय तथा श्रम का बोझ कम उसकी स्थिति मे सुधार लाया जाय । इस प्रकार, विद्युत शक्ति की ब रोकने का अर्थ यह हरगिज नही है कि हर कीमत पर बिजली के खर्च मे की जाय या हर मामले मे बिजली के उपभोग को घटाया जाय । इसके विप विद्युत शक्ति के विवेकपूर्ण इस्तेमाल के साथ-साथ मजदूरो के लिए, तथा काम की स्थितियो मे सुधार लाने के लिए, बिजली अवश्य ही उपलब्ध चाहिए । मिसाल के लिए, उत्पादनकारी इमारतो मे अच्छी रोशनी और वायु के आगमन पर बिजली का खर्च अवश्य किया जाना चाहिए ।

समाजवादी समाज मे किफायत के लिए सघर्ष को सही तौर पर एक रा कर्तव्य माना जाता है । किफायत और बचत के लिए प्रतियोगिता की भा पूरी दक्षता के साथ निर्धारित समस्त सागठनिक एव तकनीकी कदमो समाजवादी जिम्मेदारियो मे निहित होती हैं । सचयो को जाहिर करने उनका इस्तेमाल करने के लिए जरूरी है कि आधुनिकतम उपकरणो प्रविधि को लागू किया जाय, प्रगतिशील अनुभवो को प्रसारित किया तथा श्रम और उत्पादन को वैज्ञानिक आधार पर सगठित किया जाय । क कभी छोटी चीजो मे भी किफायत देखी जा सकती है जैसे कि किसी हि या लोहे के टुकडे को—जो वैसे तो फेंक दिया जाता—उठा लेना और काम मे लाना, हवा या भाप के खारिज होने के सूराख को ढकना, या जर न बाकी रहने पर बिजली के स्विच को बुझा देना, आदि । छोटे-वडे मामलो मे किफायत करना सोवियत सघ की समस्त श्रमिक जनता का क माना गया है ।

किफायत को विवेकपूर्ण होना चाहिए। ऐसी 'किफायत' नहीं की जानी चाहिए जो उत्पादित सामानों के गुणों, विश्वसनीयता एवं टिकाऊपन पर बुरा प्रभाव डालती हो या जिससे उपकरणों के समुचित रख-रखाव में बाधा पहुँचती हो। निम्न गुणात्मक स्तर की चीजों का उत्पादन बर्बादी का निहायत खतरनाक रूप होता है।

दोहराने के प्रश्न

१. लागत लेखा का मूल तत्व क्या है ?
२. किसी प्रतिष्ठान की उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के भरपूर इस्तेमाल की सर्वोच्च विधियां कौन सी हैं ?
३. समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफे और लाभदायकता की भूमिका क्या है ?

अध्याय १४

सामाजिक श्रम का समाजवादी संगठन

१. समाजवादी श्रम संगठन के मुख्य लक्षण

समाजवाद—सामाजिक श्रम-संगठन की सर्वोच्च अवस्था

हर उत्पादन पद्धति मे सामाजिक श्रम के निश्चित सगठन का अपना अलग रूप होता है। सामन्तवाद के अन्तर्गत 'वस्तु रूपी दासता" का आधार कोडे के जोर पर लागू अनुशासन होता था तथा उसमे मुट्ठी भर भूस्वामियो द्वारा मेहनतकशो का शोषण होता था और उन्हे घोर निर्धनता तथा उत्पीडन का जीवन बिताना पडता था। सामाजिक श्रम का पूजीवादी सगठन भूख के अनुशासन पर निर्भर है जिसमे विशाल मेहनतकश जनता की हैसियत भाडे पर नियुक्त गुलामो से बेहतर नही है और उनका शोषण मुट्ठी भर पूजीपतियों द्वारा किया जाता है। सामाजिक श्रम का कम्युनिस्ट सगठन, जिसका पहला रूप समाजवाद होता है, मेहनतकशो के अपने स्वतत्र व सचेत अनुशासन पर निर्भर करता है जिन्होने अपने आप को भूस्वामियो और पूजीपतियो से मुक्त कर लिया है। जैसे-जैसे समाजवादी समाज कम्युनिज्म की ओर प्रगति करेगा, वैसे ही वैसे वह अधिकाधिक तौर पर इसी अनुशासन पर निर्भर होता जायेगा।

मजदूर वर्ग द्वारा राजसत्ता पर अधिकार सामाजिक श्रम सगठन की उच्चतर किस्म की नुमाइन्दगी करता है तथा उस पर अमलदरामद भी करता है। लेनिन ने सत्ता के इस स्रोत को कम्युनिज्म की अवश्यम्भावी पूर्ण विजय के लिए एक जमानत के रूप मे माना था। सामाजिक श्रम सगठन की उच्चतर किस्म के अन्तर्गत पूजीवाद की अपेक्षा श्रम की उत्पादकता भी अधिक होती है। श्रम की उत्पादकता नयी एव उच्च सामाजिक प्रणाली की विजय के लिए सर्वप्रमुख तथा अत्यत महत्वपूर्ण शर्त है।

शोषण का तथा श्रमशक्ति के वस्तु-स्वरूप का सफाया

सामाजिक श्रम का समाजवादी सगठन मजदूरो की पूजीवादी जजीरो से मुक्ति से आरम्भ होता है। समाजवाद एक ऐसा महान परिवर्तन होता है जिसके द्वारा पिछले हजारो वर्षों से शोषको द्वारा मजदूरो के

शोषण और बेगार की व्यवस्था का अन्त हो जाता है। समाजवाद मे मजदूर वर्ग स्वय अपने लिए और पूरे समाज के कल्याण के लिए काम करता है। इसके अतिरिक्त, समाजवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग आधुनिकतम प्रविधि और संस्कृति की समस्त उपलब्धियो का इस्तेमाल करता है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के मिटा दिये जाने से समाज के परस्पर विरोधी वर्गों मे—जिनके हित एक-दूसरे के विपरीत और बेमेल होते हैं—बटवारे का अन्त हो जाता है। प्रतिष्ठानो में, जो समस्त जनता की सम्पत्ति होते हैं—राज्य द्वारा सभी मजदूरो को वेतन के आधार पर नियुक्त किया जाता है। वेतन पर नियुक्ति का यह रूप विभिन्न वर्गों के बीच सम्बधो को व्यक्त न करके अलग-अलग मेहनतकशो और पूरे समाज के बीच सम्बधो को व्यक्त करता है। समाजवादी समाज मे ऐसे दो वर्ग नही होते, न हो सकते हैं, जिनम से एक वर्ग अपनी श्रमशक्ति को दूसरे वर्ग के हाथो बेचने के लिए मजबूर हो। इस प्रकार श्रमशक्ति एक वस्तु के रूप मे नही रह जाती। वह ऐसी चीज नही बनी रहती जिसका क्रय विक्रय किया जाता हो। मजदूर वर्ग प्रतिष्ठानो मे, जिन पर समस्त जनता के साथ साथ सामूहिक रूप से उसका अधिकार होता है, अपनी श्रमशक्ति को इस्तेमाल करता है।

शोषण और बेरोजगारी के खात्मे के साथ-साथ उन परिस्थितियो का भी अ त हो गया, जो पूजीवाद के अन्तर्गत मेहनतकश जनता के बीच लाजमी तौर पर प्रतियोगिता और आपसी होड को जन्म देती थी। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन सम्बध मैत्रीपूर्ण मुकाबले, सहयोग एव श्रम मे पारस्परिक सहायता के सम्बध होते हैं।

आवश्यक तथा अधिशेष श्रम

अब, जब समाज म श्रमशक्ति क्रय विक्रय की चीज नही रह गयी, तो श्रम की प्रक्रिया भी बदल गयी है—अब यह प्रक्रिया पूजीपतियो के लिए अधिशेष मूल्य को पैदा करने वाली प्रक्रिया नही रह गयी है। बिना-कमाई शोषणकारी आमदनियो के साथ, इन आमदनियों का उपभोग करने वाले शोषक वर्गों का भी सफाया हो गया है।

मार्क्सवाद का उदय होने से पहले कुछ कल्पनावादी समाजवादियो ने दावा किया था कि समाजवाद को 'सम्पूर्ण श्रम उत्पादन के अधिकार" को कार्यान्वित करना चाहिए। बाद मे निम्नपूजीवादी सिद्धान्तशास्त्रियो ने समाजवाद की सम्पूर्ण विषयवस्तु को इसी अधिकार तक सीमित करने का प्रयास किया। किन्तु वास्तव में मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की समाप्ति का अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि हर मजदूर को उसकी मेहनत का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो सकता है।

समाजवादी समाज के सदस्यो के श्रम मे आवश्यक श्रम और अधिशेष

श्रम, दोनो ही, शामिल रहते हैं। आवश्यक श्रम के फल मेहनतकश जनता की प्रत्यक्ष जरूरतो की—जैसे खाना, कपडा, मकान, सास्कृतिक सुविधाए, आदि की—पूर्ति मे काम आते हैं तथा अधिशेष श्रम के फलो से सामाजिक जरूरतों और आवश्यकताओ को पूरा किया जाता है।

अधिशेष श्रम—मेहनतकश जनता की प्रत्यक्ष जरूरतो की पूर्ति के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा से अधिक श्रम—किसी न किसी रूप मे हर समाज मे मौजूद रहता है। अधिशेष श्रम और अधिशेष उत्पादन के बिना उत्पादनकारी शक्तियो का और अधिक विकास नही हो सकता, और फलत., कोई सामाजिक प्रगति भी नही हो सकती।

समाजवादी समाज मे अधिशेष उत्पादन, सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख रूप से, सचय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए जरूरी है। अधिशेष उत्पादन के एक निश्चित भाग का सचय करके ही समाजवादी देशो ने विशाल निर्माण कार्यक्रमो को पूरा किया है और आज भी पूरा कर रहे है। दूसरे, अधिशेष उत्पादन का एक भाग प्रशासकीय यत्र के रख रखाव मे काम आता है, शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य के कामो पर खर्च होता है, तथा समाजवादी राज्य की सुरक्षात्मक शक्ति को सुदृढ बनाता है। तीसरे, अधिशेष उत्पादन का एक निश्चित भाग समाज के अपाहिज सदस्यो—वृद्धो, बीमारो एव बच्चो—का पालन करने के लिए आवश्यक होता है। चौथे, अधिशेष उत्पादन का एक भाग सचयो, आकस्मिकता-निधियो की स्थापना मे खर्च होता है। इन निधियो की सहायता से प्राकृतिक आपदाओ और योजना मे सम्भावित गडबडियो पर काबू पाया जाता है।

समाजवादी समाज मे अधिशेष उत्पादन को स्वामियो का वर्ग नही हथिया लेता, बल्कि वह समस्त मेहनतकश जनता के लिए, और उन्ही के लिए, काम मे आता है। अधिशेष उत्पादन सम्पूर्ण समाज के हाथो मे सौप दिया जाता है तथा सभी सामाजिक जरूरतो की पूर्ति के लिए उसका इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रकार समाजवाद के अन्तर्गत आवश्यक श्रम और अधिशेष श्रम के बीच कोई विरोध नही होता : आवश्यक श्रम और अधिशेष श्रम, दोनों ही, स्वय श्रम करने वाले व्यक्ति तथा पूरे समाज की बेहतरी के लिए किये जाने वाले श्रम होते हैं।

समाजवादी समाज में उत्पादनकारी शक्तियों के विकास और सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि से अधिशेष उत्पादन के आकार का विस्तार होता है, जिसके फलस्वरूप समस्त समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति के साथ ही मेहनतकश जनता की प्रत्यक्ष जरूरतों को पूरा करने वाले कोष में भी इजाफा होता है।

काम करने का अधिकार सामाजिक श्रम के समाजवादी संगठन मे काम के अधिकार की गारन्टी होती है। मेहनतकश जनता पीढियो-दर पीढियों एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का सपना देखती रही है, जिसमे न बेरोजगारी रहे और न आर्थिक सकट, क्योकि पूजीवादी समाज मे ये ही आर्थिक सकट समय समय पर जनता की मेहनत के विशाल भण्डारो को नष्ट करते रहे हैं तथा प्रचुर भौतिक सम्पदा को बर्बाद करते रहे हैं। इतिहास मे पहली बार अवाम का यह सपना पूरा हुआ है। नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था ने हमेशा-हमेशा के लिए इस पूजीवादी बेहूदगी का सफाया कर दिया है।

समाजवादी समाज मे नयी पीढी को जीवन मे पदार्पण करते समय भविष्य के प्रति किसी भी चिन्ता या भय का शिकार नही होना पडता, उसको जीवन के बोर्ड' द्वारा छोड दिये जाने का कोई खतरा नही रहता। 'फालतू लोग" या 'खिलाने के लिए फालतू मुह" जैसे वक्तव्यो के लिए वहा कोई स्थान नही है।

काम पाने का अधिकार पूजीवाद के अन्तर्गत हासिल नही हो सकता। उसके अन्तर्गत तो एक दूसरे ही "अधिकार"—"दूसरे लोगो के श्रम पर अधिकार"—को मान्यता प्राप्त है, और यह अधिकार केवल शोषको को ही हासिल है। वेतन पर काम करने वाले मजदूर का शोषण उसे भूखा मारने की धमकी के बल पर किया जाता है। और, भूख की यह धमकी सर्वहारा वर्ग का अविचल रूप से पीछा करती रही है। इसलिए पूजीपति को प्राप्त "दूसरे लोगो के श्रम पर अधिकार" का लाजमी तौर पर अर्थ यह है कि मजदूर वर्ग को काम पाने के अधिकार से वचित रहना पडता है।

समाजवाद शोषको के "दूसरे लोगो के श्रम पर अधिकार" को समाप्त करके, तमाम मेहनतकशो के लिए काम के अधिकार को मूर्त रूप देता है, अर्थात काम पाने की तथा काम की मात्रा और गुणो के अनुरूप प्रतिफल पाने की गारन्टी देता है। नियोजित अर्थव्यवस्था के समाजवादी सगठन, उसकी उत्पादनकारी शक्तियो मे निरन्तर वृद्धि, सकटो की सम्भावनाओं की समाप्ति तथा बेरोजगारी का सफाया करके—काम पाने के अधिकार को सुनिश्चित किया जाता है।

काम पाने के अधिकार को समाजवादी समाज के उत्पादनकारी यत्र मे तेजी से विकास करके कार्यान्वित किया जाता है। अनेक देशों मे, समाजवादी क्रान्ति से पहले, बडे पैमाने पर बेरोजगारी और कृषि क्षेत्र मे लगी अत्यधिक आबादी की समस्या का बोलबाला था। यह स्थिति रूस, पोलैण्ड तथा कुछ अन्य देशो मे थी। इन देशो के लाखों लोगो को काम की तलाश में देश छोडने के लिए मजबूर होना पडता था।

सोवियत सघ मे चौथे दशक के शुरूआती वर्षों मे बेरोजगारी का सफाया

कर दिया गया। समाजवादी औद्योगीकरण की प्रथम बडी सफलताओ के फल-स्वरूप मजदूरो की बहुत बडी सख्या उत्पादन के काम मे जुट गयी। इसी के साथ, ग्रामीण अचलो मे कृषि के सामूहिकीकरण और कुलक शोषण की जड-मूल से समाप्ति के परिणामस्वरूप कगालो के सभी स्रोतो का उन्मूलन कर दिया गया।

मजदूर वर्ग की बेरोजगारी की लानत से मुक्ति—उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा उत्पादन के फलो के हस्तगत किये जाने के व्यक्तिगत पूजीवादी स्वरूप के बीच अन्तर्विरोधो के खात्मे का न्यायोचित प्रतिफल है। पूजीवाद के अन्तर्गत सकटो और बेरोजगारी की अनिवार्यता इसी अन्तर्विरोध पर निर्भर रहती है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था की समाजवादी प्रणाली ने न केवल बेरोज-गारी को समाप्त कर दिया, बल्कि उसकी जडो को भी उखाड फेंका।

सार्वभौम और लाजमी श्रम

सामाजिक श्रम का समाजवादी सगठन श्रम को सार्वभौम और लाजमी बना देता है।

काम के अधिकार के साथ ही यह कर्तव्य भी आयद हो जाता है कि समाज की भलाई के लिए ईमानदारी और पूरी तन्मयता के साथ काम किया जाय। समाजवाद सामाजिक श्रम मे शरीक न होने वाले अपाहिज वर्गो का सफाया कर देता है। बेरोजगारी और सकटो का अन्त करके वह मेहनतकश जनता को, उस पर जबर्दस्ती लादी गयी, काहिली से मुक्त कर देता है।

इन परिस्थितियो के अन्तर्गत इस बात की कल्पना भी नही की जा सकती कि समाज का कोई अग, स्वस्थ शरीर वाले उसके कुछ सदस्य, सामा-जिक श्रम करने से बिल्कुल बचे रहे। कोई भी व्यक्ति सामाजिक श्रम का अपना भाग किसी दूसरे व्यक्ति को सुपुर्द नही कर सकता क्योकि मानवीय अस्तित्व के लिए इस प्रकार का श्रम करना एक प्राकृतिक शर्त बन गया है। समाज के स्वस्थ शरीर वाले सभी सदस्यो को लाजमी तौर पर काम करना पडता है, पूरे समाज की भलाई के लिए उन्हें काम की एक निश्चित मात्रा पूरी करनी पडती है। इसी के साथ समस्त मेहनतकश लोगो को आराम, मनोरजन व सास्कृतिक विकास के लिए खाली वक्त पाने का अधिकार प्राप्त रहता है। श्रम मनुष्य को गुलाम बनाने का साधन नहीं रहता, बल्कि वह उसे मुक्त करके व्यक्ति के विकास के रास्ते खोल देता है।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम का सार्वभौम और लाजमी स्वरूप इस सिद्धान्त द्वारा परिलक्षित होता है कि "जो काम नही करेगा, उसको खाना नही मिलेगा।" लेनिन ने जोर देकर कहा था कि यह समाजवाद का सर्वप्रमुख एव सर्वप्रथम सिद्धान्त है, यह समाजवाद की शक्ति का अजेय स्रोत है तथा उसकी अन्तिम

विजय की जमानत है। इसमे मेहनतकश और शोपित जनता की अनेक पीढियो की आशाए और आकाक्षाए तथा न्यायोचित एव विवेकपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए उनकी मनोकामनाए निहित है।

शोपको के लिए किये जाने वाले जवरिया श्रम के स्थान पर अपनी स्वय की, तथा पूरे समाज की, भलाई के लिए आजाद श्रम के आ जाने से जनता मे सृजनात्मक शक्ति व श्रम के लिए उत्साह का जबर्दस्त उभार पैदा हुआ है। लेकिन इस परिवर्तन को उस समय तक प्रभावकारी नही बनाया जा सकता, जब तक मेहनतकश जनता के पिछडे हिस्सो के दिमाग से पूजीवादी अवशेपो को समाप्त करने के लिए जबर्दस्त सघर्ष नही किया जाता।

समाजवादी समाज मे भी ऐसे लोग पाये जाते हैं, जो समाज के सहारे जिन्दा रहने का प्रयास करते हैं तथा इसके बदले समाज को कुछ देना नही चाहते। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए निकम्मे लोगो, सामाजिक तौर पर उपयोगी श्रम से कन्नी काटने वालो तथा परजीवी तत्वो के अवशेषो के खिलाफ लडना, और "जो काम नही करेगा, उसको खाना नही मिलेगा" सिद्धान्त पर मजबूती से अमल करने के लिए जद्दोजहद करना, आवश्यक हो गया है।

सार्वभौम और लाजमी श्रम समाजवाद और कम्युनिज्म दोनो का ही एक अभिन्न लक्षण है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि कम्युनिस्ट समाज, जो सर्वोच्च सगठित उत्पादन तथा विकासशील प्रविधि पर आधारित होता है, श्रम के स्वरूप को बदल तो देता है किन्तु समाज के सदस्यो को श्रम से मुक्त नही करता। कम्युनिस्ट समाज अराजकता, निकम्मेपन और निष्क्रियता का समाज नही है—न कभी होगा ही। स्वस्थ शरीर वाला हर आदमी सामाजिक श्रम मे अवश्य शरीक होगा तथा समाज की भौतिक व आध्यात्मिक सम्पदा की निरन्तर वृद्धि को सुनिश्चित बनायेगा।

श्रम को प्रेरणा देने वाली समाजवादी विधिया

सामाजिक श्रम के समाजवादी सगठन का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण काम के लिए नयी प्रेरणाओं का विकास करना है।

हर सामाजिक प्रणाली के पास लोगो को काम मे लगाने और उन्हें उत्पादक कार्रवाइयो मे खीचने के अपने विशेष तौर-तरीके होते हैं। दासता और सामन्तवाद के अन्तर्गत प्रत्यक्ष जोर-जबर्दस्ती और पूजीवाद मे भुखमरी की धमकी के कारण मेहनतकश जनता को अपने शोषकों के लिए काम करना पडता था।

समाजवाद ने पूजीवाद के अन्तर्गत जनता को काम पर लगाने के तरीको —करोडों लोगों के लिए भुखमरी की धमकी और मुट्ठी भर अल्पमत के लिए

मुनाफा कमाने की लालसा—को जड से उखाड फेंका है। शोषण की व्यवस्था का अ त हो जाने से जनता के काम पर लगाये जाने के तरीको और विधियो मे बुनियादी परिवर्तन आया है। इसलिए यह लाजमी हो गया है कि जनता को काम की ओर आकर्षित करने के लिए नये, अभूतपूर्व तरीको को निश्चित किया जाय।

पूजीपति वर्ग द्वारा समाजवाद के बारे मे फैलायी गयी अनेक झूठी बातो मे से एक यह भी है कि समाजवाद मे काम के लिए प्रेरणाओ का अन्त हो जाता है। आज से बहुत पहले से पूजीपति वर्ग के दलाल यह दावा करते रहे है कि निजी सम्पत्ति के खात्मे से सर्वव्यापी काहिली और निकम्मेपन का बोलबाला हो जायगा। तब कार्ल मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र मे उन लोगो को उत्तर देते हुए कहा था कि निकम्मेपन के फलस्वरूप पूजीवादी समाज को बहुत पहले ही रसातल मे पहुच जाना चाहिए था क्योकि उसके जो सदस्य काम करते हैं वे कुछ हडपते नही है, और जो हडपते हैं वे कोई काम नही करते।

पूजीवाद के पक्षधरो का दावा है कि समाजवाद के अन्तर्गत—जिसमे दूसरे लोगो के श्रम की कीमत पर मुनाफा बटोरने के अवसर को समाप्त कर दिया गया है—काम के लिए प्रेरणा नही मिल सकती। ऐसा दावा करते हुए वे इस तथ्य को झुठलाने का प्रयास करते हैं कि निजी स्वामित्व के अन्तर्गत अधिकाश जनता की स्थिति सम्पत्तिहीन मेहनतकशो की रहती है तथा मुनाफा बटोरने का अवसर तो असल मे केवल मुट्ठी भर शोषको को हासिल रहता है।

सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के आर्थिक विकास के अनुभव ने दिखाया है कि पूजीवाद की समाप्ति से जनता का श्रम काहिली और निकम्मेपन का शिकार होने के बजाय अपने अन्दर ऐसे नये गुणो का समावेश करता है जिनकी कल्पना भी किसी शोषक समाज मे नही की जा सकती। समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की प्रक्रिया मे जनता की शिरकत को सुनिश्चित बनाने के लिए नये तथा अधिक प्रभावकारी तरीको का विकास किया जाता है।

पूजीवाद, जनता को काम की ओर आकर्षित करने के लिए, ऐसे तरीको का इस्तेमाल करता है जिनको सदियो पहले निश्चित किया गया था। भाडे पर नियुक्त पूजी के गुलामों से अधिकाधिक काम लेने के हर प्रकार के तौर-तरीको का लगातार सुधार किया जाता रहा है, जो आज तक जारी है। स्वाभाविक है कि जनता को काम की ओर आकर्षित करने के नये, समाजवादी तरीको का विकास भी कोई आसान काम नही है—उसके लिए बडे धैर्य और मेहनत से काम करना पडता है।

शोषण की समाप्ति के बाद श्रम के समस्त फल समाज को प्राप्त होते हैं और उनका इस्तेमाल स्वय मेहनतकशो की भलाई के लिए किया जाता है।

उत्पादन के परिणामो मे जनता की गहरी दिलचस्पी का आधार यही बुनियादी तथ्य है, जिसकी कल्पना भी पूजीवाद के अन्तर्गत नही की जा सकती थी। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम तथा उसमे प्राप्त होने वाले प्रतिफल का सम्बध हर मजदूर को महसूस होना चाहिए। "क्षमता के अनुसार काम, काम के अनुसार दाम"—इस समाजवादी सिद्धान्त को लागू करके उक्त उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है।

इस सूत्र की विषयवस्तु अत्यन्त समृद्ध है। इसमे पहले तो यह बात पूर्व-निहित है कि समाज के सभी सदस्य अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार भरपूर काम करेंगे, और द्वितीय, श्रम करने वाले हर इन्सान को समाज से अपने काम की मात्रा और गुणो के अनुसार प्रतिफल पाने का अधिकार रहेगा।

समाजवाद पूजीवाद के अन्तर्गत या किसी भी शोषक प्रणाली के अन्तर्गत अधिकारो और कर्तव्यो के बीच पायी जाने वाली असगति को दूर कर देता है। पूजीवादी समाज मे समस्त अधिकार समाज के एक नगण्य बहुमत—उत्पादन के साधनो के मालिको—को प्राप्त रहते है तथा कर्तव्य इन साधनो से वचित विशाल जनता के हिस्से मे आते हैं। समाजवादी समाज मे उत्पादन के साधन सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति होते हैं और समाज के समस्त स्वस्थ शरीर वाले सदस्यो को उन तक पहुचने और उन पर काम करने का समान अधिकार प्राप्त होता है। इन परिस्थितियो के अन्तर्गत हर आदमी स्वय अपनी तथा समाज की भलाई के लिए काम करता है। जब कोई आदमी अपने लिए काम करता है तो स्वाभाविक है कि वह काम मे अपनी पूरी योग्यता लगाता है।

समाजवादी श्रम-अनुशासन

सामाजिक श्रम के समाजवादी सगठन की माग होती है कि श्रम की प्रक्रिया मे कठोर अनुशासन कायम किया जाय तथा उत्पादन के लिए कुशल एव व्यवस्थित सगठन स्थापित हो।

पूजीवाद के पराभव से मेहनतकश जनसमुदाय की दासता और भुखमरी की धमकी पर आधारित पूजीवादी श्रम-अनुशासन की धज्जिया उड जाती हैं। किन्तु, कठोर श्रम-अनुशासन के बिना बडे पैमाने पर सामाजिक उत्पादन अकल्पनीय है। इसीलिए लेनिन ने जोर देकर कहा था कि श्रम-अनुशासन एक ऐसी धुरी है जिस पर—समाजवाद के अन्तर्गत—आर्थिक विकास घूमता रहता है।

समाजवादी श्रम-अनुशासन अपने मूल तत्व तथा रचना व लागू करने के तौर तरीको मे समस्त पिछले श्रम-अनुशासनो से बुनियादी तौर पर भिन्न होता है। यह पूजीवाद की अपेक्षा उच्च किस्म का श्रम-अनुशासन होता है। यह शोषको का जुआ उतार फेंकने वाले मजदूरो का सचेतन अनुशासन होता

है। समाजवादी श्रम-अनुशासन की स्थापना करना तथा उसका पालन करना तमाम मेहनतकश जनता का पुनीत उद्देश्य है।

राजसत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के बाद समाजवादी श्रम-अनुशासन की शिक्षा सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष के प्रमुख रूपो म से एक रूप है। लेनिन न कहा था कि नये श्रम-अनुशासन, जनता के बीच नये सामाजिक सम्बधो तथा काम के लिए जनता को आकर्षित करने के नये स्वरूपो व तौर तरीकों का विकास एक ऐसा काम है जिस पूरा करने मे वर्षों और दशाब्दियो का समय लगेगा। उन्होंने इसे एक श्रेष्ठ और सुखकर कार्य माना था।

मजदूर वर्ग वृहद समाजवादी उत्पादन के आधार पर समस्त मेहनतकश जनता की मनोदशा को बदलता है और उसको सामूहिक बिरादराना श्रम के अनुशासन की शिक्षा देता है तथा इस प्रक्रिया मे स्वय अपने को भी शिक्षित करता है। श्रम-अनुशासन को मजबूत करने के अपने प्रयासो मे समाजवादी समाज अपनी राजसत्ता द्वारा काहिलो, निकम्मे व आवारा लोगो के खिलाफ —जो समाज से अधिकतम वसूल करने और बदले मे कम से कम या कुछ न होने देने की तिकड़म मे लगे रहते हैं—समझाने-बुझाने के, और जोर जबर्दस्ती के भी, तौर-तरीके अपनाता है।

कठोर श्रम-अनुशासन कम्युनिस्ट समाज के लिए भी अत्यधिक आवश्यक है। कम्युनिस्ट उत्पादन का उच्च सगठन और उसकी कुशलता ही उसकी विशेषता होती है। कम्युनिज्म के अन्तर्गत जोर-जबर्दस्ती के बजाय तमाम मेहनतकश जनता द्वारा अपने नागरिक कर्तव्यो का बोध अनुशासन और सगठन की जमानत होता है।

२. सामाजिक श्रम की उत्पादकता

श्रम उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि समाजवाद का आवश्यक नियम

सामाजिक श्रम के समाजवादी सगठन का लक्ष्य यह है कि पूजीवाद की अपेक्षा उच्चतर श्रम उत्पादकता को हासिल किया जाय ताकि समाजवादी समाज और उसके सदस्यो की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके।

समाजवादी व्यवस्था अन्ततोगत्वा श्रम की उच्चतर उत्पादकता द्वारा ही सडी-गली पूजीवादी व्यवस्था पर विजय प्राप्त करती है। पूजीवाद ने ऐसी श्रम-उत्पादकता हासिल कर ली थी जिसकी कल्पना भी सामन्तवादी युग मे नही की जा सकती थी। समाजवाद पूजीवाद से भी आगे बढ कर श्रम की उत्पादकता हासिल कर रहा है।

यह समाज की उन उत्पादनकारी शक्तियो के मुक्त होने का परिणाम होता

है जो पहले शोषण की जजीरो मे जकडी हुई थी। यह मेहनतकश जनता की सृजनात्मक शक्ति और पहलकदमी के आजाद होने का परिणाम है।

श्रम उत्पादकता मे वृद्धि, उत्पादन की प्रति इकाई मे सम्पूर्ण जीवन्त तथा निहित श्रम मे होने वाली कमी के रूप मे अभिव्यक्त होती है। जीवन्त श्रम का अश निहित श्रम के अश की अपेक्षा तेजी से घटने लगता है। शारीरिक श्रम का स्थान मशीनो को देकर, और जीर्ण शीर्ण मशीनरी के स्थान पर नयी आधुनिक मशीनरी को लगा कर श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि प्राप्त की जाती है।

श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के लिए एक अन्य आवश्यक शर्त यह है कि श्रम के सगठन और उत्पादन म निरन्तर सुधार किया जाय। लेनिन का विचार था कि प्राविधिक प्रगति के अलावा, मेहनतकश जनता का कठोर श्रम अनुशासन, उसकी कार्यकुशलता मे सुधार, श्रम का व्यापक तौर पर कार्यरत होना और उसका बेहतर सगठन भी श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण शर्तें हैं।

पूजीवाद मे श्रम उत्पादकता मे वृद्धि का अर्थ मजदूर वर्ग के शोषण मे वृद्धि बेरोजगारी का विस्तार और मेहनतकश जनता की हालत की बदतरी होता है। पूजीवादी उत्पादन की अराजकता, होड और सकटो के परिणाम-स्वरूप प्राकृतिक ससाधनो, श्रमशक्ति तथा सामाजिक श्रम के उत्पादो की निरर्थक बर्बादी होती है। मार्क्स ने बताया है कि इसी कारण पूंजीवाद के अन्तर्गत विकासशील श्रम उत्पादकता का नियम कुछ शर्तों के साथ ही अमल मे आता है। इसी से पूजीवाद के अन्तर्गत श्रम उत्पादकता मे वृद्धि की अस्थायी स्थिति समझ मे आती है।

किन्तु समाजवाद के अन्तर्गत विकासशील श्रम उत्पादकता का नियम अबाध गति मे अमल मे आता है। समाजवाद के अन्तर्गत समग्र रूप से समाज के हित मे विज्ञान और प्रविधि की सभी उपलब्धियो के विकास और उपयोग के लिए अनुकूल परिस्थितिया सुलभ होती हैं। श्रम के सर्वव्यापी और लाजमी स्वरूप के कारण समाज को प्राप्त जीवन्त श्रम के ससाधनो का पूर्ण और व्यवस्थित इस्तेमाल सुनिश्चित होता है। उत्पादन की अराजकता, होड और सकटो के न होने के कारण प्राकृतिक ससाधनो और उत्पादन के साधनो का, राष्ट्रीय आर्थिक स्तर पर, नियोजित तथा विवेकपूर्ण इस्तेमाल सम्भव होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था का विकास उसकी सभी शाखाओ म श्रम उत्पादकता म लगातार वृद्धि करने के सम्पूर्ण जनता के प्रयासो से जुडा रहता है। समाजवादी समाज की बढती हुई खुशहाली श्रम उत्पादकता की वृद्धि पर आधारित होती है।

श्रम उत्पादकता की वृद्धि में सहायक परिस्थितिया

कम्युनिस्ट निर्माण के हितो का तकाजा है कि सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे व्यवस्थित रूप से वृद्धि की जाय। श्रम उत्पादकता मे

वृद्धि होने से तैयार माल की प्रति इकाई के उत्पादन पर खर्च होने वाले श्रम की मात्रा मे कमी आती है।

श्रम उत्पादकता एक अत्यत बहुअर्थी शब्द है। यह बुनियादी उत्पादन प्रक्रियाओ मे, मजदूर द्वारा किये जाने वाले व्यक्तिगत उत्पादन पर आधारित होती है। उत्पादन प्रक्रिया मे लगे मजदूर द्वारा प्रति घटा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह या प्रति महीने किये गये उत्पादन की मात्रा को टनो, मीटरो, या सामानो की गिनती मे मापा जा सकता है, और यदि उत्पादित पदार्थ विभिन्न प्रकार के हो तो (स्थायी कीमतो के आधार पर) मुद्रा के रूप मे उनका मापन हो सकता है।

किन्तु, बुनियादी उत्पादन प्रक्रियाओ मे मजदूर का व्यक्तिगत उत्पादन समग्र प्रतिष्ठान मे श्रम उत्पादकता की गति का सही चित्र प्रस्तुत नही करता। यह जरूरी नही कि बुनियादी उत्पादन प्रक्रियाओ मे व्यक्तिगत उत्पादन मे वृद्धि से समग्र प्रतिष्ठान की श्रम उत्पादकता मे लाजमी तौर पर वृद्धि आ जाय। वास्तव मे, उससे उत्पादकता मे गिरावट भी आ सकती है। ऐसी स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब अलग-अलग मजदूरो की उच्चतर उत्पादकता के साथ ही सहायक मजदूरों की सख्या मे वृद्धि होती जाती है, या जन-श्रम का अनुत्पादनकारी खर्च बढ जाता है, या प्रशासकीय यत्र बहुत बोझिल हो जाता है, आदि-आदि। इसके विपरीत, यदि मजदूर के उत्पादन मे हुई वृद्धि के साथ ही प्रशासकीय यत्र और सहायक मजदूरो की सख्या मे कमी आती है और श्रम का अनुत्पादनकारी खर्च समाप्त हो जाता है, तो मुख्य उत्पादन प्रक्रियाओं में मजदूर के व्यक्तिगत उत्पादन की अपेक्षा प्रति मजदूर के उत्पादन मे वृद्धि होती है।

उत्पादकता का प्रति मजदूर स्तर भी समग्र सामाजिक श्रम की उत्पादकता की गति की पूरी तस्वीर पेश नही करता। सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि अलग-अलग प्रतिष्ठानो, औद्योगिक शाखाओ और आर्थिक क्षेत्रो के विकास की दिशा को आर्थिक बुनियादो पर सही तौर से निश्चित किया जाय। दूसरे शब्दो मे, सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे वृद्धि के परिणामस्वरूप होती है।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की उत्पादकता मे व्यवस्थित रूप से वृद्धि के लिए सघर्ष के तौर-तरीके पूजीवाद के अन्तर्गत अपनाये जाने वाले तौर-तरीको से बुनियादी तौर पर भिन्न होते हैं।

पूजीवादी समाज मे श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि मुख्यत: श्रम का बोझ बढा कर, अर्थात मजदूरो से अधिक काम लेकर, प्राप्त की जाती है। समाज-

वादी समाज मे श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि मुख्यत उपकरणो का सुधार करके, अधिक उत्पादनकारी मशीनरी, मशीनी औजारो व उत्पादन विधियो को लागू करके प्राप्त की जाती है। इन कदमो को उठाने स काम मे आसानी होती है, उत्पादकता बढती है तथा श्रम व उत्पादन के सगठन मे सुधार होता है।

श्रम की उत्पादकता बढाने का अत्यन्त महत्वपूर्ण रास्ता निरन्तर व तेज प्राविधिक प्रगति, प्रविधि व उपकरणो का आधुनिकीकरण तथा बेहतर उत्पादन सगठन है। आधुनिक उपकरण और प्रविधि श्रम और उत्पादन के वैज्ञानिक सगठन और श्रम काल के पूर्ण उपयोग को—अर्थात कामचन्दी के खात्मे, श्रम-काल के अलाभकारी खर्च (घाटे) के खिलाफ सघर्ष को—विशेष महत्व देते है।

श्रम की उत्पादकता बढाने की दिशा मे सहायक एक बुनियादी तत्व कार्य-कुशलता मे सुधार करना है। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति का तकाजा है कि अर्थव्यवस्था म कार्यरत कर्मचारियो के सास्कृतिक और प्राविधिक स्तर मे निरन्तर वृद्धि की जाय। उत्पादन म नये, उत्तम और उत्पादनकारी उपकरणो को लगाने से इच्छित फल उसी हालत मे प्राप्त हो सकता है जब समाजवादी अर्थव्यवस्था के सभी अनुभागो मे ये उपकरण कुशल और दक्ष मजदूरो द्वारा इस्तेमाल किये जाये।

समाजवादी अर्थव्यवस्था म श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन लागतो मे वेतन का अश घटता जाता है। किन्तु उत्पादन लागता म वेतना पर होने वाले खर्च के अश मे कमी आने से मजदूरो के वेतन नही घटत, बल्कि वेतन निधि म निरन्तर वृद्धि होती रहती है और इस प्रकार अलग अलग मजदूरो के बुनियादी वेतनो मे भी वृद्धि होती रहती है। समाजवादी प्रणाली की महान श्रेष्ठता इस बात मे भी देखी जा सकती है कि इस प्रणाली के अन्तर्गत जीवन्त श्रम मे किफायत मेहनतकश जनता की खुशहाली मे निरन्तर वृद्धि के साथ चलती रहती है।

सोवियत सघ मे १६२८ और १६६४ के बीच, कार्य-दिवस मे भारी कमी करने के बावजूद, उद्योगो मे श्रम की उत्पादकता म ११ गुना वृद्धि हुई है।

सोवियत सघ मे श्रम उत्पादकता मे वृद्धि की उच्चतर दरों के फलस्वरूप सोवियत सघ और अमरीका की श्रम उत्पादकता के स्तरो के बीच का अन्तर घटता जा रहा है। १६१३ मे रूसी उद्योग की श्रम उत्पादकता अमरीका की तुलना मे लगभग ११ प्रतिशत थी, किन्तु अब सोवियत सघ मे श्रम उत्पादकता बढ कर अमरीका के ४० या ५० प्रतिशत तक पहुच गयी है।

कम्युनिज्म के निर्माण के काल में, सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि, आवश्यकता के अनुसार प्रतिफल देने के कम्युनिस्ट सिद्धान्त म सक्रमण के लिए

आवश्यक भौतिक सम्पदा की इफरात पैदा करने के लिए बहुत बड़ी पूर्व-आवश्यकता होती है।

वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति को तेज करने के बारे में पार्टी की २३वीं कांग्रेस के निर्देश

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वीं कांग्रेस के पंचवर्षीय योजना सम्बंधी निर्देशों म शोधकार्य का बड़े पैमाने पर विकास करके वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति मे तेजी लाने और उसके परिणामो को उत्पादन के क्षेत्र मे तेजी से लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति मे तेजी, पंचवर्षीय योजना को पूरा करने की दिशा म आवश्यक शर्त है।

पंचवर्षीय योजनाओ म, प्राविधिक प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए, विज्ञान के सभी क्षेत्रो मे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रगति, नाभिकीय भौतिकशास्त्र, भौतिक विज्ञान की अन्य शाखाओ, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, चिकित्सा एव सामाजिक विज्ञानो मे बड़े पैमाने पर शोध की व्यवस्था की गयी है। शोध की प्रभावकारिता को बढाने और उसके निष्कर्षों को उत्पादन म लागू करने के उद्देश्य से यह निश्चित किया गया है कि वैज्ञानिक कार्यकर्ताओ और भौतिक ससाधनो को विज्ञान और प्रविधि की बुनियादी समस्याओं को हल करने के काम पर केन्द्रित किया जाय ताकि अधिकाधिक आर्थिक परिणामो को गारन्टी हो सके।

प्राविधिक प्रगति को तेज करने के लिए मशीन व औजार निर्माण जैसे अत्यन्त प्रगतिशील क्षेत्रो के तेज विकास, अर्थव्यवस्था को श्रम के आधुनिक साधनो से लैस करने, तैयार माल के उत्पादन पर नयी और बेहतर प्रविधि के आधार पर दक्षता प्राप्त करने व अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ मे तैयार होने वाले मालो के गुणात्मक स्तर का विकास करने को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

चालू पंचवर्षीय योजना का विशेष लक्षण यह है कि इसमे सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का तेजी से पुनर्सज्जीकरण करने, उसके ढाचे मे प्रगतिशील परिवर्तन लाने, तथा समय रहते पुराने और जीर्ण उत्पादो के स्थान पर नये उत्पादो को चालू करने का मार्ग अपनाया गया है। इन कदमो से वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति को तेज किया जा सकेगा।

नये उपकरणो और प्रगतिशील प्रविधि के विकास के आधार पर उत्पादन के प्राविधिक स्तर मे वृद्धि, भारी यन्त्रीकरण और स्वचालन का व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल, उत्पादन का बढता हुआ विशिष्टीकरण तथा समन्वयीकरण—ये ही श्रम उत्पादकता की वृद्धि को सुनिश्चित करने वाले मुख्य कारक होते हैं।

उत्पादन के विशिष्टीकरण और सहयोग का विकास और उनकी आर्थिक प्रभावकारिता

बड़े पैमाने के उत्पादन की विशिष्ट प्रगतिशील विधियों का विस्तार और वैज्ञानिक व प्राविधिक प्रगति को प्रोत्साहन—ये सामाजिक श्रम की उत्पादकता की निरन्तर वृद्धि को सुनिश्चित बनाने मे निर्णायक महत्व के हैं। इन विधियो मे प्रतिष्ठानो का विशिष्टीकरण तथा सहयोग, भारी पैमाने पर होने वाला उत्पादन तथा उत्पादन का समन्वयीकरण शामिल है।

विशिष्टीकरण का अर्थ यह है कि सजातीय पदार्थों का उत्पादन कुछ निश्चित प्रतिष्ठानो मे केन्द्रित किया जाय। श्रम के सामाजिक बटवारे का यह एक रूप है।

प्रविधि की प्रगति के परिणामस्वरूप स्वतत्र उद्योगो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है। उत्पादो की भिन्न-भिन्न किस्मो का उत्पादन कुछ निश्चित प्रतिष्ठानो मे केन्द्रित हो जाता है। विशेषीकरण अलग-अलग प्रतिष्ठानो के बीच तथा उन प्रतिष्ठानो के अन्दर भी—शापो और अनुभागो के बीच—श्रम का गहरा बटवारा करता है। इससे उच्च उत्पादनकारी उपकरणो का प्रयोग किया जाना, मशीनरी और यत्र रचना तथा उत्पादन की प्रविधि मे सुधार करना सम्भव होता है। इसी के साथ, विशिष्टीकरण से मजदूरो और इजीनियरिंग कर्मचारियो को प्रशिक्षण और कार्यानुभव द्वारा कुशलता प्राप्त करने मे सहायता मिलती है।

विशिष्टीकरण की तीन बुनियादी किस्मे होती है। पहली किस्म है: विभिन्न प्रकार के पदार्थों के उत्पादन का अलग-अलग कर दिया जाना जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक कारखाना कुछ निश्चित किस्म के पदार्थों मे (उदाहरण के लिए, कारो के उत्पादन मे) विशिष्टता हासिल करता है। दूसरी किस्म है: उत्पादन का बटवारा इस प्रकार किया जाना कि अलग-अलग कारखाने तैयार माल के अलग-अलग भागो को तैयार करते है, अर्थात उत्पादन के अलग-अलग हिस्सो मे (मोटर के पुर्जों, इजन, ढाचा और पिस्टन रिंग बनाने मे) विशिष्टता हासिल करते हैं। और अन्तिम किस्म है: प्राविधिक प्रक्रिया की विभिन्न क्रियाओ तथा अवस्थाओ मे—प्राविधिक या अवस्थागत (ढलाई घरो, भट्ठियो, आदि, का निर्माण)—विशिष्टता हासिल की जाती है।

विशिष्टीकरण के विस्तार से विभिन्न प्रतिष्ठानो और शाखाओ की पारस्परिक निर्भरता बढती है। इस प्रकार कुछ निश्चित किस्म के उत्पादो का उत्पादन करने वाले प्रतिष्ठानो और शाखाओ के बीच सहयोग की—अर्थात दीर्घकालीन उत्पादन सम्बन्धो की—स्थापना होती है। सहयोग के लिए प्रति-

ऑर्गेनिक कच्चे मालो (कोयला, तेल) का प्रयोग करने वाले रसायनिक उद्योग, लौह रहित मिश्रित कच्ची धातुओ और खाद्य उद्योग के प्रतिष्ठानों मे कृषिजन्य उत्पादो मे होता है। तृतीय है उप-उत्पादो के इस्तेमाल पर आधारित समन्वय। इसका अधिकतर उपयोग लकडी उद्योग के कारखानो—जो बुरादे और छीलन का उपयोग भी करते हैं—किया जाता है।

इस प्रकार, समन्वय उन्ही शाखाओ म व्यापक होता है जिनमे कच्चे मालो की प्रक्रिया को कई अवस्थाओ से गुजरना पडता है। ये सारी अवस्थाए मिल कर एक चक्र का रूप धारण करती हैं। समन्वय उन शाखाओ मे भी होता है, जहाँ उत्पादन कच्चे मालो और ईंधन के मिश्रित उपयोग पर आधारित होता है।

समन्वय के प्रभावी होने के लिए अनेक उपादान जरूरी होते है। सर्वप्रथम, उत्पादन के उपकरणो और प्रविधि मे समान रूप से सुधार आने पर भी समन्वय निर्भर करता है। द्वितीय, उत्पादो के यातायात पर होने वाले अलाभकर खर्चों को दूर करके किफायत की जाती है। ऐसा इसलिए सभव होता है क्योकि समन्वय पर आधारित प्रतिष्ठानो म कच्चे मालो का बडा भाग और अर्ध तैयार माल—सब प्रतिष्ठान मे ही तैयार किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, ससाधनो का मिश्रित उपयोग बहुत ही लाभदायक होता है और उत्पादन के ढाचा का इस्तेमाल भी अधिक विवेकपूर्ण ढग स किया जाता है।

लौह और इस्पात के बड कारखानो म, जिनम लाखो टन धातु तैयार होती है, हर वर्ष लगभग ४ करोड टन कच्चे माला, अर्ध-तैयार मालो, कबाड और दूसरे सामानो को लाना-लेजाना पडता है। अगर खुली भट्ठी, वायु भट्ठी, रोलिंग मिल तथा उत्पादन के अन्य अग अलग-अलग कारखानो मे स्थापित किये जायें, तो यातायात का खर्चा बहुत ज्यादा बढ जायगा।

अनेक शाखाओ मे प्राविधिक प्रगति समन्वय के प्रसार मे सहायक होती है। मिसाल के लिए, भवन-निर्माण उद्योग को लीजिए। बृहद यन्त्रीकरण पर आधारित भवन-निर्माण कारखाने, निर्माण की अवधि और निर्माण के खर्चों मे काफी कमी कर देते हैं।

कच्चे मालो के मिश्रित उपयोग से उत्पादन की प्रभावकारिता बढती है। इस प्रकार, सोवियत सघ मे लकडी के काम के अब भी ऐसे बहुत से कारखाने हैं जिनमे प्रति घन मीटर लकडी से तैयार माल, आधुनिक तरीको और उपकरणो की सहायता से काम करने वाले कारखानो के माल का केवल १/३ से २/५ तक होता है। किसी उद्योग म श्रम की उत्पादकता बढाने मे कच्चे मालो का मिश्रित उपयोग अत्यधिक सहायक होता है।

समाजवादी प्रतियोगिता, आर्थिक विकास मे उसकी भूमिका तथा मेहनतकश जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा

सामाजिक श्रम की उत्पादकता बढाने मे समाजवादी प्रतियोगिता जबर्दस्त भूमिका अदा करती है। पूजीपति वर्ग और उसके पक्षधरो का दावा है कि केवल होड मे ही हर उत्पादक अपनी योग्यताओ को पूरे तौर पर जाहिर कर पाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि यह होड मेहनतकश जनता की योग्यताओ को क्रूरता से कुचल देती है। धोखाधडी, जालसाजी, करोडो मेहनतकशो की बर्बादी और मुट्ठी भर शोषको की मालामाली इस होड के अभिन्न साथी और अग होते हैं।

समाजवादी प्रतियोगिता ने सबसे पहले योग्यताओ और प्रतिभाओ वाले असख्य लोगो को—जिनको पूजीवादी व्यवस्था ने जकड रखा था और जिनका गला घोट रखा था—फलने फूलने का पूरा अवसर प्रदान किया। होड मे एक ओर जहा एक आदमी दूसरे आदमी के खिलाफ सघर्ष करता है वही दूसरी ओर समाजवादी प्रतियोगिता, मेहनतकश जनता के बीच बिरादराना सहयोग और उसके सामान्य विकास के लिए सयुक्त सघर्ष का रूप धारण कर लेती है। होड जहा उत्पादको के बीच फूट और शत्रुता की सूचक है वहा समाजवादी प्रतियोगिता एक मैत्रीपूर्ण सामूहिक म जनता के सर्वव्यापी सहयोग की द्योतक है।

समाजवादी प्रतियोगिता, अपने सभी रूपो मे मेहनतकश जनता का एक विशाल आन्दोलन होती है, जिसका सिद्धान्त है—सर्वश्रेष्ठ को दौड कर पकडो, पिछडने वालो की सहायता करो और उत्पादन म आम विकास हासिल करो। मेहनतकश जनता योजनाओ की पूर्ति और अतिपूर्ति के लिए श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के लिए तैयार माल के गुणो मे सुधार लाने के लिए, लागत का घटाने के लिए तथा कच्चे व दूसरे मालो, ईंधन और विद्युतशक्ति मे किफायत के लिए प्रतियोगिता का अभियान चलाती है। प्रतियोगिता के अभियान, समाज की भलाई के लिए श्रम और उत्पादन की ओर मजदूरो के नये तथा उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रदर्शन करते हैं। सार्वभौम कल्याण के लिए काम करना कम्युनिस्ट श्रम का मुख्य तत्व है।

समाजवादी प्रतियोगिता आम जनता की श्रम क्रियाशीलता और पहलकदमी को मुक्त कर देती है, यह केवल समाजवाद की ही विशेषता है। यह प्रविधि के विकास में तेजी लाती है। यह उत्पादन सगठन मे सुधार लाने तथा उत्पादकता के पुराने पड चुके मापदण्डो को हटा कर विकसित और प्रगतिशील मापदण्डो को लागू करने मे सहायक होती है। सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे समाजवादी प्रतियोगिता सही मानो मे समस्त जनता का

उद्देश्य बन गयी है तथा आर्थिक विकास के पूरे क्रम पर जबर्दस्त प्रभाव डाल रही है।

समाजवादी प्रतियोगिता जबर्दस्त शिक्षाप्रद और सागठनिक उदाहरण की शक्ति पर आधारित होनी है। समाजवाद के अन्तर्गत सबसे पहली बार उदाहरण की शक्ति जन-कार्रवाई को प्रोत्साहित करती है और उत्पादन मे सुधार एव सामाजिक प्रगति के लिए प्रेरक शक्ति के रूप मे काम करती है। लेनिन का विचार था कि समाजवादी प्रतियोगिता का सगठन निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर किया जाना चाहिए : विस्तृत प्रचार, परिणामो का तुलनात्मक विवेचन, प्रगतिशील अनुभवो का प्रसार तथा काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रोत्साहन।

पूजीवादी समाज मे श्रम प्रक्रिया का प्रत्येक सुधार होड सम्बधी सघर्ष के परिणामस्वरूप ही लागू किया जाता है। किसी एक कारखाने मे होने वाला सुधार, प्रतियोगिता करने वाले दूसरे कारखानो के लिए खतरा पैदा कर देता है। हर नवीनीकरण को गुप्त रखा जाता है तथा उस पर अमल करने वाले कारखाने के हाथो मे वह एक "व्यापारिक राज" बना रहता है।

समाजवादी समाज मे, जहा मेहनतकश जनता को उत्पादन मे सुधार लाने मे गहरी दिलचस्पी होती है, आगे बढे हुए मजदूरो की हर पहलकदमी का स्वागत किया जाता है। यह जनता की सृजनात्मक पहलकदमी को प्रेरणा देती है, बिरादराना प्रतियोगिता की भावना को बढाती है तथा सामूहिक प्रगति के लिए काम करने वाले शक्तिशाली अस्त्र का काम करती है।

सोवियत सघ मे पचवर्षीय योजनाओ के प्रारम्भिक काल मे तेजगाम-मजदूरो का आन्दोलन बहुत व्यापक हो गया था। बाद मे, उत्पादन मे नयापन लाने वालो का आन्दोलन शुरू किया गया। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के दौरान मेहनतकश जनता के प्रतियोगिता अभियानो ने विजय प्राप्त करने मे महान योगदान किया था। युद्धोत्तर काल मे उन्होंने युद्ध से क्षत-विक्षत अर्थव्यवस्था को शीघ्रता के साथ पुनर्स्थापित करने मे सहायता पहुचायी।

कम्युनिस्ट श्रम के तेजगाम मजदूरो और टीमो का आन्दोलन सोवियत सघ की सप्तवर्षीय योजना के पूर्व-काल मे जडें जमाने लगा था। इस आन्दोलन मे शामिल होने वालो ने अपने सामने भारी जिम्मेदारिया रखी थी, अर्थात ये कि; अपने काम के प्रति जिम्मेदारी भरा तथा सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनायेंगे, श्रम उत्पादकता मे भारी वृद्धि करेंगे, अपने को उच्च सास्कृतिक जन बनायेंगे, अपने वैचारिक एव राजनीतिक स्तर को निरन्तर ऊचा उठायेंगे तथा अपने साथियो

को उनके कामो मे तथा जीवन मे सहायता पहुचायेगे। उनका नारा है: कम्युनिस्टों की तरह काम करना और जीवन बिताना सीखो।

समाजवादी प्रतियोगिता का आगे विकास, जो जनता के बीच क्रान्तिकारी पहलकदमी की एक सजीव अभिव्यक्ति बन गयी है, चालू पचवर्षीय योजना की सफल पूर्ति के लिए तथा सोवियत समाज के कम्युनिज्म के पथ पर अग्रसर होने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

नयी पचवर्षीय योजना मे श्रम उत्पादन मे वृद्धि के लक्ष्य

पचवर्षीय योजना म श्रम उत्पादकता मे तेज गति से वृद्धि की व्यवस्था की गयी है। प्रति मजदूर श्रम उत्पादकता मे वृद्धि की उद्योग मे औसत सालाना दर १९६१-६५ के काल की ४ ६ के बजाय ६ प्रतिशत हो जानी है, निर्माण मे ५ ३ प्रतिशत के बजाय ६ ६ प्रतिशत हो जानी है और कृषि के सार्वजनिक क्षेत्र मे ३ ६ प्रतिशत के स्थान पर ७ प्रतिशत हो जानी है। चालू पचवर्षीय योजना अवधि मे उद्योग मे श्रम उत्पादकता ३० से ३५ प्रतिशत तक बढेगी। निर्माण मे यह ३५ से ४० प्रतिशत, राजकीय फार्मों एव सामूहिक फार्मों म ४० से ४५ प्रतिशत तक होगी।

श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि की दर मे यह तेजी उत्पादन मे वैज्ञानिक एव टेक्नालॉजीकल उपलब्धियो को लागू करके वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति मे तेजी लाकर, उत्पादन मे विशिष्टीकरण का विकास करके, वैज्ञानिक श्रम सगठन की स्थापना करके, कार्यकुशलता मे सुधार लाकर तथा आर्थिक प्रेरणाओ को प्रखर बना कर हासिल की जानी है।

श्रम को तकनीकी तौर पर किस हद तक लैस किया गया है इसका एक अत्यधिक महत्वपूर्ण सूचकाक, प्रति मजदूर बिजली की उपलब्धता है। पचवर्षीय योजना के इस काल मे यह सूचकाक उद्योग के क्षेत्र मे १ ५ गुना तथा कृषि के क्षेत्र मे ३ गुना बढ जायगा।

मेहनतकश जनता के सास्कृतिक स्तर एव प्राविधिक ज्ञान का विस्तार और उसकी कार्यकुशलता मे उन्नति

मेहनतकश जनता के सास्कृतिक स्तर और प्राविधिक ज्ञान की व्यवस्थित उन्नति श्रम उत्पादकता को बढ़ाने मे जबर्दस्त भूमिका अदा करती है। वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति मजदूरो, इजीनियरो और तकनीशियनो की कार्यकुशलता मे सुधार से अभिन्न रूप से जुडी हुई है। समाजवादी व्यवस्था समस्त मेहनतकश जनता के लिए अपनी सामान्य और तकनीकी शिक्षा मे सुधार करने की अत्यन्त अनुकूल परिस्थितिया उत्पन्न करती है।

प्राविधिक प्रगति तथा आम मेहनतकश जनता के सास्कृतिक स्तर और प्राविधिक ज्ञान की उन्नति के परिणामस्वरूप शारीरिक श्रम और मानसिक

श्रम के बीच का भेद धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। मजदूर वर्ग और सामू-
हिक किसानों का शैक्षिक स्तर हर वर्ष उन्नत होता जाता है। १९३९ में
अर्थव्यवस्था में कार्यरत प्रति १००० व्यक्तियों में १२३ लोगों को उच्च तथा
माध्यमिक शिक्षा (पूर्ण एवं अपूर्ण) प्राप्त थी। १९५९ और १९६५ में यह
संख्या बढ़ कर क्रमशः ४३३ और ५२२ तक पहुंच गयी। माध्यमिक सामान्य
और विशेष शिक्षा के विस्तार से उत्पादन के काम पर नियुक्त होने वाले
नौजवानों को आठ-वर्षीय शिक्षा प्राप्त होती है और उनका एक बहुत बड़ा
भाग माध्यमिक विद्यालयों की ९ वीं तथा १० वीं श्रेणी भी पास कर चुका
होता है।

प्रगतिशील उपकरणों से लैस बहुत से प्रतिष्ठानों में एक-तिहाई तक मज-
दूर पूर्ण माध्यमिक शिक्षा (१० वीं तथा ११ वीं श्रेणी) प्राप्त होते हैं। सह-
कारी किसानों में भी ऐसे लोगों की संख्या घटती जा रही है जिनको कृषि के
किसी न किसी काम में विशेष दक्षता प्राप्त न हो। ऑपरेटरों, विशिष्ट प्रकार
के काम मजदूरों और सामान्य शिक्षा एवं विशेष प्रशिक्षण प्राप्त दूसरे कुशल
कर्मचारियों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है।

इंजीनियरों और तकनीशियनों की संख्या व्यवस्थित ढंग से बढ़ रही है
और उनकी कार्यकुशलता में भी वृद्धि हो रही है।

३. वैज्ञानिक उत्पादन और श्रम संगठन

श्रम की उत्पादकता बढ़ाने और श्रम की परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए उत्पादन और श्रम के सही संगठन का महत्व

समाजवादी निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था में ही लेनिन ने उत्पादन और श्रम के वैज्ञानिक संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया था। उनका विचार था कि समाजवादी परिस्थितियों में श्रम का वैज्ञानिक संगठन न केवल श्रम उत्पादकता को बढ़ाने बल्कि श्रम को हर
प्रकार से सुविधाजनक बनाने का भी एक बड़ा ही शक्तिशाली उपादान है।

वर्तमान परिस्थिति में श्रम और उत्पादन का वैज्ञानिक संगठन विशेष
रूप से महत्वपूर्ण बन गया है। श्रम और उत्पादन में संगठन का सुधार उत्पादन
की प्रभावकारिता को बढ़ाने की एक मुख्य शर्त है। प्राविधिक प्रगति, प्रति-
ष्ठानों के अभिनवीकरण और बेहतर प्राविधिक प्रक्रियाओं की शुरूआत के
लिए सही वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर श्रम के संगठन में बुनियादी सुधार
अत्यधिक आवश्यक है।

सोवियत उद्योग उत्पादन के प्राविधिक स्तर और अपने मजदूरों व विशेषज्ञों
के मामले में संसार का नेता बन गया है। किन्तु, उत्पादन संगठन के मामले में,

जिसका उद्देश्य उत्पादन मे लगे समस्त उपकरणो और श्रमिकों को उत्पादन प्रक्रिया मे विलय कर देना है, आज भी बहुत से प्रतिष्ठान पीछे हैं। इसमे सभी प्रतिष्ठानो मे आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति की आवश्यकताओ के अनुरूप उत्पादन और श्रम का वैज्ञानिक सगठन स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक आर्थिक कर्तव्य बन गया है।

वैज्ञानिक श्रम सगठन को लागू करने मे प्रगतिशील प्रतिष्ठानो, दापो और अनुभागो के अनुभव

वैज्ञानिक श्रम सगठन के ठोस रूप उत्पादन की विशिष्टताओ पर निर्भर होते हैं। किन्तु सभी विकासशील प्रतिष्ठानो के कुछ लक्षण समान होते हैं। श्रम सगठन का सुधार बुनियादी और माध्यमिक प्रक्रियाओ मे नयी प्रविधि, स्वचालन तथा यन्त्रीकरण की शुरूआत से जुडा हुआ है। उत्पादन की श्रम सघनता मे व्यवस्थित रूप से कमी लाने से, तैयार माल के कोटो पर पुनर्विचार करने का आधार तैयार होता है। उत्पादन प्रक्रियाओ मे वैज्ञानिक श्रम सगठन की शुरूआत करने के साथ ही उत्पादन प्रबन्ध मे बुनियादी सुधार लागू करने, प्रशासकीय कामो का यन्त्रीकरण करने, तथा इजीनियरो टेक्नीशियनो, कारखाना व कार्यालय कर्मचारियो की कार्यकुशलता को बढाने के लिए कदम भी उठाये जाते है। श्रम सगठन मे सुधार से सर्वोत्तम परिणाम उसी स्थिति मे प्राप्त होते हैं जब उसे उत्पादन की आवश्यकताओ और विशेषताओ को ध्यान मे रख कर लागू किया जाय।

इस सम्बध मे गोर्की मोटर वर्क्स का अनुभव विशेष रूप से शिक्षाप्रद है। चूकि उस कारखाने मे यातायात और भण्डारण मुख्य समस्याए थीं, इसलिए माल के यातायात को कम करना व गोदामो तथा ट्रान्सपोर्ट का यन्त्रीकरण करना जरूरी था। इस क्षेत्र मे प्रशसनीय सफलता प्राप्त हुई है। उद्योग की इस शाखा के कारखानो मे जहा ट्रान्सपोर्ट, भण्डारण और सामानो की दुरस्ती के काम मे लगे कर्मचारियो की सख्या कारखाने के कुल मजदूरो के २० स ४४ प्रतिशत तक होती है, वहा गोर्की मोटर वर्क्स मे ये सारे काम केवल १५ प्रतिशत कर्मचारियो द्वारा सम्पन्न कर लिये जाते है। कारखाने मे उत्पादन और प्रबन्ध का एक स्वतत्र अनुभाग कायम किया गया है जो कार्यालय कर्मचारियो, इजीनियरो और टेक्नीशियनो के श्रम की दरे निश्चित करने के काम मे लगा है।

यूराल केमिकल मशीन-बिल्डिंग वर्क्स ने हर बेंच के लिए वैज्ञानिक श्रम सगठन की योजनाए निश्चित करना, प्रगतिशील काम की विधियो व प्रतिफल अदायगी की अधिक प्रभावकारी प्रणाली को चालू करना जरूरी समझा। प्रतिष्ठान के काम के गहरे विश्लेषण से जाहिर हुआ कि केवल उत्पादन सगठन

मे सुधार करने से ही उच्च श्रम उत्पादकता, लाभदायकता और आर्थिक संचलन प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा। उत्पादन सगठन के सुधार के लिए जो कार्यक्रम निश्चित किया गया, उसमे उत्पादन की तैयारी के लिए, कारखाने के अन्दर ही उत्पादन की योजना तैयार करने, उसकी शापो और अनुभागो के लिए माल की सप्लाई करने, प्रबन्ध मे अधिक कुशलता प्राप्त करने तथा मजदूरो इजीनियरो व टेक्नीशियनो के लिए काम की अधिक विवेकपूर्ण विधियो को लागू करने की व्यवस्था की गयी।

यूराल केमिकल मशीन-बिल्डिंग वक्र्स गोर्की मोटर वक्र्स तथा अनेक अन्य प्रतिष्ठानो के अनुभव ने, जिन्होने वैज्ञानिक श्रम सगठन के आन्दोलन का सूत्रपात किया था, देशव्यापी पैमाने पर ध्यान आकर्षित किया। बहुत से प्रतिष्ठानो मे वैज्ञानिक श्रम सगठन लागू करने के लिए प्रयोगशालाए स्थापित की जा रही है और योजनाए व उनके कार्यान्वयन के कार्यक्रम निश्चित किये जा रहे हैं। इजीनियर, टेक्नीशियन और मजदूर इन कामो मे हिस्सा ले रहे हैं और अब तक जो कदम उठाये गये है, उनसे अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

दोहराने के प्रश्न

१. समाजवादी श्रम सगठन से क्या लाभ है ?

२. कम्युनिज्म की विजय के लिए श्रम उत्पादकता मे वृद्धि का महत्व क्या है ?

३. श्रम उत्पादकता मे वृद्धि कैसे होती है ?

४. उत्पादन और श्रम के वैज्ञानिक सगठन से क्या लाभ हैं ?

अध्याय १५

श्रम के अनुसार वितरण और सामाजिक उपभोक्ता निधि

१. श्रम के अनुसार वितरण : समाजवाद का एक आर्थिक नियम

श्रम की मात्रा और उपभोग की मात्रा पर सामाजिक नियंत्रण

समाजवादी सिद्धान्त "योग्यता के अनुसार काम, काम के अनुसार दाम" के कार्यान्वयन का अर्थ है कि समाज को हर मजदूर के श्रम व उसके उपभोग की मात्रा को देखना और उस पर नियंत्रण रखना चाहिए। लेनिन ने इसे समाजवादी निर्माण की सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शर्त माना था। इस प्रकार का लेखा और नियंत्रण अनेक वस्तुगत कारणों से आवश्यक है।

प्रथम, समाज के पास अभी भी उत्पादों की इतनी इफरात नहीं है कि समाज के सभी सदस्यों की तेजी से बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से पूरा किया जा सके।

द्वितीय, श्रम अभी भी मनुष्य की सर्वप्रथम जीवन्त आवश्यकता नहीं बन पाया है, अतएव, हर मजदूर को अधिकतम उत्पादकता के साथ सामूहिक कल्याण के लिए काम की ओर आकर्षित करने के हेतु भौतिक प्रेरणाओं को सुनिश्चित करना जरूरी है।

तृतीय, अभी भी नगर और देहात के बीच तथा मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच काफी भेद मौजूद हैं। इसलिए अलग-अलग मजदूरों का श्रम केवल मात्रा के हिसाब से ही नहीं, गुणों के हिसाब से भी अलग-अलग होता है।

शोषण की प्रणाली जनता के दिमागों पर अपना गहरा असर छोड़ गयी है और पूरे समाजवादी कालखण्ड में पूंजीवादी अवशेषों के खिलाफ संघर्ष किया जाता है। उदाहरण के लिए, मेहनतकश जनता के पिछड़े हिस्से समाज को कम से कम देना और उससे ज्यादा से ज्यादा वसूलना चाहते हैं। युगों तक जारी बेगार की व्यवस्था से यह स्थिति पैदा हुई है। श्रम की मात्रा और उपभोग की मात्रा पर सामाजिक नियंत्रण श्रम की ओर एक नये, समाजवादी दृष्टिकोण के लिए संघर्ष में अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान है।

काम के लिए इस प्रकार के सामाजिक आकर्षण का पूजीवाद के अन्तर्गत लागू जोर-जबर्दस्ती के तौर तरीको से कतई कोई मेल नही है। उस व्यवस्था के अन्तर्गत शोषक वर्ग शोषित वर्गों को काम करने को मजबूर करने के लिए भूख की धमकी का इस्तेमाल करता है। समाजवाद के अन्तर्गत समग्र समाज हर मजदूर के श्रम की मात्रा और उसके उपभोग की मात्रा पर नियन्त्रण स्थापित करके अपने सदस्यो पर प्रभाव डालता है। सामाजिक उत्पादन मे से हर मजदूर को प्राप्त होने वाला हिस्सा इस बात पर निर्भर करता है कि समाज के लिए होने वाले श्रम मे उसने किस हद तक भाग लिया है।

भौतिक सम्पदा का वितरण उत्पादन की सामाजिक पद्धति पर निर्भर होना है। समाजवाद के अन्तर्गत यह वितरण श्रम के अनुसार किया जाता है।

श्रम की मात्रा और उसके गुण के अनुसार वितरण श्रम उत्पादकता मे वृद्धि लाने मे, अर्थव्यवस्था को आगे बढाने मे और जनता को खुशहाल बनाने मे एक जबर्दस्त प्रेरणा का काम करता है। यह मेहनतकश जनता को अपनी कार्य-कुशलता बढाने, श्रम सगठन के सुधार मे दिलचस्पी लेने तथा प्राविधिक प्रगति के विकास मे सक्रिय भाग लेने के लिए आकर्षित करता है। इस प्रकार, श्रम के अनुसार वितरण उत्पादनकारी शक्तियो के तेज विकास मे हर प्रकार से सहायक होता है।

अतएव, श्रम के अनुसार वितरण समाजवाद का एक वस्तुनिष्ठ आर्थिक नियम है। इस नियम पर दक्षता प्राप्त करके समाजवादी समाज इसे मानव कार्यकलाप के सभी क्षेत्रो मे श्रम का प्रतिफल अदा करने के आधार के तौर पर लागू करता है। श्रम के आधार पर वितरण, सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे समाजवादी प्रबन्ध की सम्पूर्ण प्रणाली से निकट रूप से सम्बद्ध है।

भोले भाले लोगो की नजर मे समाजवाद को बदनाम करने के प्रयास मे समाजवाद के दुश्मन भौतिक प्रेरणा के सिद्धान्त को पूजीवादी तौर तरीको को छूट दिये जाने के रूप मे पेश करते है। श्रम के अनुसार वितरण के सिद्धान्त का मुनाफो के लिए पूजीवादी हवस से कतई कोई मेल नही है। अधिक प्रभावकारी काम के लिए उच्च वेतन का समाजवादी सिद्धान्त मुनाफो के लिए पूजीवादी हवस से कोसो दूर है।

श्रम के अनुसार भुगतान का सिद्धान्त करोडो मेहनतकश जनता के सामने समाजवादी समाज मे श्रम के परिणामो और जनता की भौतिक खुशहाली के बीच पाये जाने वाले अटूट सम्बध को प्रकट करता है। इस प्रकार, श्रम की मात्रा तथा उसके गुणो के अनुसार वितरण एक नये, चेतन, समाजवादी श्रम-अनुशासन की शिक्षा देने का शक्तिशाली साधन है। यह

मेहनतकश में समूह का एक अंग होने की भावना पैदा करता है। यह मेहनतकश जनता में सहयोग के सम्बंधो तथा बिरादराना पारस्परिक सहायता की भावना को—जो समाजवादी उत्पादन सम्बंधों के विशेष लक्षण हैं—मजबूत बनाता है।

श्रम के अनुसार वितरण से मेहनतकश जनता में उसके अपने श्रम के फलो के प्रति प्रत्यक्ष भौतिक रुचि की गारन्टी होती है। लाखो-करोड़ो मेहनतकशो के सामने यह बात उजागर हो जाती है कि अच्छा जीवन बिताने के लिए अच्छी तरह काम करना भी जरूरी है। भौतिक प्रेरणाए आगे बढे हुए मजदूरो में तूफानी गति पैदा कर देती हैं तथा साधारण मजदूरो को आगे बढ़े हुए मजदूरो के स्तर पर ले आती हैं।

श्रम के अनुसार वितरण से मेहनतकश जनता के व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक हितो के बीच सही समन्वय स्थापित होता है और उनमे अपने व्यक्तिगत हितो को समग्र समाज के हितो के अधीन करने की भावना पैदा होती है। भौतिक प्रोत्साहन की प्रणाली—नियोजित, आर्थिक व्यावसायिक प्रबन्ध, लागत-लेखा के प्रचलन तथा हर प्रकार के कुप्रबन्ध और बर्बादी की समाप्ति के लेनिनवादी सिद्धान्तो पर आधारित होती है। प्रत्येक मजदूर द्वारा अपने श्रम के परिणामो में भौतिक दिलचस्पी के बगैर तथा कारखानो, शापों, अनुभागो के कर्मचारियो द्वारा अपनी सामूहिक कारगुजारी मे दिलचस्पी के बगैर लागत-लेखा और आर्थिक प्रबन्ध को मजबूत बनाने की बात सोची तक नही जा सकती।

समाज, प्रतिष्ठानो के कर्मचारियो और अलग-अलग मजदूरो के आर्थिक हितों का समन्वय

वर्गीय हितो तथा सामूहिक हितो के बीच बुनियादी अटूट अन्तर्विरोध हर शोषक समाज की विशेषता रहे हैं। पूंजीवादी समाज मे ये हित विशेष रूप से शत्रुतापूर्ण होते हैं। पूंजीवादी सिद्धान्तशास्त्री पूंजीवाद के अन्तर्गत हितों के टकराव और विरोध को ढकने के काम को अपनी एक केन्द्रीय जिम्मेदारी समझते हैं। पूंजीवादी समाज मे हितो के तालमेल के बारे मे पूंजीवादी नीम-हकीम वैज्ञानिको के विज्ञान विरोधी सिद्धान्तो का वास्तविकता के साथ कोई मेल नही बैठता। हर कदम पर जीवन के तथ्य इस झूठ का पर्दाफाश करते रहते हैं।

समाजवादी समाज में हितों के बीच टकराव का कोई सवाल ही नही उठता क्योंकि समस्त मेहनतकश जनता को समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास मे दिलचस्पी होती है। किन्तु इसके बावजूद, प्रतिष्ठान के कर्मचारियो तथा अलग-अलग मेहनतकशों के प्रत्यक्ष भौतिक हितों और समग्र समाज के हितो के बीच कुशलतापूर्वक समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता समाप्त नही हो जाती।

आर्थिक प्रेरणा का मूल लक्ष्य इस बात की गारन्टी करना है कि मजदूरो के सामूहिक सगठनो तथा प्रत्येक मजदूर के हितो के साथ समग्र समाज के हितो का तालमेल कायम रहे। उत्पादन के लिए दिये जाने वाले अधिक आर्थिक प्रोत्साहनो का उद्देश्य समाज, प्रतिष्ठानो और अलग-अलग मजदूरो के हितो के बीच पैदा होने वाले, या पैदा हो सकने वाले, अन्तर्विरोधो को दूर करना होता है।

इन अन्तर्विरोधो को दूर करने का आर्थिक-मार्ग, मूल्य-श्रेणियो की समस्त प्रणाली के मुकम्मल और जानकारीपूर्ण इस्तेमाल पर आधारित होता है: जैसे *तैयार माल, मुनाफे और लाभदायकता, उत्पादनकारी परिसम्पत्ति के इस्तेमाल* के लिए भुगतान, प्रतिष्ठानो के मुनाफो मे से विशेष निधियो, वेतनो और बोनस के लिए कटौतियो, आदि, के सूचकाक। इनके तथा अन्य आर्थिक उपादानो के सही इस्तेमाल से समाज, प्रतिष्ठानो मे काम करने वाले कर्मचारियो के सामूहिक सगठनो और अलग अलग मेहनतकशो के बीच एकता स्थापित करने मे सहायता मिलती है।

काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रोत्साहनो का समन्वय

सोवियत शासन के आरम्भिक वर्षों मे लेनिन ने लिखा था कि समाजवाद और कम्युनिज्म का निर्माण केवल जन-उत्साह के आधार पर नही होगा, बल्कि यह महान क्रान्ति से उत्पन्न उत्साह, व्यक्तिगत दिलचस्पी और लागत लेखा के आधार पर होगा। लेनिन के निर्देश का अर्थ यह है कि काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रेरणाओ के बीच सही समन्वय होना चाहिए।

समाजवादी निर्माण के अमल ने इस बात की पुष्टि की है कि जब तक मजदूरो को अपने काम के परिणामो मे भौतिक दिलचस्पी नही होगी, तब तक न तो देश की उत्पादनकारी शक्तियो को ही उन्नत किया जा सकेगा, न समाजवादी अर्थव्यवस्था की रचना की जा सकेगी और न करोडो लोगो को कम्युनिज्म की ओर अग्रसर किया जा सकेगा। इसके साथ ही समाजवाद काम के लिए अधिकाधिक शक्तिशाली और प्रभावकारी नैतिक प्रेरणाओ को विकसित करता रहता है। समाज मे मेहनतकशो की अब जो मूलत. भिन्न स्थिति है, वह स्वय नैतिक प्रेरणा का एक स्रोत बन गयी है। वह मेहनतकश जनता को—समाज को भलाई के लिए—ज्यादा अच्छे और उत्पादनकारी ढग से काम करने को प्रेरित करती है। भौतिक प्रेरणाओ के साथ ही, समाज के लिए आम मेहनतकश जो काम करते हैं उसको प्रदत्त सामाजिक मान्यता भी सामाजिक प्रगति के लिए जबर्दस्त प्रेरक शक्ति बनती जा रही है।

लेनिन ने बताया था कि व्यक्तिगत दिलचस्पी उत्पादन को बढाने मे बहुत

कारगर होती है। वह भौतिक प्रेरणाओ को, समाज की भलाई के लिए नेक और सफल काम मे उत्पादन कर्मचारियो और मजदूरों की भौतिक दिलचस्पी को सुनिश्चित बनाने को, बहुत महत्व देते थे। वह अच्छे काम के लिए भौतिक प्रोत्साहन को आर्थिक प्रगति को प्रभावित करते वाला एक प्रभावशाली उपादान और आर्थिक विकास मे वृद्धि का शक्तिशाली साधन मानते थे। उनका विचार था कि भौतिक प्रोत्साहन समाजवादी प्रणाली द्वारा विकसित नैतिक प्रेरणाओ का पूरक है।

काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रेरणाओ का सही समन्वय कम्युनिज्म के लिए सघर्ष मे एक महान सृजनात्मक शक्ति है। हम कम्युनिज्म की ओर जितना आगे बढते जायेंगे काम के लिए नैतिक प्रेरणाओ, श्रम के फला की सामाजिक मान्यता, और समस्त जनता के ध्येय के लिए समाज के हर सदस्य मे जिम्मदारी की भावना का महत्व उतना ही अधिक बढता जायगा।

प्रतिष्ठानो को जितना ही अधिक प्रोत्साहन दिया जायगा, भौतिक प्रेरणा के सिद्धान्त से उतनी ही अधिक माग की जायगी कि काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रेरणाओ का सही समन्वय स्थापित किया जाय। कुछ मामलो मे देखा गया है कि इन दोनो के बीच आवश्यक एकता का अभाव है। भौतिक दिलचस्पी और नैतिक प्रेरणाओ के बीच एकता न केवल आर्थिक रूप से जरूरी है, बल्कि श्रम की ओर एक सच्चे कम्युनिस्ट दृष्टिकोण को विकसित करने और कम्युनिस्ट समाज के निर्माताओ की शिक्षा के लिए भी जरूरी है।

भौतिक प्रोत्साहनों को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि काम के लिए नैतिक प्रेरणाआ को शक्ति मिले। श्रम और उसके परिणामो की समस्त लेखा प्रणाली के फलस्वरूप अच्छा काम करने, ज्यादा उत्पादकता हासिल करने, सामाजिक हिता को आगे बढाने, जनता की सम्पदा की रक्षा के लिए अधिक तत्परता दिखाने, श्रम और भौतिक साधनों मे किफायत करने को भावना तीव्र हो जानी चाहिए।

समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान काम के लिए भौतिक व नैतिक प्रेरणाए एक दूसरे को बढाती हैं तथा एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख होती हैं। काम के लिए नैतिक प्रेरणा को विकसित करने की ओर लक्षित विचारधारात्मक और शैक्षिक कार्य तथा उत्पादन के विकास के लिए मेहनतकशा की भौतिक रुचि को तीव्र करने का काम एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुडे हुए हैं। नैतिक तथा भौतिक प्रेरणाओ को किसी भी रूप मे एक-दूसरे के विरोध मे खडा करने से कम्युनिस्ट निर्माण को अनिवार्यत: क्षति पहुचेगी।

वेतन-समानीकरण से हानि

पूंजीवाद के प्रारम्भिक काल मे, जब पूंजीपति वर्ग सामन्तवाद के खिलाफ सघर्षरत था, तो उसने आम जनता को अपनी ओर लाने के लिए समानता के नारे

का इस्तेमाल किया था। किन्तु पूंजीवादी शासन औपचारिक एकता के पर्दे के पीछे शोषकों व शोषितों के बीच की, अमीरों और गरीबों के बीच की, भयकारतम असमानता छिपाये रहता है।

मजदूर वर्ग पूंजीवादी समाज की औपचारिक समानता के विरोध में सच्ची समानता की माग उठाता है। समानता की इस माग की वास्तविक अन्तर्वस्तु, जैसा कि मार्क्स और एगेल्स ने समझाया था, वर्गों का ध्वस है।

शोषण का खात्मा करके, समाजवाद वर्गीय असमानता को खत्म कर देता है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि समाज हर व्यक्ति की उपभोग आवश्यकताओं, उसकी निजी रुचियों और आवश्यकताओं, का भी समानीकरण कर देता है।

श्रम की मात्रा और गुण के अनुसार वितरण के साथ साथ निम्न पूंजीवादी समानीकरण के खिलाफ भी सघर्ष चलता रहता है। खर्च किये गये श्रम की मात्रा और गुणों, योग्यता, उत्पादकता और जिम्मेदारी की भावना का बिना कतई-कोई ध्यान रखे श्रम के भुगतान को समान कर देना—इसका समाजवाद से कतई तालमेल नही बैठ सकता। इस प्रकार की समानता का, अच्छा काम करने वालों के लिए भौतिक प्रेरणा से, टकराव होता है। इस तरह की समानता उत्पादन का सुधार करने की मजदूरों की भौतिक दिलचस्पी को कुन्द कर देती है। यह श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि करने और मजदूरों की कार्यकुशलता को उन्नत करने मे बाधक बनती है।

श्रम के अनुसार वितरण और कम्युनिस्ट निर्माण

श्रम के अनुसार वितरण, कम्युनिज्म की उच्चतर अवस्था के लिए भौतिक और आत्मिक पूर्वापेक्षाओं का निर्माण करने मे जबर्दस्त भूमिका अदा करता है। समाजवादी समाज की उत्पादनकारी शक्तियों के सर्वाधिक तेजी से विकास को सुनिश्चित करने के लिए वितरण की यह विधि अनिवार्य है।

कम्युनिज्म के निर्माण को भौतिक दिलचस्पी के सिद्धान्त पर निर्भर होना होगा। कम्युनिस्ट निर्माण के समूचे काल मे श्रम के अनुसार भुगतान, मेहनतकश जनता की भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का मुख्य स्रोत रहता है। इसके साथ ही, जैसा कि सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है, कम्युनिज्म जैसे-जैसे नजदीक आता जायगा, वैसे ही वैसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति, अधिकाधिक रूप में, सामाजिक उपभोग निधियों से होगी और इन निधियों की वृद्धि की दर श्रम के अनुसार अलग-अलग व्यक्तियों को भुगतान की दर से आगे निकल जायगी। अलग-अलग व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त मे सक्रमण उसी समय सम्भव हो सकेगा जब श्रम के अनुसार वितरण का समाज-

वादी सिद्धान्त अपनी उपयोगिता पूरी तरह खत्म कर चुका होगा, अर्थात जब भौतिक और सास्कृतिक सम्पदा की बहुतायत हो जायगी और श्रम करना समाज के सभी सदस्यो के लिए एक जीवन्त आवश्यकता बन जायगा।

जीवन का द्वन्द्ववाद कुछ इस प्रकार का है कि श्रम के अनुसार वितरण के सिद्धान्त का लागू किया जाना, आवश्यकताओ के अनुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त को लागू करने की परिस्थितिया तैयार करता है। वितरण के इन दो रूपो के बीच उसी तरह कोई दीवार मौजूद नही है जैसे कि कम्युनिस्ट समाज की दोनो अवस्थाओ के बीच कोई दीवार नहीं है।

२. राजकीय प्रतिष्ठानो मे वेतन

समाजवादी प्रतिष्ठानो मे वेतन निर्धारण के बुनियादी सिद्धान्त

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम का प्रतिफल काम की मात्रा और गुण के अनुसार वितरण के नियम के हिसाब से अदा किया जाता है। इस नियम पर अमल करते हुए, समाजवादी समाज श्रम का प्रतिफल अदा करने की विधियो और रूपो मे सुधार लाने के लिए निरन्तर इस नियम का इस्तेमाल करता है।

राजकीय स्वामित्व के समाजवादी प्रतिष्ठानो मे काम करने वाले कार्यालयो व कारखानो के मजदूरो को वेतन अदा किया जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत वेतन, समग्र समाज—जिसका प्रतिनिधित्व राज्य करता है—और कारखानों व कार्यालयो मे काम करने वाले अलग-अलग मजदूरो के बीच सम्बध को अभिव्यक्त करता है। इस प्रक्रिया मे मजदूरों के श्रम का आकलन, श्रम की मात्रा और गुणो के अनुसार किया जाता है।

समूचे मजदूर वर्ग को अदा किया जाने वाला वेतन, राष्ट्रीय आय का वह भाग होता है जो कारखानो व कार्यालयो मे काम करने वाले मजदूरो के व्यक्तिगत उपयोग के काम मे आता है और जिसका वितरण श्रम के अनुसार किया जाता है। वेतन का भुगतान नकद मुद्रा मे किया जाता है।

समाजवादी समाज मे श्रमशक्ति के मूल्य के बारे मे बाजार के नियमो के सचलन के लिए—पूजीवाद के अन्तगर्त जिनसे वेतन का स्तर निश्चित होता है—कोई स्थान नही है। वेतन के आकार के बारे मे यहा मजदूर वर्ग और पूजीपतियो के बीच कोई सघर्ष नही होता, क्योकि यहा पूजीपति वर्ग है ही नही। मजदूरो के बीच होड नही रहती। मजदूर वर्ग, राजकीय सस्थाओ के माध्यम से, समाज के हितो को ध्यान मे रखते हुए, नियोजित रूप से वेतनो का आकार स्वय निश्चित करता है।

वेतन स्तर इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि मेहनतकश जनता की खुशहाली मे निरन्तर वृद्धि के साथ-साथ समाज के पास बच रहने वाला अधिशेष उत्पाद का अश इतना पर्याप्त अवश्य हो कि उससे समाज की सारी आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके । वेतन नीति की यह एक जिम्मेदारी होती है कि वह कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो, विशेषज्ञो और राजकीय प्रतिष्ठानो के मैनेजरो मे उनके अपने श्रम के नतीजो के प्रति भौतिक दिलचस्पी की गारन्टी करे ।

वर्तमान समय मे वेतन नीति का मुख्य उद्देश्य चालू पचवर्षीय योजना के अत्यन्त महत्वपूर्ण उत्पादन कर्तव्यो को पूरा करने के प्रोत्साहन के रूप मे वेतनो को लगातार ऊपर उठाना है । वेतनो मे व्यवस्थित वृद्धि को इस बात से जोडा जायगा कि उत्पादन के सुधार और विकास मे जो मजदूर अधिक योग-दान करते हैं, उन्हे ज्यादा प्रोत्साहन मिले । श्रम के प्रतिफल की अदायगी की प्रणाली इस ढग से आयोजित की जानी चाहिए कि हर मजदूर और टेक्नी-शियन को यह मालूम हो कि यदि वह अपने काम के सूचको मे सुधार कर ले तो उसके वेतन मे कितनी वृद्धि होगी तथा प्रतिष्ठान को प्राप्त होने वाली अति-रिक्त आय मे से व्यक्तिगत रूप से उसे कितना भाग प्राप्त होगा ।

समाजवादी समाज मे वेतनो का आकार मुख्यत श्रम उत्पादकता के स्तर पर निर्भर होता है । श्रम उत्पादकता मे वेतनो की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि होनी चाहिए । यह एक ऐसी शर्त है जो इस बात की गारन्टी करती है कि समाज के पास अपनी बढती हुई जरूरतो की पूर्ति के लिए तथा उत्पादन के विस्तार व सचय के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध रहेगे ।

कुशल मजदूरो को अकुशल मजदूरो की अपेक्षा अधिक वेतन मिलता है । यह श्रम की मात्रा तथा उसके गुण के अनुसार वितरण के समाजवादी नियम के अनुरूप ही है कुशल श्रम उच्चतर किस्म का श्रम होता है, उच्चतर मूल्य पैदा करने वाला श्रम होता है । कुशल श्रम के लिए अधिक प्रतिफल देने से मजदूरों को अपना सुधार करने की प्रेरणा मिलती है और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

कठिन कामो मे लगे मजदूरो तथा प्रमुख पेशो के मजदूरो—उदाहरण के लिए, कोयला खानो मे कम्बाइन-आपरेटरों, इस्पात गलाने वालो, धातुशोधन में रोलिंग मिल आपरेटरों, आदि—को भी अधिक वेतन मिलता है । नयी पचवर्षीय योजना के काल मे हानिप्रद व कठिन परिस्थितियों मे, भूमिगत तथा अधिक परि-श्रम वाले कामो मे, कार्यरत मजदूरो को अधिक सुविधाए दी जायेंगी ।

वेतन नीति निर्धारित करते समय देश के विभिन्न क्षेत्रों की विशेषताओं, उनकी प्राकृतिक तथा जलवायु सम्बधी स्थिति, क्षेत्रों का आर्थिक विकास किस

मंजिल तक हुआ है तथा चीजो की फुटकर कीमतें क्या हैं, आदि, बातों को भी ध्यान मे रखा जाता है।

काम का मूल्यांकन श्रम के अनुसार वितरण के आर्थिक नियम के अनुरूप वेतनो के निर्धारण मे यह बात पहले से मान कर चलना होता है कि काम का मूल्याकन सही तौर पर किया जायगा और विवेक-पूर्ण क्रम-निर्धारण प्रणाली लागू की जायगी।

किसी मजदूर को उसके श्रम की मात्रा और गुण के अनुसार वेतन अदा करने के लिए हमें सबसे पहले यह निश्चित करना होगा कि प्रत्येक काम को पूरा करने के लिए कितने श्रम की आवश्यकता होती है। इस काम को तकनीकी मूल्याकन—समय कोटो या तैयार माल के कोटो (मानको) की स्थापना—द्वारा पूरा किया जाता है। तकनीकी मूल्याकन मे निरन्तर सुधार आर्थिक विकास के सर्वप्रथम कर्तव्यो मे से एक है।

समय का मानक, किसी निश्चित काम को पूरा करने के लिए आवश्यक समय के सम्पूर्ण खर्च को परिभाषित करता है। उत्पादन मानक इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि किसी मजदूर को एक निश्चित समय—एक घंटे, एक कार्य-दिवस या एक महीने—मे कितनी सख्या या मात्रा मे माल तैयार करना चाहिए, या उसी अवधि मे कितने भागो का उत्पादन करना चाहिए, या उत्पादन के कितने सचलन पूरे करने चाहिए। उत्पादन मानक काम के घंटों (या कार्य-दिवस, या प्रति मास काम के कुल घटो) को, उत्पादित पदार्थों की एक इकाई के उत्पादन के लिए, समय मानक से भाग देकर निश्चित किया जाता है।

समय मानक का प्रयोग अधिकाशतः व्यक्तिगत तथा छोटी-छोटी टुकडियो में होने वाले उत्पादन के लिए किया जाता है तथा उत्पादन मानक का प्रयोग बडे पैमाने के उत्पादन के लिए होता है।

उत्पादन मानको के निर्धारण के समय प्रतिष्ठानो मे पायी जाने वाली परिस्थितियो को ध्यान मे रखा जाता है, किन्तु साथ ही उपलब्ध सचयो पर भी आवश्यक ध्यान रखा जाता है : इन सचयों मे उपकरणो के बेहतर इस्ते-माल के अवसरो तथा प्रविधि का सुधार भी शामिल होते है। हर काम को पूरा करने के लिए अत्यन्त उत्पादनकारी विधियो को लागू करने की गारन्टी के हेतु सागठनिक और तकनीकी कदम तय किये जाते है। इस प्रकार तक-नीकी दृष्टि से न्यायसगत मानक स्थापित किये जाते हैं।

समाजवादी उद्योग के प्राविधिक उपकरणों मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है। उत्पादन विधियो और श्रम संगठन मे सुधार किया जाता है, उत्पादन का सुधार करने के लिए बहुत से कदमों पर अमल किया जाता है। इन सबके

परिणामस्वरूप मजदूरो को, श्रम खर्च मे वृद्धि के बिना ही, अपने उत्पादन को बढाने मे सहायता मिलती है। उत्पादन मे जैसे-जैसे प्राविधिक और सागठनिक सुधार लागू किये जाते हैं, वैसे ही वैसे मानको मे सशोधन-परिवर्धन किया जाता है। मानको के अनधिकृत सशोधन-परिवर्धन को रोकने तथा इस विषय मे प्रतिष्ठानो के कर्मचारियो की शिरकत को सुनिश्चित करने के लिए मानको के सभी सशोधनो या कारखाने के ट्रेड यूनियन सगठन द्वारा स्वीकृत किया जाना जरूरी होता है।

मानको को हमेशा ही उपकरणो, प्रविधि और उत्पादन सगठन के स्तर के अनुरूप होना चाहिए। केवल इसी तरह वे उत्पादन मे अपनी सागठनिक भूमिका अदा करने मे समर्थ होते हैं।

मजदूरो का प्रतिफल क्रम-निर्धारण प्रणाली पर आधारित होता है। इस प्रणाली के मुख्य तत्व क्रमो की अनुसूची, बुनियादी दर और दक्षता-क्रम-निर्धारण पुस्तिका होते हैं।

क्रमो की अनुसूची से काम की जटिलता या कठिनाई के अनुसार भुगतान निश्चित किया जाता है। सभी कामो को समूहो की एक निश्चित सख्या या क्रमो मे बाट दिया जाता है।

बुनियादी दरें, स्थिर उत्पादन मानक को पूरा करने पर भुगतान की रकम निश्चित करती हैं। क्रम १ की बुनियादी दर, ऊपरी क्रमो की दरो को निश्चित करने मे मदद करती है। दूसरी कौशल-श्रेणियो की वेतन दरें, क्रम १ की दरो को तत्सम्बधी क्रम की कौशल-श्रेणी के गुणाक से गुणा करके, निश्चित की जाती हैं।

कौशल क्रम निर्धारण पुस्तिका मे प्रतिष्ठान मे पूरे किये जाने वाले कामो के लक्षणो और विशेषताओ का विवरण दर्ज होता है। यह पुस्तिका किसी भी मजदूर की योग्यताओ को निश्चित करने और उसको क्रमो की अनुसूची के अन्तर्गत किसी निश्चित क्रम मे रखने के आधार का काम करती है।

वेतनो के रूप और प्रणालिया

राजकीय स्वामित्व के समाजवादी प्रतिष्ठानो मे वेतन अदायगी के दो मुख्य रूप हैं: कार्य दरें और समय-दरें। इन दोनो मे से प्रत्येक रूप व्यक्ति तथा समूह के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

कार्य दर का प्रचलन बडे पैमाने पर है। इसके मातहत किसी मजदूर के श्रम का भुगतान प्रत्यक्षत. उसके द्वारा किये गये उत्पादन की मात्रा पर, या इस बात पर कि उसने कितने हिस्से तैयार किये हैं या कितने सचलन (ऑपरेशन) किये हैं, पर निर्भर होता है। सोवियत उद्योगो मे लगे मजदूरो की सख्या के दो तिहाई से अधिक भाग को कार्य-दर प्रणाली के आधार पर वेतन अदा

किया जाता है। कार्य दर से मजदूरो को अपनी कार्य-कुशलता मे वृद्धि करने, उपकरणो का बेहतर इस्तेमाल करने, कार्य के समय की बर्बादी के खिलाफ संघर्ष चलाने, उत्पादन मे आने वाले अवरोधो और सागठनिक रुकावटो को खत्म करने मे सहायता मिलती है।

व्यक्तिगत प्रत्यक्ष कार्य-दर प्रणाली के अन्तर्गत मजदूर को उसके द्वारा किये जाने वाले उत्पादन की प्रति इकाई के लिए एक निश्चित कार्य दर के अनुसार भुगतान किया जाता है। कार्य दरें—काम और समय, अथवा उत्पादन मानक, के अनुसार निश्चित की जाती हैं।

कुछ मामलो मे प्रगतिशील कार्य दर प्रणाली लागू की जाती है, जिसके अनुसार बुनियादी कोटे से अधिक उत्पादन होने पर प्रत्येक इकाई पर अधिक ऊची दर से भुगतान किया जाता है। इस प्रणाली को बहुत बडे पैमाने पर या निरन्तर लागू नही किया जा सकता, क्योकि इसके अन्तगत मजदूर का वेतन उसकी श्रम उत्पादकता की तुलना म अधिक तेजी से बढ सकता है। किन्तु कुछ मामलो मे, जहा रुकावटो और अवरोधो का दूर किया जाना बहुत जरूरी हो गया हो, प्रगतिशील कार्य-दरो को लागू करना प्रतिष्ठान के हित मे हो सकता है।

उद्योग मे समय दरें भी लागू की जा सकती हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत मजदूर को उसके श्रम का प्रतिफल इस आधार पर दिया जाता है कि उसने काम मे कितना समय लगाया है। सोवियत उद्योग मे लगभग एक तिहाई मजदूर इस प्रणाली के अन्तर्गत काम करते है।

समय दर उन स्थानो पर लागू की जाती है जहा मजदूरो के वास्तविक उत्पादन को निश्चित करना असम्भव होता है, उदाहरण के लिए मरम्मत के काम मे। मरम्मत-मजदूरो, एडजस्टरो, क्रेन चालको, इलेक्ट्रीशियनो, आदि, का वेतन भुगतान करने मे इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। स्वचालित उत्पादन के कुछ भागो मे भी, जहा मजदूरो को मुख्यत एडजस्टमेंट, मरम्मत और मशीनरी के रख-रखाव का काम ही करना होता है, समय-दरो को लागू किया जाता है। अत्यधिक-नियन्त्रित (स्वचालित) मशीनरी और काम की स्थितियो वाले प्रतिष्ठानो तथा क्षेत्रो म समय प्रणाली+बोनस प्रणाली पर सफलतापूर्वक अमल किया जाता है।

वेतनो के संगठन मे सुधार

समाजवादी समाज की उत्पादनकारी शक्तियो के विकास तथा श्रम के क्षेत्र मे अधिक उपकरणो के उपलब्ध होने के साथ साथ, श्रम के प्रतिफल के समस्त रूपो मे भी सुधार व विकास होता रहता है। पिछले कुछ वर्षों म कारखानो और कार्यालयो के मजदूरो के वेतनो मे सुधार के कदम उठाये गये हैं। उत्पादन की

विभिन्न शाखाओ मे समरूप श्रम लागू किये गये हैं। प्रतिष्ठानो की विभागीय आधीनता चाहे कुछ भी क्यों न रही हो, नयी बुनियादी दरें, श्रमों की नयी अनुसूचिया और नये वेतन—उत्पादन की शाखाओं मे चालू किये गये हैं। फल-स्वरूप, श्रमों की अनुसूचियों की सख्या २००० से घटा कर १० कर दी गयी है, ग्रेड १ की बुनियादी दरों की सख्या कई हजार से घटा कर ३० कर दी गयी है तथा वेतनो के स्केल ७०० से घटा कर ३०-३५ कर दिये गये हैं। इस प्रकार अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ मे समरूप मानको को बड़े पैमाने पर लागू करने का मजबूत आधार तैयार हो गया है। बुनियादी उद्योगों मे तकनीकी आधार पर निर्धारित उत्पादन मानकों का हिस्सा बढ गया है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मजदूरों के विभिन्न श्रेणियो के श्रम के प्रति-फलो के बीच जो अत्यधिक अन्तर पैदा हो गया था, वेतन सुधार के कदमों के द्वारा उसे समाप्त कर दिया गया है। सप्तवर्षीय योजना की अवधि मे कार-खानो और कार्यालयो मे काम करने वाले मजदूरो तथा निम्न और मध्यम आमदनी वाले कर्मचारियो के न्यूनतम वेतन मे वृद्धि की गयी है। जनसख्या की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उद्योगो मे—शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, सस्कृति, व्यापार और आवास तथा अन्य जनोपयोगी कार्यों मे—लगे श्रमिको के श्रम के प्रतिफल मे भी वृद्धि की गयी है। चालू पचवर्षीय योजना के काल मे एक बार फिर अर्थव्यवस्था मे न्यूनतम वेतनो को बढाया गया है, और अब वह ६० रूबल प्रति मास है।

भौतिक प्रोत्साहन निधि

उत्पादन की नयी प्रणाली ऐसी स्थितियो को उत्पन्न करती है जिनके तहत प्रतिष्ठानो के सामने वेतन मे वृद्धि करने की सभावनाए मुख्यतः इन बातो पर निर्भर होगी : उत्पादन मे वृद्धि तथा उत्पादित सामान के गुणात्मक स्तर मे सुधार, मुनाफो मे इजाफा और लाभदायकता मे उन्नति। कारखानो व कार्यालयों के मजदूरो की बुनियादी दरो और वेतनो मे एक ओर जहा एक केन्द्रीकृत रूप मे इजाफा होता रहेगा, वहा दूसरी ओर प्रतिष्ठानो मे वेतन निधि के अतिरिक्त एक भौतिक प्रोत्साहन निधि भी स्थापित की जायगी जिससे मजदूरो को उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियो के लिए पुरस्कृत किया जायगा। ऐसी निधि समग्र प्रतिष्ठान की कारगुजारी मे सुधार से सम्बद्ध रहती है।

पहले की स्थितियो से, जब प्रतिष्ठानो के कर्मचारियो को अपने काम के सामान्य परिणामो मे सुधार के लिए भौतिक प्रोत्साहन देने की प्रथा लगभग नगण्य थी, यह आर्थिक सुधार एक बुनियादी परिवर्तन का द्योतक है। इस सुधार के लागू होने से पहले, कारखानो और कार्यालयो के मजदूरों को प्रेरणा देने के लिए प्रतिष्ठानो के पास बहुत ही कम साधन होते थे और इनको

प्रतिष्ठान स्वय निर्मित करते थे। लगभग आधे कारखानो के पास मुनाफो से निर्मित निधिया होती ही नही थी। और, जिन कारखानो के पास इस प्रकार की कोई निधि होती भी थी, तो यह बहुत छोटी होती थी तथा उसमे प्रोत्साहन देने के लिए निर्धारित रकम बिलकुल नगण्य होती थी। मजदूरो को बोनस तथा अन्य पारितोषिक, नियमत, मुनाफो से नही, बल्कि वेतन निधि से दिये जाते थे। मुनाफो मे वृद्धि और उत्पादन की लाभदायकता मे इजाफे से मजदूरो के वेतन के आकार पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडता था।

नियोजन की नयी प्रणाली तथा आर्थिक प्रेरणा की व्यवस्था मे सक्रमण से प्रतिष्ठान के मुनाफो से एक अश को काट कर भौतिक प्रोत्साहन निधि की रचना की जा रही है। इस निधि से कारखानो और कार्यालयो के मजदूरो को साल के दौरान अच्छा काम करने के बोनस तथा साल के अन्त मे एक मुश्त इनाम दिये जाते है। भौतिक प्रोत्साहन निधि के लिए कटौतिया पहले से ही अनेक वर्षों के लिए निश्चित कोटो के अनुसार की जाती हैं, और इस निधि का आकार मडी मे बिके उत्पादन माल की मात्रा मे वृद्धि तथा योजना मे परिलक्षित मुनाफो और लाभदायकता पर निर्भर करता है। योजना की अतिपूर्ति के लिए दिया जाने वाला इनाम योजना के सूचको की पूर्ति की अपेक्षा कम होगा, ताकि प्रतिष्ठानो को योजना के उच्च से उच्चतर लक्ष्य निर्धारित करने मे दिलचस्पी रहे और वे उनको पूरा कराने के लिए अपने समस्त सचयो को एकजुट करें।

उत्पादित पदार्थों मे होने वाली वृद्धि तथा उत्पादित पदार्थों के गुणात्मक स्तर मे सुधार के परिणामस्वरूप कीमतो मे उभार आ जाने से होने वाली अतिरिक्त आय मे इजाफे से भी भौतिक प्रोत्साहन निधि मे बढौतरी हो जाती है। इससे प्रतिष्ठानों को नये उत्पादित पदार्थों के उत्पादन पर काबू पाने तथा उत्पादित पदार्थों का गुणात्मक स्तर ऊचा उठाने मे दिलचस्पी पैदा होती है। सामाजिक सास्कृतिक कदमो और आवासीय निर्माण के लिए प्रतिष्ठान मे एक निधि की स्थापना से मजदूरो को भौतिक प्रोत्साहन प्रदान करने का क्षेत्र बहुत ज्यादा बढ जाता है। इस निधि के साधनो से आवास निर्माण, शिशु सस्थाओ और पायनियर कैम्पो की देखभाल तथा सैनेटोरियमो व विश्राम गृहो के बेहतर सगठन के लिए केन्द्रीकृत ससाधनो मे योगदान किया जाता है।

इस प्रकार के आर्थिक सुधार से, उत्पादन के परिणामो मे मजदूरा की भौतिक दिलचस्पी को बढाने के लिए प्रतिष्ठानो के मुनाफे के भाग का बेहतर इस्तेमाल सम्भव हो जाता है। मुनाफा—कारखानो और कार्यालयों के मजदूरो को भौतिक प्रोत्साहन देने का एक महत्वपूर्ण आन्तरिक साधन बन जाता है। इससे प्रतिष्ठान के कार्यकलाप के सामान्य परिणामो मे मजदूरो की भौतिक

दिलचस्पी बढाने, उत्पादन के विकास मे मजदूरो की दिलचस्पी तीव्र करने, श्रम को बेहतर ढग से सगठित करने तथा प्रतिष्ठान की कारगुजारी के परिमाणात्मक व गुणात्मक सूचको को ऊचा उठाने की परिस्थितिया पैदा होती है।

प्रतिष्ठानो मे भौतिक प्रोत्साहन निधियों के निर्माण से प्रतिष्ठान की कारगुजारी के सामान्य परिणामो मे सुधार लाने की सभी मजदूरो की सामूहिक दिलचस्पी मे इजाफा होगा। कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो के वेतनो मे बोनस और एक मुश्त नकद इनाम का अश बढाने से—जैसा कि नयी पचवर्षीय योजना मे प्रस्तावित किया गया है—प्रत्येक मजदूर के हितो का पूरे कर्मचारियो तथा समग्र समाज के हितो के साथ समन्वय करने मे सहायता मिलेगी। उत्पादन की नयी प्रणाली के लागू होने स बोनस की व्यवस्था—जिसमे श्रम उत्पादकता, काम की किस्म और व्यक्तिगत एव सामूहिक उत्पादन परिणामो का हिसाब लगाया जाता है—धीरे धीरे मजदूरो की समस्त श्रेणियो पर लागू हो जायगी।

३. सामूहिक फार्मों मे काम के हिसाब से भुगतान

सामूहिक फार्मों में काम के भुगतान की विशेषताए

समाजवादी प्रतिष्ठानो मे किये गये अपने सामूहिक श्रम के लिए मजदूर वर्ग और सामूहिक किसानो को समाजवादी सिद्धान्त "हर एक से उसकी योग्यतानुसार काम और हर एक को काम के अनुसार दाम" के आधार पर आमदनी होती है। किन्तु राजकीय प्रतिष्ठानो और सामूहिक फार्मों मे काम के लिए वेतन भुगतान के तरीको मे अन्तर है।

राजकीय प्रतिष्ठानो मे कारखानो व कार्यालयो के मजदूर जो वेतन पाते है, उसका आकार राज्य द्वारा निश्चित किया जाता है। सामूहिक फार्मों मे किसानो को सामूहिक अर्थव्यवस्था की आमदनी से भुगतान किया जाता है और भुगतान का आकार सामूहिक फार्मों के सदस्यो द्वारा निश्चित होता है। सामूहिक फार्म का उत्पादन बढने और उत्पादन पर होने वाले खर्चों मे कमी होने से फार्म की आमदनी मे जो वृद्धि होती है, उससे सामूहिक सघ के सभी सदस्यो की खुशहाली मे इजाफा होता है।

सामूहिक फार्मों मे श्रम के भुगतान का मुख्य स्वरूप कार्य दरें हैं। सामूहिक फार्म का बोर्ड फार्म पर पायी जाने वाली स्थितियो, किसी विशेष काम के लिए आवश्यक कार्यकुशलता, और कार्य विशेष की पेचीदगी तथा कठिनाई के अनुरूप हर काम के लिए उत्पादन के कोटो और दरों का निर्धारण करता है

तथा सामूहिक फार्म के सदस्यो की सामान्य सभा उनको स्वीकृति प्रदान करत है।

कृषि उत्पादन के अधिकाधिक यत्रीकरण, सामूहिक फार्मो के किसानो की कार्यकुशलता मे वृद्धि तथा बेहतर श्रम सगठन से सामूहिक फार्मों मे माल उत्पादन के कोटो और वेतन-दरो का व्यवस्थित सशोधन व पुनर्निर्धारण करना तथा नयी उपयुक्त दरों का लागू किया जाना आवश्यक हो जाता है। इससे श्रम उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि की गारन्टी होती है, सामूहिक अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन के लिए सचयो का विस्तार होना है और सामूहिक किसानो की भौतिक खुशहाली का विकास होता है। सामूहिक फार्मो के आन्तरिक सम्बधो मे सुधार होने से फार्मों के मजदूरो के श्रम के मूल्याकन, सगठन और प्रतिफल को राजकीय प्रतिष्ठानो के रूपो व स्तर के नजदीक लाना आवश्यक हो जाता है।

एक लम्बे अर्से तक सामूहिक किसानो के वेतन केवल काम के दिनो की इकाइयो के हिसाब से अदा किये जाते रहे। सामूहिक फार्मो मे होने वाले श्रम की विभिन्न किस्मो के लिए समान पैमाने के रूप मे काम के दिन की इकाई का प्रयोग होता था।

कार्य-दिवस इकाई प्रणाली के अन्तर्गत, सामूहिक फार्म पर किये गये काम के बदले हर किसान की आमदनी कार्य-दिवस की इकाइयों एव फार्म की आमदनी मे होने वाली वृद्धि पर निर्भर होती है। कार्य दिवस की इकाइयो की सख्या इस बात पर निर्भर होती है कि फार्म के हर सदस्य ने काम को किस मात्रा मे सम्पन्न किया है। किन्तु किसी कार्य दिवस की इकाई का आकार, अर्थात प्रत्येक कार्य-दिवस इकाई के बदले किसान को दिये जाने वाले उत्पादन सामान और नकद रकम की मात्रा—पूरे सघ के काम, उसकी अर्थव्यवस्था की स्थिति और उसकी आमदनी के आधार पर निर्धारित की जाती है।

कार्य-दिवस इकाइयो के आधार पर—प्रतिफल भुगतान प्रणाली के अन्तर्गत—किसानो को अपने काम की प्रत्येक कार्य दिवस इकाई के लिए फार्म पर होने वाले उत्पादन का एक अश माल के रूप मे, तथा आमदनी का एक अश नकद के रूप मे, दिया जाता है। सामूहिक किसान माल के रूप मे प्राप्त होने वाले उत्पादो का एक अश तथा उनके पास व्यक्तिगत उपभोग के लिए छोडी जमीन पर होने वाले उत्पादन का भी एक अश, बाजार मे बेचते हैं।

कार्य-दिवस इकाई प्रणाली ने "खाने वालो की सख्या" के अनुसार वितरण की समतावादी प्रणाली को हटा कर उसका स्थान लिया था। इसलिए कार्य-दिवसों की इकाई के आधार पर सामूहिक किसानो को उनके श्रम के प्रतिफल के वितरण की व्यवस्था, श्रम के अनुसार वितरण के समाजवादी सिद्धान्त की

एक भारी विजय थी। किन्तु कार्य-दिवस इकाई प्रणाली मे अलग-अलग टीमो द्वारा किये जाने वाले श्रम के गुणात्मक पहलू पर ध्यान नही दिया जा सकता। सामूहिक फार्मो मे होने वाले अगले विकास ने गुणात्मक स्तर के लिए एक अतिरिक्त पुरस्कार व्यवस्था को —फसलो के उच्च उत्पादन तथा पशुधन के उच्च उत्पादन की पुरस्कार व्यवस्था को—आवश्यक बना दिया।

कार्य-दिवस इकाई प्रणाली के अन्तर्गत सामूहिक किसानो को अपनी पूरी आमदनी साल के अन्त मे तथा अधिकाशत माल के रूप मे प्राप्त होती थी। बाद मे नकद रकम के रूप मे मासिक अग्रिम दिया जाने लगा। सामूहिक फार्मो की अर्थव्यवस्था मे अधिक विकास होने, तथा वस्तु मुद्रा सम्बधो के विकसित होने से सामूहिक सघो मे श्रम के बदले के प्रतिफल भुगतान प्रणाली मे परिवर्तन किया गया तथा निश्चित कोटो और दरो के आधार पर नकद भुगतान किया जाने लगा। इस प्रणाली के अन्तर्गत फार्म के कृषिजन्य माल का एक निश्चित भाग सामूहिक किसानो के बीच माल के रूप मे उनके वेतन के तौर पर बाट दिया जाता है। इसकी मात्रा सघ के सदस्यो की सामान्य सभा द्वारा निर्धारित होती है।

सामूहिक फार्मो और किसानो की आमदनी मे वृद्धि

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की मार्च (१९६५) की प्लेनरी बैठक तथा सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के फैसलो के अनुसार पार्टी और सरकार ने सामूहिक फार्मो की आमदनी तथा इन फार्मो मे काम करने वाले किसानो की आमदनी को बढाने के लिए बहुत से कदम उठाये है।

कृषि उत्पादन के पदार्थों को खरीदने के लिए वार्षिक लक्ष्यो की मजबूत योजना, पहले से कई वर्षों के लिए अग्रिम रूप से निश्चित कर दी गयी है। यह योजना अनाज के मामले मे ६ वर्षों के लिए है और अन्य पदार्थों के मामले मे ५ वर्षों के लिए। राजकीय खरीद की योजना को पूरा करने के लिए सामूहिक फार्मो को अपने उत्पादन को स्वतत्र रूप से नियोजित करने और अपनी व्यवस्था का विशिष्टीकरण करने की सुविधा प्रदान की गयी है, ताकि विकसित कृषि तकनीक के आधार पर अधिकाधिक आर्थिक लाभ अर्जित किया जा सके। इसी के साथ पहले की खरीद योजनाओ को घटा दिया गया, और खरीद की कीमतो मे पर्याप्त वृद्धि की गयी, ताकि सामान्य रूप से काम करने वाले सभी फार्मो मे कृषि उत्पादन लाभदायक हो सके। यदि फसलो का उत्पादन योजना के लक्ष्यो से बढ जाय, तो सामूहिक फार्म उस अतिरिक्त उत्पादन के अश को ऐसी ऊची कीमतो पर बेच सकते हैं जो योजना मे लक्षित

सामूहिक फार्मों और किसानो की आमदनी मे—सामूहिक-स्वामित्व की अर्थव्यवस्था के कारण—अधिक वृद्धि के हेतु कृषि के भौतिक एव तकनीकी आधार को विकसित व मजबूत करने की दिशा मे राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता बहुत महत्वपूर्ण है। पचवर्षीय योजना मे यह प्रावधान है कि कृषि के क्षेत्र मे राज्य द्वारा पूजी के विनियोगो मे १०० प्रतिशत की वृद्धि की जाय। पचवर्षीय योजना की अवधि मे उपकरणो को उपलब्ध करने और उत्पादन क्षमताओ का निर्माण करने के लिए ४,१०० करोड रूबलो की रकम निर्धारित की गयी है। इसी अवधि मे १७,९०,००० ट्रैक्टर, ११,००,००० लारियां तथा ५,५०,००० हारवेस्टर कम्बाइन सामूहिक फार्मों को सप्लाई किये जायेंगे। खनिज उर्वरकों की सप्लाई भी प्रति वर्ष बढ़ती रहेगी। सामूहिक फार्मों और राजकीय फार्मों का विद्युतीकरण अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। सामूहिक फार्मों को प्राप्त होने वाले नये उपकरणो से खनिज उर्वरको तथा विद्युत सप्लाई मे विपुल वृद्धि, साथ ही कृषि मे मजदूरों की भौतिक दिलचस्पी के बढ़ने से कृषि उत्पादन की ऊंची दर प्राप्त करने की गारन्टी होती है। खाद्य पदार्थों और औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि से देश की आवश्यकताओ को अच्छी प्रकार पूरा करने मे सहायता मिलती है। रसायनिक उर्वरको के इस्तेमाल तथा कृषि के यंत्रीकरण एव विद्युतीकरण से श्रम उत्पादकता को बढ़ाना, धीरे-धीरे मशीनरी की क्षमता को उद्योग के स्तर तक ले आना एव कृषि में लगे हुए श्रम के संगठन का औद्योगिक श्रम संगठन मे समरूप लाना सम्भव हो जाता है।

सामूहिक फार्मों की आर्थिक समृद्धि ही एक ऐसी बुनियाद है जो सामूहिक किसानों की खुशहाली को सुनिश्चित बनाती है और इस बात की सम्भावना बनाती है कि उनके जीवन का स्तर कारखानों व कार्यालयों के मजदूरों के स्तर के नजदीक पहुंचता जायगा।

सामूहिक फार्मों मे मजदूरों को गारन्टीशुदा वेतन-व्यवस्था की शुरूआत

सामूहिक फार्मों मे गारन्टीशुदा भुगतान की व्यवस्था फार्मों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने तथा ग्रामीण जनसख्या के जीवन की परिस्थितियो मे सुधार करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

पिछले दिनो सामूहिक फार्मों मे आमदनियो का वितरण जिन विधियो से किया जाता था, उनसे अक्सर सामूहिक किसानो के श्रम के वेतन के आकार मे ढुलमुलपन पैदा हो जाता था। बहुत से सामूहिक फार्मों मे किये जाने वाले काम के लिए स्थायी वेतन निश्चित नही थे। इस सम्बध मे पार्टी और सरकार ने सिफारिश की कि सामूहिक फार्मों मे सामूहिक किसानो के लिए राजकीय फार्मों मे उपलब्ध वेतन दरो के आधार पर गारन्टीशुदा भुगतान की व्यवस्था लागू की जाय। उत्पादित होने वाले पदार्थों के कोटे, फार्म की ठोस स्थिति को ध्यान मे रख कर लागू किये जाते हैं तथा वे सामूहिक फार्मों मे लागू कोटो पर आधारित होते हैं।

सामूहिक फार्मों की अर्थव्यवस्था के विकास से सामूहिक फार्मों मे मजदूरो के लिए गारन्टीशुदा मासिक वेतन भुगतान की व्यवस्था लागू करना सम्भव हो गया है। १९६५ मे उत्पादित पदार्थों को बिक्री से सामूहिक फार्मों की आमदनी मे—१९६४ की तुलना मे—२५० करोड रूबलो का इजाफा हो गया और इसका लगभग ५० प्रतिशत अश किसानो की आमदनी मे वृद्धि करने पर खर्च किया गया। कम वेतन स्तर वाले फार्मों की सख्या तेजी से घटी है। कुछ बचे हुए फार्मों को भी आर्थिक व वित्तीय रूप से सुदृढ करने की सम्भावनाए पैदा हुई है।

सामूहिक किसानो को गारन्टीशुदा मासिक अदायगी व्यवस्था की शुरूआत सामूहिक फार्मों की आमदनियो के वितरण की सम्पूर्ण प्रणाली मे एक बुनियादी सुधार है। पहले सामूहिक किसानों के वेतनो की अदायगी के लिए कोष उस आमदनी से निर्मित होता था, जो अवितरणीय तथा सामाजिक निधियो मे योगदान से बचती थी। किन्तु अब—सामूहिक फार्मों की आमदनी के वितरण के पहले ही—सामूहिक किसानो के श्रम के लिए अदायगियो की रकम अलग कर ली जाती है। इस बात की सिफारिश भी की गयी है कि अनाज तथा अन्य पदार्थों के कुल उत्पादन का एक निश्चित भाग अलग रख लिया जाय, जो सामूहिक किसानो को माल के रूप मे उनकी आमदनी की गारन्टी कर सके। सामूहिक किसान, सघ के सदस्यो की सामान्य सभा द्वारा निश्चित प्रक्रिया के अनुसार, अपनी गारन्टीशुदा मजदूरी के हिसाब मे इन उत्पादो को प्राप्त कर सकते हैं।

सामूहिक किसानो के श्रम के लिए गारन्टीशुदा वेतन की शुरूआत और उस वेतन के आकार मे और ज्यादा वृद्धि के कदम सामूहिक फार्मों मे उत्पादन के विकास और श्रम उत्पादकता की वृद्धि, किफायती व्यवस्था के मजबूती से लागू किये जाने तथा सामूहिक फार्म अर्थव्यवस्था के विकास के लिए निरन्तर चिन्ता के आधार पर उठाये जाते हैं। पचवर्षीय योजना के मुख्य कामो मे से एक कार्य को, अर्थात शहर और देहात के जीवन स्तर को बराबर लाने के कार्य को, पूरा करने की दिशा मे यह एक बडा कदम है।

४. सामाजिक उपभोग निधि

जनता के रहन-सहन के स्तर की उन्नति के लिए सामाजिक उपभोग निधि का महत्व

श्रम के प्रतिफल के द्वारा मेहनतकश जनता की आमदनी मे होने वाली वृद्धि के साथ ही सामाजिक उपभोग निधि मे भी निरन्तर वृद्धि का जारी रहना जनता की खुशहाली के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस निधि से शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पेन्शन सुविधाओ, बाल सस्थाओ मे बच्चो की देखभाल, आदि, पर राज्य द्वारा किये जाने वाले खर्चों को पूरा किया जाता है। भविष्य मे नि शुल्क सार्वजनिक सेवाओं के खर्च भी इसी निधि से पूरे किये जायेंगे। सामाजिक उपभोग निधि समाजवादी समाज मे जनता की सामाजिक व सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे भारी भूमिका अदा करती है। सामाजिक उपभोग निधि ज्यादा बच्चो वाले परिवारों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

नि शुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाए, बेरोजगारी का अन्त तथा समाजवाद की अन्य बहुत सी श्रेष्टताए लम्बे अर्से से सोवियत जनता की दैनिक जिन्दगी का अग बन चुकी हैं। ये सुविधाए सोवियत जनता की एक अपरिवर्तनीय व अत्यन्त ठोस उपलब्धि हैं। इस मामले में सोवियत सघ की जनता ने पूजीवादी देशो को बहुत पीछे छोड दिया है। इन सुविधाओ के लिए भुगतान सामाजिक उपभोग निधि से किया जाता है। युद्धोत्तर काल मे इस निधि मे विशेष रूप से अत्यन्त तेज गति से विस्तार हुआ है। इस निधि से जनता को उपलब्ध किये जाने वाले अनुदानों और सुविधाओं की रकम १९४० के ४६० करोड रूबल से बढ कर १९६५ मे ४,१५० करोड रूबल तक पहुच गयी।

सामाजिक उपभोग निधि मे होने वाली वृद्धि जनता के रहन-सहन के स्तर पर सराहनीय प्रभाव डालती है। इस बात को नीचे लिखे तथ्यो से देखा जा सकता है। कारखानो व कार्यालयो के मजदूरों का औसत वेतन, जो १९५८ में ७८ रूबल था, १९६५ मे बढ कर ९५ रूबल हो गया। यदि सामाजिक उपभोग निधि से प्राप्त होने वाली सुविधाओं और अनुदानों को भी ध्यान में

रखा जाय तो इसी अवधि मे उनकी आमदनी १०४ से बढ़ कर १२८ रूबल हो गयी है। १६६५ म सामूहिक किसानो के लिए राज्य की ओर मे पेन्शन-योजना को लागू किया गया। राजकीय पेन्शन प्राप्त करने वालो की सख्या २ करोड स बढ़ कर ३ २ करोड हो गयी है। शहरो और देहातो मे लगभग १ करोड ७० लाख फ्लैटो और भवना का निर्माण किया गया है। यह सख्या सप्तवर्षीय योजना के आरम्भ म उपलब्ध कुल आवासीय सुविधाओ स २/५ गुनी अधिक है।

सामाजिक उपभोग-निधि की किस्मे

कम्युनिस्ट निर्माण के पूरे दौर मे काम की मात्रा और उसके गुणो के अनुसार प्रतिफल के भुगतान की प्रणाली जहा जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति का मुख्य स्रोत बनी रहेगी, वही साथ ही सामाजिक उपभोग निधि का भी निरन्तर विस्तार होता रहेगा। इससे श्रम के फलो मे मेहनतकश जनता की दिलचस्पी मे कोई कमी नही आती, बल्कि अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक समस्याओ को कम्युनिस्ट तरीके से हल करने मे सहायता मिलती है।

इन समस्याओ मे सर्वप्रथम तो नयी पीढी के पोषण की समस्या है। समाजवादी समाज इस जिम्मेदारी से सम्बधित सभी खर्चों को अपने जिम्मे लेने के रास्ते पर आगे बढ रहा है।

दूसरी समस्या है देश की जनसख्या के शैक्षिक स्तर को उन्नत करने तथा सस्कृति और विज्ञान का विकास करने की। इसमे पाठशालाओ, शिक्षा सस्थाओ, विश्वविद्यालयो, शोध सस्थाओ, थियेटरो तथा सिनेमा घरो, आदि, के निर्माण पर होने वाले राजकीय खर्च शामिल होते हैं।

तीसरी समस्या जनता के स्वास्थ्य की रक्षा की समस्या है। इसमे स्वास्थ्य सेवाओ के विस्तृत क्षेत्र तथा विश्राम व चिकित्सा की व्यवस्था करना शामिल है।

चौथी समस्या जनता की जीवन स्थितियो मे सुधार करने की है। इसमे आवासीय समस्या का हल, जनता के लिए अच्छे मकानो का उपलब्ध किया जाना तथा सार्वजनिक सेवाए आदि, शामिल है।

पाचवी समस्या काम के लिए अयोग्य हो गये समाज के सदस्यो की देख-रेख की है। इसमे वृद्ध या अपग हो जाने पर दी जाने वाली पेन्शनें आती हैं।

सामाजिक उपभोग निधि के विस्तार से सम्पत्ति सम्बधी असमानता को —जोकि समाजवादी समाज मे किसी हद तक अपरिहार्य है क्योकि समाजवाद के अन्तर्गत श्रम का भुगतान काम की मात्रा और उसके गुण के अनुसार करना एक वस्तुगत आवश्यकता होती है—दूर करने में काफी हद तक सहायता मिलती है।

५. जनता के रहन-सहन के स्तर को और भी उन्नत करने के मुख्य तरीके

जनता के रहन-सहन के स्तर के सूचकांक

जनता के रहन सहन के स्तर को किसी अकेले एक सूचकांक से अभिव्यक्त नही किया जा सकता। उसे तो जनता के जीवन और श्रम के विभिन्न पहलुओ को अभिव्यक्त करने वाले सूचकांकों की समूची श्रेणी द्वारा ही अभिव्यक्त किया जा सकता है।

जनता की भौतिक खुशहाली का एक मुख्य सूचक मेहनतकश जनता की वास्तविक आमदनी का आकार होता है। वास्तविक आमदनी तीन उपादानो पर निर्भर होती है: (१) नकद आमदनी का आकार, (२) सेवाओ और उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्य, और (३) सामाजिक उपभोक्ता निधि का आकार। आबादी की वास्तविक आमदनी जितनी ही ज्यादा होगी, प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी।

इस के साथ ही, मजदूरो और किसानो के काम करने की स्थितिया भी जनता के रहन सहन के स्तर के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इनमे कार्य-दिवस की लम्बाई और सवेतन छुट्टिया, श्रम के यन्त्रीकरण की अवस्था, उसकी तीव्रता की मात्रा, श्रम का दु साध्य या हानिकर होना, उसकी रक्षा तथा अन्य उपादान शामिल होते है। अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाओ वाले देशो की जनता के रहन सहन के स्तरो की तुलना करते समय रोजगार सूचकांक, अर्थात देश मे बेरोजगारी पायी जाती है या नही और उसका आकार कितना बडा है, और ग्रामीण जनसख्या—क्या देहातो मे अत्यधिक आबादी है तथा उसका आकार क्या है, आदि, बातो—को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए। मेहनतकश जनता के जीवन स्तर का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू उनके खर्च (पारिवारिक बजट) का ढाचा—विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किये जाने वाले खर्चों का सम्बध—होता है।

आराम, स्वास्थ्य सेवाए, जनता का दीर्घायु होना, सास्कृतिक सुविधाओ की उपलब्धि, आदि—यह एक अन्य उपादान है जो रहन सहन के स्तर को निर्धारित करता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था का विस्तार श्रम को अत्यधिक सुगम बना देने से अभिन्न रूप से जुडा है। सोवियत उद्योग मे प्राविधिक विकास के परिणाम-स्वरूप कठिन शारीरिक श्रम सम्बधी अनेक व्यवसायो का अन्त हो गया है, विज्ञान तथा प्रविधि की तेज प्रगति के फलस्वरूप श्रम के लिए अधिकाधिक सुगमताए पैदा होती जा रही है। पुराने कृषि औजारो मे जमीन जोतने वाले

किसान के कठिन परिश्रम का दौर सोवियत कृषि से हमेशा हमेशा के लिए समाप्त हो गया है।

सोवियत राजसत्ता के दौरान उद्योगों मे कार्य दिवस की अवधि १९११ के ९ ९ घंटों से घट कर १९६४ मे ६ ९३ घंटे रह गयी, अर्थात २ ९७ घंटों की कमी हो गयी। यहा यह स्मरणीय है कि जारशाही रूस मे कार्य दिवस प्राय १२ से १४ घंटों तक का होता था। आजकल सोवियत सघ मे आम तौर से प्रति सप्ताह ४० घंटे काम करना पडता है। कार्य दिवस काफी घट गया है जबकि वेतन का स्तर वही है, या उसमे वृद्धि हुई है। सामूहिक किसानो को पहले जमाने के निजी खेती करने वालो से औसतन ३३ प्रतिशत कम मेहनत करनी पडती है। सामूहिक फार्मों मे समस्त सघन श्रम वाला कार्य ट्रैक्टर चालित उपकरणो, या स्वचालित फार्म मशीनरी, द्वारा सम्पन्न होता है।

जनता की वास्तविक आमदनियो मे व्यवस्थित वृद्धि से जनता के उपभोग में भी इजाफा होता रहता है। राजकीय और सहकारी व्यापारिक सस्थाओ, साथ ही सार्वजनिक सेवा सस्थानो की खुदरा व्यापार मात्रा १९४० की तुलना में १९६५ मे ३३९ प्रतिशत बढ गयी। खाद्य पदार्थों की बिक्री मे २६० प्रतिशत तथा गैर खाद्य पदार्थों मे ४६७ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

क्रान्ति पूर्व के रूस मे मेहनतकश जनता के लिए आवास की स्थिति अत्यन्त असतोषजनक थी। सोवियत सघ मे भवन निर्माण की योजनाए विशाल पैमाने पर कार्यान्वित की जा रही हैं। १९१८ और १९६५ के बीच, ११९ करोड ९ लाख वर्ग मीटर भूमि पर रिहायशी मकानो का निर्माण किया गया, जिसमे से ५५ करोड ६५ लाख वर्ग मीटर भूमि पर भवन निर्माण १९५९ और १९६५ के बीच हुआ। इसी के साथ पारिवारिक बजट मे किराये का अश बहुत कम हो गया। क्रांति पूर्व के रूस मे मकानो के किराये का अश मेहनतकश परिवार के बजट का २० प्रतिशत, तथा कभी कभी तो ३३ प्रतिशत तक, होता था। आज मकान के किराये और दूसरी सार्वजनिक सेवाओ के लिए बजट का औसतन ४ से ५ प्रतिशत तक भाग ही खर्च होता है।

सोवियत जनता की बढती हुई खुशहाली का एक अत्यत उजागर सूचक यह तथ्य है कि उनकी दीर्घायु की अवधि क्रांति पूर्व के रूस की तुलना मे लगभग दो गुनी हो गयी है।

समाजवादी समाज मे सामाजिक उत्पादन के विस्तार, उत्पादनकारी शक्तियो के विकास, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि तथा सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता मे उन्नति होने से जनता की भौतिक खुशहाली भी बढती है। यह नियमितता समाजवादी उत्पादन के मुख्य उद्देश्य से सचालित होती है अर्थात यह कि : मेहनतकश जनता की बढती हुई आवश्यकताओ की अधिकाधिक पूर्ति की जाय।

जनता के रहन सहन के स्तर मे व्यवस्थित उन्नति समाजवाद का एक आर्थिक नियम है। दूसरे आर्थिक नियमो की भाति, यह नियम अपने आप कार्यरत नही होता। निरन्तर और नि स्वार्थ श्रम, उसकी उत्पादकता मे वृद्धि उसके सगठन मे सुधार, समस्त अलाभदायक खर्चों व घाटो के खिलाफ सघर्ष—सोवियत जनता की भौतिक खुशहाली मे वृद्धि के लिए ये लाजमी शर्तें हैं।

जनता के रहन सहन के स्तर मे उन्नति को सुनिश्चित करने वाला एक मात्र स्रोत यह है कि वह अपने श्रम द्वारा निर्मित भौतिक सम्पदा मे लगातार वृद्धि करती रहे। समाजवादी समाज मे मेहनतकश जनता को भली भाति मालूम है कि आज अधिक उत्पादन का अर्थ कल के लिए अधिक उपभोग है।

पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जनता की खुशहाली में वृद्धि

१९६६ से १९७० के लिए आर्थिक विकास की पचवर्षीय योजना ने जनता की खुशहाली को और आगे बढाने की विशाल सम्भावनाए खोल दी हैं। मेहनतकश जनता के रहन सहन के स्तर को उन्नत करना पचवर्षीय योजना का मुख्य आर्थिक व राजनीतिक लक्ष्य है। इस काम को पूरा करने के लिए खूब सोच विचार कर, वैज्ञानिक आधार पर, उपायो की एक शृखला तय की गयी है जिससे आर्थिक तथा सास्कृतिक विकास के सभी पहलुओ पर असर पडेगा।

मौजूदा पचवर्षीय योजना के काल मे कम्युनिस्ट पार्टी जनता की खुशहाली मे निरतर वृद्धि के लिए—जो कि उसका एक मुख्य लक्ष्य है—सुसगत माग पर आगे बढ रही है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्देशो मे कहा गया है इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि समाजवादी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य जनता की बढती हुई आर्थिक व सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना है, अगले पाच वर्षों म श्रम उत्पादकता को बढा कर, भौतिक मूल्यो के उत्पादन मे वृद्धि करके तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर को तेज करके रहन-सहन के स्तर मे उन्नति सुनिश्चित की जायगी।'

अनेक कदम उठा कर, जिनमे निम्नलिखित कदम शामिल होगे, जनता की खुशहाली मे और अधिक वृद्धि की जायगी

प्रथम, समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तगत कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो के वेतनो मे तथा सामूहिक किसानो की आमदनियो मे वृद्धि,

द्वितीय, सामाजिक उपभोग निधियो म इजाफा

तृतीय, उपभोक्ता माल उत्पादन मे विस्तार,

चतुथ आवासीय निर्माण का और अधिक विस्तार, तथा

पचम, शहरी और ग्रामीण आबादी के लिए सामुदायिक व सास्कृतिक सेवाओ में पर्याप्त सुधार।

नयी पंचवर्षीय अवधि मे श्रम के प्रतिफल मे वृद्धि

श्रम के लिए दिये जाने वाले प्रतिफल मे वृद्धि जनता की खुशहाली को बढाने मे निर्णायक महत्व की होगी। उत्पादन के विस्तार मे यह बुनियादी किस्म की प्रेरणा होती है तथा मेहनतकश जनता की आमदनी मे इजाफे का मुख्य जरिया होती है। इसी कारण श्रम के लिए दिये जाने वाले प्रतिफल की वृद्धि, कम्युनिस्ट निर्माण के पूरे काल मे जनता के रहन सहन के स्तर को ऊपर उठाने का मुख्य साधन बनी रहेगी।

नयी पचवर्षीय योजना मे जनता की आमदनी बढाने के इस नये स्रोत के विस्तार के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गयी है। इस दौरान कारखानो और कार्यालयो मे काम करने वाले मजदूरो की औसत मासिक मजदूरी मे २० प्रतिशत की वृद्धि होगी। पचवर्षीय योजना के पूरा होने-होते औसत मासिक मजदूरी ११५ रूबल हो जायगी। सामाजिक उपभोग निधि से प्राप्त होने वाले अनुदानो और सुविधाओ पर विचार करने से कारखानो व कार्यालयो मे काम करने वाले मजदूरो की औसत मजदूरी १५५ रूबल तक पहुच जायगी। सामूहिक अर्थ-व्यवस्था से सामूहिक किसानो की आमदनी मे औसतन ३५-४० प्रतिशत की वृद्धि होगी। कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो और सामूहिक किसानो के श्रम के प्रतिफल के लिए निर्मित निधि के फलस्वरूप उनकी आमदनी, चालू पचवर्षीय अवधि के दौरान, लगभग ४० प्रतिशत बढ जायगी।

वेतन मे वृद्धि के साथ ही कारखानो और कार्यालयो के तथा अन्य मजदूरों की कुछ श्रेणियो के वेतन पर लगने वाले करो मे कमी तथा उनकी समाप्ति की प्रक्रिया भी जारी रहेगी। सामूहिक फार्मों के किसानो को समान कामो और समान उत्पादन कोटो के लिए राजकीय फार्मों मे काम करने वाले मजदूरो के वेतनो के अनुरूप गारन्टीशुदा मासिक भुगतानो से भी सामूहिक किसानो की खुशहाली मे काफी वृद्धि होगी। श्रम उत्पादकता मे वृद्धि तथा सामूहिक फार्मों के ससाधनों के बेहतर इस्तेमाल के आधार पर सामूहिक अर्थ-व्यवस्था से सामूहिक किसानो की आमदनी पूरे साल भर तक बढती रहेगी। ग्रामीण जनता की आमदनी मे बढोतरी का दूसरा स्रोत सामूहिक किसानो के पास निजी सहायक भूखण्डो का होना है।

नयी पचवर्षीय योजना की अवधि में सामाजिक उपभोग निधि का विस्तार

पचवर्षीय योजना मे, सामाजिक उपयोग निधि से, जनता को दिये जाने वाले नकद अनुदानो और सुविधाओ मे कम से कम ४० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है। इस निधि से बीमा सुविधाओ, पेन्शनो, विद्यार्थियो तथा अन्य लोगो को दिये जाने वाले अनुदानो, सवेतन छुट्टियो, निःशुल्क शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओ, विश्राम गृहों व

सैनेटोरियमो मे निःशुल्क या लगभग निःशुल्क दरो पर रहने की व्यवस्था करने, बाल व शिशु गृहो की देखभाल करने तथा अन्य सामाजिक सास्कृतिक सेवाओ पर खर्चो को पूरा किया जायगा।

पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, कारखानो व कार्यालयो मे काम करने वाले मजदूरो तथा सामूहिक फार्मो के किसानो को दी जाने वाली बुढापे की पेन्शनो की रकम के न्यूनतम आकार को बढाया गया है और सामूहिक किसानो को भी कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो के बराबर, और समान शर्तों पर, पेन्शनें प्राप्त होनी हैं। काम के लिए अस्थायी तौर पर अयोग्य हो जाने के अनुदान समस्त मेहनतकश जनता के लिए बढा दिये गये हैं।

जनता के भौतिक एवं सास्कृतिक स्तर को निर्धारित करने वाला एक मुख्य तत्व है: शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओ का विकास। पचवर्षीय योजना मे, मुख्य रूप से, सार्वभौम माध्यमिक शिक्षा को पूरा करने तथा माध्यमिक, विशिष्ट, उच्च शिक्षा सस्थाओ तथा व्यावहारिक स्कूलो मे विद्यार्थियो की सख्या को बडे पैमाने पर बढाने का लक्ष्य रखा गया है। राजकीय बाल सस्थानो का तानाबाना इतना विस्तारित किया जायगा कि शहरी जनता की तत्सम्बधी समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके तथा ग्रामीण जनता की आवश्यकताओ को भी काफी बडी हद तक पूरा किया जा सके। पचवर्षीय योजना मे शहरो और देहातो मे स्वास्थ्य सेवाओ मे पर्याप्त सुधार की व्यवस्था की गयी है। बडे पैमाने पर अस्पतालो और अन्य चिकित्सा केन्द्रो का निर्माण करके, चिकित्सा के लिए आवश्यक सामानो के उत्पादन मे वृद्धि करके तथा सैनेटोरियमो मे इलाज एव विश्राम-गृहो की सुविधाओ में और अधिक सुधार करके इस लक्ष्य को पूरा किया जायगा।

उपभोग मे वृद्धि — चालू पचवर्षीय योजना की अवधि मे जनता की आमदनी मे वृद्धि से उपभोग मे भी वृद्धि होना लाजमी है।

पचवर्षीय योजना मे जनता द्वारा खाद्य पदार्थों व औद्योगिक सामानो क उपभोग मे भारी वृद्धि की व्यवस्था की गयी है। राजकीय और सहकारी सस्थानो द्वारा बिक्री की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुओ की बिक्री मे कम से कम ४० प्रतिशत की वृद्धि होगी। इसी के साथ उपभोक्ता वस्तुओ की विविधता और गुणात्मक स्तर मे सुधार लाना होगा।

पचवर्षीय योजना मे परिवार के भोजन ढाचे मे सुधार करने की भी योजना है। योजना के दौरान प्रति व्यक्ति उपभोग मे गोश्त से तैयार उत्पादों मे २० से २५ प्रतिशत, दूध और डेरी के पदार्थों मे १५ से १८ प्रतिशत, शक्कर मे लगभग २५ प्रतिशत, सब्जियो और तरबूजो मे ३५ से ४० प्रतिशत, वनस्पति

तेलो मे ४० से ४६ प्रतिशत, फलो और अगूरो में ४५ से ५० प्रतिशत, तथा मछली व मछली से बने पदार्थों मे ५० मे लेकर ६० प्रतिशत तक की वृद्धि होनी है।

कपडों और होजरी की बिक्री मे कुल मिला कर ४० प्रतिशत की वृद्धि होगी और अकेले होजरी मे वृद्धि ६० प्रतिशत से भी अधिक होगी।

व्यापार की विधियो मे सुधार को मुख्य भूमिका दी गयी है। इस सिलसिले मे उपभोक्ताओ की मागो का विशेप रूप से ध्यान रखने, उपभोक्ताओ की इच्छाओ और पसन्द के अनुरूप वस्तुओ का भडार मुहैया करने, उच्च व्यापारिक मानको की शुरूआत करने एव उपभोक्ता वस्तुओ के गुणात्मक स्तर मे सुधार करने को विशेप महत्व दिया जा रहा है।

कुछ खाद्य पदार्थों और औद्योगिक पदार्थों—विशेप रूप से बच्चो के सामानो—की फुटकर कीमतो मे कटौती के परिणामस्वरूप भी जनता की वास्तविक आमदनी मे इजाफा होगा। कीमत कटौती उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन में वृद्धि पर आधारित होगी तथा आवश्यक वस्तु ससाधनों या सचय हो जाने पर यह लागू की जायगी।

उत्पादनकारी शक्तियो का जैसे जैसे विकास होता है और जनता की खुशहाली मे इजाफा होता है, वैसे ही वैसे जनता के जीवन स्तर को ऊचा उठाने मे सेवा क्षेत्र की भूमिका भी बढती जाती है। चालू पचवर्षीय योजना के दौरान इस क्षेत्र में बहुत बडे पैमाने पर विस्तार किया जायगा। इस काल मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आमदनी मे लगभग ३० प्रतिशत, फुटकर व्यापार की मात्रा मे ४३ ५ प्रतिशत, सार्वजनिक पूर्ति सस्थानों के प्रचलन मे लगभग ५० प्रतिशत तथा जनता को उपलब्ध की जाने वाली सवाओ मे करीब १५० प्रतिशत की वृद्धि होगी। पचवर्षीय योजना मे सेवा उद्योग को अर्थव्यवस्था के तकनीकी रूप से अच्छी तरह लैस क्षेत्र मे परिवर्तित करने की व्यवस्था की गयी है, ताकि वह कम समय के अन्दर अच्छी सेवा कर सके।

आवास आवास की समस्या एक मुख्य सामाजिक समस्या है। सोवियत राजसत्ता के दिनो मे आवास की समस्या को हल करने के लिए बहुत कुछ किया गया है। तो भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

पचवर्षीय योजना मे आवासीय भवन निर्माण कार्यक्रम मे और अधिक विस्तार की व्यवस्था की गयी है। पाच वर्षों की अवधि मे राजकीय पूजी विनियोगो और सहकारी निधियो के खर्च से शहरो, नागर बस्तियो और राजकीय फार्मों मे ४० करोड वर्ग मीटर भूमि पर आवासीय भवन निर्मित किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त कारखानों और कार्यालयो के मजदूर सरकारी कर्जों की सहायता से ८ करोड वर्ग मीटर भूमि पर, और ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी तथा सामूहिक फार्म २० से २५ लाख तक, अपने निजी मकानो का

चालू पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित भवन निर्माण कार्यक्रम के पूरा हो जाने पर लगभग ६ करोड ३० लाख लोगो की आवासीय परिस्थितियो में सुधार होगा, जब कि इससे पूर्व के पाच वर्षों मे ५ करोड ४० लाख लोगो की इन परिस्थितियों में सुधार हुआ था। लेकिन इस विशाल कार्यक्रम के पूरा हो जाने पर भी आवास की समस्या पूर्ण रूप से हल नही हो पायेगी। आबादी के लिए जिस हद तक आवास की व्यवस्था की जाती है, वह जनता के रहन-सहन के स्तर की सूचक होती है। मकान निर्माण कार्यक्रम वर्तमान राष्ट्रीय आय पर ही नहीं, बल्कि संचयों पर भी निर्भर होता है क्योंकि आवासीय सुविधाओ का निर्माण कई दशाब्दियो मे जाकर होता है। समाजवादी समाज की राष्ट्रीय सम्पदा म वृद्धि इस महत्वपूर्ण समस्या के हल की जमानत है।

आमदनी के स्तरों का सन्निकटीकरण

कम्युनिज्म के मार्ग पर आगे बढ रहे समाजवादी समाज की भौतिक खुशहाली मे वृद्धि के साथ ही अपेक्षतः ऊची और नीची आमदनियो के बीच का अन्तर धीरे-धीरे समाप्त होता रहता है।

समाज की उत्पादनकारी शक्तियो के विकास और प्राविधिक प्रगति के परिणामस्वरूप मेहनतकश जनता का सास्कृतिक और प्राविधिक स्तर ऊचा हो जाता है। कारखानो और कार्यालयो मे काम करने वाले अकुशल मजदूरो की बहुत बड़ी सख्या निरन्तर कार्यकुशलता प्राप्त करती रहती है। कार्यकुशलता के विकास तथा श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के साथ-साथ वेतनो के बीच अन्तर भी लगातार घटता जाता है। समस्त जनता की खुशहाली मे जैसे-जैसे विस्तार होगा, वैसे ही वैसे कम आमदनी वाले लोगो के वेतनो मे वृद्धि हो सकेगी तथा मजदूरो और किसानो की आमदनियो के बीच का अन्तर धीरे धीरे घटता जायगा।

वेतनो के बीच अन्तर के घटने को समरूप वितरण की दृष्टि से नही देखना चाहिए। इस अन्तर के घटने का आधार योग्यताओ और श्रम ७८

स्तरो मे आने वाला सन्निकटीकरण होता है। इसलिए आमदनी के स्तरो के सन्निकटीकरण का इस सिद्धान्त से कोई विरोध नही है कि मेहनतकश जनता को वेहतर काम के प्रति भौतिक दिलचस्पी होनी चाहिए। बल्कि इसके विपरीत, ऐसा करने से इस सिद्धान्त मे और मजबूती पैदा होती है।

नयी पचवर्षीय योजना ने कम वेतन पाने वाले मेहनतकशो की भौतिक परिस्थितियो मे मूलगामी सुधार लाने का कर्तव्य अपने सामने रखा है। इसका सम्बध कारखानो और कार्यालयो के अकुशल मजदूरो तथा जूनियर कर्मचारियो से है। सहायक कामो और हर प्रकार के लेखा के तौर-तरीको के बडे पैमाने पर यत्रीकरण और उत्पादन के स्वचालित होने से अकुशल मजदूरो की माग मे बहुत बडी कमी हो जायगी। बडी सख्या मे अकुशल मजदूर अपनी कार्यकुशलता को वढायेंगे और वेहतर वेतन पाने वाले काम करेंगे।

पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो मे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो की जीवन पद्धति को निरन्तर सन्निकट लाने, शहर और देहात के बीच सामाजिक-आर्थिक एव सास्कृतिक भेदो को समाप्त करने तथा मजदूर वर्ग और किसानो के बीच एकता को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से उठाये जाने वाले कदमो की व्यवस्था की गयी है। पचवर्षीय योजना की अवधि मे जनता का आम शैक्षिक, सास्कृतिक एव प्राविधिक स्तर काफी उन्नत हो जायगा तथा बौद्धिक और शारीरिक श्रम के बीच मूल अन्तर मे कमी आ जायेगी। जनता की खुशहाली मे जिस वृद्धि की पचवर्षीय योजना द्वारा व्यवस्था की गयी है वह तभी प्राप्त की जा सकती है, जब सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को निरन्तर वढाया जाता रहे। समस्त सोवियत जनता के प्रयासो, उसकी पहलकदमी और अपने कर्तव्यो के प्रति उसके दरअसल व्यावहारिक दृष्टिकोण पर इस उद्देश्य की सफलता निर्भर करती है।

दोहराने के प्रश्न

१. "हर एक से योग्यतानुसार काम, हर एक को काम के अनुसार दाम" के समाजवादी सिद्धान्त का अर्थ क्या है?

२. श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि और वेतन वृद्धि—ये दोनो किस प्रकार एक-दूसरे पर निर्भर है?

३ सामाजिक उपभोग निधिया क्या होती हैं और मेहनतकश जनता की वास्तविक आमदनी मे उनकी क्या भूमिका है?

४. सोवियत जनता की भौतिक खुशहाली मे वृद्धि के सम्बध मे पचवर्षीय योजना मे कौन से कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं?

अध्याय १६

समाजवादी पुनरुत्पादन और परिचालन प्रक्रिया

१. समाजवादी पुनरुत्पादन

समाजवादी पुनरुत्पादन की विशेषताए

समाजवाद के अन्तर्गत, जो कि सर्वाधिक प्रगति शील सामाजिक व्यवस्था है, पुनरुत्पादन विस्तृ किस्म का होता है। विस्तृत समाजवादी पुन रुपादन मे तीन परस्पर सम्बद्ध प्रक्रियाए होती है।

प्रथम, समाजवादी उत्पादन सम्बधो का पुनरुत्पादन, जिनमे विस्तृत पुन रुपादन के दौरान सुधार होता रहता है।

द्वितीय, सामाजिक उत्पादो का पुनरुत्पादन, जिसमे हर बीतने वाले व के साथ निरन्तर सुधार होता रहता है।

तृतीय, श्रम शक्ति का पुनरुत्पादन, जिसके दौरान मेहनतकश जनता कार्यकुशलता और सस्कृति का, और साथ ही उसके श्रम की उत्पादक्ता भी, विकास होता रहता है।

हम पहले देख चुके हैं कि पूजीवाद के अन्तर्गत भी विस्तृत पुनरुत्पा होता है। किन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास की गति इतनी तेज हो है जिसे पूजीवाद के अन्तर्गत प्राप्त करना सम्भव ही नही है। समाजवाद अ उत्पादन के सकटो से पूर्णत मुक्त है, जब कि पूजीवाद के अन्तर्गत इन स के कारण पुनरुत्पादन बार-बार रुक जाता है। समाजवाद असमान विकास मुक्त है, जो कि पूजीवाद का एक अटल नियम है। इन श्रेष्ठताओ के परिण स्वरूप समस्त आर्थिक क्षेत्रों मे उत्पादन का तेज विस्तार समाजवादी वि पुनरुत्पादन की एक नियमितता बन गया है।

समाजवाद पूजीवादी प्रणाली के अन्तर्विरोधो से मुक्त है जिसके अन समाज के एक छोर पर तो दौलत का अम्बार जमा होता रहता है और छोर पर असुरक्षा की स्थिति अनिवार्यत बढ़ती रहती है। समाजवाद अन्तर्गत, उत्पादक शक्तियो के विकास से वृद्धिमान सम्पदा, सार्वजनिक स होती है। उसे पूजीपतियों की इच्छा या सनक, अथवा उत्पादन की जकता और होड की विनाशकारी शक्तियो के कारण बर्बाद नही होने जा सकता।

समाजवाद के अन्तर्गत, सामाजिक सम्पदा मे व्यवस्थित वृद्धि के साथ-साथ मेहनतकश जनता का भौतिक एव सास्कृतिक स्तर भी लगातार उन्नत होता जाता है। विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन का अर्थ एक ओर जहा सार्वजनिक सम्पदा का विस्तार है, वही दूसरी ओर मेहनतकश जनता के भौतिक व सास्कृतिक स्तर मे सुधार भी है।

समाजवादी सम्बधो का पुनरुत्पादन

समाजवाद की विजय के बाद सभी आर्थिक क्षेत्रों मे उत्पादक शक्तियो का विकास, अर्थव्यवस्था की समाजवादी प्रणाली के अविभाज्य आधिपत्य के अन्तर्गत होता है। पूजीवादी सम्बधो का पुनरुत्पादन जहा लाजमी तौर से अन्तर्विरोधो को—जो इन सम्बधो की विशेषता हैं—जन्म देता है और उन्हे उग्र बनाता है, वहा समाजवादी सम्बधो का पुनरुत्पादन इन अन्तर्विरोधो को लगातार समाप्त करता है तथा अर्थव्यवस्था व जन-चेतना मे अवशिष्ट पूजीवाद के अवशेषो का सफाया करता है।

विस्तृत पुनरुत्पादन के दौरान समाजवादी उत्पादन सम्बधो में निरन्तर सुधार होता रहता है। उत्पादन के नियोजन और आर्थिक प्रेरणा की नयी प्रणाली उनके सुधार की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था है।

कम्युनिस्ट निर्माण के पूरे काल मे कम्युनिज्म की सर्वोच्च अवस्था के लिए भौतिक व आत्मिक पूर्व-आवश्यकताए धीरे-धीरे परिपक्व होती रहती हैं।

समाजवादी उत्पादन सम्बधो के सभी पहलुओ की प्रगति से शहर और देहात के बीच तथा समाजवादी समाज के विभिन्न सामाजिक समूहो और वर्गों के बीच के अन्तर धीरे-धीरे मिटते जाते हैं। इससे मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियों के बीच के सम्बधो मे कम्युनिस्ट सिद्धान्त मजबूत होते हैं और वर्गविहीन कम्युनिस्ट समाज की रचना होती है।

चालू पचवर्षीय योजना के लक्ष्य भौतिक और तकनीकी आधार के विकास और रहन-सहन के स्तर मे उन्नति, तैयार माल के उत्पादन मे परिमाणात्मक वृद्धि और अर्थव्यवस्था में और अधिक मूलगामी गुणात्मक परिवर्तन, उत्पादक शक्तियो के विस्तार तथा सामाजिक-आर्थिक सम्बधो मे सुधार के बीच एकता को समन्वित करते हैं।

पचवर्षीय योजना की पूर्ति महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने की दिशा मे एक बडा कदम होगी। इससे धीरे-धीरे शहर और देहात तथा बौद्धिक एव शारीरिक श्रम के बीच का मूल अन्तर समाप्त हो जायगा। इससे मजदूर वर्ग और किसानों के बीच एकता का भौतिक आधार व राजनीतिक बुनियाद और ज्यादा मजबूत होगी। सोवियत सघ में बसने वाले जनगण के बीच भ्रातृत्वपूर्ण एकता और ज्यादा सुदृढ होगी। बिरादराना समाजवादी देशो तथा विकासशील देशों और सोवियत सघ के बीच आर्थिक कडिया और ज्यादा मजबूत बनेंगी।

कुल सामाजिक उत्पाद

किसी निश्चित अवधि के दौरान, मान लीजिए एक वर्ष मे, आर्थिक उत्पादन की प्रक्रिया से जो पदार्थ सामने आते हैं, उन्हें कुल सामाजिक उत्पाद कहते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक उत्पादो का अधिकाश भाग समस्त जनता की सम्पत्ति होता है तथा उसका कुछ अश मेहनतकश जनता की अलग अलग सहकारी सस्थाओ की सम्पत्ति होता है। सामाजिक उत्पादो का विकास, सामाजिक उत्पादन के सभी क्षेत्रो के विकास का सर्वोच्च सामान्य सूचक होता है। समाजवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास की तेज रफ्तार की झलक सामाजिक उत्पादो के तेज विकास मे प्रतिबिम्बित होती है। सोवियत सघ मे १९६५ मे कुल सामाजिक उत्पाद—१९४० की तुलना मे—५ ६४ गुना बढ गये। १९६५ मे उनकी मात्रा अमरीका के कुल सामाजिक उत्पादो की ६२ प्रतिशत थी।

भौतिक सम्पदा के उत्पादन, यातायात और भण्डारण मे लगी अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाए सामाजिक उत्पादो की रचना मे भाग लेती हैं। सामाजिक उत्पादो के कुल योग मे अलग-अलग शाखाओ के भाग का जो अनुपात होता है, उसे उत्पादन की शाखा-बनावट कहते हैं। १९६४ मे सोवियत सघ के कुल सामाजिक उत्पादो की बनावट इस प्रकार थी: उद्योग का अश कुल का ६४ १ प्रतिशत, निर्माण ९.५ प्रतिशत, कृषि १६.४ प्रतिशत, यातायात और सचार ४ १ प्रतिशत, व्यापार, वसूली, भौतिक एव तकनीकी सप्लाई, आदि, ५ ९ प्रतिशत।

१९६६-७० के लिए निर्धारित पचवर्षीय योजना मे सामाजिक उत्पादो के विकास की उच्च दरो की व्यवस्था की गयी है। ये प्रति वर्ष औसतन ७ प्रतिशत से अधिक की दर से बढेंगे जबकि पिछले पाच वर्षों मे वृद्धि की दर ६ प्रतिशत से कुछ ही अधिक थी। पिछले पाच वर्षों मे औद्योगिक उत्पादो की वार्षिक वृद्धि १,५८० करोड रूबल थी, किन्तु चालू पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह वार्षिक वृद्धि बढ कर २२००-२३०० करोड रूबल तक पहुच जायगी। इस अवधि मे औद्योगिक उत्पादो की मात्रा मे ५० प्रतिशत की तथा कृषि उत्पादों की मात्रा मे २५ प्रतिशत की वृद्धि होगी।

सामाजिक उत्पादो का भौतिक तथा मूल्य सम्बधी रूप

समाजवादी समाज के वार्षिक सामाजिक उत्पादों की पहचान उनके प्राकृतिक (भौतिक) तथा मूल्य सम्बधी रूप मे होती है। जहा तक प्राकृतिक रूप की बात है, समूचे सामाजिक उत्पादो को दो मुख्य भागो मे बाटा जा सकता है। पहला भाग उत्पादन के समस्त साधनों का होता है जिनका उद्देश्य उत्पादन की प्रक्रिया मे पुन प्रवेश करना होता है। दूसरा

भाग, उपभोक्ता पदार्थों का होता है, जिनका उद्देश्य समाज के सदस्यो की व्यक्तिगत तथा सामूहिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना होता है।

उत्पादन के साधनो को भी दो हिस्सो मे बाटा जाता है। पहला भाग होता है : अर्थव्यवस्था की स्थिर परिसम्पत्तिया, अर्थात इमारतें, उपकरण, रेलो का रौलिग स्टाक, कृषि की मशीनें, आदि। दूसरा भाग चल परिसम्पत्ति का होता है, अर्थात कच्चे माल, अर्ध तैयार माल, ईंधन और विद्युत-शक्ति का।

स्थिर परिसम्पत्तियो और चल परिसम्पत्तियो के विकास से समाजवादी श्रम के क्षेत्र का विस्तार होता है, समूचे समाज की सम्पदा मे वृद्धि होती है, श्रम के लिए सुगमताए पैदा होती हैं, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि होती है तथा मेहनतकश जनता का भौतिक और सास्कृतिक स्तर उन्नत होता है।

उत्पादन के साधन, अथवा स्थिर परिसम्पत्तिया और चल परिसम्पत्तिया, समाजवादी समाज की राष्ट्रीय सम्पदा का मुख्य अग होते हैं। भौतिक सम्पदा का दूसरा भाग, उत्पादन की प्रक्रिया मे प्रत्यक्ष भाग नही लेता। इस भाग मे भवन निर्माण सुविधाए तथा सामाजिक और सास्कृतिक उद्देश्यो के लिए आवश्यक भवन—थियेटर, म्यूजियम, क्लब, स्कूल, पार्क, आदि, जो सभी अर्थव्यवस्था की गैर उत्पादनकारी परिसम्पत्ति होते हैं—शामिल होते है।

मूल्य के रूप मे, सामाजिक उत्पाद अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रो मे उत्पादित मूल्यो का योग होते हैं। इस योग मे, प्रथम तो खर्च हुए उत्पादन साधनो का मूल्य, तथा द्वितीय, भौतिक उत्पादन के सभी क्षेत्रो मे मजदूरो, सामूहिक किसानो और बुद्धिजीवियों के श्रम द्वारा सृजित, उसमे जोडा गया मूल्य, शामिल होता है। इन दोनो भागो मे से पहला, इस्तेमाल हो गये उत्पादन के साधनो की पूर्ति करता है, और दूसरा, समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए समाज को दे दिया जाता है। यह दूसरा भाग समाजवादी समाज की राष्ट्रीय आय हो जाता है, जिसकी चर्चा इस पुस्तक म आगे की जायगी।

नियोजित अर्थव्यवस्था का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न अगो का तालमेल ऐसे अनुपात मे बैठाना होता है, जिससे सामाजिक उत्पादो के ढाचे (उनके भौतिक रूप) और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के दौरान उनके विभिन्न अगो के सामाजिक रूप के बीच सही सम्बध स्थापित हो सकें। विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया मे सही अनुपात को सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक काम का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है।

समाजवादी पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होता है कि सभी शाखाओ के उत्पादो को बिना किसी रुकावट या अनावश्यक विलम्ब के प्राप्त किया जा सके। इससे प्रकट होता है कि समाजवादी समाज मे मडी की, अर्थात वस्तुओ

को प्राप्त करने की सामान्य शर्तों की, यथा भूमिका होती है। समाजवादी मंडी—योजना के अनुसार संगठित की गयी मंडी होती है। समाजवादी संस्थान अपनी वस्तुओं, समाजवादी उत्पादन के उत्पादो, को इसी मंडी से प्राप्त करते हैं। मंडी की परिस्थितियो, उसमे होने वाले परिवर्तनो तथा उपभोक्ताओं की माग मे होने वाले फेरबदल की देखरेख और निगरानी रखना समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के नियोजित प्रबन्ध का एक अत्यन्त बुनियादी काम है।

उत्पादन के साधनो की सम्पूर्ति

सामाजिक उत्पादो के उत्पादन पर, उत्पादन के साधनो की—मशीनरी, कच्चे माल और ईंधन की—एक निश्चित मात्रा खर्च हो जाती है। उत्पादन के नवीनीकरण को अबाध गति से जारी रखने के लिए आवश्यक है कि खर्च हो गये उत्पादन के साधनो की सम्पूर्ति वार्षिक सामाजिक उत्पादो से की जाती रहे।

मान लीजिए कि धातु का काम करने वाले १,२५,००० खरादो और ४५ करोड टन कोयले का खर्चा हो गया। इसलिए समाज के वार्षिक उत्पादो मे से इतनी ही मात्रा मे खरादो और कोयले को बाट कर स्थिर परिसम्पत्ति एव चल परिसम्पत्ति मे वापस देना चाहिए, ताकि खर्च हो गये उत्पादन के साधनो की सम्पूर्ति की जा सके।

खर्च हो गये उत्पादन के साधनो की सम्पूर्ति मूल्य (मुद्रा) के रूप मे भी सुनिश्चित होनी चाहिए। मान लीजिए कि वर्ष के दौरान १०,००० करोड रूबल मूल्य के बराबर उत्पादन के साधनो का खर्च हुआ। इसका अर्थ यह है कि समाज को इसी रकम के बराबर उत्पादन के साधनो की सम्पूर्ति करने मे समर्थ होना चाहिए। समाजवादी समाज मे भौतिक उत्पादक परिसम्पत्ति का नवीनी-करण नियोजित और सगठित ढग से किया जाता है।

उत्पादन के साधनो मे वृद्धि को प्राथमिकता

विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन, अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं—विशेष रूप से उत्पादन के साधनो के उत्पादन तथा उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन—के बीच कुछ निश्चित परिमाणात्मक सम्बधो की पूर्व कल्पना करता है।

पहले के अध्यायो मे हमने देखा है कि पूजीवादी विस्तृत पुनरुत्पादन की माग होती है कि विभाग १ के आवश्यक और अधिशेष उत्पाद का योग विभाग २ की अचल पूजी के मूल्य से अधिक होना चाहिए। यही परिमाणात्मक सम्बध समाजवादी समाज मे भी कायम रहना चाहिए। किन्तु अन्तर यह रहेगा कि यहा अचल पूजी के स्थान पर वह स्थिर उत्पादक परिसम्पत्ति और चल परिसम्पत्ति होगी।

दूसरे शब्दो मे, उत्पादन के साधनो के उत्पादन को उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर प्राथमिकता देना विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन का एक नियम है।

किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि इन दोनो प्रकार के समूहो के उत्पादन की वृद्धि दरो के बीच सम्बध समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण की सभी अवस्थाओ मे अपरिवर्तनशील रहता है। सोवियत सघ में औद्योगीकरण अभियान की प्रथम निर्णायक मजिलो मे, जब जितनी जल्दी हो सके भारी उद्योग के लिए एक शक्तिशाली आधार का निर्माण करना जरूरी था, उद्योग के इन दोनो प्रकारो की वृद्धि की दरो मे बहुत ज्यादा अन्तर था। १९२९ से १९४० के बीच उत्पादन के साधनो के उत्पादन मे जिस तेज रफ्तार से वृद्धि हुई वह वार्षिक औसत उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की रफ्तार से ७० प्रतिशत अधिक थी। एक बार जब शक्तिशाली आर्थिक आधार की रचना पूरी हो गयी और उत्पादक शक्तियो का विकास उच्च अवस्था तक पहुच गया, तो यह सम्भव हो गया कि जनता की प्रत्यक्ष आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले सामाजिक उत्पादन की शाखाओ की वृद्धि मे काफी तेजी लायी जा सके। भारी उद्योग के विकास में प्राप्त सफलता ने अब यह सम्भव बना दिया है कि उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन करने वाली शाखाओ के विकास मे काफी मात्रा मे ससाधनो को लगाया जा सके।

उत्पादन के साधनों के उत्पादन और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि दरो का सन्निकटीकरण

पचवर्षीय योजना मे उद्योग एव कृषि के बीच तथा स्वय उद्योग के अन्दर—उत्पादन के साधनो को पैदा करने वाली शाखाओ (समूह अ) और उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन करने वाली शाखाओ (समूह ब) के—अनुपातों मे निर्णायक सुधार लाने की व्यवस्था की गयी है।

युद्धोपरान्त काल मे कृषि के सामने कठिन समस्याए उत्पन्न हो गयी थी। सामूहिक फार्मों के विकास के प्रबन्ध मे की गयी गलतियो के परिणामस्वरूप इन समस्याओ को हल करना कठिन हो गया था। नतीजा यह हुआ कि कृषि का विकास पिछड गया और जनता तथा कारखानो की आवश्यकताए पूरी नही हो पाती थी। सप्तवर्षीय योजना काल मे उद्योगो से तैयार होने वाले माल मे जहा ८४ प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहां कृषि मे केवल १४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि के विकास मे यह पिछडापन ही उत्पादन के साधनों के उत्पादन तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के बीच पैदा होने वाले असन्तुलन के लिए जिम्मेदार था। इससे देश की राष्ट्रीय आय मे उपभोग निधि के विकास पर बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

पार्टी ने अर्थव्यवस्था की इस अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा—कृषि उत्पादन—के विकास के लिए फौरी कदमो का एक व्यापक कार्यक्रम अपनाया। कृषि और उद्योग के विकास के बीच असतुलन को समाप्त करना और कृषि उत्पादन मे वृद्धि करना, १९६६-७० की पचवर्षीय योजना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्यों मे से एक है। इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए कृषि को शक्तिशाली उपकरणों से लैस करना होगा। हर प्रकार के कृषि उत्पादो की खरीद और वसूली कीमतो मे पर्याप्त वृद्धि करनी होगी (इसकी शुरूआत १९६५ मे कर दी गयी), स्थायी खरीद योजनाए निर्धारित करनी होगी, भौतिक प्रेरणा देने तथा हर प्रकार के अवरोधो को—जो अब तक सामूहिक किसानो, राजकीय फार्म मजदूरो, कृषि विशेषज्ञो, आपरेटरो, सामूहिक फार्मों के चेयरमैनो और राजकीय फार्मों के डायरेक्टरो की पहलकदमी को अवरुद्ध करते रहे—दूर करने की व्यवस्था करनी होगी।

पचवर्षीय योजना का एक मुख्य कर्तव्य है—उद्योग के भीतर अनुपात मे तथा उसकी शाखाओ के दोनो समूहो के विकास के सम्बधो मे सुधार करना। उत्पादन के साधनो का उत्पादन करने वाली शाखाओ के विकास को प्राथमिकता—यह कम्युनिज्म के भौतिक व तकनीकी आधार की रचना के काम को सफलता से पूरा करने के लिए, निरन्तर प्राविधिक प्रगति के लिए तथा समग्र अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के प्राविधिक स्तर को ऊचा उठाने के लिए एक आवश्यक शर्त पहले भी थी, और आज भी है। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन करने वाली शाखाए भी बहुत पीछे न रह जायें।

१९६६-७० की पचवर्षीय योजना मे उत्पादन के साधनो के उत्पादन और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि दरो को सन्निकट लाने की व्यवस्था की गयी है। खाद्य तथा हल्के उद्योगों के विकास को तेज किया जाना है तथा उनको आधुनिकतम उपकरणो से लैस करना है। इससे पहले के पाच वर्षों की अवधि मे समूह अ के उत्पादन मे ३६ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। चालू पचवर्षीय योजना मे इन वृद्धि दरो को क्रमश. ४९-५२ प्रतिशत तथा ४३-४६ प्रतिशत होना है। पहले की पचवर्षीय अवधि मे उत्पादन के साधनो का उत्पादन करने वाली शाखाओ मे उत्पादन वृद्धि, उपभोक्ता वस्तुओ की शाखाओ मे उत्पादन वृद्धि से ५० प्रतिशत से भी ज्यादा थी। चालू पचवर्षीय योजना में यह अन्तर केवल १०-१२ प्रतिशत रह जायगा। उद्योग की सभी शाखाओ मे—जिनमे भारी उद्योग की शाखाए भी शामिल हैं—उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि दर को तेज करके इस काम को पूरा किया जायगा।

उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे तेजी से वृद्धि समूची अर्थव्यवस्था के और आगे सफल विकास की एक बुनियादी शर्त है। कारण यह कि यह वृद्धि

ही उत्पादनकारी अभियान को आगे बढाने के लिए भौतिक प्रेरणा प्रदान करती है।

श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन

मजदूर वर्ग की संख्या में निरन्तर वृद्धि तथा मजदूरों के सांस्कृतिक और व्यावसायिक स्तर में व्यवस्थित उन्नति के बिना विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन की कल्पना करना भी असम्भव होगा।

समाजवाद ने श्रमशक्ति की सम्पूर्ति के उन तौर तरीकों को समाप्त कर दिया है जो पूंजीवाद के अन्तर्गत प्रभावकारी भूमिका अदा करते थे: जैसे, मशीनों द्वारा काम से निकाले गये मजदूर, देहात और शहर के बर्बाद छोटे वस्तु उत्पादक और बेरोजगारों की कोतल सेना का जमाव। समाजवाद के अन्तर्गत श्रमशक्ति की सम्पूर्ति का एक मात्र स्रोत जनसंख्या में होने वाली स्वाभाविक वृद्धि है। इसके अलावा, उत्पादन के यंत्रीकरण के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में फालतू हो जाने वाली श्रमशक्ति की उद्योगों में खपत हो जाती है। और अन्त में, महिलाओं के घरेलू श्रम के बन्धनों से मुक्त हो जाने से उन्हें उत्पादन की प्रक्रिया में खींचना सम्भव हो गया है।

सोवियत सत्ता के अन्तर्गत मजदूर वर्ग की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही, मजदूरों की कार्यकुशलता को संगठित तरीके से तेजी से उन्नत किया जा रहा है। समाजवादी समाज में कार्यकुशल कर्मचारियों को दीक्षित संस्थाओं की व्यापक शृंखला द्वारा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण द्वारा योजना के अनुसार प्रशिक्षित किया जाता है।

कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान उत्पादन में तेजी से वृद्धि और सुधार से पूरे व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन हो जाता है। नये श्रम बचत उपकरणों के इस्तेमाल से, सबसे पहले तो, सहायक काम में लगे लोगों के पद समाप्त हो जाते हैं। प्रशासकीय और प्रबन्ध ढांचे में आदमियों की भरमार करने, कृषि का अधिकाधिक यंत्रीकरण करने, घरेलू कामकाज से महिलाओं को मुक्त करने से उद्योग में तथा अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाओं में लोगों की संख्या में वृद्धि करना सम्भव हो जाता है। इसके साथ ही स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा और संस्कृति का विस्तृत विकास यह तकाजा करता है कि इन क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों की संख्या को तेजी से बढाया जाय।

सामाजिक उपभोग निधि को बढाने तथा शिक्षा और सार्वजनिक उपयोगिताओं में हर प्रकार से विस्तार करने की आवश्यकता के कारण यह वृद्धि करना जरूरी हो जाता है। समाजवादी समाज में गैर-उत्पादनकारी क्षेत्र का विस्तार मेहनतकश जनता की आवश्यकताओं की पूर्णतर पूर्ति तथा उनके जीवन और काम करने की स्थितियों में सुधार को सुनिश्चित करता है।

सामाजिक श्रम के साधनो के इस्तेमाल मे परिवर्तनो से आम मजदूरो की शिक्षा तथा उनके पुन-प्रशिक्षण की आवश्यकता बहुत ज्यादा बढ जाती है। साथ ही, श्रम शक्ति का सुनियोजित रूप से वितरण करना भी जरूरी हो जाता है। इस सिलसिले मे यह बहुत आवश्यक है कि पूर्ण स्वेच्छा और भौतिक दिलचस्पी पैदा कराने के सिद्धान्त पर दृढता से अमल किया जाय और नये क्षेत्रो मे सास्कृतिक व सामाजिक सुविधाए उपलब्ध की जायँ।

२. राष्ट्रीय आय

समाजवादी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय की वृद्धि

समग्र सामाजिक उत्पाद मे से जब उस भाग को निकाल दिया जाता है जो उत्पादन के साधनो के खर्च की सम्पूर्ति करता है, तो बाकी अश को राष्ट्रीय आय कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे, किसी भी चालू वर्ष मे, समाज द्वारा जोडे गये सभी मूल्यो को राष्ट्रीय आय कहते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत समग्र राष्ट्रीय आय को समाज के हाथो मे दे दिया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की सफलताए एव जनता की सम्पदा मे वृद्धि इस आय की वृद्धि पर निर्भर करती हैं।

कुल सामाजिक उत्पाद की भाति समाजवादी समाज की राष्ट्रीय आय भी प्राकृतिक (भौतिक) रूप मे, एव मूल्य (मुद्रा) के रूप मे अभिव्यक्त होती है।

समाजवादी समाज की राष्ट्रीय आय के भौतिक रूप मे सर्वप्रथम, साल भर के अन्दर उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओ का योग, तथा द्वितीय, साल भर मे खर्च हुए उत्पादन के साधनो की सपूर्ति के बाद बचे हुए उत्पादन के साधन—या दूसरे शब्दों म, उत्पादन को आगे विस्तारित करने वाले उत्पादन के साधन—शामिल होते हैं।

मूल्य (मुद्रा) के रूप मे समाजवादी समाज की राष्ट्रीय आय मे मजदूरो, सामूहिक किसानो और बुद्धिजीवियो के आवश्यक तथा अधिशेष, दोनो ही प्रकार के, श्रम द्वारा भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे सृजित समस्त मूल्यो का योग शामिल होता है। इन मूल्यों का उद्देश्य समाज के सदस्यो की निजी व सार्वजनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना तथा राजकीय जरूरतो को पूरा करते हुए उत्पादन का विस्तार करना होता है।

राष्ट्रीय आय के विस्तार मे सहायक मुख्य दो स्रोत हैं : भौतिक उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे लगे मजदूरो की सख्या मे वृद्धि, तथा श्रम उत्पादकता मे वृद्धि।

रोजगारो का विस्तार तो सीमित ही होना है। इसके अलावा, रोजगार में लगने वाले मजदूरो का सख्या मे बढोतरी अधिकतर गैर-उत्पादनकारी क्षेत्रो

विशेष रूप से शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं, मे होती है। इसलिए श्रम उत्पादकता मे वृद्धि ही राष्ट्रीय आय को बढाने का मुख्य स्रोत होती है।

समाजवाद के अन्तर्गत उद्योग, कृषि और अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाओं के तेजी से विस्तार के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की ऐसी वृद्धि दर सुनिश्चित हो जाती है, जिसे पूजीवाद के अन्तर्गत प्राप्त करना बिल्कुल ही असम्भव होता है। नीचे लिखे आकडो से सोवियत सघ मे राष्ट्रीय आय के पूर्ण आकार की वृद्धि दर का अन्दाजा हो जाता है। १६१३ मे राष्ट्रीय आय को १०० मान लिया जाय तो १६१७ मे यह ७५, १६२८ मे ११६ और १६४० मे ६११ हो गयी थी। अगर हम १६४० में सोवियत सघ की राष्ट्रीय आय को १०० मानें तो १६४५ मे यह ८३, १६५० मे १६४, १६६० मे ४३५ और १६६५ मे ५६३ थी।

नयी पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय आय मे ३८ से ४१ प्रतिशत तक वृद्धि की व्यवस्था है। इसे प्रति वर्ष औसत ७ प्रतिशत के हिसाब से बढना है, जब कि पिछली पचवर्षीय अवधि मे वृद्धि दर ६ प्रतिशत ही थी। चालू पचवर्षीय योजना के काल मे श्रम उत्पादकता तथा सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को बढा कर राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर मे तेजी लायी जायगी। उत्पादक ससाधनो का जितने ही अधिक प्रभावकारी ढग से इस्तेमाल किया जायगा, अर्थात परिसम्पत्ति/उत्पाद का अनुपात, जितना ही ज्यादा होगा, कच्चे और दूसरे सामानो का इस्तेमाल उतना ही किफायत के साथ किया जा सकेगा; श्रम उत्पादकता जितनी ही ऊची होगी, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर भी उतनी ही ऊची हो जायगी।

नयी पचवर्षीय योजना राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर मे तेजी लाने के लिए सभी आवश्यक परिस्थितिया मुहैया करती है। इनमे उत्पादक यत्र मे सुधार और विस्तार करना भी शामिल है। पचवर्षीय अवधि के दौरान अर्थव्यवस्था की स्थिर उत्पादनकारी परिसम्पत्ति मे ५० प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होगी, जिसमे उद्योग मे ६० प्रतिशत और कृषि मे ६० प्रतिशत वृद्धि भी शामिल है। प्रबन्ध की नयी प्रणाली का उद्देश्य उत्पादन की कारगरता मे वृद्धि की गारन्टी करना है। इससे पचवर्षीय योजना मे प्रस्तावित राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की ऊची दर प्राप्त करने की परिस्थितिया तैयार होती हैं।

राष्ट्रीय आय का वितरण. उपभोग तथा सचय निधिया

राष्ट्रीय आय, समाजवादी समाज की अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध तमाम साधनो—भौतिक एव मूल्य के रूप मे—का कुल योग होती है।

समाजवादी समाज की आवश्यकताओं को चार बुनियादी समूहो मे बाटा जा सकता है। प्रथम, श्रम के अनुसार वितरण के आर्थिक नियम के

समाजवादी समाज में राष्ट्रीय आय में वृद्धि जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए एक आवश्यक शर्त है। पूंजीवादी देशों की अपेक्षा समाजवादी देशों में राष्ट्रीय आय में प्रति व्यक्ति के हिसाब से वृद्धि अधिक तेज गति से होती है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग शोषक वर्गों द्वारा परजीवीपन के कारण बर्बाद कर दिया जाता है तथा मेहनतकश जनता की भौतिक स्थितियां राष्ट्रीय आय की वृद्धि पर निर्भर नहीं होती। समाजवाद के अन्तर्गत, राष्ट्रीय आय और जनता की खुशहाली के बीच सीधा सम्बंध होता है : राष्ट्रीय आय में जितनी ही वृद्धि होगी, जनता की खुशहाली में भी उतनी ही वृद्धि होगी।

वर्तमान पंचवर्षीय अवधि में राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि से कारखानों, कार्यालयों तथा दूसरे स्थानों पर काम करने वाले मजदूरों के वेतन में औसतन २० प्रतिशत की वृद्धि होगी तथा सामूहिक किसानों की आमदनी, उनकी सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के कारण, औसतन ३५ से ४० प्रतिशत तक बढ़ जायगी। बोनसों और एक मुश्त सहायता की रकमों का बहुत ज्यादा विस्तार होगा जिससे प्रत्येक मजदूर, उत्पादनकारी समूह तथा पूरे समाज के हितों में सामंजस्य की गारन्टी होगी। जनता को सामाजिक उपभोग निधि से प्राप्त होने वाले

सहायता और सुविधाओं की रकम में ४० प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होगी। फलस्वरूप मेहनतकश जनता की वास्तविक आय औसतन ३० प्रतिशत बढ़ जायगी।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि से, पिछली पंचवर्षीय अवधि की तुलना में, चालू पंचवर्षीय अवधि में उपभोग की मात्रा ३६ से ३६ प्रतिशत तक बढ़ जायगी।

उपभोग निधि में ११०० करोड़ रूबल की औसत वार्षिक वृद्धि होगी जब कि पिछली पंचवर्षीय अवधि में यह वृद्धि ६५० करोड़ रूबल ही थी।

समाजवादी संचय

समाजवादी संचय विस्तृत समाजवादी पुनरुत्पादन के लिए एक आवश्यक शर्त है। संचय का अर्थ यह है कि राष्ट्रीय आय के एक निश्चित भाग को समाज की उत्पादनकारी परिसम्पत्ति का विस्तार करने, नये प्रतिष्ठानों का निर्माण करने तथा वर्तमान प्रतिष्ठानों का विस्तार, आधुनिकीकरण और पुनर्निर्माण करने के लिए व्यवस्थित ढंग से इस्तेमाल किया जाता है।

समाजवादी संचय अपने स्रोतों, इन्हें काम में लाने की विधियों तथा उनके सामाजिक परिणामों के मामले में पूंजीवादी संचय से बुनियादी तौर पर भिन्न होता है।

प्रथम, समाजवादी संचय का स्रोत उन मेहनतकशों का अधिशेष श्रम होता है जो शोषण से मुक्त होते हैं तथा स्वयं अपने व पूरे समाज के लिए काम करते हैं, जब कि पूंजी का संचय उस अधिशेष मूल्य के आधार पर होता है जिसे पूंजीपति मजदूरों का शोषण करके हथिया लेते हैं।

द्वितीय, समाजवादी संचय सामाजिक सम्पदा को बढ़ाने और जनता की खुशहाली में इजाफा करने के उद्देश्य से योजनाबद्ध ढंग से किया जाता है, जब कि पूंजी का संचय आपसी होड़ की दौड़ में पूंजीवादी मुनाफों को बढ़ाने के उद्देश्य से अराजक तौर पर होता है।

तृतीय, समाजवादी संचय से सार्वजनिक सम्पत्ति में वृद्धि होती है, जब कि पूंजी का संचय पूंजीवादी निजी सम्पत्ति को बढ़ाता है।

समाजवादी संचय मेहनतकश जनता की खुशहाली को बढ़ाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, जब कि पूंजी के संचय से मेहनतकश जनता का अस्तित्व और भी ज्यादा असुरक्षित बन जाता है। समाजवादी संचय समाजवादी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है, संकट से मुक्त आर्थिक विकास को सुनिश्चित करता है तथा सभी नागरिकों के लिए काम के अधिकार की गारन्टी करता है, जब कि पूंजी का संचय पूंजीवाद के शत्रुतापूर्ण अन्तर्विरोधों को तेज करता है तथा बेरोजगारी और संकटों को बढ़ाता है।

समाजवादी संचय, सर्वप्रमुख तथा सर्वप्रथम रूप से, देश की उत्पादनकारी परिसम्पत्ति में तेज व निरन्तर वृद्धि की गारन्टी करता है। सोवियत संघ की

अचल उत्पादनकारी परिसम्पत्ति मे १९४० की तुलना मे १९६५ में ४०० प्रतिशत की वृद्धि हुई, उद्योग के क्षेत्र मे यह वृद्धि ६०० प्रतिशत से भी ऊपर थी। १९०८ मे रूस में केवल ७५,००० धातु काटने वाली खरादें तथा १८,००० फोर्जिग प्रेस थे। १९६५ के शुरू मे सोवियत सघ में २७ ६०,००० धातु काटने वाली खरीदें (१९०८ की अपेक्षा ३६ ८ गुना ज्यादा) तथा ५,८०,००० फोर्जिग प्रेस (१९०८ की अपेक्षा ३२ २ गुना ज्यादा) हो गये।

१९६६-७० के लिए निर्धारित पचवर्षीय योजना मे इस बात की व्यवस्था की गयी है कि उत्पादित पदार्थों मे वृद्धि का काफी वडा भाग योजना काल के दौरान सचलन मे आयी क्षमताओ से उत्पादित किया जाय।

विस्तृत पुनरुत्पादन और मुख्य निर्माण कार्य

पूजी के विनियोग, विस्तृत पुनरुत्पादन के लिए भौतिक आधार तैयार करते है। वे आर्थिक योजना के निर्माण कार्यक्रम के लिए धन उपलब्ध करते हैं।

१९६६-७० के लिए निर्धारित पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सोवियत अर्थ-व्यवस्था मे पूजी विनियोगो की रकम लगभग ३१,००० करोड रूबल होगी, अर्थात पिछली पचवर्षीय योजना की तुलना मे यह ५० प्रतिशत से भी अधिक बढ जायगी। इससे अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ और सभी सघीय जनतत्रो के विकास की गारन्टी होगी, महत्वपूर्ण शाखाओ के विकास मे तेजी आयेगी, तथा पिछले वर्षों के दौरान विभिन्न शाखाओ के बीच एव अलग-अलग शाखाओ के अन्दर पैदा होने वाला असतुलन दूर हो जायगा।

चालू पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सैकडो कारखानो, खानो, विद्युत केन्द्रो, नये नगरो और बस्तियो, राजकीय फार्मो व सहकारी फार्मो के भवनो, सिंचाई एव विद्युत ट्रासमिशन लाइनो, लाखों नये फ्लैटों व मकानो, हजारों स्कूलो, शिशु गृहो व बाल गृहो का निर्माण किया जायगा।

आर्थिक प्रबन्ध की नयी प्रणाली के अन्तर्गत समाजवादी पुनरुत्पादन न केवल केन्द्रीकृत पूजी विनियोगो के आधार पर, बल्कि प्रतिष्ठानो मे उपकरणो की घिसावट की कटौतियो और मुनाफो से स्थापित विकास-निधि से सहायता लेकर उत्पादन के विस्तार, सुधार और आधुनिकीकरण के आधार पर भी होता है। इससे अर्थव्यवस्था के बुनियादी कोशाणु (सेल)—अर्थात प्रतिष्ठान—इस बात के लिए समर्थ बनते है कि वे समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजित व सतुलित विकास मे तथा अधिक प्रगतिशील व लाभदायक उत्पादन विधियो को लागू करके अर्थव्यवस्था के ढाचे मे सुधार लाने मे अपना भारी योगदान कर सकें।

नियोजन मे सुधार और निर्माण कार्य मे आर्थिक प्रेरणा का उद्देश्य परि-योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यक समय की मात्रा मे कमी करना, गुणात्मक

स्तर में सुधार लाना तथा निर्माण की लागत को कम करना होता है। उत्पादन क्षमताओं का तेजी से काम मे लगाया जाना तथा साथ ही निर्माण के गुणात्मक स्तर का ऊंचा होना—यह निर्माण सस्थाओं के क्रियाकलाप के मूल्यांकन और नियोजन का मुख्य सूचक बनना चाहिए।

पचवर्षीय योजना का मुख्य कर्तव्य है निर्माण की गति को तेज करना, उसके गुणात्मक स्तर मे सुधार करना और साथ ही पूजी विनियोगो की प्रभावकारिता को बढाना। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पूजी विनियोगो को विभिन्न परियोजनाओं मे बिखेर न दिया जाय, क्योंकि ऐसा करने से निर्माण का काम पिछड़ जाता है, विनियोग स्थिर रह जाते हैं, क्षमताओं को कार्यरत करने में देर लगती है, और फलत. अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुचती है।

३. समाजवादी अर्थव्यवस्था मे परिचालन प्रक्रियाएं

समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत परिचालन प्रक्रियाओं की विशेषता

परिचालन प्रक्रियाएं समाजवादी पुनरुत्पादन का एक प्रमुख एव महत्वपूर्ण पहलू हैं। इनमे शामिल हैं : प्रथम, वस्तुओं का परिचालन—अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं की भौतिक व तकनीकी पूर्ति एव व्यापार परिचालन, द्वितीय, वित्त और ऋण सम्बधो का पूरा क्षेत्र, तथा तृतीय, मुद्रा परिचालन।

सार्वजनिक सम्पत्ति पर आधारित, परिचालन प्रक्रियाओं को समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत नियोजित किया जाता है। उनका उद्देश्य व्यक्तिगत पूजीवादी मुनाफों की गारन्टी करना नही बल्कि जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करना एव अबाध समाजवादी उत्पादन और पुनरुत्पादन को सुनिश्चित बनाना होता है। औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से, तथा मेहनतकश जनता के समूहों, सहकारी फार्मों, राजकीय निगरानी मे चलने वाली सहकारी सस्थाओं तथा अपने श्रम के उत्पादों को बेचने वाले सामूहिक किसानों द्वारा यह परिचालन किया जाता है।

उत्पादन के साधनों का अधिकांश भाग, जो सामाजिक उत्पाद का काफी बडा हिस्सा होता है, भौतिक तथा तकनीकी पूर्ति प्रणाली के अन्तर्गत आता है। उत्पादन के साधनों—उपकरण, कच्चे माल, ईंधन, विद्युत, आदि—की अबाध सप्लाई समाजवादी पुनरुत्पादन को सामान्य रूप से जारी रखने के लिए आवश्यक शर्त है। आर्थिक प्रबन्ध की नयी प्रणाली भौतिक और तकनीकी सप्लाई के लिए विशाल अवसर प्रदान करती है। पूर्तिकर्ता और उपभोक्ता प्रतिष्ठानों के बीच प्रत्यक्ष सम्बध बड़े पैमाने पर विकसित होते हैं। नयी पच-

वर्षीय योजना के काल मे भौतिक व तकनीकी सप्लाई की प्रणाली को निर्णायक रूप से सुधारने तथा थोक व्यापार द्वारा उपकरणो, कच्चे मालो, और अर्ध-तैयार सामानो के नियोजित वितरण मे सक्रमण के लिए जमीन तैयार करने का कर्तव्य निश्चित किया गया है।

व्यापार के रूप और उसके समक्ष कर्तव्य

समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत केवल उत्पादन ही नहीं, बल्कि व्यापार का विकास भी योजना के अनुसार होता है। व्यापार का अत्यन्त महत्वपूर्ण अग, अर्थात राज्य एव सहकारी सस्थाओ द्वारा सचालित व्यापार का समस्त क्षेत्र, नियोजन के अन्तर्गत आता है। व्यापार, नियोजित समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का एक अभिन्न अग है।

सोवियत सघ मे व्यापार के तीन मुख्य स्वरूप है: राजकीय, सहकारी तथा सामूहिक फार्म व्यापार।

व्यापार से प्राप्य धन राशि के दो विशाल रूप राजकीय तथा सहकारी व्यापार हैं। सोवियत व्यापार के ये दोनो रूप उद्योग और कृषि क्षेत्र मे समाज-वादी उत्पादन पर आश्रित होते हैं। राजकीय प्रतिष्ठानो मे उत्पादित समस्त बिक्री योग्य पदार्थों और सामूहिक फार्मों मे पैदा होने वाले खाद्य पदार्थों के बडे भाग की बिक्री राजकीय एव सहकारी व्यापार द्वारा ही होती है। ये पदार्थ व्यक्तिगत उपभोग के लिए इस्तेमाल होने वाली वस्तुओ का अधिकाश भाग होते हैं। राजकीय और सहकारी व्यापारिक सस्थानो द्वारा जिन वस्तुओ का व्यापार किया जाता है, उनकी फुटकर कीमतो का निर्धारण राज्य द्वारा—एक निश्चित योजना के अनुसार—होता है।

राजकीय और सहकारी व्यापार के साथ ही सामूहिक फार्मों द्वारा व्यापार भी होता है। इस प्रकार के व्यापार का अस्तित्व सामूहिक फार्मों की सहकारी सम्पत्ति की प्रकृति से निश्चित हो जाता है। सामूहिक फार्म अपने उत्पादित पदार्थों को अपनी मर्जी के अनुसार बेचते हैं।

सामूहिक फार्मों का व्यापार, नगरो और औद्योगिक बस्तियो मे तरकारियो, आलू, मास, डेरी पदार्थों, आदि, की सप्लाइ में प्रमुख भूमिका अदा करता है। इस प्रकार शहर और देहात के बीच वस्तुओ के परिचालन का विस्तार होता है।

सामूहिक फार्मों की मडियो मे सामूहिक फार्मों द्वारा उन वस्तुओ की बिक्री की जाती है, जो उन्हें समाजीकृत अर्थव्यवस्था के उत्पादन के एक भाग के रूप मे प्राप्त होती हैं। इन मडियो मे व्यक्तिगत किसान जो सामान अपने काम की इकाइयो के अनुरूप प्राप्त करते हैं या जो वे अपने निजी छोटे-छोटे खेतों पर पैदा करते हैं, उसका भी एक भाग इन मडियो मे बेचते हैं। सामूहिक फार्मों की मडियों में कीमतें पूर्ति और माग के नियम से नियन्त्रित होती हैं। राजकीय

और सहकारी व्यापार मे सुधार होने से, नियोजित कीमतो के प्रभाव से, सामूहिक फार्मों की मंडियो मे भी कीमतें गिर जाती हैं।

व्यापार—उत्पादन और उपभोग के बीच सतुलन कायम करने तथा बढ़ती हुई व बदलती हुई माग का अध्ययन करने का माध्यम है। समाजवादी व्यापार का उपभोक्ता माग का गहराई से अध्ययन करने तथा सम्बधित प्रतिष्ठानों व उद्योगो को वस्तुओ के चयन, उनकी मात्रा एव गुणो के सम्बध मे जनता की माग की अधिकाधिक पूर्ति के लिए राजी करने की आवश्यकता पड़ती है। व्यापारिक सस्थानो के काम मे व्यवस्थित सुधार तथा उनके कार्यकलाप की खामियो का दूर किया जाना समाजवादी पुनरुत्पादन के अबाध क्रम एव जनता की खुशहाली के विकास के लिए एक लाजमी शर्त है। व्यापारिक सस्थाओ के काम मे गड़बड़ी से श्रम की उत्पादकता बढाने मे मेहनतकश जनता की भौतिक दिलचस्पी कमजोर होती है।

लचीलापन और चतुराई व्यापारिक सस्थाओ के कुशलतापूर्ण कार्यकलाप की मुख्य शर्तें हैं। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु विशेष के उत्पादन की मात्रा पर्याप्त हो, तो भी देश के विभिन्न क्षेत्रो और जिलो के लिए उक्त वस्तु के त्रुटिपूर्ण नियोजन और वितरण से—यानी उन स्थानो की विशेषताओ पर ध्यान दिये बिना वितरण से—कभी कभी उपभोक्ताओ को पहुचायी जाने वाली सप्लाई मे गड़बड़ी पैदा हो जाती है। स्थानीय माल ससाधनो को बटोरना तथा माल के भण्डारो के विस्तार के लिए स्थानीय सम्भावनाओ का इस्तेमाल करना, व्यापार से प्राप्य विक्रय धन राशि का एक मुख्य कर्तव्य है।

व्यापार का विस्तार करके और व्यापारिक सस्थाओ के काम मे सुधार लाकर ही आवश्यकताओं के अनुसार वितरण के पेचीदा कम्युनिस्ट यत्र की रचना की जा सकती है।

विदेश व्यापार पर एकाधिकार

समाजवादी देशो की घरेलू मडी पूजीवादी देशो के आर्थिक आक्रमण के खतरे से सुरक्षित रहती है, क्योकि इन देशो म विदेश व्यापार राज्य का एकाधिकार होता है। विदेशो से होने वाले समस्त व्यापारिक लेन देन पर एकमात्र समाजवादी राज्य और उसके द्वारा नियुक्त सस्थाओ को ही अधिकार प्राप्त होता है।

सोवियत सघ व अन्य देशो के बीच आर्थिक सम्पर्क के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप के तौर पर, सोवियत सघ म विदेश व्यापार पर राजकीय एकाधिकार है। विदेश व्यापार पर राज्य के इस एकाधिकार के कारण देश के पूजीवादी तत्वो के साथ एकता और सम्पर्क स्थापित करने के पूजीवादी देशों के समस्त

प्रयासो पर शुरू से ही पानी फिर गया। इस से समाजवादी समाज को विदेश व्यापार सम्बधो को समाजवादी निर्माण के हितो के अधीन लाने मे सफलता मिली।

विदेश व्यापार पर एकाधिकार ने देश के समाजवादी औद्योगीकरण और कृषि के सामूहिकीकरण मे बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विदेश व्यापार का विकास इस उद्देश्य से किया गया कि आर्थिक योजनाओ की पूर्ति की जा सके। पुनर्निर्माण के शुरूआती दौर मे सोवियत सघ ने मशीनरी और मशीनी औजारो का बडी मात्रा मे आयात किया, जिनका इस्तेमाल उदीयमान समाजवादी उद्योग को अच्छी तरह लैस करने के लिए किया गया।

विदेश व्यापार सभी समाजवादी देशो के जीवन मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सर्वप्रथम तो यह विश्व की समाजवादी आर्थिक प्रणाली वाले देशो के बीच व्यापार के विकास एव विस्तार का एक माध्यम है। इसी के साथ यह समाजवादी देशो, औद्योगिक पूजीवादी देशो तथा नये विकासशील देशो के बीच आर्थिक सम्बधो के विकास का माध्यम भी है।

समाजवादी देश अपने आर्थिक विकास को अधिकाधिक तेज करने के लिए विदेश व्यापार का बडे पैमाने पर इस्तेमाल करते हैं।

समाजवादी समाज के वित्तीय साधन

अपनी विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए समाजवादी राज्य के पास निश्चित ससाधनो का होना जरूरी है। समाजवादी राज्य की मुख्य आमदनी राजकीय स्वामित्व के प्रतिष्ठानो और आर्थिक सगठनो की आमदनी होती है।

प्रत्येक राजकीय प्रतिष्ठान अपने उत्पादन की बिक्री की रकम से सबसे पहले अपने खर्चों को पूरा करता है। ये खर्चे लगभग उसकी उत्पादन लागत के बराबर होते हैं। उत्पाद की बिक्री की कुल रकम से उत्पादन लागत को घटा देने से प्रतिष्ठान की वास्तविक आय, अर्थात मुनाफा, निकल आता है। मुनाफे का आकार इस बात पर निर्भर करता है कि बिक्री किये जाने वाले उत्पाद की मात्रा क्या थी और उसका गुणात्मक स्तर कैसा था, उत्पादन लागत का स्तर क्या था, तथा लागत और विक्रय कीमतो के बीच क्या सम्बध था।

प्रतिष्ठान को मुद्रा के रूप म होने वाली आमदनी से उसके सचालन के लिए आवश्यक वित्तीय ससाधन प्राप्त होते हैं। प्रतिष्ठानो की मुद्रा रूपी आमदनी का एक निश्चित भाग, ससाधनो की सामान्य राजकीय निधि म चला जाता है जिसे दूसरे राजकीय खर्चों को पूरा करने और अन्य प्रतिष्ठानो को भी उपलब्ध कराने मे इस्तेमाल किया जाता है।

राजकीय प्रतिष्ठानो और आर्थिक सस्थानो की आमदनी राज्य की सामान्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए, आशिक रूप से प्रत्यक्ष और आशिक रूप से

वित्तीय ससाधनों की सामान्य राजकीय निधि द्वारा, इस्तेमाल होती है। सामूहिक फार्मों और सहकारी प्रतिष्ठानो की आमदनी का भी एक निश्चित भाग वित्तीय ससाधनो की सामान्य राजकीय निधि मे जमा होता है।

सामूहिक फार्मों, सहकारी प्रतिष्ठानो, जनता और उसके सगठनो के स्वतत्र ससाधनो को भी उस निधि म—ब्याज की एक निश्चित दर पर—जमा किया जाता है और उन्ह राज्य की सामान्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

वित्तीय ससाधनो के इस पुनर्वितरण से प्रतिष्ठानो, सगठनों, सस्थाओ और जनता की आमदनी का एक भाग एक निधि मे एकत्रित हो जाता है तथा उसे दूसरे प्रतिष्ठानों, सगठनो एव सस्थाओ को साधनो के रूप मे हस्तातरित किया जाता है। इस प्रकार के पुनर्वितरण से प्रतिष्ठानो के कार्यकलाप पर वित्तीय नियत्रण कायम करने का अवसर प्राप्त होता है। ये समस्त सचलन वित्तीय व्यवस्था—जिसमे राजकीय बजट, बैंक, राजकीय बीमा सस्थाए और बचत बैंक शामिल हैं—के काम के हिस्से हैं।

राजकीय बजट

राजकीय बजट समाजवादी वित्तीय व्यवस्था की मुख्य कडी है।

समाजवादी देश का राजकीय बजट समस्त अर्थव्यवस्था के साथ नजदीक से जुडा होता है, क्योकि यह देश के वित्तीय साधनो के बहुत बडे भाग को केन्द्रीकृत करता है तथा राज्य की आवश्यकताओ के बहुत बडे भाग की पूर्ति के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करता है।

सोवियत सघ का राजकीय बजट, राज्य की बुनियादी वित्तीय योजना होता है। यह किसी वित्तीय वर्ष के आमदनी और खर्च के हिसाब किताब का रूप धारण करता है और इसे सोवियत सघ की सर्वोच्च सोवियत के अधिवेशन द्वारा स्वीकार किया जाता है।

सोवियत सघ का राजकीय बजट सीधे सीधे राज्य के, जिसका प्रतिनिधित्व उसकी केन्द्रीय व स्थायी प्रशासकीय इकाइया करती हैं हाथो मे ससाधनो की निधि के रूप मे होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की आमदनी, बजट के *ससाधनो का मुख्य स्रोत होती है।* आजकल इस आमदनी मे मुख्यत राजकीय प्रतिष्ठानो और आर्थिक सगठनो के मुनाफो से की गयी कटौतिया और उनके द्वारा अदा की जाने वाली परिचालन कर की रकम शामिल होती है। प्रतिष्ठानो को चूकि नियोजन और आर्थिक प्रेरणा की नयी प्रणाली मे हस्तातरित किया जा रहा है, इसलिए परिसम्पत्तियों के इस्तेमाल के लिए आयद होने वाला महसूल ऐसा मुख्य स्रोत बन जायगा जिसके माध्यम से प्रतिष्ठान बजट के लिए अदायगिया करेंगे।

मुनाफो से की जाने वाली कटौतियां हर प्रतिष्ठान के कार्यकलाप के वित्तीय नतीजा और सामर्थ्य पर निर्भर करती हैं। वस्तुओ की प्राप्ति के साथ ही बजट के लिए परिचालन टैक्स वसूल हो जाता है। परिसम्पत्तियो के इस्तेमाल का महसूल जब राजकीय बजट की आमदनी का मुख्य अग बन जायगा, तो परिचालन कर समेत समस्त दूसरी अदायगियो का महत्व अपेक्षत. घट जायगा।

बजट मे दाखिल होने वाली रकमो का पुर्नवितरण करके राज्य सोवियत सघ की आर्थिक शक्ति को मजबूत करता है। राजकीय बजट के खर्च का अधिकाधिक भाग शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, विज्ञान एव सस्कृति के विकास और सामाजिक सुरक्षा पर खर्च होता है।

सोवियत सघ मे सभी कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो को राज्य की ओर से सामाजिक बीमे की सुविधा प्राप्त है जिसके लिए उनके वेतन से कोई कटौती नही की जाती। सामाजिक बीमे का प्रबन्ध कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो के जनसगठनो—ट्रेड यूनियनो—के हाथ मे होता है।

राजकीय सम्पत्ति और व्यक्तिगत बीमा तथा राजकीय बचत बैंक—जिनमे जनता की बचत तथा अस्थायी तौर पर फालतू रकमे जमा रहती हैं—बजट के साथ नजदीकी तौर पर जुडे होते हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे कर्ज

समाजवादी समाज मे कर्ज की प्रणाली अस्थायी तौर पर निष्क्रिय वित्तीय ससाधनो को परिचालन मे ले आती है तथा रकम की अस्थायी आवश्यकता की पूर्ति करती है। यह प्रणाली कर्ज की विधियो की विशिष्टता को—वित्तीय ससाधनो के पुर्नवितरण को—निश्चित करती है। इसके विपरीत, वित्तीय और बजट की विधिया, मुख्यत. आमदनियों और सचयों से सम्बध रखती है।

कर्ज, धन को एकजुट करने की एक विधि है। किन्तु इसी के साथ यह शर्त भी जुडी हुई है कि इस धन को पहली ही माग पर वापस कर दिया जाना चाहिए। इस धन की व्यवस्था करने के लिए अस्थायी तौर पर स्वतत्र मुद्रा ससाधनो को कर्ज सस्थानो के खातो मे जमा किया जाता है। किन्ही प्रतिष्ठानो, सस्थानो और सगठनो की अस्थायी तौर पर स्वतत्र मुद्रा रकम को, जो कर्ज-सस्थानो के खातो मे जमा होती है, दूसरे संगठनो को एक निश्चित अवधि के लिए उधार देकर आर्थिक परिचालन मे लगा दिया जाता है। शर्त यह होती है कि इन सगठनो को—समय बीतने पर—यह रकम वापस लौटानी होगी। इस धन के कर्ज के लिए एक निश्चित दर पर ब्याज अदा किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे ब्याज कर्ज-पूजी की कीमत नही होता (क्योंकि कर्ज पूजी नाम की कोई श्रेणी होती ही नही), बल्कि बैंक द्वारा की गयी सेवाओ का प्रतिफल होता है।

कर्ज संस्थानो के खातो और हिसाब मे स्वतन्त्र मुद्रा ससाधनो के जमा होने से, खातो मे इन्दराजो के द्वारा हिसाब-किताब करना सम्भव हो जाता है। खातो के इन इन्दराजो से मुद्रा और भौतिक ससाधनो के परिचालन मे तेजी आती है। इनसे मुद्रा के सचालन को नियन्त्रित करने मे तथा मुद्रा परिचालन पर प्रभावी नियन्त्रण कायम करने मे सहायता मिलती है।

उत्पादन की सभी मजिलो मे तथा मालो के सचलन मे कर्ज, प्रतिष्ठानो के काम मे सहायक होता है। यह बात उन कर्जो पर लागू होती है जो कच्चे मालों, ईंधन, अर्ध तैयार माल और दूसरे सामानो की अदायगी के लिए या उत्पादन जारी रखने के लिए लिये जाते हैं। यही बात कारखानो व कार्यालयो के कर्मचारियो के वेतनो की अदायगी के लिए ली जाने वाली कर्ज की रकम पर भी लागू होती है।

सोवियत सघ का राजकीय बैंक अल्पकालीन कर्जों, अर्थव्यवस्था मे किये जाने वाले करारो, मुद्रा जारी करने व जमा करने तथा विदेशो के साथ हिसाब-किताब तय करने की मुख्य संस्था या माध्यम है। परिचालन सम्पत्तियो तथा नकद परिसम्पत्तियो के सचलन के लिए मौद्रिक ससाधन इसी बैंक मे केन्द्रित रहते हैं। राजकीय बैंक ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा विभिन्न प्रतिष्ठानो, सस्थाओ और सगठनो के बीच हिसाब किताब तय किये जाते हैं। राजकीय बैंक ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के मामले मे राजकीय बजट के हिसाब-किताब को देखता है और बजट के लिए अदायगी करता है।

समाजवाद की मुद्रा प्रणाली

समाजवादी देशो मे मुद्रा प्रणाली नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था का एक अग है।

सोवियत सघ मे राजकीय बैंक के द्वारा मुद्रा का परिचालन होता है। राजकीय बैंक विभिन्न प्रतिष्ठानो और आर्थिक सगठनो को, योजनाओ की पूर्ति मे हुई प्रगति को देख कर, कर्ज देने की व्यवस्था करता है। इस प्रकार वह परिचालन के लिए मुद्रा की आवश्यकताओ की पूर्ति करता है।

उत्पादन और व्यापार के सचलन का जैसे-जैसे विस्तार होता है वैसे ही वैसे मुद्रा के परिचालन की रकम भी बढती जाती है। इसका कारण यह है कि बैंक द्वारा दिये जाने वाले कर्जों की रकम बढ जाती है तथा आर्थिक सगठनो के आदेश पर बैंक द्वारा की जाने वाली अदायगियो की रकम भी बढ जाती है। ऐसे जमाने मे, जब कुछ दिनो के लिए व्यापार सचलन मे कमी आ जाती है तो आर्थिक सगठनो की मुद्रा सम्बधी माग भी घट जाती है, कर्जों की अदायगी हो जाती है, बैंक मे रकम वापस आ जाती है तथा मुद्रा का परिचालन भी कम हो जाता है। इस प्रकार, मुद्रा का परिचालन बैंक के कर्ज सम्बधी कार्यकलाप से नजदीक से जुडा हुआ है।

इसी तरह मुद्रा का परिचालन हिसाब-किताब को साफ करने की क्रिया से भी काफी जुडा हुआ है। हम पहले देख चुके हैं कि समाजवादी अर्थव्यवस्था मे विभिन्न प्रतिष्ठानो, संस्थाओ और सगठनो के बीच व्यापारिक करार और लेन-देन खातो के इन्दराजो द्वारा पूरे होते हैं। सगठन, बैंक के पास लिखित निदेश भेजते हैं कि अमुक रकम अदा कर दी जाय। निदेश मिलने पर बैंक निदेश देने वाले सगठन के खाते से उतनी रकम घटा देता है और जिसको अदा करने को कहा गया है उसके खाते मे जमा कर देता है।

नकद रकम की जरूरत मुख्यतः वेतनो की अदायगी, कृषि उत्पादो की खरीद तथा छोटे छोटे बिलो के भुगतान के लिए होती है। इसलिए, राजकीय बैंक से जो रकम भुगतान की जाती है, उसका अधिकाश भाग वेतनो की अदायगी तथा कृषि उत्पादो की खरीद पर जाता है।

इसके अलावा, राजकीय बैंक मे बजट की फुटकर अदायगियो के रूप मे तथा बचत बैंको मे जमा पूजी के रूप मे नियम से रकम जमा होती रहती है। राजकीय बैंक पेन्शनो, अनुदानो, बीमा, आदि, के लिए भी रकम सुलभ करता है। बैंक से मुद्रा का आवागमन निरन्तर चलता रहता है।

सोवियत सघ मे मुद्रा के परिचालन का नियत्रण राजकीय बैंक की नकद सम्बधी योजना के अनुसार किया जाता है। नकद सम्बधी योजना को तैयार करते समय बैंक को प्राप्त होने वाली सभी नकद रकमो पर, तथा योजना काल मे बैंक द्वारा अदा की जाने वाली सभी रकमो पर, ध्यान रखा जाता है। नकद सम्बधी योजना फुटकर व्यापार सचलन योजनाओ, कारखानो व कार्यालयो के मजदूरो की सख्या सम्बधी योजना, वेतन निधि तथा प्राप्तियो और अदायगियो के आकार को निश्चित करने वाले आर्थिक योजना के अन्य सूचको के आधार पर तैयार की जाती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के सफल विकास के लिए आवश्यक है कि उसकी मुद्रा सुदृढ हो। मुद्रा परिचालन का नियत्रण नियोजित आर्थिक प्रबन्ध का एक बुनियादी कर्तव्य है। मालो का विशाल भडार राज्य के हाथो मे केन्द्रित रहता है और निश्चित कीमतों के साथ बाजार मे लाया जाता है। इससे समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मुद्रा के सुदृढ रहने की गारटी होती है।

राजकीय वित्तीय अनुशासन और किफायत की प्रधानता

वित्त तथा कर्ज की प्रणाली समाजवादी अर्थव्यवस्था मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। उसकी सामान्य गतिशीलता समाजवादी पुनरुत्पादन के अबाध विकास के लिए एक शर्त है। राजकीय वित्तीय अनुशासन का पालन तथा अर्थव्यवस्था मे किफायत की प्रधानता वित्त और कर्ज की प्रणाली की सामान्य गतिशीलता के लिए आवश्यक हैं।

राजकीय वित्तीय अनुशासन का तकाजा होता है कि सभी प्रतिष्ठान राज्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी को निश्चित तौर पर और समय से पूरा करें दूसरे प्रतिष्ठानो या सगठनो के साथ किये अपने करारो को भी निश्चित तौर पर तथा समय से पूरा करें, समय पर अदायगी करें समय से वस्तुओ की डिलीवरी करें तथा स्वय उनको दी गयी डिलीवरी के लिए समय से अदायगी करें। निरन्तर इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनावश्यक खर्चों से बचा जाय तथा उत्पादन व व्यापार में अस्वीकृत सामानों का उत्पादन व बर्बादी न हो। यह भी जरूरी है कि सचलन सम्पत्तियो के परिचालन को तेज करने के लिए आवश्यक वित्तीय साधन और भौतिक मूल्य निष्क्रिय न पड़े रहें।

किफायतपूर्ण तथा कुशलतापूर्ण प्रबन्ध की दिशा में उठाये जाने वाले सभी कदम समग्र समाजवादी अर्थव्यवस्था, तथा विशेष रूप से उसकी वित्तीय प्रणाली, को मजबूत बनाते हैं।

दोहराने के प्रश्न

१ समाजवादी पुनरुत्पादन का मूल तत्व क्या है ?

२ राष्ट्रीय आय कैसे बढती है ?

३ समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वित्तीय प्रणाली के क्या काम होते हैं ?

●

अध्याय १७

विश्व समाजवादी अर्थव्यवस्था

१. विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना

विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय और विकास

सोवियत सघ मे समाजवाद की विजय से ससार मे पूजीवादी आर्थिक व्यवस्था के साथ ही एक समाजवादी अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। किन्तु लगभग ३० वर्षों तक सोवियत सघ एकमात्र समाजवादी देश बना रहा।

बडी सख्या मे एशिया और योरप के देशों मे समाजवादी क्रान्ति की विजय से समाजवाद अकेले एक देश की सीमाओं से निकल कर एक विश्व व्यवस्था बन गया। विश्व समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का उदय हुआ और वह दिनोदिन मजबूत होने लगी। विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना और सुदृढीकरण से पूरी दुनिया मे समाजवाद और पूजीवाद के बीच का शक्ति-सतुलन बदल गया। यह वास्तविकता अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट व मजदूर आन्दोलन की सबसे बडी उपलब्धि है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की एक नयी ऐतिहासिक विजय है तथा समाजवाद और मानवजाति की अपराजेय प्रगति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। १०० करोड से अधिक इन्सान आज विश्व समाजवादी व्यवस्था वाले देशो मे रह रहे हैं। यह सख्या दुनिया की जनसख्या की एक-तिहाई से अधिक है।

विश्व समाजवादी समुदाय दुनिया की प्रगतिशील ताकतो का एक शक्तिशाली गढ है। पूजीवादी व्यवस्था को तोड कर उसके शिकन्जे से मुक्त हुए देशो मे दुबारा पूजीवाद की स्थापना करने की क्षमता अब दुनिया की किसी भी ताकत मे नही है।

समाजवाद के एक विश्व व्यवस्था मे रूपातरण से पूजीवाद का ऐतिहासिक पराभव पूरी तरह उजागर हो गया है। इसने दो सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच सघर्ष की—जो पूजीवाद के सामान्य सकट का मुख्य लक्षण बन गया है—एक नयी मजिल का सूत्रपात किया। हमारे इस काल-खण्ड का मुख्य अन्तर्विरोध—विकासमान समाजवाद तथा मरणासन्न पूजीवाद के बीच अन्तर्विरोध—एक नयी मजिल पर पहुच गया है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय, मौजूदा दौर मे, समाज के प्रगतिशील विकास का सर्वप्रमुख परिणाम है। हमारे युग की मुख्य विशिष्टता यही है कि आज विश्व की समाजवादी व्यवस्था मानवजाति के विकास मे निर्णायक उपादान बनती जा रही है। यह मानव विकास की वर्तमान अवस्था मे इतिहास के लाजमी क्रम का नतीजा है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर आगे बढ़ने वाले स्वतंत्र और प्रभुसत्तासम्पन्न जनगण का एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समुदाय है जो समान हितो और उद्देश्यो से, तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी एकजुटता की घनिष्ठ कड़ियो से बधा हुआ है। समाजवादी देशो का आर्थिक आधार एक ही किस्म का है—अर्थात वहा उत्पादन के साधन सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं, राजकीय व्यवस्था भी एक जैसी होती है—अर्थात मजदूर वर्ग के नेतृत्व मे जनता के हाथ मे सत्ता, एक ही किस्म की विचारधारा होती है—मार्क्सवाद-लेनिनवाद; साम्राज्यवादी दखलदाजी के खिलाफ अपनी राष्ट्रीय आजादी और क्रान्तिकारी उपलब्धियो की रक्षा के उनके हित भी एक जैसे होते हैं, और, इन सबका एक ही सर्वोच्च लक्ष्य होता है—कम्युनिज्म।

इन सब तथ्यो से समाजवादी देशो के बीच टिकाऊ और मैत्रीपूर्ण सम्बधो का वस्तुगत आधार तैयार हो जाता है। इन सम्बधो का विशेष लक्षण यह होता है कि ये पूर्ण समानता, एक-दूसरे की स्वतत्रता व प्रभुसत्ता के प्रति आदर, पारस्परिक लाभ तथा बिरादराना आपसी सहायता के सिद्धान्तो पर आधारित होते हैं। विश्व समाजवादी समुदाय मे किसी भी देश को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नही हो सकते और न प्राप्त होते हैं। विश्व समाजवादी व्यवस्था के विकास के साथ-साथ अन्तर्राज्यीय सम्बधो के नये रूपों मे लगातार सुधार हो रहा है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के विकास मे नयी मजिल

समाजवादी देशो मे और उनके बीच सम्बधो मे जो गहरे गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं उनके परिणामस्वरूप, विश्व समाजवादी व्यवस्था ने अपने विकास की एक नयी मजिल में प्रवेश किया है।

इस मजिल की शुरूआत नीचे लिखे बुनियादी उपादानो से निश्चित होती है। सोवियत सघ ने कम्युनिस्ट निर्माण की मजिल मे प्रवेश किया है। अधिकाश समाजवादी देशो मे बहु-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था समाप्त हो गयी है और समाजवाद की नीव डालने का काम पूरा हो चुका है। समाजवादी देशों मे बिरादना सहयोग और पारस्परिक सहायता का बड़े पैमाने पर विकास हुआ।

पूजीवाद के पुनर्स्थापन की सामाजिक-आर्थिक सम्भावनाओ का सभी समाजवादी देशो मे खात्मा कर दिया गया है। विश्व समाजवादी व्यवस्था की

बढ़ती हुई शक्ति इस बात की जमानत है कि इन देशो की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उपलब्धिया सुरक्षित रहेगी।

सभी समाजवादी देशो मे औद्योगिक उत्पादन का हिस्सा बढ रहा है। औद्योगिक विकास विश्व समाजवादी व्यवस्था के विकास की अन्तर्भूत लहर बन गया है। अधिकाश समाजवादी देशो मे कृषि के सहकारीकरण का काम पूरा हो चुका है।

गहरे क्रान्तिकारी परिवर्तनो के फलस्वरूप समाज के वर्गीय ढाचे मे भी परिवर्तन हुए है। मजदूर वर्ग और किसानो के बीच एकता सुदृढ हुई है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का आर्थिक आधार खत्म कर दिया गया है तथा जनता की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक एकता मजबूत हो रही है।

समाजवादी देशो की उन्नत होती अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप मेहनतकश जनता का जीवन-स्तर काफी ऊचा उठा है। समाजवादी देशो मे जनता की भौतिक खुशहाली मे व्यवस्थित वृद्धि इस बात का पक्का सबूत है कि समाजवाद पूजीवाद से निर्णायक रूप से श्रेष्ठ है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था ने, अपनी अल्पायु के बावजूद, अत्यधिक अनुभव जुटाया है। यह अनुभव मानवजाति के आगे के विकास का मार्ग तय करने मे अत्यधिक महत्व का है। किसी अकेले एक देश के अनुभव ने नही, बल्कि देशो के एक बडे समूह के अनुभव ने साबित कर दिया है कि समाजवादी व्यवस्था लाजमी तौर पर पूजीवादी व्यवस्था का स्थान लेगी और उसने समाजवादी व्यवस्था की निर्णायक श्रेष्ठता को उजागर कर दिया है। नयी व्यवस्था ने उत्पादक शक्तियो की वृद्धि की उच्च दरो, मेहनतकश जनता के जीवन स्तर मे निरन्तर उन्नति, शोषण से मुक्ति तथा व्यक्ति के सामाजिक व राजनीतिक अधिकारो के विस्तार को सुनिश्चित कर दिया है।

विश्व समाजवादी तथा विश्व पूजीवादी व्यवस्थाओं के बीच बुनियादी अन्तर

विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय पूजीवादी व्यवस्था की अपेक्षा बिलकुल ही दूसरे ढग से हुआ और उसका विकास भी दूसरे ढग से हो रहा है।

पूजीवाद एक विश्व व्यवस्था इसलिए बना क्योकि उसने अधिकाधिक देशो को विश्व के पूजीवादी बाजार के भवर मे घसीटा था तथा पूरे ससार में पूजीवादी शोषण-सम्बधो का प्रसार किया था। इसी के साथ, देशो के आपसी सम्बध अधिकाधिक तौर पर शासक तथा शासित के सिद्धान्त के मातहत होते गये थे। विश्व पूजीवादी व्यवस्था मे आर्थिक सम्बध इस आधार पर विकसित हुए कि कुछ देशो ने कुछ अन्य देशो को वित्तीय तौर पर अपने अधीन कर लिया

तथा कुछ साम्राज्यवादी शक्तियों ने करोड़ों-अरबों इन्सानों को औपनिवेशिक गुलामी के जुए में जकड़ लिया।

समाजवाद एक विश्व व्यवस्था इस कारण बना कि उसने अनेक देशो मे पूंजीवादी शोषण के सम्बधो को समाप्त कर दिया, उनके बीच नये सम्बधों की स्थापना की—ऐसे सम्बधो की जो मैत्रीपूर्ण सहयोग तथा बिरादराना पारस्परिक सहायता के सम्बध हैं। विश्व रगमच पर समाजवाद, देशो के एक सुदृढ समुदाय के रूप मे उदित हुआ है। इन देशों के आपसी सम्बध समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्त पर आधारित हैं।

पूंजीवाद के विपरीत, समाजवाद जनगण मे फूट नही डालता बल्कि उनमे एकता स्थापित करता है। उनके बीच वह पूर्ण समानता, साथियो जैसा सहयोग और पारस्परिक सहायता पर आधारित नजदीकी रिश्ते कायम करता है। समाजवादी देशो के बीच व्यापक सहयोग विश्व समाजवाद के आम आर्थिक आधार को मजबूत बनाता है। सभी समाजवादी देश विश्व समाजवादी व्यवस्था को विकसित करने और उसे सुदृढ बनाने मे अपना-अपना योगदान करते हैं। सोवियत सघ का अस्तित्व, उसका अनुभव, उससे प्राप्त होने वाली सहायता—ये विश्व समाजवादी समुदाय के देशो मे समाजवाद के निर्माण को सुगम बनाते हैं।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे नये, अभूतपूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बधो का उदय हुआ है। ये सम्बध समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन सम्बधो के चरित्र से उद्भूत हैं तथा समाजवाद के आर्थिक नियमो पर आधारित हैं।

विश्व पूंजीवादी व्यवस्था मे अलग-अलग देशो के असमान विकास का नियम, अत्यधिक विकसित और अल्प-विकसित देशो, अमीर देशो और गरीब देशो के बीच खाई को और भी गहरा बनाता है। विश्व समाजवादी व्यवस्था मे नियोजित, सानुपातिक विकास का तथा बिरादराना पारस्परिक सहायता देने का नियम लागू होता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी देशो की अर्थव्यवस्था मे निरन्तर विस्तार होता है और, स्वभावतः, उनका आर्थिक विकास-स्तर एक-दूसरे के निकट आता है।

विश्व पूंजीवादी व्यवस्था मे अलग-अलग देशों मे उत्पादन वृद्धि उनके बीच अन्तर्विरोधो को तीव्र करती है तथा उनमें प्रतियोगिता के सघर्ष को गहरा बनाती है। विश्व समाजवादी व्यवस्था में हर देश की आर्थिक उन्नति समूची समाजवादी व्यवस्था को आगे बढाती है और मजबूत बनाती है।

विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के अर्थतत्र का विकास धीमी गति से होता है और उसे अनेक सकटो और झटकों से होकर गुजरना पडता है। विश्व समाज-

वादी आर्थिक व्यवस्था का विकास तेज और टिकाऊ दर से होता है क्योंकि उसके अन्तर्गत सभी समाजवादी देशो का लगातार आर्थिक विकास होता रहता है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था समाजवादी देशों का एक ऐसा समुदाय है, जिसमें अलग-अलग देशो के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र व्यापक आर्थिक सम्बधो द्वारा एक-दूसर से जुडे होते हैं। बिरादराना देशो के बीच आर्थिक सहयोग और श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी बटवारे के फलस्वरूप विश्व समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के लिए हर समाजवादी देश की उत्पादक शक्तियो को विकसित करना और विश्व समाजवादी व्यवस्था को आर्थिक रूप से मजबूत बनाना सम्भव हो जाता है।

समाजवाद और पूंजीवाद के बीच शक्तियो का सतुलन निरन्तर पूंजीवाद के विपक्ष में और समाजवाद के पक्ष में बदल रहा है। समाजवादी व्यवस्था शान्ति और सामाजिक प्रगति के हित में विश्व के विकास क्रम को निश्चित करने वाला निर्णायक तत्व बनती जा रही है।

समाजवादी देशों की एकता और सुसम्बद्धता : समाजवाद की जीतों की जमानत

विश्व समाजवादी व्यवस्था—इस व्यवस्था के अन्तर्गत देशो का एक समूह मात्र नही है। मानवजाति के जीवन में यह बुनियादी तौर से एक नया तत्व है, जो समाजवाद की शक्ति को बहुत बढा देता है। १९२० मे ही लेनिन ने अकेली एक विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता के बारे में बुद्धिमत्तापूर्ण भविष्यवाणी की थी। लेनिन ने कहा था कि यह ऐसी अर्थव्यवस्था होगी जो सभी राष्ट्रो के सर्वहारा द्वारा, एक सामान्य योजना के अन्तर्गत नियन्त्रित की जायगी। उन्होंने यह भी बताया था कि यह रुझान अभी पूंजीवाद के अन्तर्गत ही दिखायी देती है तथा समाजवाद के अन्तर्गत इसे निस्सन्देह और ज्यादा विकसित किया जा सकता है और पूर्ण रूप से समोया जा सकता है।

यह रुझान विश्व समाजवादी व्यवस्था मे प्रतिबिम्बित है, जो कि विश्व के पैमाने पर समाजवादी अर्थव्यवस्था की अग्रज है। विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों के आधार पर एक परिवार के रूप मे ऐक्यबद्ध, समान जनगण का बिरादराना सहयोग निरन्तर बढता और मजबूत होता जा रहा है।

आज ससार मे शक्तिशाली समाजवादी समुदाय का अस्तित्व, अलग अलग देशो मे समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय की एक मुख्य शर्त है। विश्व समाजवादी व्यवस्था की शक्ति और अपराजेयता को सुदृढ बनाने वाला एक

अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान बिरादराना समाजवादी देशो का राजनीतिक व आर्थिक रूप से लगातार मजबूत होना है।

इतिहास मे पहली बार कम्युनिज्म की मशाल को हाथ मे लेकर आगे बढता हुआ सोवियत सघ, समूचे समाजवादी समुदाय के कम्युनिज्म की ओर प्रयाण को सुगम और तेज बना रहा है। सोवियत सघ में कम्युनिस्ट निर्माण समस्त विश्व समाजवादी व्यवस्था की आर्थिक व सुरक्षात्मक शक्ति को सुदृढ बनाता है। इससे दूसरे समाजवादी देशो को सहायता और समर्थन देने के लिए और सोवियत सघ के साथ उनके आर्थिक एव सास्कृतिक सहयोग को और ज्यादा घनिष्ठ बनाने के लिए उपयुक्त सम्भावनाए पैदा होती हैं। इस तरह सोवियत सघ मे कम्युनिस्ट निर्माण सभी समाजवादी देशो के जीवन्त हितो के अनुकूल है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य समाजवादी देशो की बिरादराना मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टिया विश्व समाजवादी व्यवस्था की एकता को सुदृढ करने की आवश्यकता के आधार पर काम करती हैं।

२. समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग और पारस्परिक सहायता

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन

विश्व समाजवादी व्यवस्था का विकास श्रम के एक नये प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन को जन्म देता है।

पहले तो विभिन्न देशों के बीच श्रम का केवल पूजीवादी विभाजन होता था, जो शक्तिशाली लुटेरो द्वारा कमजोर देशो के शोषण पर आधारित था। किन्तु अब श्रम का समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन निर्मित हो रहा है। यह समाजवादी देशों के बीच व्यापक आर्थिक, वैज्ञानिक एव प्राविधिक सहयोग के दौरान विकसित होता है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन स्वेच्छा तथा पूर्ण समानता के सिद्धान्तो पर आधारित है। इसमे, विश्व समाजवादी व्यवस्था के प्रत्येक देश की विशिष्टताओं, उनकी प्राकृतिक सम्पदा तथा इन देशो के कर्मचारियो की कार्यकुशलता को ध्यान मे रखा जाता है। इस श्रम विभाजन का उद्देश्य होता है समाजवादी देशो की उत्पादक शक्तियों का तेजी से विकास करना। यह एक ऐसा उपादान है जो प्रत्येक समाजवादी देश और समूची विश्व समाजवादी व्यवस्था के आर्थिक और सास्कृतिक प्रयाण को तेज करता है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन सामाजिक उत्पादन की प्रभावकारिता को बढाने तथा वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति को तेज करने मे सहा-

यक होता है। इस प्रकार यह समस्त समाजवादी देशो मे अर्थतंत्रो तथा मेहनतकश जनता की खुशहाली में वृद्धि की ऊची दरें हासिल करने मे मदद पहुचाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रम विभाजन का व्यवस्थित रूप से गहन होते जाना, अलग-अलग देशो के अर्थतंत्रो को आवश्यक उपकरणो और कच्चे मालो से लैस करने तथा इन देशो की जनता के लिए उपभोक्ता माल मुहैया करने मे अधिकाधिक वडी भूमिका अदा करता है। इससे समस्त विश्व समाजवादी व्यवस्था के पैमाने पर उत्पादक शक्तियो के सही स्थान के चयन मे सहायता मिलती है, हर अलग-अलग देश के अर्थतंत्र मे आवश्यक अनुपात की स्थापना सम्भव होती है तथा अर्थतंत्र की परस्पर सम्बधित व परस्पर पूरक शाखाओ के विवेकपूर्ण सयोजन को पूर्ण किया जाता है। समान श्रम और भौतिक ससाधनो के अत्यन्त प्रभावी उपयोग से उत्पादक शक्तियो का तेजी से विकास करने मे सहायता मिलती है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३ वी काग्रेस के निर्णयो मे समाजवादी देशो के साथ सोवियत सघ के आर्थिक सम्बधो के और अधिक विकास को तथा विश्व समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ बनाने के हितो मे सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद व बिरादराना पारस्परिक सहायता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रम विभाजन के इस्तेमाल को १९६६-७० की आर्थिक योजना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कामो में से एक काम माना गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रम विभाजन का विकास सचेतन विवेकपूर्ण आर्थिक प्रबन्ध को—जिसकी समाजवाद पूजीवादी उत्पादन की अराजकता के स्थान पर स्थापना करता है—प्रोत्साहित करता है। इससे प्रत्येक समाजवादी देश की तथा समग्र विश्व समाजवादी समुदाय की शक्ति मे इजाफा होना है।

समाजवादी देशों के बीच आर्थिक सहयोग की भूमिका

विश्व समाजवादी व्यवस्था के देशो के बीच आर्थिक सहयोग—जैसे जैसे इस व्यवस्था का विस्तार होता और उसमे मजबूती आती है वैसे ही वैसे—विकसित और पूर्ण होता रहता है।

इस व्यवस्था के अस्तित्व की पहली अवस्था मे तो आर्थिक सहयोग मुख्यतः द्विपक्षीय व्यापार तथा वैज्ञानिक व प्राविधिक सूचनाओ के आदान-प्रदान तक ही सीमित था। कुछ देशो द्वारा कुछ अन्य देशो को कर्ज देने की व्यवस्था भी थी।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के और अधिक विकास के साथ ही आर्थिक सहयोग के नये रूप भी विकसित हुए। १९४९ मे स्थापित पारस्परिक आर्थिक

सहायता परिषद अधिकाधिक बड़ी भूमिका अदा करने लगी। यह परिषद बिरादराना देशों के बीच आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक सहयोग के विकास के लिए सिफारिशें तैयार करती है तथा इस प्रकार के सहयोग के नये रूपों की खोज करती है। १९६६-७० के लिए पचवर्षीय योजना के बारे में सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २३वी काग्रेस के निर्देशों में पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों के बीच उद्योग, यातायात, व्यापार, कर्ज व वित्तीय सम्बधो तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा करारो के क्षेत्र मे आर्थिक सहयोग के नये तर्कसगत रूपों को विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग और बिरादराना पारस्परिक सहायता आर्थिक विकास योजनाओ की सफल पूर्ति के लिए, विज्ञान और प्रविधि के विस्तार और जनता के रहन सहन के स्तर मे निरन्तर उन्नति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। सोवियत सघ के साथ वृहद आर्थिक सहयोग, उससे प्राप्त बिरादराना सहायता तथा समाजवादी देशो की पारस्परिक सहायता के परिणामस्वरूप योरप के समाजवादी देशो ने ऐतिहासिक रूप से बहुत ही कम समय के भीतर घरेलू कोयला व धातु शोधन के आधार को, धातुए निकालने की अनेक शाखाओं को, विद्युत उद्योग तथा इजीनियरिंग व रासायनिक उद्योग की अनेक शाखाओ को विकसित कर लिया है। समाजवादी समुदाय मे उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि हुई है, दर्जनो नयी शाखाओं का उदय हुआ है और हजारो नये औद्योगिक उत्पादो के उत्पादन को बडे पैमाने पर हाथ मे लिया गया है।

समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग एक ऐसा शक्तिशाली उपादान है जो पूजीवाद के साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे समाजवाद को शक्ति प्रदान करता है। प्रत्येक समाजवादी देश के अर्थतत्र के विकास के लिए विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी देशो के प्रयासो को समन्वित करके तथा उनके बीच आर्थिक सहयोग एव पारस्परिक सहायता को मजबूत व विस्तारित करके विश्व समाजवादी व्यवस्था को और अधिक उन्नत किया जा रहा है।

समाजवादी देशों के बीच आर्थिक सहयोग के मुख्य स्वरूप

समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग के अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वरूप है. पारस्परिक व्यापार, उत्पादन में विशिष्टीकरण और सहयोग, विज्ञान तथा प्रविधि के क्षेत्र मे सहयोग तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण उद्योगो का सयुक्त रूप से सयोजन।

समाजवादी देशो के बीच सम्बधो की मजबूती उनके व्यापार सचलन की वृद्धि मे परिलक्षित होती है। आजकल सोवियत सघ के विदेश व्यापार का ७० प्रतिशत अश समाजवादी देशो के साथ है। समाजवादी देशो के लिए आवश्यक उपकरणो और मशीनरी का ९५ प्रतिशत से अधिक भाग या तो स्वय

उन देशो मे पैदा होता है या समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत विनिमय द्वारा प्राप्त होता है।

पचवर्षीय योजना मे समाजवादी देशो के साथ व्यापार मे और अधिक वृद्धि की व्यवस्था की गयी है। वैदेशिक आर्थिक सम्बधो के क्षेत्र मे पचवर्षीय योजना के कर्तव्यो मे सोवियत सघ व दूसरे समाजवादी देशो के व्यापार सचलन मे वृद्धि, आयात और निर्यात के ढाचे मे और अधिक सुधार करने वाले समन्वित उपायो का कार्यान्वियन तथा इस आधार पर विदेश व्यापार की प्रभावकारिता को बढाना शामिल है। २३वी पार्टी काग्रेस मे नोट किया गया कि अन्य समाजवादी देशो के साथ सहयोग से पचवर्षीय योजना के कर्तव्यो को पूरा करने मे सहायता मिलेगी। यह उम्मीद की जाती है कि रसायन उद्योग, हल्के उद्योग, खाद उद्योग तथा उद्योग की अन्य शाखाओ के प्रतिष्ठानो और शापो के लिए उपकरणो के एक हजार से अधिक सेट खरीदे जायेंगे। समाजवादी देशो से प्राप्त होने वाले सामानो से सोवियत सघ के समुद्री यातायात जहाजो की ४५ प्रतिशत, मेन-लाइन तथा औद्योगिक विद्युत रेल इजनो की ४० प्रतिशत तथा रेल गाडियो की ३६ प्रतिशत आवश्यकताए पूरी होगी। इस बात की भी योजना है कि समाजवादी देशो से भारी मात्रा मे उपभोक्ता वस्तुए खरीदी जायें: सिले-सिलाये कपडे, होजरी के सामान, जूते, कपडे, खाद्य पदार्थ और रासायनिक उद्योग के उत्पाद। इसके साथ ही, सोवियत सामानो से समाजवादी देशो की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति होगी, जैसे उपकरणो और मशीनरी की अनेक किस्मो, ठोस व द्रव ईंधन, धातु शोधन के लिए आवश्यक कच्चे मालो और धातुओं, सेल्यूलोस और कागज, तथा अन्य बहुत सी वस्तुओ की।

समाजवादी देशो के आर्थिक गठबन्धन मे उद्योग में व्यापकतर सहयोग और विशिष्टीकरण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उत्पादन का समाजवादी विशिष्टीकरण और सहयोग हर शरीक देश के हितो का पूरा सम्मान करने के आधार पर विकसित होता है। उत्पादन के विशिष्टीकरण और सहयोग से प्रत्येक देश की प्राकृतिक सम्पदा को बेहतर ढग से इस्तेमाल करना तथा उस देश के अर्थतत्र को लाभकारी ढग से विकसित करना सम्भव हो जाता है। इसी से उस देश मे मौजूद स्थितियो के अनुकूल उद्योगो का विकास व विस्तार करना भी सम्भव हो जाता है। इससे उत्पादक क्षमताओ और कार्यकुशल कर्मचारियो के अत्यन्त विवेकपूर्ण इस्तेमाल मे सहायता मिलती है, उत्पादन का तकनीकी स्तर ऊचा उठता है तथा लाइन व उद्योगो की बडी-बडी शृखलाओ के सयोजन मे मदद मिलती है।

आजकल बिरादराना देशो के सामने आर्थिक रूप से कारगर तथा स्थायी विशिष्टीकरण और सहयोग को—विशेष रूप से इजीनियरिंग व रासायनिक

उद्योग, लौह धातु शोधन तथा इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्रो मे—और अधिक विकसित करने का कर्तव्य उपस्थित है।

कृषि के क्षेत्र मे, समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग तथा उनके बीच श्रम विभाजन के विकास से हर देश की आर्थिक व प्राकृतिक परिस्थितियो व प्रत्येक देश की जनता के अनुभवो एव परम्पराओ का अत्यन्त प्रभावकारी ढग से इस्तेमाल किया जाना सम्भव हो जाता है। इस प्रकार वे घरेलू इस्तेमाल के लिए तथा निर्यात के लिए कृषि पदार्थों के उत्पादन मे वृद्धि करने मे सफल होते हैं। समाजवादी देशो की प्राकृतिक परिस्थितियों और आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए कृषि के विभिन्न क्षेत्रों के समन्वय से जनता के लिए खाद्यान्नो की पूर्ति करने तथा उद्योगो के लिए कच्चे माल की सप्लाई करने मे सुधार होता है। इन सबमे समाजवादी देशो मे जनता के रहन-सहन के स्तर को उन्नत करना सम्भव होता है।

समाजवादी देशो मे प्राविधिक प्रगति मे तेजी लाने के लिए उनके बीच वैज्ञानिक एव प्राविधिक सहयोग बहुत आवश्यक है। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शोधकार्य तथा डिजाइनिंग मे समाजवादी देशो के प्रयासो का समन्वय विश्व समाजवादी व्यवस्था के ससाधनो के विवेकपूर्ण इस्तेमाल को सुनिश्चित करता है। अन्य समाजवादी देशो के साथ वैज्ञानिक और प्राविधिक सहयोग के विस्तार के साथ-साथ उनके तौर-तरीको मे सुधार, वैज्ञानिक एव प्राविधिक उपलब्धियो तथा लाइसेन्सो के बारे मे सूचना के विनिमय का विकास भी चलता है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व के फलस्वरूप समाजवादी देश पेचीदा आर्थिक समस्याओ को सयुक्त रूप से हल करने मे समर्थ होते है। इस प्रकार समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग से पोलैण्ड मे इजीनियरिंग व कोयला उद्योग का, हगरी मे अल्यूमिनियम उद्योग का तथा चेकोस्लोवाकिया और जर्मन जनवादी गणतत्र मे इजीनियरिंग उद्योग के कुछ क्षेत्रो का विकास करने मे मदद मिली है। सोवियत सघ का कच्चा लोहा तथा पोलैण्ड व चेकोस्लोवाकिया का कोक, बिरादराना देशो मे धातु शोधन उद्योग के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। सोवियत सघ, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया तथा जर्मन जनवादी गणतत्र से प्राप्त मशीनरी और उपकरण अन्य समाजवादी देशो को अपने औद्योगीकरण के कार्यक्रमो को पूरा करने मे सहायता करते हैं।

समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग का एक प्रतीक विशाल द्रुज्बा (मैत्री) तेल पाइप लाइन का निर्माण है, जो सोवियत सघ, पोलैण्ड, जर्मन जनवादी गणतत्र और हगरी को एक-दूसरे से जोडती है। इस पाइप लाइन के द्वारा

बोल्गा का तेल ओडर, विस्चुला और डैन्यूब के किनारों तक पहुँचता है। पाइप लाइन के जरिये तेल पहुचाने का खर्च रेलो के द्वारा तेल पहुचाने के खर्च का केवल एक अश होता है। इस पाइप लाइन का इस्तेमाल करने वाले हर देश ने इस विशाल निर्माण कार्य को पूरा करने मे अपने-अपने अश का योगदान किया है।

समाजवादी देशों में आर्थिक विकास के स्तरों का सन्निकटन

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व, समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग के विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रम विभाजन से इस बात की वास्तविक सम्भावना पैदा हुई है कि अलग-अलग देशो के बीच आर्थिक और सास्कृतिक विकास की दूरी—जो उन्हे पूजीवाद से विरासत मे मिली थी—खत्म की जा सके।

समाजवाद के अन्तर्गत राज्यो के बीच के पारस्परिक सम्बध छोटे और बडे देशो के बीच पूर्ण समानता के आधार पर कायम होते हैं। पारस्परिक सहायता और अनुभवो का आदान-प्रदान—विशेष रूप से वैज्ञानिक एव प्राविधिक उपलब्धियो का पारस्परिक विनिमय—तथा प्राकृतिक सम्पदा के विकास मे सहयोग, विश्व समाजवादी व्यवस्था के देशो के विकास स्तरो का सन्निकट आना सुनिश्चित करते हैं।

समाजवादी देशो के आर्थिक विकास के नियोजित समतलन (हमवार होना) को इस बात से भी बढ़ावा मिलता है कि जो देश पूजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक मामलो मे पिछड गये थे, उनका विकास—खास कर औद्योगिक विकास—विशेष तेजी के साथ होता है। इसी का परिणाम है कि समग्र विश्व समाजवादी व्यवस्था मे, महत्वपूर्ण किस्मो के औद्योगिक उत्पादन मे, इन देशो का भाग तेजी से बढता जा रहा है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के ढाचे मे, पहले के पिछडे हुए देश थोडे ही समय के अन्दर विकसित समाजवादी देशो के स्तर के काफी नजदीक पहुच गये हैं, क्योंकि आगे बढे हुए देश पिछडे देशो की सहायता करते है और उन्हें आगे बढाते है। किन्तु, समाजवादी देशो मे उत्पादक शक्तियो के विकास का स्तर अभी भी एक जैसा नही है। समाजवादी देशों के आम आर्थिक स्तर मे उन्नति तथा उनका समस्तरीकरण हर देश द्वारा अपने घरेलू ससाधनो का पूर्ण इस्तेमाल करके आर्थिक प्रबन्ध के रूपो और तौर-तरीको मे सुधार करके, समाजवादी प्रबन्ध के लेनिनवादी सिद्धान्तो और तौर तरीको को मजबूती से लागू करके तथा विश्व समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठताओ का प्रभावी रूप से इस्तेमाल करके प्राप्त किया जाता है।

३. दो विश्व आर्थिक व्यवस्थाओ के बीच आर्थिक प्रतियोगिता

दो व्यवस्थाओं के बीच शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का सिद्धांत और आर्थिक प्रतियोगिता

दो परस्पर विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ का साथ-साथ अस्तित्व एक *विवादरहित ऐतिहासिक तथ्य* तथा आधुनिक युग की एक वस्तुनिष्ठ अपरिहार्यता है। पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण इतिहास के एक लम्बे काल तक चलता है। इस अवधि मे समाजवादी राज्य, पूजीवादी राज्यों के साथ-साथ कायम रहते हैं। सवाल पैदा होता है कि भिन्न भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशो के बीच कैसे सम्बध होने चाहिए।

समाजवादी देश भिन्न भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशो के बीच शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के लेनिनवादी सिद्धात का सुसगत रूप से पालन करते हैं। यह सिद्धात इस बात को मान कर चलता है कि हर देश की जनता को *खुद ही अपनी सामाजिक व्यवस्था चुननी चाहिए। मार्क्सवाद-लेनिनवाद मानता* है कि हर देश पूजीवाद से समाजवाद मे तभी सक्रमण करता है जब ऐसे सक्रमण के लिए उस देश मे आत्मनिष्ठ व वस्तुनिष्ठ पूर्वस्थितिया परिपक्व हो गयी हो। लेनिन ने इस बात पर जोर दिया था कि मार्क्सवाद ने हमेशा क्रान्तियो को "जबर्दस्ती धकेलने" को अस्वीकार किया है, क्योकि क्रान्तिया तभी विकसित होती हैं जब क्रान्ति को जन्म देने वाले वर्गीय अन्तर्विरोध परिपक्व हो जाते हैं।

इसके साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का सिद्धात उत्पीडको एव उत्पीडितो के बीच सम्बधो पर लागू नही होता, अर्थात यह कि पूजीवादी देशो के अन्दर वर्ग सघर्ष मे कोई शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व नही हो सकता, उपनिवेशवादी और गुलाम देशो के राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम मे कोई शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व नही हो सकता तथा समाजवादी और पूजीवादी विचार-धारा म कोई शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व नही हो सकता।

भिन्न भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओ वाले देशो के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धात मे इस बात की सम्भावना और आवश्यकता निहित रहती है कि इन देशो के *बीच सामान्य आर्थिक सम्बध विकसित हों।* इसलिए समाजवादी देश पूजीवादी व्यवस्था के देशो के साथ पारस्परिक लाभ के आधार पर, बिना किसी भेदभाव के तथा बिना किसी पक्ष के अधिकारो पर किसी प्रतिबन्ध के, आर्थिक सम्बधो का विकास करने के समर्थक हैं।

दो व्यवस्थाओ के बीच सहअस्तित्व इस बात को मान कर चलता है कि इन व्यवस्थाओ के बीच शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता होगी। दो व्यवस्थाओ के बीच यह प्रतियोगिता केवल अर्थतन्त्र तक ही सीमित नही रहती

बल्कि सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओ को भी अपनी परिधि मे समेट लेती है। किन्तु अर्थतन्त्र वह मुख्य क्षेत्र होता है जिसमे समाजवादी और पूजीवादी व्यवस्थाओ के बीच प्रतियोगिता चलती है।

दो व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक प्रतियोगिता के विकास की दो मुख्य अवस्थाएं

अपने विकास के क्रम मे, दो व्यवस्थाओ के बीच आर्थिक प्रतियोगिता दो मुख्य अवस्थाओ से गुजरी है। पहली अवस्था वह थी जब सोवियत संघ संसार मे अकेला समाजवादी देश था और उसे अकेले ही समूची पूजीवादी दुनिया से प्रतियोगिता करनी पड़ी थी। दूसरी अवस्था उस समय शुरू हुई जब समाजवाद एक अकेले देश की सीमाओं से बाहर निकल कर एक विश्व समाजवादी व्यवस्था बन गया। इस अवस्था मे समाजवाद एव पूजीवाद के बीच प्रतियोगिता दो सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच प्रतियोगिता बन गयी।

अर्थतन्त्र की समाजवादी व्यवस्था ने, जिसने सोवियत सघ मे सफलता प्राप्त की थी, पूजीवाद के साथ प्रतियोगिता की शुरुआती अवस्था मे ही पूजीवाद के मुकाबले समाजवाद की श्रेष्ठता अकाट्य रूप से सिद्ध कर दी थी। दूसरी अवस्था मे, दो विश्व अवस्थाओं के बीच प्रतियोगिता के भौगोलिक एव आर्थिक क्षेत्र मे विस्तार से इस प्रतियोगिता मे अनेक नये महत्वपूर्ण लक्षण पैदा हो गये। पूजीवाद के साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे समाजवाद की सफलताए और श्रेष्ठताए बहुत अच्छी तरह उजागर हो गयीं। अब केवल सोवियत सघ की आर्थिक कामयाबिया ही नही, बल्कि समाजवादी समुदाय के सभी देशों मे आर्थिक निर्माण की कामयाबिया तथा उनके बीच मौजूद नये किस्म के सम्बंध, समाजवादी आर्थिक प्रणाली मे निहित उत्पादक शक्तियो के तेज उभार की विशाल सम्भावनाओ को प्रदर्शित करते हैं।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के उदय से यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि अब शक्तियो के सतुलन मे निरन्तर परिवर्तन पूजीवाद के प्रतिकूल तथा समाजवाद के अनुकूल हो रहा है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था की आर्थिक प्रगति इस बात को प्रकट करती है कि पूजीवाद की तुलना मे समाजवाद समाज का एक उच्चतर रूप होता है। आधुनिक पूजीवाद—पुराने पड चुके उत्पादन सम्बधो के कारण—आधुनिक उत्पादक शक्तियो के विकास मे जहा अवरोध पैदा करता है, वहा दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्था और समाजवादी उत्पादन सम्बध उनके विकास को तेज करते हैं।

दो सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच सघर्ष और प्रतियोगिता की परिस्थितियो मे समाजवाद की भौतिक शक्तियो मे निरन्तर वृद्धि अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय

महत्व की है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों मे—आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक में—साम्राज्यवाद पर विजय प्राप्त करने तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है।

आर्थिक वृद्धि की दरें

पूंजीवाद से साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे समाजवाद की सफलताएं तथा इस प्रतियोगिता में समाजवाद की अवश्यम्भावी विजय, इस तथ्य पर आधारित है कि समाजवाद उत्पादक शक्तियो की इतनी ऊंची वृद्धि दरों की गारन्टी करता है जिनको पूंजीवाद के अन्तर्गत कतई प्राप्त नही किया जा सकता।

समाजवादी पथ पर आगे बढ़ने वाले देशों के लिए आर्थिक विकास की ऊंची दरें प्राप्त करना एक सामान्य नियम बन गया है। १९६८ म समाजवादी देशो का औद्योगिक उत्पादन १९३७ के उनके कुल उत्पादन से लगभग १० गुना अधिक हो गया था। इसी अवधि में पूंजीवादी देशों के उत्पादन मे केवल २४० प्रतिशत की वृद्धि हो सकी। १९६५ मे समाजवादी देशो ने १९५० की तुलना म अपने उत्पादन मे ४१० प्रतिशत की वृद्धि की, जब कि उसी अवधि म पूंजीवादी देशों में कुल वृद्धि १२० प्रतिशत ही रही। वृद्धि की उच्च दरो के परिणामस्वरूप विश्व के औद्योगिक उत्पादन मे समाजवादी देशो का भाग तेजी से बढ़ता जा रहा है। विश्व के औद्योगिक उत्पादन मे समाजवादी देशो का भाग १९१७ में ३ प्रतिशत से भी कम और १९३७ मे १० प्रतिशत से कम था। १९५० में यह लगभग २० प्रतिशत, १९५५ म लगभग २७ प्रतिशत और १९६५ मे लगभग ३८ प्रतिशत हो गया। विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग २० प्रतिशत भाग अब अकेले सोवियत सघ उत्पादित करता है। १९६५ म समाजवादी देशों का औद्योगिक उत्पादन विकसित पूंजीवादी देशो के कुल औद्योगिक उत्पादन के ६७ प्रतिशत के लगभग हो गया था।

इस सम्बध मे सोवियत सघ और अमरीका के बीच होने वाली प्रतियोगिता के परिणाम भी कम महत्वपूर्ण नही है। १९४५ से १९६५ तक के २० वर्षों मे सोवियत सघ के कुल औद्योगिक उत्पादन मे ७६० प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि अमरीका मे यह-वृद्धि केवल १०० प्रतिशत रही। १९४६ और १९६५ के बीच औद्योगिक उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर सोवियत सघ मे जहा ११४ प्रतिशत थी, वहा अमरीका म यह केवल ३६ प्रतिशत थी। क्रान्ति-पूर्व के रूस म औद्योगिक उत्पादन की मात्रा अमरीका के औद्योगिक उत्पादन की १/८ मात्र थी। १९५० मे सोवियत उद्योग अमरीका के उत्पादन का केवल ३० प्रतिशत भाग उत्पादित करते थे। १९६५ मे सोवियत सघ के उत्पादन का भाग अमरीका के उत्पादन के ६५ प्रतिशत से भी अधिक का हो गया।

सोवियत सघ मुख्य पूजीवादी देशो के साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे सुसगत रूप से अपनी स्थिति को मजबूत करता है। घटनाक्रम ने सिद्ध कर दिया है कि उच्च और स्थायी दरो पर उत्पादन का लगातार विस्तार समाजवादी अर्थतत्र की एक नियमितता है तथा पूजीवाद पर समाजवाद की एक अविवादास्पद श्रेष्ठता है।

१६६६-७० के लिए निर्धारित पचवर्षीय योजना के पूर्ण हो जाने पर सोवियत सघ की आर्थिक शक्ति और ज्यादा बढ़ जायगी जिससे ससार मे पूजीवाद और समाजवाद के बीच शक्तियो का सतुलन समाजवाद के पक्ष मे और ज्यादा झुक जायगा।

विकासशील देशों को आर्थिक सहायता

दो विश्व सामाजिक व्यवस्थाओ के बीच आर्थिक प्रतियोगिता के दौरान, उपनिवेशवादी साम्राज्यो के ध्वसावशेषो पर उठ खडे हुए नवोदित स्वतत्र देशो के साथ समाजवादी देशो के बहुमुखी आर्थिक सहयोग में तेजी से होने वाला विस्तार भी अधिकाधिक बडी भूमिका अदा कर रहा है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व से और साम्राज्यवाद के कमजोर होने से इन देशो की जनता के सामने अपने राष्ट्रीय पुनर्जागरण को आगे बढाने, युगों पुराने पिछडेपन व दरिद्रता को समाप्त करने तथा आर्थिक स्वतत्रता हासिल करने की सम्भावनाए पैदा हो गयी हैं। विकासशील देशो के लिए यह तथ्य अत्यधिक महत्व का है कि समाजवाद ने आर्थिक विकास की दरो मे अगुवाई हासिल कर ली है तथा वैज्ञानिक व प्राविधिक प्रगति के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे पूजीवाद को पीछे छोड दिया है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादन के साधनों, सहायता तथा कर्जों, आदि, की पूर्ति मे अत्यधिक विकसित पूजीवादी देशो को जो एकाधिकार पहले प्राप्त था, अब वह अतीत की बात बन चुका है।

पुराने उपनिवेश तथा पराधीन देश, जिन्होने कठिन और लम्बे सघर्ष के फलस्वरूप राजनीतिक स्वतंत्रता जीती है, समाजवादी देशो से अधिकाधिक आर्थिक सहायता और चतुर्मुखी समर्थन प्राप्त कर रहे हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था की भयकर विरासत को समाप्त करने से सम्बधित उनकी अनेक फौरी समस्याओ के समाधान में यह सहायता जीवन्त महत्व की है।

सोवियत सघ द्वारा विकासशील देशो तथा अन्य समाजवादी देशो को दी जाने वाली सहायता के साथ कोई राजनीतिक या सैनिक बन्धन नही जुडे होते हैं। समाजवादी देश नये आजाद देशो के साथ अपने आर्थिक सम्बधो मे किसी भी प्रकार के विशेषाधिकारो की कामना नही करते। समाजवादी देशो और स्वतन्त्र विकास के मार्ग को अपनाने वाले देशो के बीच पारस्परिक लाभ की शर्तों पर सहयोग का इसी आधार पर तेजी के साथ विकास होता है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के देश नवोदित विकासशील देशों को आवश्यक साज-सज्जा तथा दूसरी वस्तुएं सप्लाई करते हैं, उन्हें उपकरणों की खरीद के लिए आसान शर्तों पर कर्ज मुहैया करते हैं तथा आसान शर्तों पर तकनीकी सहायता की अदायगी की सुविधा की व्यवस्था करते हैं।

अग्रणी औद्योगिक शक्ति के रूप मे सोवियत संघ विकासशील देशो को अपनी स्वतत्रता के आर्थिक आधार का निर्माण करने, अपने उद्योग-धधों का विकास करने व अपने अर्थतत्रो को उन्नत बनाने मे—जो उनकी जनता के जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक शर्तें हैं—चौमुखी सहायता प्रदान करता है।

सोवियत आर्थिक एव प्राविधिक सहायता से नवोदित देशो मे सैकडो औद्योगिक व कृषि संस्थानो के निर्माण व दूसरे कामो को पूरा किया जा रहा है।

पचवर्षीय योजना मे, विकासशील देशो के साथ व्यापारिक सम्बधो को मजबूत करके तथा उनकी आजादी व राष्ट्रीय अर्थतत्रो को सुदृढ करने के लिए आर्थिक व प्राविधिक सहायता देकर, आर्थिक सहयोग के विस्तार की व्यवस्था की गयी है।

विकासशील देशो के लिए उनकी आजादी व स्वतत्रता को मजबूत करने और सामाजिक प्रगति की राह पर आगे बढने के लिए, सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बधो की स्थापना एक निर्णायक उपादान है। पूजीवादी देशो से बिल्कुल भिन्न, जो इन देशो को एक बार फिर से गुलाम बनाने की जी-तोड कोशिश कर रहे हैं, विश्व समाजवादी व्यवस्था के देश औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति पाने की महान प्रक्रिया मे सहायता कर रहे हैं। वे मानते हैं कि औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति पूजीवादी शोषण से मुक्ति पाने की एक प्रमुख पूर्व-शर्त है।

दोहराने के प्रश्न

१. विश्व पूजीवादी व्यवस्था की अपेक्षा विश्व समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठताएं क्या हैं?
२. समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग के मुख्य स्वरूप क्या हैं?
३. दो विश्व व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक प्रतियोगिता का अर्थ क्या है?

अध्याय १८

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर

१. कम्युनिज्म के दो दौर

समाजवाद और कम्युनिज्म के आम लक्षण और विशेषताएं

समाजवाद और कम्युनिज्म की शिक्षाए काफी समय तक कल्पना लोक की चीजें थी। इन शिक्षाओ के अगुवाओ मे बहस इस बात पर थी कि निम्नलिखित दो सिद्धान्तो मे कोन-सा सिद्धान्त बेहतर है : "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार," या 'प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार।" यह तर्क वितर्क लाभदायक नही हो सका क्योकि यह वैज्ञानिक बुनियादो पर आधारित नही था।

केवल मार्क्सवाद के सस्थापको ने ही समाजवाद को कल्पना से विज्ञान में परिवर्तित करके समाजवाद और कम्युनिज्म के बीच वास्तविक सम्बधो को खोज निकाला। उन्होने बताया कि किसी श्रेष्ठतम सिद्धात की खोज के जरिये समाज कम्युनिज्म को नही अपनाता, बल्कि विकास के वस्तुगत नियमो के फलस्वरूप वह कम्युनिज्म पर पहुचता है।

समाजवाद का उदय और विकास पूजीवाद द्वारा तैयार किये गये तत्वो के आधार पर होना है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के खत्म होने के बाद समाज को कुछ समय तक "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार" के सिद्धान्त का अनुसरण करना पडता है। लेकिन यह उसके विकास का अन्त नही है। यह उस व्यवस्था मे विकसित होता है जिसके मातहत समाज "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" के सिद्धान्त को लागू करने मे समर्थ हो जायगा।

मार्क्सवाद के सस्थापको ने समाजवाद और कम्युनिज्म के बीच वैज्ञानिक अन्तर को खोज निकाला। उन्होंने बताया कि ये दो अवस्थाए हैं, दो क्रमिक चरण हैं, कम्युनिस्ट समाज की आर्थिक परिपक्वता के दो कदम हैं : समाजवाद निचली अवस्था है और कम्युनिज्म उच्चतर अवस्था है। दोनो के बीच कोई दीवार नही है। समाजवाद अपने विकास के क्रम मे अन्ततोगत्वा कम्युनिज्म मे विकसित होता है।

समाजवाद, कम्युनिस्ट समाज का प्रथम, अथवा निचला, चरण है। शब्द "कम्युनिज्म" को इस स्वरूप के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है। लेकिन यह पूर्ण कम्युनिज्म नही है। प्रथम चरण मे कम्युनिज्म न तो आर्थिक रूप से सुदृढ़ होता है और न पूजीवाद की परम्पराओ अथवा अवशेषों से मुक्त हो चुका होता है। समाजवाद उस बुनियाद पर वृद्धि करता है, जो उसे पूजीवाद से विरासत म मिली होती है। समाजवाद विशाल ऐतिहासिक परिवर्तनो का सृजन करता है। लेकिन फिर भी, उसमे उस पुराने समाज से, जिसके गर्भ स यह उत्पन्न होता है, पैदायश सम्बधी चिह्न अभी बने रहते हैं।

समाजवादी समाज के चरित्र की, जो कम्युनिज्म का प्रथम चरण है, पहली विशिष्टता यह है कि उत्पादन के साधन अब व्यक्तिगत स्वामित्व मे नही रहते, बल्कि सार्वजनिक सम्पत्ति बन जाते हैं। दूसरी विशिष्टता यह है कि समाज द्वारा प्रत्येक श्रमिक को सामाजिक उत्पादन मे उसके द्वारा किये गये श्रम की मात्रा तथा गुण के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाता है।

समाजवाद ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को ध्वस्त करके वर्षों पुराने सामाजिक अन्याय को जड़ से उखाड़ फेंका है।

समाजवाद, उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व के मामले मे, समाज के सभी सदस्यों को समान अधिकार देता है। इसके परिणामस्वरूप, मानवजाति के इतिहास मे पहली बार ऐसी परिस्थितिया पैदा होती हैं, जिनमे उत्पादक शक्तियो के विकास तथा सामाजिक सम्पत्ति की वृद्धि से समाज के सभी सदस्यो को लाभ होता है। सोवियत सघ तथा अन्य सभी समाजवादी देशों के अनुभव ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि समाजवादी समाज मे उत्पादन की वृद्धि से जनता की समृद्धि मे तथा रहन-सहन के स्तर में अवश्यम्भावी रूप से लगातार उन्नति होती रहती है। इस प्रकार समाजवाद जनता के सुखद भविष्य के लिए मजबूत आधार तैयार करता है।

समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज के सभी हृष्ट-पुष्ट सदस्य काम करते हैं और उनके श्रम की मात्रा तथा गुण के अनुसार समाज द्वारा उनको पारिश्रमिक दिया जाता है। लेकिन सभी व्यक्ति एक समान नहीं हैं। कुछ बलिष्ठ हैं कुछ कमजोर, कुछ विवाहित हैं, कुछ अविवाहित, कुछ के बच्चे अधिक हैं, कुछ के कम। अत 'समान कार्य के लिए समान वेतन" का समाजवादी नियम अभी तक पूरी समानता और पूरे न्याय की गारन्टी नही करता। इस प्रकार, पूर्ण न्याय केवल कम्युनिज्म के उच्च चरण में ही प्राप्त होता है, जब "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' के नियम को लागू किया जाता है।

जब तक श्रम के अनुसार वितरण का समाजवादी नियम लागू है, तब तक समाज के सदस्यो के बीच कुछ असमानता लाजमी तौर पर रहेगी। असमानता के ये अवशेष कम्युनिज्म के अन्तर्गत पूर्णत समाप्त हो जाते हैं। और तब, श्रम के अनुसार वितरण की व्यवस्था का स्थान आवश्यकता के अनुसार वितरण की व्यवस्था लेने लगती है।

कम्युनिज्म के निर्माण से समाज के सभी सदस्यो को पूरी सामाजिक समानता प्राप्त होगी। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के आधार पर उच्च श्रम उत्पादकता अपार भौतिक और आत्मिक सम्पदा को जन्म देगी। यह कम्युनिज्म के महान सिद्धान्त—"प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार, और प्रत्यक को उसकी आवश्यकता के अनुसार"—को लागू करने की सम्भावनाओ का मार्ग प्रशस्त करेगी। कम्युनिस्ट उत्पादन का लक्ष्य इस बात मे निहित है कि समाज की लगातार प्रगति सुनिश्चित की जाय, समाज के प्रत्येक सदस्य को उसकी बढती हुई आवश्यकताओं, व्यक्तिगत मागों और इच्छाओ के अनुरूप भौतिक तथा सास्कृतिक लाभो की पूर्ति सुनिश्चित की जाय।

हम जब लोगो की आवश्यकताओ की पूर्ति की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य उनके दिमाग मे उठने वाली ऊटपटाग बातों से नही, बल्कि सुसस्कृत व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं से होता है।

समाज की उत्पादक शक्तियो के विकास के मौजूदा स्तर पर लोगो के गुजर-बसर करने के साधनो की आवश्यकताए असीमित नही हैं। लोग, अपने स्वास्थ्य को नुकसान पहुचाये बगैर, आवश्यकता से अधिक नही खा सकते। इसके साथ यह भी सच है कि उत्पादक शक्तियो के विकास के साथ साथ, स्वाभाविक तौर पर, लोगो की आवश्यकताए बढती जाती हैं। मिसाल के लिए नकली धागा प्लास्टिक, आदि, के उत्पादन के बृहद विकास से, इनसे बने हुए नये तथा अधिक आराम देने वाले और नफीस कपडो तथा जूतों की आवश्यकता मे वृद्धि होती है। टेलीविजन के विकास से टेलीविजन सेटो की माग पैदा होती है। अधिक आरामदेह और सुसज्जित मकानो के निर्माण से अच्छे मकानो की माग बढती है।

कम्युनिज्म के अन्तर्गत जनता की सामाजिक आवश्यकताओ की माग मे विशेष रूप से तेज वृद्धि होगी—बच्चो के सामूहिक लालन पालन की आवश्यकता, सेवाओ और सुविधाओ की आवश्यकता, सास्कृतिक मनोरजन और मानव सस्कृति के भडार के सामूहिक उपभोग की आवश्यकता। बढती हुई आवश्यकताए बदले मे, समाज की उत्पादक शक्तियो की अटूट और तेज वृद्धि मे सहायक सिद्ध होगी।

कम्युनिस्ट समाज का निर्माण मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी सघर्ष का अन्तिम लक्ष्य है, मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी का सर्वोच्च ध्येय है।

समाजवाद के निर्माण के बाद, सोवियत सघ ने अपने ऐतिहासिक विकास की नयी मजिल मे, कम्युनिज्म की उच्चतर अवस्था के निर्माण की मजिल मे, प्रवेश किया है। अतएव अब कम्युनिज्म का निर्माण ही सोवियत जनता का तात्कालिक व्यावहारिक कर्तव्य बन गया है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कम्युनिज्म का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि यह एक वर्ग विहीन सामाजिक व्यवस्था होगी, जिसमे उत्पादन के साधनो पर एकमात्र सार्वजनिक स्वामित्व होगा, समाज के सभी सदस्यो के बीच पूर्ण सामाजिक समानता होगी, विज्ञान और तकनीक के लगातार विकास के आधार पर उत्पादन की शक्तियो मे विकास के साथ साथ जनता का सर्वतोमुखी विकास भी होगा, जन-सम्पदा के समस्त स्रोत प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होगे और "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' का महान सिद्धात लागू किया जायगा। कम्युनिज्म स्वतत्र और जागरूक मेहनतकशो का ऐसा अत्यधिक सगठित समाज होता है जिसमे सामाजिक स्वायत्त-शासन होगा, समाज की भलाई के लिए श्रम प्रमुख जीवन्त आवश्यकता, एक समवधारित आवश्यकता, बन जायगा और प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताओ का जनता के उच्चतम लाभ के लिए उपयोग किया जायगा। कम्युनिस्ट पार्टी का नारा—"सब कुछ मनुष्य के लाभ के लिए, मनुष्य की भलाई के लिए" पूर्ण रूप से लागू किया जायगा।

समाजवाद का कम्युनिज्म में विकास

इस बात को इगित करते हुए कि मानव समाज पूजीवाद से सीधे केवल समाजवाद की ओर ही जा सकता है, लेनिन ने जोर देकर कहा था कि कम्युनिस्ट पार्टी इसमे भी आगे देखती है, अर्थात यह कि समाजवाद को धीरे धीरे अनिवार्यत कम्युनिज्म म विकसित होना चाहिए। उन्होंने सकेत किया कि समाजवादी परिवर्तन को शुरू करते समय ही साफ-साफ देख लेना चाहिए कि अन्ततोगत्वा यह परिवर्तन हम किस लक्ष्य पर पहुचायेगा। यह लक्ष्य है कम्युनिस्ट समाज का निर्माण।

समाजवाद का कम्युनिज्म मे विकास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कम्युनिज्म वही विकसित हो सकता है जहा समाजवाद ने मजबूती स जडें जमा ली हों। कम्युनिज्म मे सक्रमण समाजवादी समाज के मूलाधारो की लगातार वृद्धि, विकास और सुदृढीकरण के जरिये होता है। समाजवादी व्यवस्था या विकास उन सभी पूर्व-आवश्यकताओ का निर्माण करता है जो कम्युनिज्म की उच्चतम मजिल की ओर सक्रमण के लिए जरूरी होती हैं। जिस क्रम और जिस रफ्तार

से ये पूर्व-आवश्यकताएं एकत्र होती हैं और विकसित होती हैं, उसी क्रम और उसी रफ्तार से यह संक्रमण भी होता है।

कम्युनिज्म के निर्माण के लिए निम्नलिखित पूर्व-शर्तें हैं: समाजवादी समाज की उत्पादक शक्तियों का एक उच्च स्तर, जनता की खुशहाली में प्रगति, उत्पादन सम्बंधों में सुधार और समाज के सभी सदस्यों की चेतना की, उनके विचारधारात्मक और राजनीतिक स्तर की उन्नति। इन परिस्थितियों का सृजन कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण, कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बंधों की रचना तथा नये मानव की शिक्षा से होता है। ये सभी चीजें एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं।

जनता के लिए अपार भौतिक और आत्मिक सम्पदा को सुनिश्चित करने की मुख्य शर्त कम्युनिज्म के भौतिक आधार का निर्माण करना है।

समाजवादी क्रान्ति से ठीक पहले लेनिन ने लिखा था कि कम्युनिज्म की पहली, अथवा निचली, और उच्चतर मंजिल के बीच, जैसे-जैसे समय व्यतीत होगा, सम्भवतः राजनीतिक मतभेद बढ़ेंगे। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया था कि केवल समाजवाद ही सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेज और सच्ची प्रगति लायेगा, जिसमें आम जनता, आबादी का बहुसंख्यक भाग, और अन्ततः समूची आबादी हिस्सा लेगी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस प्रकार का अभूतपूर्व विकास, विश्व समाजवादी व्यवस्था के प्रत्येक देश में अभी ही हो रहा है।

सोवियत संघ में कम्युनिज्म के निर्माण के दौर की विशेषता है—अर्थतंत्र और संस्कृति का शक्तिशाली विकास और पूर्ण कम्युनिज्म की स्थापना के लिए सभी आवश्यक शर्तों का परिपक्व होना। कम्युनिस्ट समाज के निर्माण में लाखों-लाख लोगों की सक्रिय और सचेतन भागीदारी समाजवाद के तेजी से कम्युनिज्म में विकास की सम्भावनाओं के द्वार खोलती है। इस तेज वृद्धि की एक बुनियादी शर्त है: भौतिक उत्पादन का उच्च विकास तथा उत्पादक शक्तियों का तेजी से विकसित होना।

सामाजिक संगठन का उच्चतम रूप

कम्युनिज्म सामाजिक संगठन का उच्चतम रूप है। यह ऐसा समाज होता है जो प्राकृतिक शक्तियों पर अपार अधिकार प्राप्त कर चुका होता है। इसमें उत्पादन की ऐसी शक्तिशाली शक्तियां होंगी जिनकी इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलेगी। उत्पादन में विराट वृद्धि से भौतिक और आत्मिक सम्पदा का ऐसा प्राचुर्य हो जाता है कि जनता की तेजी से बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से पूर्ति की जा सके।

कम्युनिज्म समाज का वर्गों में विभाजन समाप्त कर देता है। सामाजिक-

आर्थिक भेद और शहरी तथा ग्रामीण जनता के जीवन के तौर-तरीकों में अन्तर लुप्त हो जाते हैं। उत्पादन की शक्तियों के विकास, श्रम के चरित्र, उत्पादन सम्बधों के स्वरूपों, जनकल्याण की मात्रा, सस्कृति और जनता के रहन-सहन के ढग के सम्बध मे ग्रामीण क्षेत्र ऊपर उठ कर शहरी क्षेत्रो के स्तर पर आ जायेंगे। शारीरिक और बौद्धिक श्रम का अविभाज्य समेकन होगा। जो लोग शारीरिक श्रम मे लगे हुए हैं, वे सास्कृतिक और तकनीकी मामलो मे बौद्धिक श्रम करने वाले लोगो के स्तर पर आ जायेंगे। फलस्वरूप, बुद्धिजीवी लोग समाज का एक अलग स्तर नहीं रह जायेंगे।

कम्युनिज्म समूची सामाजिक अर्थव्यवस्था के नियोजित सगठन की उच्चतम अवस्था है। यह समाज के सदस्यो की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भौतिक सम्पदा और श्रम ससाधनों के सर्वाधिक कारगर और सर्वाधिक व्यवस्थित इस्तेमाल की गारन्टी करता है।

कम्युनिस्ट समाज मे उत्पादन की तकनीक का अभूतपूर्व विकास और जनता की जबर्दस्त सास्कृतिक प्रगति श्रम के स्वरूप को बदल देंगे। श्रम अब केवल भरण-पोषण का साधन नहीं रह जायगा, बल्कि मनुष्य की मुख्य जीवन्त आवश्यकता बन जायगा।

पिछली सभी आर्थिक सामाजिक सरचनाओ से भिन्न, कम्युनिस्ट समाज का निर्माण आम जनता के कार्यकलाप से होता है, जिसका नेतृत्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी करती है। पार्टी कम्युनिज्म के निर्माताओ के समूचे काम का निदेशन करती है और उमे एक नियोजित, सगठित और वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करती है। कम्युनिस्ट पार्टी अपनी सोवियत जनता के अगुवा दस्ते की भूमिका अदा करती है—एक ऐसे अगुवा दस्ते की जो मेहनतकश अवाम के व्यापकतम समुदाय से अपने गहरे सम्बधो के कारण, अपने शक्तिशाली हथियार—मार्क्सवाद-लेनिनवाद—के कारण जो सर्वाधिक प्रगतिशील वैज्ञानिक सिद्धान्त है, तथा सामाजिक विकास के नियमो के पूर्ण ज्ञान के कारण अत्यन्त सुदृढ होता है।

२. कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का सृजन

पार्टी और जनता का मुख्य आर्थिक कर्तव्य

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण ही पार्टी और जनता का मुख्य आर्थिक कर्तव्य है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम बताता है कि कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण का अर्थ है: पूरे देश का विद्युतीकरण और उसके आधार पर राष्ट्रीय अर्थतत्र के सभी क्षेत्रो मे सामाजिक उत्पादन की तकनीको, प्रविधियों और सगठन को पूर्णत परिपक्व करना, उत्पादन प्रक्रिया का बडे पैमाने पर मशीनीकरण

और अधिकाधिक मात्रा मे स्वचालन; राष्ट्रीय अर्थतन्त्र मे व्यापक पैमाने पर रसायनो का प्रयोग, उत्पादन की नयी—आर्थिक रूप से कारगर—शाखाओ का तेजी से विकास, नये प्रकार के ईंधन और नयी सामग्री का इस्तेमाल, प्राकृतिक और श्रम ससाधनो का चौमुखी और सुव्यवस्थित इस्तेमाल, विज्ञान और उत्पादन का अविभाज्य समेकन तथा तेजी से वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति, मेहनतकशों के लिए उच्च सास्कृतिक और तकनीकी स्तर; श्रम उत्पादकता के मामले मे विकसित पूजीवादी देशो के मुकाबले मे प्रभावशाली श्रेष्ठता जो कि कम्युनिस्ट व्यवस्था की विजय के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त है।

कुल मिला कर ये मुख्य कार्य समाजवादी समाज की उत्पादक शक्तियो के व्यापक विकास की विज्ञानसम्मत योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

कम्युनिज्म का भौतिक आधार समाजवाद के भौतिक और तकनीकी आधार के तेज विकास, सुदृढीकरण और व्यापक सुधार से उत्पन्न होता है। लेकिन इससे मतलब केवल मात्रा मे वृद्धि ही नही होता, बल्कि सामाजिक उत्पादक शक्तियो के विकास के दौर मे यह गुणात्मक छलाग का—एक नयी गुणात्मकता मे सक्रमण का—द्योतक होता है।

समाजवाद से कम्युनिज्म मे सक्रमण एक निरन्तर प्रक्रिया है। इसका अर्थ यह है कि कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण भी एक निरन्तर प्रक्रिया है।

कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के पूरे दौर में कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण करना पार्टी और सोवियत जनता का मुख्य आर्थिक कर्तव्य है। समाजवादी उत्पादक शक्तियो के विकास मे सफलताओ के साथ-साथ उत्पादन के सम्बधो मे भी सुधार होता है। अधिक दक्षतापूर्ण सगठन और आर्थिक प्रबन्ध मे सुधार जैसे कम्युनिज्म के लक्षण अधिकाधिक उजागर होते जाते हैं। उत्पादक शक्तियो का तेज विकास और समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के सम्बधो मे सुधार, सामाजिक श्रम की उत्पादकता और सामाजिक उत्पादन की कारगरता को उन्नत बनाते हैं। इसी आधार पर, जनता के भौतिक कल्याण तथा सास्कृतिक स्तर मे लगातार उन्नति होती रहती है।

सोवियत सघ मे कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के सृजन का कर्तव्य ऐसे समय मे पूरा किया जा रहा है, जब मानवजाति सबसे महान वैज्ञानिक और तकनीकी क्रान्ति के युग मे प्रवेश कर रही है। यह क्रान्ति विज्ञान और प्रविधि के पिछले सम्पूर्ण विकास का अवश्यम्भावी परिणाम है। यह नाभिकीय ऊर्जा पर काबू पाने, अन्तरिक्ष की विजय, रसायनशास्त्र के विकास, स्वचालित यत्रो से उत्पादन और विज्ञान तथा प्रविधि की अन्य बडी-बडी उपलब्धियों से जुडी हुई है।

केवल समाजवाद ही वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति की उपलब्धियो को

समाज के हित मे इस्तेमाल करने मे सक्षम है। यह क्रान्ति मनुष्य द्वारा प्रकृति पर अधिकार की असीम सम्भावनाओ के द्वार खोल देती है। यह समाज की उत्पादक शक्तियो के विकास मे गुणात्मक रूप से एक उच्च अवस्था की सूचक है।

यह आम जानीमानी बात है कि उत्पादक शक्तिया उत्पादन के साधना और मानव श्रमशक्ति का ही योग होती हैं। दूसरी ओर उत्पादन के साधन श्रम के साधनो और श्रम की वस्तुओ को सन्निहित करते हैं।

श्रम के आधुनिक साधनो मे पहला और सबसे आगे बडा स्थान मशीनो का है। बडे पैमाने के मशीन उद्योग की वृद्धि इस बात को मान कर चलती है कि विद्युत ससाधनो का विकास किया जायगा, और श्रम के उपकरणो तथा श्रम की वस्तुओ में पूर्णता लायी जायगी।

प्राविधिक प्रगति की मुख्य प्रवृत्तिया

इस प्रकार मौजूदा काल मे हम प्राविधिक प्रगति मे तीन बुनियादी प्रवृत्तिया साफ-साफ देख सकते हैं। प्रथम है विद्युत शक्ति के स्रोतो मे क्रान्ति। सर्वोपरि इसका सम्बध सम्पूर्ण देश के विद्युतीकरण से अणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग से, और भविष्य मे, ताप नाभिकीय ऊर्जा के उपयोग की सम्भावनाओ से है।

दूसरी है श्रम के उपकरणो के क्षेत्र मे क्रान्ति। इसका सम्बध स्वचालित उत्पादन से है जो स्वचालित मशीनो की व्यवस्था के निर्माण की ओर ले जाता है।

तीसरी है श्रम की वस्तुओं के क्षेत्र मे क्रान्ति। इसका सम्बध रासायनिक उद्योग के तेजी से विकास से है। इसमे विशेष रूप से महत्वपूर्ण है पूवनिर्धारित गुणो से युक्त नकली रासायनिक वस्तुओ का उत्पादन।

आज के काल की प्राविधिक प्रगति की ये मुख्य दिशाए उत्पादक शक्तियो के विकास म जबर्दस्त छलाग की ओर सकेत करती हैं। अब इस बात की सम्भावनाए पैदा हो गयी हैं कि उत्पादन की प्रक्रिया को उन सीमाओ से मुक्त किया जाय, जिनमे वे अब तक जकडी रही हैं।

आज की वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन की प्रगति अब प्राकृतिक परिस्थितिया पर—जो कुछ समय पहले तक कमोबेश अलघ्य थी—जरा भी निर्भर नही करेगी। इन परिस्थितियो मे सवप्रथम थी—सीमित शक्ति ससाधन (खनिज, ईंधन और पन विजली ससाधन)। फिर मनुष्य के प्राकृतिक बोध की सीमाए हैं (उसकी देखने व सुनने, आदि, की सीमित शक्ति)। अतत ये ही श्रम की कुछ सीमित वस्तुए हैं जो प्रकृति से तैयार रूप मे मिलती हैं।

शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु शक्ति और विशेष रूप से जल नाभिकीय ऊर्जा का इस्तेमाल लगभग कभी न समाप्त होने वाले विद्युत शक्ति संसाधनों के द्वार खोल देता है। स्वचालन भी, जो उत्पादन प्रक्रियाओं के संचालन का मुख्य साधन बनता जा रहा है, श्रम उत्पादकता के असीमित विकास के द्वार खोल देता है। साथ ही, यह ऐसे नये उत्पादनो के लिए सुविधा प्रदान करता है जो उच्चतम तापमानो, दबाव और गति के इस्तेमाल पर आधारित होते हैं। रसायन, जिसके बहुत से उत्पाद अभी कुछ समय पहले तक मूल वस्तुओं के बदले मे प्रयोग की वस्तुएं समझे जाते थे, अब ऐसे पदार्थ सप्लाई कर रहा है जो प्राविधिक प्रगति के लिए अपरिहार्य हैं।

कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार, उत्पादन के सभी क्षेत्रों मे स्वत नियंत्रित मशीनों की स्वचालित व्यवस्थाओ का कुल योग होगा, जो सर्दैव नई वस्तुओ का उपयोग करेगा और विद्युत शक्ति तथा आणविक शक्ति तथा भविष्य में घन-नाभिकीय शक्ति पर आधारित होगा। इस प्रकार का भौतिक और तकनीकी आधार, विकास की अभूतपूर्व गति धारण करेगा जिससे सामाजिक सम्पदा मे अभूतपूर्व वृद्धि की गारन्टी होगी, साथ ही काम के समय मे काफी कमी आयेगी और श्रम की प्रकृति मे आमूल परिवर्तन होगा। श्रम अपने सभी रूपो मे एक सृजनात्मक क्रिया बन जायगा।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के लिए मौजूदा समय मे, सोवियत सघ की उल्लेखनीय सफलताए ये हैं: अन्तरिक्ष अनुसधान, नाभिकीय भौतिकशास्त्र, गणित, इलेक्ट्रानिक्स, रेडियो इन्जीनियरिंग, धातु शोधन, राकेट निर्माण, वायुयान निर्माण तथा रचनात्मक प्रयासो के अन्य अनेक क्षेत्रो मे सोवियत सघ की अनूठी कामयाबिया।

नयी पचवर्षीय योजना, पार्टी और सोवियत जनता द्वारा कम्युनिज्म के लिए भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण और सोवियत सघ की आर्थिक व सुरक्षा क्षमता को और भी सुदृढ करने के सघर्ष का एक महत्वपूर्ण चरण है। पचवर्षीय योजना की मुख्य दिशाए आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी क्रान्ति की मुख्य उपलब्धियों को—भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, साइबरनटिक्स, जीवविज्ञान तथा अन्य विज्ञानो के क्षेत्र मे अद्वितीय खोजो को—प्रतिबिम्बित करती हैं। पचवर्षीय योजना के मुख्य कर्तव्य, सोवियत समाज की उत्पादक शक्तियो के विकास तथा समाजवादी उत्पादन सम्बधो मे पूर्णता लाने एव उनको कम्युनिज्म के निकटतर पहुचाने के वैज्ञानिक रूप से नियोजित कार्यक्रम का एक अग हैं।

देश का पूर्ण विद्युतीकरण

विद्युतीकरण कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार की रीढ है। लेनिन ने कहा था कि सोवियत सत्ता + समूचे देश का विद्युतीकरण ही कम्युनिज्म है।

विद्युतीकरण अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ के विकास मे तथा देश को प्राविधिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढाने मे अग्रणी भूमिका अदा करता है। विद्युत शक्ति के उत्पादन मे प्राथमिकता—औद्योगिक और कृषि उत्पादन मे तेज वृद्धि के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्त है। सस्ती विद्युत शक्ति के उपलब्ध होने से विद्युत सघन उद्योगो के तेज विकास में सहायता मिलेगी। बड़े पैमाने पर विद्युतीकरण यातायात, कृषि तथा शहरी एव ग्रामीण जनता के रहन सहन के तौर-तरीकों पर अपनी छाप अवश्य छोडेगा।

पूरे देश के विद्युतीकरण का लेनिन का विचार नयी पचवर्षीय योजना के लिए निर्णायक महत्व का है। अगले पाच वर्षों मे विद्युत शक्ति के उत्पादन में लगभग ७० प्रतिशत की वृद्धि होगी जब कि औद्योगिक उत्पादन की सामान्य मात्रा ४७ से ५० प्रतिशत तक बढ़ जायेगी। योजना मे बड़े बड़े ताप बिजलीघरो व पन बिजलीघरो की स्थापना की व्यवस्था है। सोवियत सघ के योरपीय भाग मे बिजली की समान सचार व्यवस्था का काम पूरा कर लिया जायगा। देश के पूर्वी भागो से सोवियत सघ के योरपीय भाग मे विद्युत शक्ति पहुचाने के लिए उच्च वोल्टेज लाइनों का निर्माण शुरू किया जाने वाला है।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के विकास का तकाजा होगा कि विद्युत शक्ति के उत्पादन मे और भी तेजी से वृद्धि की जाय। इस वृद्धि को शक्ति के पुराने स्रोतो के अलावा नये स्रोतो—आणविक तथा नाभिकीय शक्ति—के व्यापक इस्तेमाल द्वारा सुनिश्चित किया जायगा।

आणविक शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोगो के क्षेत्र मे सोवियत सघ का स्थान पूरे ससार मे अभी ही अग्रणी है। ससार के सर्वप्रथम व्यावसायिक आणविक बिजलीघर की स्थापना और उसका कार्य-चालन सोवियत सघ मे १६५४ मे ही हुआ था। लेनिन नामक प्रथम आणविक हिम-तोडक का निर्माण भी सोवियत सघ मे ही हुआ। उस समय से अब तक अनेक अन्य आणविक बिजलीघरों का निर्माण हो चुका है।

आणविक शक्ति उद्योग के विकास से एक साथ दो समस्याओ का निदान हो जाता है। प्रथम, आणविक विद्युतघरो द्वारा सप्लाई की जाने वाली बिजली का रेट दूसरे प्रकार की बिजली की अपेक्षा निश्चित रूप से सस्ता होगा। द्वितीय, आणविक विद्युत शक्ति के विकास से कोयले, तेल और गैस की बचत होगी, जिनको रासायनिक उद्योग मे कच्चे माल की तरह इस्तेमाल किया जा सकेगा।

नाभिकीय पुनरावर्तन के उपयोग पर नियत्रण से उत्पादन के विद्युत आधार के विकास की असीम सम्भावनाए खुल जाती हैं। ताप-नाभिकीय पुनरावर्तन के नियत्रण की समस्या का हल किया जाना सोवियत विज्ञान के

तात्कालिक कार्यों की सूची में आ गया है। इसके कामो मे ताप, नाभिकीय, सूर्य-रश्मियों से उपलब्ध तथा रासायनिक शक्ति को विद्युत शक्ति मे सीधे-सीधे रूपातरित करने के तरीको की खोज करना भी शामिल है। इस कर्तव्य को पूरा कर लेने से सोवियत समाज के पास विद्युत शक्ति का अक्षय स्रोत हो जायगा।

उत्पादन का सर्वतोमुखी यन्त्रीकरण और स्वचालन

कम्युनिज्म के भौतिक और तक्नीकी आधार के निर्माण मे उत्पादन की प्रक्रियाओ के पूरी तरह यन्त्रीकरण और पूर्णतर स्वचालन को पहले से मान कर चलना होता है। यह प्राविधिक प्रगति की आम प्रवृति है। यह तीव्र आर्थिक विकास के लिए एक निर्णायक उपादान तथा श्रम-उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि की मुख्य शर्त है।

श्रम-सघन शाखाओ का यन्त्रीकरण तो समाजवाद के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण करते समय ही पूरा हो जाता है। तथापि, शुरू मे केवल बुनियादी उत्पादन प्रक्रियाओ का ही यन्त्रीकरण होता है, उत्पादन की अन्य अनेक प्रक्रियाओ में, विशेष रूप से सहायक प्रक्रियाओ मे, कम उत्पादकता वाले शारीरिक श्रम का इस्तेमाल जारी रहता है।

कम्युनिज्म के भौतिक और तक्नीकी आधार के सृजन मे उत्पादन की सभी अवस्थाओं के व्यापक यन्त्रीकरण का काम अत्यधिक आवश्यक है। व्यापक यन्त्रीकरण का जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की बुनियादी तथा सहायक प्रक्रियाओं (कच्चे मालो, ईंधन और तैयार माल के यातायात, वस्तुओ की फिनिशिंग और पैकिंग) मे शारीरिक श्रम को खर्च करने की जरूरत नही रह जाती।

उत्पादन का स्वचालन सर्वतोमुखी यन्त्रीकरण की ही एक प्राकृतिक कड़ी और सम्पूर्ति है। इसी के साथ वह प्राविधिक प्रगति मे गुणात्मक नयी अवस्था की शुरूआत भी है। यन्त्रीकरण के अन्तर्गत प्राविधिक प्रक्रिया तथा अलग-अलग मशीनों और उनके कार्य का नियन्त्रण मनुष्य के हाथो मे रहता है। स्वचालन के अतर्गत ये सारे कार्य—नियन्त्रण और निगरानी भी—मशीनो द्वारा सम्पन्न होते हैं। पूर्ण, सर्वतोमुखी स्वचालन के अन्तर्गत मशीनें ही दूसरी मशीनो का नियन्त्रण करती हैं।

विज्ञान और प्रविधि के, विशेष रूप से इलेक्ट्रानिक्स और गणन तकनीक के, आधुनिक विकास से ऐसी गणक प्रणाली का सृजन सम्भव हो गया है जो स्वचालित उत्पादन नियन्त्रण, शोध-कार्य के अनेक कामो, नियोजन गणनाओं, हिसाब किताब, सांख्यिकी और प्रबन्ध की अत्यन्त जटिल समस्याओ का समाधान करती है।

ये प्रणालिया न केवल उत्पादन के नियन्त्रण, सचालन और प्रबन्ध के क्षेत्रो

मे मानव श्रम का स्थान ले लेती है, बल्कि इन कामो को मनुष्यो से बेहतर ढग से पूरा करती हैं। ये ऐसी गति से और ऐसे समयबद्ध तरीके से काम करती हैं, जिसे मनुष्य कभी भी प्राप्त नही कर सकता। इसके अलावा, ये ऐसी परिस्थितियो—उदाहरण के लिए, अत्यधिक तापमान या हवा के दबाव तथा रेडियो-एक्टीविटी वाली खतरनाक परिस्थितियो—मे काम करने मे समर्थ होती हैं, जिनमे मनुष्य काम कर ही नही सकते। स्वचालन के बिना बहुत से आधुनिक उद्योगो की तो कल्पना तक नही की जा सकती। यह आणविक शक्ति तथा अनेक रासायनिक उद्योगो के शान्तिपूर्ण इस्तेमाल के लिए जरूरी है।

पहले तो उत्पादन के अलग-अलग कार्यो और प्रक्रियाओ मे स्वचालन का प्रवेश होता है। स्वचालित खरादो का चलन शुरू होता है। फिर खरादो की लम्बी श्रृखलाए या लाइनें उनका स्थान ले लेती हैं। किन्तु प्रवृत्ति चतुर्मुखी स्वचालन की होती है—जिसका अर्थ है कि केवल बुनियादी प्रक्रियाओ का ही नही बल्कि सहायक कार्यों और प्रक्रियाओ का भी स्वचालन किया जाय।

सोवियत सघ मे ऐसे बहुत से पूर्ण रूप से स्वचालित कारखाने स्थापित हो चुके हैं, जिनमे स्वचालन टेलीमेकैनिक्स (दूरयत्रनियत्रण) से घनिष्ठ रूप से जुडा हुआ है और जिनमे काफी दूरी से उत्पादन का नियत्रण करना सम्भव होता है। समस्त जिला पन-बिजलीघरो के लगभग ५० प्रतिशत भाग का नियत्रण टेलीमेकैनिक्स द्वारा बिजली सचार के समन्वय केन्द्रो से, या पूरी लडो के बुनियादी बिजलीघरो से भी, किया जाता है। उदाहरण के लिए, रायबिन्स्क बिजलीघर का नियत्रण ३०० किलोमीटर की दूरी पर स्थापित समन्वय केन्द्र के स्विच-बोर्ड द्वारा किया जाता है। इसी भाति त्सीमल्यास्क बिजलीघर का नियत्रण १०० किलोमीटर से अधिक की दूरी से होता है।

पूर्ण रूप से स्वचालित बिजलीघरो की कार्यगत परिस्थितियो का नियत्रण स्वचालित विधियो द्वारा होता है, जो—आवश्यकता के अनुसार—अलग अलग इकाइयो से काम लेती है। किसी गडबडी की स्थिति मे वे क्षतिग्रस्त इकाई का स्विच बुझा कर सहायक इकाई से काम लेने लगती है तथा तुरन्त ही केन्द्रीय वितरण-केन्द्र को इसकी सूचना भेज देती हैं।

टेलीमेकैनिक्स की तो अपार सम्भावनाए हैं। इस बात का सबूत, अन्तरिक्ष के रहस्यो की खोज मे सोवियत सघ की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की सफलताओ और सोवियत अन्तरिक्ष यात्रियो की ऐतिहासिक उडानो मे मिलता है।

स्वचालन केवल उद्योग तक ही सीमित नही रहता, बल्कि कृषि के क्षेत्र मे भी प्रवेश करता है।

आधुनिक तकनीकी साधनो से राष्ट्रीय अर्थतत्र के प्रबन्ध मे अधिकाधिक बडी भूमिका अदा करने की आशा की जाती है। प्रतिष्ठानो से सूचना देने वाले

सचार साधनो के साथ इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटरो के इस्तेमाल से उद्योग, निर्माण और यातायात के कार्यगत प्रबन्ध के सुधार मे सहायता मिलेगी। इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर तकनीक, विभिन्न प्रकार के इजीनियरिंग, आर्थिक तथा वित्तीय आकलन करने तथा स्वचालित ढग से लेखा रखने मे समर्थ होती है। प्रबन्ध की प्रणाली मे इस तकनीक के लागू होने का आर्थिक प्रभाव बहुत ज्यादा होगा।

विकसित प्रविधि उत्पादन के सगठन के अधिक प्रगतिशील रूपो के प्रसार से जुडी है। इसका अर्थ यह है कि प्रतिष्ठानो के विशिष्टीकरण और उनके सहयोग मे और अधिक सुधार किया जाय, उत्पादन के समन्वय का विस्तार किया जाय तथा बडे पैमाने पर उत्पादन की प्रक्रिया चालू की जाय। इसी के साथ उत्पादन के सागठनिक रूपो के सुधार से उपकरणो और प्रविधि के क्षेत्र मे और भी तीव्र प्रगति के लिए अनुकूल परिस्थितिया उत्पन्न होती हैं।

अर्थव्यवस्था मे रसायनशास्त्र

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के सृजन मे अर्थव्यवस्था मे रसायनशास्त्र का व्यापक उपयोग एक पूर्व-निर्धारित शर्त है। रसायन उद्योग द्वारा उत्पादित उच्चतर प्रभावकारी सामानो तथा रसायनिक विधियो का इस्तेमाल उत्पादन मे अधिकाधिक बडी भूमिका अदा करेगा।

रसायनशास्त्र का तेजी से विकास, उद्योग और दैनिक जीवन मे उसका इस्तेमाल और दखल, आधुनिक तकनीकी प्रगति का एक विशिष्ट लक्षण है। मार्क्स ने इस बात को पहले ही देख लिया था कि विज्ञान और प्रविधि का विकास होने तथा रसायनिक विधियो व पुनरावर्तन पर दक्षता प्राप्त कर लेने से रासायनिक प्रविधि अधिकाधिक तौर पर मेकैनिकल प्रविधि का स्थान लेती जायगी और इससे श्रम की काफी बचत की जा सकेगी।

रासायनिक विधियो के इस्तेमाल से चीजो के नये और लाभदायक गुणो का पता चलता है और कच्चे मालो के चौमुखी, अर्थात अत्यन्त लाभदायक, इस्तेमाल में सहायता मिलती है। प्रविधि मे रसायनशास्त्र के उपयोग और रासायनिक सामानों के इस्तेमाल से राष्ट्रीय अर्थतत्र की बहुत सी शाखाओं पर भारी प्रभाव पडता है।

आधुनिक रसायनशास्त्र की उपलब्धियो ने राष्ट्रीय सम्पदा मे वृद्धि की सम्भावनाओ को बहुत ज्यादा विस्तारित कर दिया है। आधुनिक रसायनशास्त्र की सफलताओ ने बहुत से नये उत्पादो, अधिक पूर्ण और सस्ते कच्चे मालो व उपभोक्ता वस्तुओं को प्राप्त करने की व्यावहारिक सम्भावनाओं को प्रशस्त किया है। इन सामानो मे विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक, सूती कपडे, नये प्रकार के शीशे, रासायनिक ईंधन, चर्बी तथा दवाए शामिल हैं। सवाल केवल प्रकृति से प्राप्त सामानो को बदलने का नही है, बल्कि नये उत्पादो का है जो पुराने

किस्म के कच्चे मालो से—उनके विभिन्न गुणो और उत्पादन मे उनके प्रयोग किये जाने की सम्भावना के मामले मे—कही ज्यादा बेहतर हैं।

रसायनशास्त्र से ऐसे अत्यन्त शुद्ध सामान तैयार होते है जिनकी आवश्यकता बडे आणविक बिजलीघरो के निर्माण और हल्के सेमी-कन्डक्टर रेडियो सेटो को तैयार करने मे होती है। इसलिए रसायनशास्त्र का विकास एक ऐसी शर्त है, जिसके बिना इजीनियरिंग, राकेट निर्माण, रेडियो इलेक्ट्रानिक्स, आणविक उत्पादन, हल्के तथा दूसरे उद्योगो का आगे विकास नही हो सकता।

बहुलक (रासायनिक) सामानो के प्रयोग से श्रम की बचत व्यावहारिक हो जाती है। निकट भविष्य मे कृत्रिम सामान—धातु-शोधन उद्योग से तैयार माल की मात्रा तथा अपने उत्पादो के इस्तेमाल की विविधता, दोनो मे ही, प्रतियोगिता करने लगेंगे। यह तो सामान्य जानकारी की बात है कि धातु गलाने की अपेक्षा धातुओ पर काम करने के लिए अधिक लोगो और श्रम की आवश्यकता होती है। लौह धातुओ के स्थान पर बहुलक (रासायनिक) सामानो का इस्तेमाल आर्थिक रूप से बहुत ही लाभकारी होता है।

मार्क्स ने बताया था कि रसायनशास्त्र कृषि के लिए प्रत्यक्ष वैज्ञानिक आधार होता है। उपभोक्ता वस्तुओ के इफरात उत्पादन को प्राप्त करने के लिए कृषि का विस्तृत रासायनिकीकरण पूर्वकल्पित है।

रसायन उद्योग के तेजी से विकास का तकाजा है कि उत्पादन की प्रक्रियाओ मे जटिल यन्त्रीकरण व स्वचालन को लागू किया जाय। बिजली की गति के समान तेज चलने वाली आधुनिक रासायनिक प्रक्रियाओ को, स्वचालित विधियो को लागू किये बिना, नियन्त्रित और सचालित नही किया जा सकता। उत्पादन प्रक्रियाओ के स्वचालन से सभी उद्योगो मे श्रम उत्पादकता में वृद्धि करने का विशाल अवसर प्राप्त होता है, रासायनिक उद्योगो मे उसकी आवश्यकता उत्पादन की वर्तमान परिस्थितियो में ही पैदा हो जाती है।

इस प्रकार, रसायनशास्त्र प्राविधिक प्रगति के लिए एक शक्तिशाली प्रेरक है, जो कम्युनिज्म के भौतिक व तकनीकी आधार के सृजन मे तेजी लाने का काम करता है।

नयी पचवर्षीय योजना म रसायन उद्योग का उच्चतर स्तर पर विकास करने की व्यवस्था की गयी है। खनिज उर्वरको, रासायनिक धागो, प्लास्टिक, कृत्रिम रेजीन, कृत्रिम रबड तथा कार्बनिक बनावट के दूसरे सामानो, प्रक्षालको और घरेलू सामानो के उत्पादन में वृद्धि विशेष रूप से अधिक तेजी से होगी। पाच वर्षो के दौरान खनिज उर्वरको का उत्पादन ३ करोड १३ लाख टन प्रति वर्ष से बढ कर ६ करोड २०-२५ लाख टन प्रति वर्ष तक हो जायगा, प्लास्टिक व सिंथेटिक रेजीन का उत्पादन ८,२१,००० से २१,००,०००-२३,००,०००

टन, रासायनिक धागों का उत्पादन ४,०७,००० से ७,८०,०००-८,३०,००० टन तक पहुंच जायगा। कपडो, जूतो तथा नक्ली फर तैयार करने वाले कृत्रिम सामानों के उत्पादन मे बहुत ज्यादा विस्तार किया जायगा।

प्रत्यक्ष उत्पादक शक्ति के रूप मे विज्ञान

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के दौरान विज्ञान की बढती हुई भूमिका आर्थिक विकास पर गहरा असर डाल रही है। आधुनिक प्राविधिक प्रगति प्राकृतिक एव तकनीकी विज्ञानो की सफलताओ पर आधारित है। कम्युनिस्ट निर्माण के साथ-साथ, आगे बढे विज्ञान की उपलब्धियो का उत्पादन-तकनीको मे अधिकाधिक व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है।

उत्पादक शक्तियो के विकास के लिए विज्ञान एक निर्णायक उपादान बनता जा रहा है। वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति प्रकृति की सम्पदा और शक्तियो को जनता के हित मे अत्यन्त कारगर ढग से इस्तेमाल करने की सम्भावना उन्मुक्त करती है, ईंधन की नयी किस्मो की खोज करती है, नये प्रकार के सामानो की रचना करती है तथा जलवायु सम्बधी स्थितियो को प्रभावित करने एव अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने की विधियो को निश्चित करती है।

मानव विकास भौतिकशास्त्र, गणित, रसायनशास्त्र, मेकैनिक्स तथा बहुत से अन्य विज्ञानो मे अनुसधान के पैमाने, विषयो, स्तर और गति के बारे मे अधिकाधिक तकाजे करता है। वर्तमान युग की महानतम प्राविधिक उपलब्धिया विज्ञान, प्रविधि और उद्योग की अविच्छिन्न एकता का ही परिणाम हैं। प्राविधिक खोजें विस्तृत वैज्ञानिक एव प्राविधिक अनुसधान के परिणामो को प्रतिबिम्बित करती हैं। इसी के साथ, इन खोजों को व्यवहार मे लागू करने का तकाजा है कि एक उपयुक्त उच्चतर औद्योगिक आधार उपलब्ध हो।

समाजवादी व्यवस्था फलदायक वैज्ञानिक काम के लिए अत्यन्त उपयुक्त परिस्थितियों की गारन्टी करती है। सोवियत सघ में शोध सस्थानों का एक बहुशाखी जाल बिछाया गया है और इन्हे आधुनिकतम उपकरणो से लैस किया गया है। सोवियत सरकार शोध-सस्थानो, प्रयोगशाला केन्द्रो, प्रधान प्लान्टो और डिजाइन मडलो के विकास पर भारी धन राशिया खर्च करती है। सोवियत सघ ने चमत्कारी वैज्ञानिक व तकनीकी उपलब्धिया प्राप्त की हैं और ज्ञान के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे वह संसार मे अग्रणी है। सोवियत विज्ञान ने अर्थतन्त्र के सभी क्षेत्रो मे प्राविधिक प्रगति मे जबर्दस्त योगदान किया है।

कम्युनिज्म के भौतिक तथा तकनीकी आधार का निर्माण करने के लिए विज्ञान का और भी तेज रफ्तार से विकास होना चाहिए। उस आधार के निर्माण की प्रक्रिया मे विज्ञान, मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार, अधिकाधिक

बडे पैमाने पर प्रत्यक्ष उत्पादक शक्ति बन जाता है। उत्पादन धीरे-धीरे आधुनिक विज्ञान का प्राविधिक इस्तेमाल बन जाता है।

वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति का तकाजा है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान को बडे पैमाने पर विकसित किया जाय, उत्पादन मे उसके परिणामो को तेजी से इस्तेमाल किया जाय तथा अन्वेषणो को प्रयोग मे लाया जाय। विज्ञान सामाजिक श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि तथा उत्पादन की प्रभावकारिता को बढाने में जबर्दस्त भूमिका अदा करता है। विज्ञान का विकास और अर्थ-व्यवस्था मे उसके परिणामों का तेजी से इस्तेमाल, दो व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक प्रतियोगिता मे समाजवाद की स्थिति को मजबूत बनाता है।

एकमात्र कम्युनिस्ट सम्पत्ति का रास्ता

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, कम्युनिज्म एक वर्ग-विहीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसमे उत्पादन के साधनो पर एकमात्र समस्त जनता का स्वामित्व होता है। कम्युनिस्ट निर्माण की प्रक्रिया मे समाजवादी सम्पत्ति के दोनो रूप धीरे-धीरे एक दूसरे के नजदीक आते जायेंगे और अन्ततोगत्वा उनका सम्मिलन कम्युनिस्ट रूप में हो जायेगा। एकमात्र कम्युनिस्ट सम्पत्ति की स्थापना राजकीय (समस्त जनता की) सम्पत्ति तथा सामूहिक फार्मों की सहकारी सम्पत्ति, दोनो के विकास, सुदृढीकरण और सुधार द्वारा की जाती है।

समाजवादी समाज मे सम्पत्ति पर समस्त जनता का स्वामित्व होता है। यह पूरी जनसख्या की—जिसमे सामूहिक किसान भी शामिल हैं—जीविका का आधार होती है। इसी के साथ, सामूहिक फार्म व्यवस्था के विकास और उसकी मजबूती से ऐसे लक्षणो का उदय और विकास होता है, जो समस्त जनता की सम्पत्ति के लक्षणो से मेल खाते हैं।

सामूहिक फार्म—सहकारी—सम्पत्ति और समस्त जनता के स्वामित्व की सम्पत्ति का विलयन पहले प्रकार की प्रणाली को समाप्त करके नही, बल्कि समाजवादी राज्य की सहायता से उसके समाजीकरण में वृद्धि करके किया जायगा। सामूहिक फार्म सम्पत्ति समाजवादी समाज की उत्पादक शक्तियो के कम्युनिज्म की ओर विकास पर, उसके भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण पर, रोक नही लगाती बल्कि इस प्रक्रिया को हर तरह से आगे बढाती है।

सम्पत्ति के दोनो रूपो के सम्मिलन की ओर ले जाने वाला रास्ता साथ ही लाखो किसानो को कम्युनिज्म की ओर ले जाने वाला रास्ता भी है। समाजवादी सम्पत्ति के दोनो रूपो के सम्मिलन का, तथा सामूहिक किसानों के कृषि श्रम के औद्योगिक श्रम के एक रूप मे रूपान्तरण का, अर्थ यह होगा कि किसानो और मजदूरो के बीच का अन्तर धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा। इस प्रकार शहर और देहात के बीच के सामाजिक-आर्थिक और सास्कृतिक भेद समाप्त हो

जायेंगे। यह कम्युनिस्ट निर्माण के सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणामों में से एक परिणाम होगा।

कम्युनिस्ट निर्माण के पूरे काल में स्वतन्त्र और सचेतन मेहनतकशों के एक वर्ग-विहीन कम्युनिस्ट समाज की रचना की जा रही है।

वर्गों के बीच भेदों का लुप्त होते जाना एक क्रमिक एवं सर्वांगीण प्रक्रिया होती है। इससे अधिकाधिक मात्रा में सामाजिक समानता पैदा होगी। पूर्ण कम्यु-निस्ट समाज के निर्माण के साथ ही सभी वर्ग-भेदों का खात्मा भी पूरा हो जायगा।

कम्युनिस्ट निर्माण के काल मे श्रम मनुष्य के लिए एक प्राथमिक जीवन्त आवश्यकना बन जाता है। यह रूपान्तरण कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान होने वाले बुनियादी परिवर्तनो का तार्किक एव स्वाभाविक परिणाम होता है। इसका दायरा सामाजिक जीवन के भौतिक एव आत्मिक, दोनो ही, क्षेत्रो तक फैला होता है तथा समाजवादी उत्पादन सम्बधो के विकास के पूरे क्रम के दौरान, उनके कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बधो मे रूपान्तरण की प्रक्रिया के दौरान, परिपक्व होता रहता है।

उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधो के विकास मे प्राप्त भारी सफलताएं श्रम को मनुष्य की प्राथमिक जीवन्त आवश्यकता मे बदलने का एक मजबूत आधार तैयार करेंगी। इसी आधार पर समाज के सभी सदस्यो मे श्रम के प्रति सच्चे कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का विकास होगा। सार्वजनिक अर्थतत्र के लिए श्रम और प्रबन्ध के सर्वोत्तम उदाहरणो की सहायता से मेहनतकश जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा के लिए किये जाने वाले भारी प्रयासो का अच्छा फल प्राप्त होगा। श्रम तब केवल जीविका का साधन मात्र नही रह जायगा, बल्कि सही मानो मे एक सृजनात्मक कार्य, सुख का एक स्रोत, बन जायगा।

स्वय अपने लिए व पूरे समाज की खुशहाली के लिए सम्पत्ति का सृजन करने हेतु हर व्यक्ति स्वेच्छा से व सचेतन रूप से उत्पादन मे भाग लेगा। श्रम के बदले हुए रूप तथा उपकरणो की इफरात के कारण, साथ ही चेतना के उच्च स्तर के कारण भी, लोगो मे स्वय अपनी अभिरुचि के अनुसार समाज की भलाई के लिए काम करने की आन्तरिक आवश्यकता विकसित होगी। सृजनात्मक, रचनात्मक श्रम मे हिस्सा लिये बगैर लोग उसी तरह जीवित नही रह सकेंगे, जैसे आज वे हवा के बिना जीवित नही रह सकते। योग्यता के अनुसार श्रम करना, मनुष्य की आदत बन जायगी—प्राथमिक जीवन्त आवश्यकता बन जायगी।

मेहनतकश जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा

कम्युनिस्ट समाज के निर्माण मे, उत्पादक शक्तियो के विकास और उत्पादन सम्बधो मे तरक्की के साथ-साथ, कम्युनिज्म के रचयिता—नये मानव—की शिक्षा-दीक्षा भी निहित है। मेहनतकश जनता में कम्युनिज्म के प्रति निष्ठा-भावना की शिक्षा, श्रम और समाजवादी अर्थतत्र के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण की शिक्षा, पूजीवादी दृष्टिकोण और विचारो के अवशेषो का अन्तिम रूप से विनाश—यह कम्युनिज्म के लिए सफल सघर्ष की एक अत्यावश्यक शर्त है। सबसे मुख्य आवश्यकता है नवयुवको की कम्युनिस्ट शिक्षा—जो कि भविष्य के कम्युनिस्ट समाज के निर्माता हैं।

नये मानव के निर्माण की प्रक्रिया, जैसा कि सोवियत सघ की कम्युनिस्ट

पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है, जैसे-जैसे श्रमजीवी जनता सक्रिय रूप से कम्युनिज्म के निर्माण मे भाग लेती है और जैसे-जैसे पार्टी की शिक्षा की गतिविधियो, राज्य और जन-सगठनो के माध्यम से कम्युनिस्ट सिद्धान्त आर्थिक और सामाजिक जीवन मे विकसित होते है, वैसे-वैसे साथ चलती है। सैद्धान्तिक कार्य के सभी साधनो को—प्रेस और रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन को—श्रमजीवी जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है। कम्युनिस्ट विश्व दृष्टिकोण के निर्माण मे विज्ञान और कला की मुख्य भूमिका है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद—दार्शनिक, आर्थिक तथा सामाजिक-राजनीतिक विचारो की एकताबद्ध और समरूप व्यवस्था के रूप मे—सम्पूर्ण सोवियत समाज की श्रमजीवी जनता के लिए एक वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण निर्मित करने का आधार प्रस्तुत करता है।

इस तरह, कम्युनिज्म के उच्चतर चरण को लागू करने के लिए भौतिक परिस्थितियो के साथ-साथ एक निश्चित मानसिक दृष्टिकोण भी आवश्यक है, जो नये मानव को कम्युनिस्ट समाज का योग्य सदस्य बनाने की शिक्षा से सम्बधित है। कम्युनिज्म के निर्माण के दौर मे, श्रमजीवी जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा का महत्व अत्यधिक बढ जाता है, क्योकि यह जनता ही समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति है और यह ही कम्युनिस्ट समाज की निर्माता है।

दोहराने के प्रश्न

१. कम्युनिज्म के दो चरणों के आम लक्षण क्या हैं और उनमे क्या अन्तर है ?

२. कम्युनिज्म के लिए भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण की मुख्य दिशाए क्या हैं ?

३. मेहनतकश जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा का सार-तत्व क्या है ?

